DHANWANTARI

1953 G.K.U.

आवश्यक सूचना

यह जनवरी का साधारण अंक प्रकाशित किया जा रहा है तथा आगामी अंक (फरवरी-मार्च का) गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क चतुर्थ भाग प्रकाशित किया जायगा ऐसा क्यों किया जा रहा है। इसका विस्तृत विवरण इसी अंक के प्रारम्भ में प्रकाशित है। कृपया उस विवरण को अवश्य पढ़ लीजिएगा। अपना वार्षिक मूल्य यदि आपने अभी तक न भेजा हो तो कृपया अब शीघ्र ही अवश्य भेज दें। यदि किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो तो पत्र द्वारा सूचित करदें। विशेषांक वी. पी. द्वारा पहुँचने पर उसे वापस करना हमारे साथ आपका घोर अन्याय होगा। ऐसा आप कदापि न करें यह हमारी विनम्र प्रार्थना है। गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क और अप्रैल का साधारण अङ्क दोनों एक साथ अप्रैल के अन्त में अथवा मई के प्रारम्भ में अवश्य भेज देंगे।

—व्यवस्थापक।

जनवरी १९५८

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

R.P. Gupta

सम्पादक :- वैद्योपाध्याय देवीशरण गर्ग. ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी.एस-सी.

धन्वन्तरि

जनवरी १९५८ भाग ३२ अङ्क १

सम्पादक—
वैद्योपाध्याय देवीशरण गर्ग
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc.

वार्षिक मूल्य ५·५० इस अङ्क का ५० पैसा

—इस अङ्क में—

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़
प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़

याद रखिये

- इस वर्ष का यह प्रथमाङ्क आपके हाथ में है। आगामी अंक फरवरी-मार्च का विशेषांक-सुप्रसिद्ध प्रयोगांक अप्रैल के अंक के साथ अप्रैल के अन्त में आपको भेजा जायगा।
- यदि आपने वार्षिक मूल्य न भेजा हो तो शीघ्र भेज दें। राजसंस्करण (ग्लेज कागज पर सुन्दर मजबूत जिल्द का) विशेषांक प्राप्त करने के लिए ६।।) भेजियेगा।
- यदि किसी कारण ग्राहक नहीं रहना चाहते हो तो कृपया सूचना अवश्य दे दीजियेगा जिससे कि आपको विशेषांक वी० पी० द्वारा न भेजा जावे।
- सूचना न देते हुये वी० पी० पहुँचने पर वापस करना हमारे प्रति आपका नैतिक अन्याय होगा। ऐसा कदापि न करें।
- यदि पते में किसी प्रकार की भूल हो तो उसकी सूचना शीघ्र ही अवश्य दीजिए।
- गत वर्ष का यदि कोई एकाध अंक न मिला हो तो सूचना दें, विशेषांक के साथ भेज देंगे।

—व्यवस्थापक

अवश्य पढ़िये

जनवरी-फरवरी १९५८ का संयुक्ताङ्क-गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क चतुर्थ भाग प्रकाशित करने की घोषणा की गई थी, किन्तु जनवरी का यह साधारण अंक प्रकाशित किया जा रहा है और फरवरी-मार्च का संयुक्त अङ्क गुप्तसिद्ध प्रयोगांक प्रकाशित किया जायगा। इसका कारण निम्न प्रकार है—

कुछ समय से सरकार ने यह नियम बना दिया है कि विदेशी अखबारी कागज, कागज के व्यवसायी नहीं मंगा सकते हैं किन्तु समाचार पत्र प्रकाशित करने वालों को ही इम्पोर्ट-लाइसेंस दिया जाता है और वे उस लाइसेंस को प्राप्त करने पर कागज मंगा सकते हैं। इस लाइसेंस को प्राप्त करने के लिए १६ नवम्बर १९५७ को आवेदन पत्र प्रेषित किया गया था और आशा थी कि १०-५ दिन में लाइसेंस मिल जायगा। लाइसेंस मिलने पर तो कागज मिलने में विलम्ब होता नहीं है। लाइसेंस लेकर कागज व्यवसायी तुरन्त कागज दे देते हैं और फिर वे उस लाइसेंस का कागज मंगा लेते हैं। अतः हमको विश्वास था कि पहली दिसम्बर के लगभग कागज मिल जायगा और विशेषांक समय पर प्रकाशित किया जा सकेगा। किंतु मनुष्य जो सोचता है वह हो ही जाय, यह आवश्यक नहीं। इसी को ईश्वरीय विधान कहा जाता है। कागज का लाइसेंस प्राप्त करने के लिए विजयगढ़ और दहली की लगभग ८-१० बार यात्रा करनी पड़ी, एक आदमी दहली ही इसके प्रयत्न में लगभग २ माह तक पड़ा रहा, अनेक परेशानियां उठाने के बाद जैसे-तैसे यह लाइसेंस ता. १५-२-५८ तक मिल सका है। कागज के अभाव में प्रेस २ माह तक प्रायः बंद पड़ा रहा और कर्मचारियों को वेतन देना पड़ा।

कागज मिलते ही प्रेस को रात-दिन चालू कर दिया गया है, विशेपांङ्क के प्रकाशन में विलम्ब होजाने से हमारे पाठकों को परेशानी होगी अतः उनको वस्तु-स्थिति का ज्ञान कराना हमारा कर्त्तव्य है यह समझ कर जनवरी का यह अङ्क प्रकाशित कर दिया गया है। विशेषाङ्क की छपाई में २ माह लग जाना आवश्यक है तथा १५-२० दिन बाइडिंग में लग जायगा अतएव गुप्तसिद्ध प्रयोगांक (फरवरी-मार्च १९५८ का संयुक्तांक) तथा अप्रेल का अङ्क २० मई के लगभग ग्राहकों को भेजा जा सकेगा। अतएव नवीन एवं पुराने सभी ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि वे इस विलम्बजन्य कष्ट के लिए हमको क्षमा करें तथा थोड़ा और धैर्य रखते हुए हमको सहयोग प्रदान करें।

पोस्ट व्यय बढ़ जाने, कागज का भाव भी तेज होने तथा अन्य अनेक परेशानियों के कारण धन्वन्तरि के प्रकाशन में घाटे में दी जाने वाली धनराशिकी मात्रा प्रतिवर्ष बढ़ती ही जाती है। इस बार की परेशानी ने तो हमारी हिम्मत को ही पस्त कर दिया और हम विचार करने लगे कि धन्वन्तरि का मूल्य बढ़ा दिया जाय और उसे ग्लेज कागज पर प्रकाशित किया जाय। किंतु हम सदैव ही इस प्रयत्न में रहे हैं और रहेंगे कि धन्वन्तरि को यथा साध्य सब की पहुंच तक रखा जाय और उसे अधिकाधिक उपयोगी बनाया जाय। प्रतिवर्ष बढ़ती हुई ग्राहक संख्या से हम यह मानते हैं कि ग्राहक हमारी सेवाओं से सन्तुष्ट हैं। फिर भी यदि आप धन्वन्तरि को अधिक सर्वप्रिय बनने के लिए कोई सुझाव देंगे तो हम उसका हार्दिक स्वागत करेंगे।

धन्वन्तरि के प्रकाशन में बढ़ती हुई हानि की पूर्ति हमारे कृपालु ग्राहक निम्न प्रकार कर सकते हैं—

अ—सभी ग्राहक १-२ [illegible] में यदि आप अपने हृदय में यह अनुभव करते हैं कि धन्वन्तरि के प्रति आपका भी कुछ कर्त्तव्य है तो आप थोड़ा प्रयत्न करके २-४ नवीन ग्राहक अवश्य बना दीजिये। इस वर्ष का विशेषांक तो सभी चिकित्साप्रेमियों के लिये अत्युपयोगी होगा, इसका महत्व बताने, समझाने से आपके लिये २-४ ग्राहक बना लेना कठिन नहीं है। हमको विश्वास है कि आप इस ओर अवश्य ध्यान देंगे।

आ—धन्वन्तरि महान उपयोगी, सुन्दर तथा पठनीय होते हुये भी किसी कारण कुछ सज्जन धन्वन्तरि के ग्राहक नहीं रहना चाहते हैं और हमारे बार-बार आग्रह और निवेदन करने पर भी वे ग्राहक न रहने के निश्चय की सूचना नहीं देते हैं तथा वी. पी. पहुँचने पर वापस कर देते हैं। इस प्रकार वी. पी. वापस आने पर एक वी. पी. के पीछे हमको ।।≈) की हानि उठानी पड़ती है। अतएव उनसे विशेष निवेदन है कि जो सज्जन ग्राहक न रहना चाहें वे पत्र द्वारा अवश्य सूचित करदें ताकि उन्हें वी. पी. न भेजी जाय।

४—दिसम्बर १९५७ के अंक में मनियार्डर फार्म भेज चुके हैं। यदि आपने अपना वार्षिक मूल्य अभी न भेजा हो तो शीघ्र भेज दीजियेगा। मनियार्डर से वार्षिक मूल्य प्राप्त होने से हमको सुविधा रहती है, आपको तो आगे-पीछे रुपया देना ही है। जो सज्जन राजसंस्करण प्राप्त करना चाहें उनको ६।।) भेजना चाहिये।

आगामी साधारण अङ्कों

को अधिक उपयोगी और आकर्षक बनाने के लिये भी हम विशेष प्रयत्नशील हैं। इस वर्ष हमने निम्न योजनाऐं बनाई हैं—

१—प्रतिवर्ष २ निश्चित् विषयों पर विद्वानों और अनुभवी चिकित्सकों तथा पाठकों से अपने विशेष अनुभव, शास्त्रीय विवेचन तथा अन्य तत्सम्बन्धित लेख मांगा जाना निश्चित् किया गया है। इस वर्ष "भगन्दर" तथा "माता" [illegible] पर विशेष लेख प्रकाशित किये जां[एंगे]। लेखकों, पाठकों तथा अनुभवी चिकित्सकों [से] लेख-प्रयोगादि भेजने की प्रार्थना है। वि[शेष] लेखकों को उचित पारिश्रमिक भी दिया जाय[गा]।

२—इस वर्ष कविराज लाला बद्रीनारायण [...] G. A. M. S. द्वारा लिखित 'दोष-धातु-म[ल]' शीर्षक विस्तृत वर्णन युक्त सचित्र निबन्ध धा[रा]वाहिक रूप से प्रकाशित किया जायगा। [यह] निबन्ध पाठकों को 'दोष-धातु-मल' के विष[य] में वैज्ञानिक विस्तृत जानकारी देगा त[था] विश्वास है कि पाठक इसे पसन्द करेंगे।

३—आयुर्वेद विद्वानों से आग्रहपूर्ण निवेदन है [कि] धन्वन्तरि को उपादेय बनाने में सहयोग कर[ें]। हम भी उनको पारिश्रमिक देने के [लिये] प्रस्तुत हैं।

गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क (चतुर्थ भाग)

यह विशेषांक पाठकों के लिए अत्यधिक उपयो[गी] प्रमाणित होगा, इसमें किसी प्रकार का सन्देह न[हीं] है। प्रयोगों की अन्य संग्रहीत पुस्तकों तथा इ[स] प्रयोग-संग्रह में एक सैद्धान्तिक अन्तर है। पुस्त[क] एक लेखक द्वारा लिखी होती है तथा वह कितना [ही] विद्वान और अनुभवी हो सभी रोगों का सफ[ल] चिकित्सक नहीं हो सकता और इसलिये उसके द्वा[रा] संग्रहीत अधिकांश प्रयोग अनुमान के आधार [पर] सफल मानकर पुस्तक में संग्रह किये जाते हैं। इस विशेषांक में प्रकाशनार्थ हमारे पास ३[...] विद्वानों तथा अनुभवी चिकित्सकों के २-२, ४[...] प्रयोग प्राप्त हुये हैं। लेखकों ने जिन प्रयोगों [को] स्वयं अनेक रोगियों पर व्यवहार करके सफल[ता] प्राप्त की, उन्हीं प्रयोगों को प्रकाशनार्थ प्रेषित कि[या] है। अतएव ये सभी प्रयोग सफल प्रमाणित होंगे। इस विशेषांक में भारत के ख्यातिप्राप्त चिकित्स[कों] ने बड़ी उदारता से अपने सफल प्रयोगों को देने [की] महती कृपा की है जिसके लिए हम आभारी हैं त[था] पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि वे इस बार [के] विशेषांक को प्राप्त कर अवश्य ही प्रसन्न होंगे।

वैद्यों की एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति

असली मोती का चूरा

यह मोतीचूरा बहुत प्रयत्न के पश्चात् प्राप्त किया गया है। बढ़िया मोतियों को जेवर बनाते समय खराद किया जाता है और उस खराद से जो चूरा प्राप्त होता है उसे संग्रह किया गया है। यह मोतीचूरा बढ़िया से बढ़िया मोतियों के समान गुणदायक सिद्ध होता है—सभी प्रतिष्ठित वैद्य और फार्मेसी वाले इसे व्यवहार करते हैं—यह मोतीचूरा बहुत ही सीमित मात्रा में प्राप्त हुआ है अतः बहुत अधिक परिमाण में सप्लाई नहीं कर सकते। आवश्यकता के अनुरूप अभी थोड़ा-थोड़ा मंगाकर व्यवहार करना चाहिए।

मोतीचूरा नं० १—बहुत बढ़िया मोतियों का संग्रह किया हुआ। इसमें ऐसे मोतियों का भी बहुत थोड़े अंश में मिश्रण है जो अत्यन्त बारीक या बेडौल होने से उपयोग में नहीं आ सकते। मूल्य १ तोला १०)

मोतीचूरा नं० २—इसमें बारीक मोतियों का मिश्रण नहीं है। मूल्य ८) तोला।

गारण्टी—यदि आपको हमारा मोतीचूरा मंगाने के पश्चात् पसन्द न आये तो आप उसे वापिस कर सकते हैं। केवल पोस्ट-व्यय आपका व्यय होगा।

पता—दाऊ मेडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

टिकिया बनाने की

मशीन
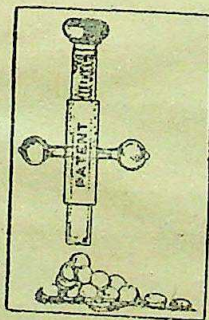
निकिल पोलिश की हुई सुंदर व टिकाऊ मशीन द्वारा आप सुन्दर टिकिया (Tablet) आसानी से बना सकेंगे। इससे तीन साइज की (२ रत्ती, ४ रत्ती व ६ रत्ती की) टिकिया बना सकते हैं। मूल्य ११) पोस्ट व्यय १=) पृथक्।

—२० मार्च १९५८ तक रियायत—

१०) मनियार्डर से भेजने वालों को मशीन रजिष्ट्री से भेज दी जायगी। २० मार्च के बाद यह रियायत नहीं दी जा सकेगी।

पता—दाऊ मेडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

★ उपयोगी एलोपैथिक पुस्तकें ★

वर्मा एलोपैथिक गाइड—इसके चार संस्करण समाप्त हो गये हैं, पांचवां अभी-अभी तैयार हुआ है। एलोपैथिक का सामान्य ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तक सर्वोत्तम मानी जाती है। मूल्य १०)

हिन्दी मार्डन मैडीकल ट्रीटमैंट—लखनऊ विश्व विद्यालय के प्रोफेसर श्री एम. एल. गुजराल M.B.M. R.C.P. (लंदन) द्वारा लिखित एलोपैथिक चिकित्सा का प्रमाणिक ग्रन्थ है। मूल्य २०)

पेटेंट प्रेस्काइबर (पेटेंट मैडीसन)—श्री रमानाथ द्विवेदी कृत चिकित्सकों के लिए अत्युपयोगी पुस्तक। धड़ाधड़ बिक रही है। सभी रोगों पर एलोपैथिक पेटेंट औषधियां एवं इन्जैक्शनों का निर्देष किया गया है। मूल्य ६) मात्र

आयुर्वेदिक एवं एलोपैथिक गाइड—उभय पद्धति से चिकित्सा करने वालों के लिए यह बेजोड़ पुस्तक है। हर विषय को बड़ी सरल भाषा में समझाया है। मूल्य नवीन संस्करण १०)

वर्मा एलोपैथिक चिकित्सा—इसमें सभी रोगों की परिभाषा, लक्षण, कारण, चिकित्सा, प्रयोगादि डाक्टरी मतानुसार प्रामाणिक रूप में वर्णित है। पुस्तक उपयोगी एवं पठनीय है। मूल्य १२)

वर्मा एलोपैथिक योग रत्नाकर—इस पुस्तक में प्रायः सभी रोगों पर सफल एलोपैथिक प्रयोग, मिक्चर, इन्जैक्शन आदि वर्णित हैं। प्रथम ५६२ पृष्ठों में ५२५ रोगों पर २८३६ प्रयोग, फिर १३७ पृष्ठों में २०८ रोगों पर आधुनिकतम इन्जेक्शन और बाद में प्रमुख रोगों का संक्षिप्त वर्णन है। मूल्य १३)

एलोपैथिक चिकित्सा—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा प्रायः सभी रोगों के लक्षण निदान तथा विस्तृत चिकित्सा विधि वर्णित है। नवीन तृतीय संस्करण, मूल्य १०)

एलोपैथिक पाकेट गाइड—संक्षिप्त रूपेण सभी बातों का बड़ी खूबी से संकलन किया है। हर समय काम देने वाली पुस्तक है। मूल्य ३)

एलोपैथिक पेटेंट मैडीसन—डा० अयोध्यानाथ जी पाण्डेय लिखित। मूल्य ३।।)

एलोपैथी मेटेरिया मैडिका (पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान)—कवि. रामसुशीलसिंह शास्त्री A. M. S. द्वारा लिखित अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। विद्यार्थियों के लिये सर्वोत्तम ग्रन्थ मूल्य १२)

एलोपैथिक मेटेरिया मैडिका—डा० शिवदयाल गुप्त A. M. S. द्वारा लिखित विशाल ग्रन्थ। मूल्य १२)

एलोपैथिक सफल औषधियां—एलोपैथिक नवीनतम अत्यन्त प्रसिद्ध औषधियों का गुणधर्म विवेचन किया गया है। मूल्य ३)

मलमूत्र रक्तादि परीक्षा—लेखक डा० शिवदयाल गुप्ता A. M. S. अपने विषय की सर्वाङ्गपूर्ण सचित्र पुस्तक। मूल्य २।।)

मिक्चर (पंचम संस्करण)—१८५ रोगों पर ३५० एलोपैथिक सफल मिक्चरों का संग्रह. साथ ही अनेक ज्ञातव्य बातें दी गई हैं; मूल्य २।)

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—इसके पढ़ने से शरीर रचना का ज्ञान सुगमता से हो सकता है, हर विषय को विस्तार से समझाया है। विशाल ग्रन्थ का मू० १५)

आदर्श एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—लेखक डा० रामनारायण सक्सेना। मूल्य ११)

व्रण शोथ विमर्श—इस पुस्तक में व्रणशोथ (Inflamation) के कारण, निदान एवं चिकित्सा दी है। पुस्तक उपयोगी है। मूल्य ३)

इन्जेक्शन (ंचम संस्करण)—इसमें सुई लगाने के तरीके तथा नवीनतम एलोपैथिक इन्जैक्शनों का विस्तृत वर्णन है। अपने विषय की सर्वोत्तम पुस्तक है। धड़ाधड़ बिक रही है। मूल्य १०)

ज्वर चिकित्सा—लेखक-अयोध्यानाथ पाण्डेय। एलोपैथिक, होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक और यूनानी मत से ज्वर की चिकित्सा। पुस्तक उत्तर-प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत है। मूल्य २)

मंगाने का पता-धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)
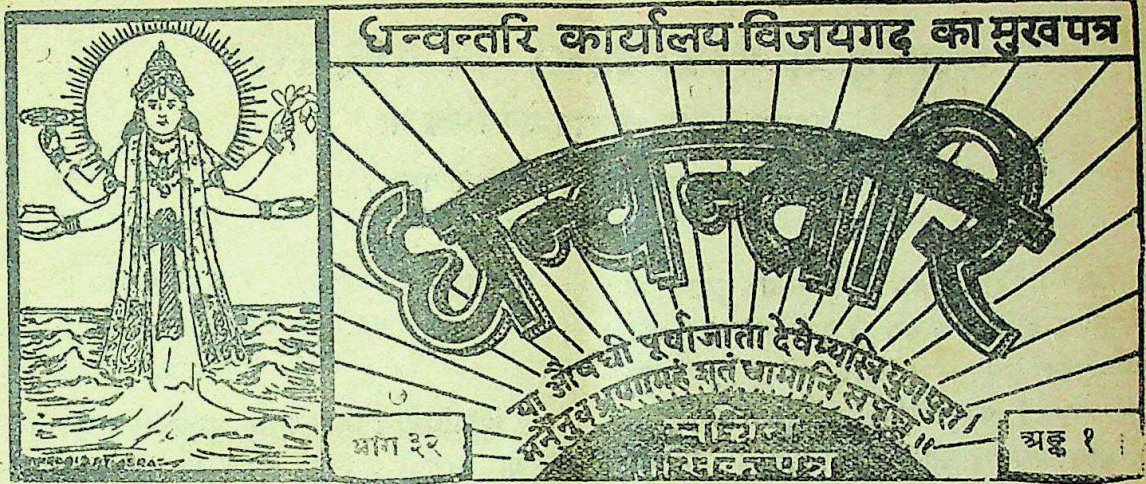
नूतन वर्षाभिनन्दन

नए वर्ष की शुभ बेला में, धरती के शृङ्गार बनो तुम।
आयुर्वेद-संस्कृति के दाता, "धन्वन्तरि" आधार बनो तुम ॥

विकल देह है त्रस्त स्वस्थता, अस्त-व्यस्त मनुज का जीवन।
नरकंकाल रहा है केवल, रोगों से उजड़ा यह मधुवन ॥
तूफानों के बीच डोलती, नैया के पतवार बनो तुम।
नए वर्ष की शुभ बेला में, धरती के शृङ्गार बनो तुम ॥१॥

एलोपैथी के चंगुल में फंस, मानव का मन सोया है।
तन-मन-धन का सर्वनाश कर, बीज रोग का बोया है ॥
धर्म-अर्थ औ काम मोक्ष का, मूलस्वास्थ्य यह सार बनो तुम।
नए वर्ष की शुभ बेला में, धरती के शृङ्गार बनो तुम ॥२॥

विश्व चिकित्सा के प्रतीक बन, शोषण जड़ता आज मिटाओ।
नई सृष्टि के नए मूल्य बन, गीत क्रांति के गाते जाओ ॥
नव युग की नव औषधियों के, मूल तुम्हीं साकार बनो तुम।
नए वर्ष की शुभ बेला में, धरती के शृङ्गार बनो तुम ॥३॥

कण-कण का मन सजल सरस कर, नव-वसन्त सी छवि मनभावन।
कर शतायु नारी-जनगण को, हृदय को सबका अति पावन ॥
स्वतंत्रता के युग में प्रभु! अब जग के प्राणाधार बनो तुम।
नए वर्ष की शुभ बेला में, धरती के शृङ्गार बनो तुम ॥४

—श्री सन्तोषकुमार जैन आयुर्वेदाचार्य A. M. S.

यजुर्वेद में राज-यक्ष्मा पर एक प्रसंग

व्याधि-निदान, निरोध एवं चिकित्सा

लेखक—वैद्य श्री. अम्बालाल जोशी, जोधपुर।

यजुर्वेद में राष्ट्र-रक्षा, सेना तथा युद्धों का वर्णन अधिक होने के कारण ही धनुर्वेद को इस वेद का उपवेद कहा है। परन्तु कहीं-कहीं इसमें आयुर्वेद के विषयों का जिसमें व्याधि-निदान, रोग निरोध तथा रोग चिकित्सा का उल्लेख है समावेश है। उन्हीं में से कुछ अंश हम यहां पाठकों के लाभार्थ उद्धरित कर रहे हैं।

विशेष रूप से यह प्रसंग राजयक्ष्मा से संबन्धित है। राजयक्ष्मा को वेदों में 'यक्ष्मा' व्याधि से नामकरण किया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वेदों में यक्ष्मा नामक व्याधि का उल्लेख है? इस प्रश्न के उत्तर में हम यजुर्वेद की निम्न ऋचायें प्रस्तुत करेंगे—

साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीवना।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया॥

—ऋ. १०। ६७। १३

हे यक्ष्म! तू ज्ञानपूर्वक प्रयोग किये गये भोजन के साथ ही परे भागजा और वायु की प्रबल गति के साथ दूर भागजा। तथा रोग को निःशेष करने की प्रक्रिया से तू नष्ट हो।

उपरोक्त ऋचा में यक्ष्मा के रोगी के लिए आहार विहार का निर्देश है:—

(i) सुपथ्य द्वारा रोग शोधन।

(ii) वायु द्वारा रोग शोधन (प्राणायाम या वायु सेवन)।

(iii) रोग निःशेष करने की अन्य प्रक्रिया।

यजुर्वेद में यक्ष्मा रोग पर औषधि-व्यवस्था का भी उल्लेख है।

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं विबाधध्वंऽउग्रो मध्यमशीरिव॥

—ऋ. १०। ६७। १२

हे औषधियों! जिस रोगी पुरुष के अंग-अंग और पोरु-पोरु में जब तुम प्रवेश पा जाती हो तब मर्मों को काट देने वाला या मध्यम, प्रचण्ड बलवान राजा जिस प्रकार शत्रु को नाश कर डालता है उसी प्रकार, उस शरीर से रोग को विनष्ट कर देती हो।

उपरोक्त प्रसंग से यह स्पष्ट है कि उस समय यक्ष्मानाशक तीव्र औषधियां भी उपस्थित थीं। तथा एकौषधि परिकल्पना वैदिक युग में मिश्रित औषधि कल्पना में अग्रसर हो चुकी थी। मिश्रित औषधि कल्पना के प्रमाण में एक और ऋचा यहां प्रस्तुत की जा रही है—

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वाऽइव सजित्वरी विरुधः पारयिष्ण्वः॥

—ऋ. १०। ६७। ३

हे औषधियों! तुम फूलों वाली, उत्तम फल उत्पन्न करने वाली हो। अश्वारोही लोग जिस प्रकार परस्पर मिलकर युद्ध विजय करते हैं, शत्रुओं को बढ़ने से रोकते हैं। उसी प्रकार हे औषधियों। तुम भी रोगों पर मिलकर विजय प्राप्त करने वाली (चिकित्सोपयोगी) रोगों को रोकनेवाली (रोग निरोधक) तथा कष्टों से पार करने वाली (रोगशामक) हो।

अतिविश्वाः परिष्ठा स्तेनऽइव व्रजमक्रमुः।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किञ्च तन्वो रपः॥

—ऋ. १०। ६७। १०

चोर जिस प्रकार गांवों के बाड़े पर आक्रमण करते हैं उसी प्रकार सर्वत्र व्यापनशील या रोगों

पर वश करने वाली समस्त औषधियां भी रोग समूह पर आक्रमण करती हैं और जो कुछ भी शरीर का दुखदायी रोग होता है, उसको औषधियां दूर कर देती हैं।

इतना ही नहीं उन औषधियों के बल में गुणित वृद्धि करना भी उस समय के चिकित्सक जानते थे। जैसा कि नीचे के उद्धरण से स्पष्ट है—

यदि मा वाज यन्न हमोषधीर्हस्तऽआदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुराजीव गृभो यथा ॥

—ऋ. १० । ९७ । ११

जब मैं इन औषधियों को अधिक बलशाली बनाकर अपने हाथ में लेता हूँ, पूर्व के समान ही तब जीवन को ले लेने वाले प्राणघातक राजयक्ष्मा का भी मूल कारण पहले ही नष्ट हो जाता है। अथवा जिस प्रकार जीतेजी पकड़े गये प्राण पहले ही उठ जाते हैं उसी प्रकार औषधि लेते ही रोग का मूल कारण पहले ही नष्ट हो जाता है। उपरोक्त ऋचा में औषधि की बल मात्रा (Potency) का उल्लेख तो है ही साथ ही रोग निरोधक (यक्ष्मा निरोधक) औषधि का जिक्र भी है। इससे पता चलता है कि उस समय रोग निरोधक औषधियों का भी ज्ञान वैद्यों को था।

यहीं भारतीय वैद्यों के औषधि ज्ञान का एक और सुन्दर उल्लेख मिलता है और वह है कि उस समय वैद्य औषधियों के दुष्प्रभावों से भी परिचित थे और उसका प्रतिरोधक भी वे जानते थे। जैसा यहां स्पष्ट कहा गया है—

अन्याबोऽअन्याय व त्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावतः वचः ॥

—ऋ. १० । ९१ । १४

हे औषधियों ! तुम में से एक दूसरी की रक्षा करे और एक दूसरी के गुणों और प्रभावों की रक्षा करो। सब परस्पर सहयोग करती हुई मेरे इस बचन को अच्छी प्रकार पालन करो। इसी प्रकार हे सेना के पुरुषो ! तुम एक दूसरे की रक्षा करो। परस्पर मिलकर मेरी आज्ञा का पालन करो।

एक दूसरी औषधि के गुणों की अनुपूर्ति का भी इस स्थान में उल्लेख है। परन्तु ये औषधियां विद्वान वैद्यों के हाथ में जाकर ही लाभप्रद हो सकती हैं—

याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
वृहस्पति प्रसूतास्तानो मुञ्चत्व ँ हसः ॥

—ऋ. १० । ९७ । १५

जो औषधियां फल वाली हैं और जो फल रहित हैं, फूल वाली नहीं हैं या जो फूल वाली हैं, वे सब वृहस्पति प्रसूता विद्या के पालक उत्तम विद्वान द्वारा प्रयोग की जाकर हमें दुःखों से छुड़ावें। यहां यह स्पष्ट है कि विद्याओं के आदि प्रवर्तक वृहस्पति हैं तथा औषधियां विभिन्न हाथों में अपना भिन्न-भिन्न प्रभाव दिखाती हैं !

अव पतन्तीर वदन्दिवऽओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पुरुषः ॥

—ऋ. १० । ९७ । १७

प्रकाशमान सूर्य की आने वाली किरणों के समान ज्ञानवान वैद्य के पास आती हुई वीर्यवती औषधियां मानो कहती हैं कि जिस प्राणधारी के शरीर को हम व्याप लेती हैं, वह देह-वासी आत्मा पुरुष पीड़ित नहीं होता।

यह औषधि के रोग निरोधक गुण का उत्कृष्ट उल्लेख है। विद्वान वैद्य के पास ही उन औषधियों की दिव्यता मुखरित होती है। इसी लिए तो वेद कालीन जनता को आदेश दिया गया है कि आप उस वैद्य के पास जाइये जिसके पास विशाल औषधि संग्रह हो अथवा बड़ा चिकित्सालय हो। वह वैद्य भिषग् कहलाता है।

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिता विव ।
विप्र स उच्यते भिषग्रक्षो हामीवचातनः ॥

—ऋ. १० । ९७ । ६

जहाँ जिसके आश्रम पर संग्राम या राजसभा में क्षत्रिय राजाओं के समान औषधियां हों। हे मनुष्यो ! आप लोग वहां ही जाओ। जो पुरुष राक्षस तथा

दुःखदायी पुरुषों के नाश करने वाले वीर्यवान क्षत्रिय के समान रोगों का नाश करने में समर्थ हो वह ज्ञान-पूर्ण मेधावी पुरुष रोग नाश करने द्वारा 'भिषक्' कहलाता है, ऐसा रोगनाशक पुरुष ही उपदेश किया करें।

उपरोक्त श्लोक में तीन बातें स्पष्ट हैं—(i) राज्य सभा के समान विशाल जिसका औषधालय हो या संग्राम व्यवस्था के समान जिसकी औषधि व्यवस्था हो, तथा राज्य सभा के सभासदों जितनी सुसज्जित तथा संख्या में जिसके पास औषधियां हों (ii) शत्रुनाशक क्षत्रियों के समान जो रोगों का नाश करने योग्य साहसी हो तथा मेधावी विद्वान हो (iii) जो चिकित्सा के व्यवसाय के अलावा स्वस्थ रहने का उपदेश भी प्रजाजनों को करता रहे। ऐसे भिषक् के तीन गुणों का यहां उल्लेख है। तथा आयुर्वेद के उद्देश्यों की पूर्ति भी की गई है—(i) स्वस्थोपदेश तथा (ii) रोगी चिकित्सा। ऊपर हम उल्लेख कर आये हैं कि औषधियों के प्रभाव को गुणित भी किया जाता था। यह किस प्रकार होता था इसका उल्लेख भी हमें अति संक्षेप में मिलता है।—

या औषधीः सोमराज्ञी विष्ठिताः पृथिवीमनु।
बृहस्पति प्रसूताऽअस्यै संदत्त वीर्यम्॥
—ऋ. १०।९७।१९

सोमवल्ली के गुणों से प्रकाशित होने वाली जो औषधियां-* पृथिवी पर एक दूसरे के अनुकूल गुण होकर स्थित है वे वेद विद्या के पालक विद्वान द्वारा प्रयोग की गई इस विशेष औषधी को विशेष बल प्रदान करें।

इसी प्रकार ऋ. १०।९७।१८ तथा ऋ. १०।९६।२० में भी औषधियों के बलों की वृद्धि की ओर संकेत किया है। अवश्य सोम के प्रभाव से प्रभावित होने का उल्लेख भी इन श्लोकों में है। इन्हीं औषधियों के १०७ गुणों से प्रभावित होकर इन्हें 'माता' की संज्ञा से संबोधित किया गया है। १०७ गुणों का उल्लेख श्लोक ऋ. १०।९७।१ में किया गया है।

या औषधिः पूर्वा जाता देवेभ्य स्त्रियुगं पुरा।
मनवु बभ्रूणा महऽशतं धामानि सप्त च॥
—ऋ. १०।९७।१

शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शत क्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत॥
—ऋ. १०।९७।२

हे माता के समान पुष्टिकारक औषधियो! तुम्हारे सैकड़ों वीर्य हैं और तुम्हारे प्ररोह, अंकुर, पुत्र, संतति आदि भी सहस्रों प्रकार के हैं और तुम सब भी सैकड़ों प्रकार के कार्य करने वाली हो। अतः मेरे शरीर को निरोग करो।

परन्तु यह रोग होता क्यों है, इस विषय में वेद स्पष्ट कहते हैं—

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देव किल्बिषात्॥
—ऋ.।१०।९७।१६

हे औषधियों के समान कष्टों के निवारक वीर आप्त प्रजाजनो! जिस प्रकार औषधियें कुपथ्य, निन्दा योग्य कर्म से होने वाले कष्ट से निवारण करने योग्य रोग से और मृत्यु के बन्धन से और इन्द्रियों में बैठे विकारों से मुक्त करती हैं उसी प्रकार आप लोग भी आक्रोश या परस्पर निन्दा के वचनों से उत्पन्न आप और वरुण राजा या वरणीय श्रेष्ठ पुरुष के अपराध से उत्पन्न होने वाले और नियन्ता न्यायाधीश के दिए जाने वाले बेड़ियों, कैद, आदि बन्धन से और सब प्रकार के विद्वानों तथा राजा के प्रति किये गये अपराधों से बचावें।

यहां रोग उत्पत्ति में कुपथ्य (मिथ्या आहार) निन्दा योग्य कर्म (मिथ्या विहार, पापजन्य (मान-

—शेषांश पृष्ठ ७ पर।

* संभवतः सोम सुरा में मिश्रित कर बनाई गई औषधियां अधिक गुणशाली मानी गई हों तथा इसी से औषधि बल (पोटेन्सी) बनाई गई हो जैसा कि होमियोपैथी में मदर-टिन्चर होते हैं। —लेखक।

आयुर्वेद में वमन का महत्व

लेखक—डा० शंकरलाल भेडा आयुर्वेदाचार्य एम. बी. बी. एस., बम्बई।

वमन शब्द का आयुर्वेद में पारिभाषिक अर्थ—जो द्रव्य आमाशय स्थित अपक्व अन्न तथा श्लेष्मा एवं पित्त आदि दोषों को मुख मार्ग द्वारा बाहर निकाल देता है, उसको वमन कहते हैं। इसी को चरकादि आचार्यों ने "ऊर्ध्व भाग हर" नाम दिया है।[1] आचार्य चरक सुश्रुत वृद्ध-वाग्भट्ट तथा रस वैशेषिक सूत्रकार एवं शार्ङ्गधरादि ने इस विषय में बहुत विस्तृत तथा मार्मिक विचार किया है, उन सम्पूर्ण मतों का यह निष्कर्ष निकलता है कि—"जो द्रव्य अग्नि एवं वायु गुण भूयिष्ठ तथा उष्ण वीर्य, तीक्ष्ण, सूक्ष्म गुण युक्त विकाशी एवं सर्व रस होते हैं वे वमन कारक होते हैं। क्योंकि अग्नि तथा वायु ये दोनों महाभूत लघु होने के कारण ऊर्ध्वगामी होते, हैं[2], तथा अपने साथ शरीर में रहने वाले अपक्व अन्न श्लेष्म पित्तादि दोषों को भी बाहर निकालते हैं। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि—सभी अग्नि वाय्वात्मक द्रव्य वमन नहीं कराते हैं, इस लिये यह कर्म द्रव्य प्रभावजन्य माना गया है।[1] आयुर्वेद में संशोधन और संशमन जो चिकित्सा-क्रम बतलाये हैं, उनमें कफ के निर्हरण के लिये यह वमन संशोधन कर्म सर्वोत्तम माना गया है।

वमनं श्लेष्महराणाम्। (चरक)
कफे विदध्याद् वमनं संयोगेवा कफोल्बणे।
(अ. हृ. सू. १८)

यही नहीं, अपक्व दोषों के निर्हरण के लिए वमन तथा पक्व दोषों के लिये विरेचन की सुश्रुत ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा सहेतुक की है।[2]

अजीर्ण जन्य आम के प्राबल्य में तथा आमा-

---

१ दोष हरणमूर्ध्वभागं वमन संज्ञकम्।
(च. क. १)
मदनादीनि—ऊर्ध्वभागहराणि।
(सु. सू. ३९. अ.)
दोषहरण मूर्ध्वभागं वमनाख्यम्।
(अ. सं. सू. २७)
अपक्व पित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत्।
वमनं तद्धि विज्ञेयम्।
(शार्ङ्गधर संहिता)

२ तत्रोष्ण तीक्ष्ण सूक्ष्म व्यवायि विकाशी न्यौष-ध्यादि ····प्रभावाच्चोर्ध्वंयुत क्षिप्यते। (च. क. १)
वमन द्रव्याणि—अग्नि वायु गुण भूयिष्ठानि, अग्नि वायुर्हि लघु, लघुत्वाच्च तान्यूर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति; तस्माद् वमनमूर्ध्व गुण भूयिष्ठम्। (सु. सू. ४१)

तदाग्नेय वायव्यञ्च। तत्र सर्वान् रसानाश्रित्य छर्दनीयम्। (रसवैशेषिक सूत्र)।

[1] ऊर्ध्वानुलोमिकं यच्च तत् प्रभाव प्रभावितम्। (च. सू. २६) ऊर्ध्वानु लोमिक मिति—युगपदुभय भागहरं, किंवा—ऊर्ध्व भागहरं तथाऽनुलोम हरश्च। (चक्रपाणि-श्लोक. ६९ व्याख्या)।

[2] यात्यधो दोषमादाय पच्यमानं विरेचनम्।
गुणोत्कर्षाद् व्रजत्यूर्ध्व मपक्वं वमनं पुनः॥
(सु. चि. ३३)
अपक्वं वमनं दोषान् पच्यमानं विरेचनम्।
निर्हरेद् वमनस्यातः पाकं न प्रतिपालयेत्॥
(अ. हृ. सू. १८)
संशोधनं वा कफ पित्तहारी।
(च. चि. २०)
अत्यन्ताम परीतस्य छर्दनं संभवोऽद्भुतम्॥
(सु. उ. ४९)
शोधयेच्छोधनैः काले यथासन्नं यथा बलम्।
हन्त्याशुयुक्तं वक्त्रेण द्रव्य मामाशयान्मलम्।
(वृ. वाग्भट. सू. २१)

शय के उत्क्लेश आदि उपद्रवों में वमन प्रयोग उत्तम लाभप्रद होते हैं। इसलिए ऊर्ध्वासन्न दोषों का निर्हरण वमन द्वारा शीघ्र करना चाहिए। क्योंकि मुख द्वारा प्रयोग की हुई औषधि शीघ्र ही आमाशय में जाकर आमाशय से अपक्व श्लेष्म पित्तादि मलों को निकाल कर आरोग्य प्रदान करता है।

आमाशयादि से सम्बन्ध रखने वाले रोगों के दोषों को दूर करने में उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, तथा अधीर होकर आमदोषों का धारण नहीं करना चाहिए। क्योंकि प्रायः अतिस्थौल्यादि विकार इनके धारण करने से ही होते हैं। इनकी शान्ति के लिए भी परमोपाय वमन कर्म ही है। जिन द्रव्यों से वमन कराई जाती है, उनका शरीर के अवयवों में क्या इतिकर्तव्यता होती है इसका वर्णन सभी संहिताओं में मिलता है। इसलिए उनका उद्धरण उचित नहीं समझता।

वमन विधि—

इसका वर्णन तंत्रों में पूर्ण विषद होने पर भी मेरा अनुभव इस तरह है, इसका उपयोग मैं करता हूँ। वमन साध्य रोगी को प्रथम द्रव पदार्थ (दुग्ध दही, तक्र, यवागू आदि) पेट भर कर पिलावें बाद में वामक औषधि का प्रयोग करें। अग्नि से हाथ बचाकर थोड़ा सेक करे। ऐसा करने से थोड़ा पसीना तथा शैथिल्य एवं वमन की इच्छा होती है अन्त में अच्छी तरह वमन होजाती है।

वमन के लिए औषधि—

मदन फल यह उत्तम औषधि है। १ फल का चूर्ण २॥ तोला जल, में १ घण्टा भिगो देवें, पत्थर के खरल में घोटकर कपड़े से छानकर उसमें शहद और सैन्धव नमक मिलाकर पिलाने से १-२ वमन अच्छी तरह हो जाती है। कभी-कभी वमन के साथ दस्त भी होजाते हैं। इसकी चरक ने सूत्रस्थान तथा कल्प स्थान में बड़ी प्रशंसा की है। यह वमन द्रव्यों में श्रेष्ठ एवं निरुपद्रवी द्रव्य है। मदनफल के बीज वामक तथा कफघ्न होते हैं। इसके १ फल में २ गुञ्जा अन्दाज साबुन होता है। सुश्रुत में वमन द्रव्य विकल्प विज्ञानीय नामक अध्याय में वमनीय मदनफल कल्प शीर्षक में लगभग बारह प्रयोग भिन्न-भिन्न रोगों की अवस्था में बतलाये हैं। उनमें तमक श्वास के लिये—मदनफल मज्जा (गिरी) से सिद्ध दूध का दही बनाकर उस दही का जल या उस दही का प्रयोग मैंने कराया है। उत्तम लाभ होता है. अति शुष्कावस्था में इसका घृत भी दिया है। मैं सूखे हुए मदनफल बीज को २० से ४० गुंजा मात्रा में ही देता हूँ। मदनफल के प्रयोग में जयदेव जी विद्यालङ्कार ने उसे ६ रत्ती तक (चरक भा० टी०) वैद्यराज ठा० दलजीतसिंह जी ने इसे ६ माशा तक (यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान) स्वर्गीय आचार्य श्री यादव जी महाराज तथा डा० वामन गणेश देसाई जी ने एक पूरे फल का प्रयोग (द्रव्य-गुण शास्त्र उत्तरार्द्ध तथा औषधि शास्त्र) बतलाया है। इसलिए ये मात्रायें रोगी, अवस्था, दोष, दूष्य काल, ऋतु आदि को देखकर प्रयोग करें।

यद्यपि सुश्रुत ने भी "अन्तमुष्टि" मात्रा बतलाई है, किन्तु यह भी अधिक ही है। चरक ने तो "यावद् वा साधु मन्येत" इस वचन द्वारा स्पष्ट ही कर दिया है। काश्यप संहिताकार ने तो खूब ही स्पष्ट कर दिया है।

> पुरुषं पुरुषं प्राप्य दोषाणाञ्च बलाबलम्।
> मदनस्य फलक्वाथः पिप्पली सर्षपान्वितः। १
> ग्रहघ्न्या वा स एवाऽथ पटोलारिष्ट वत्सकैः।
> युक्तो वाऽथप्रियङ्गूनां कल्केन मधुकस्य च। २
> वमनार्थे विधेयः स्यान्मधुर्हैन्धवमूर्छितः।
> (काश्यप संहिता खिल स्थान प्र. ७ अ.)

तथा इसी संहिता के सिद्धि स्थान में भी इसी को पुनः स्पष्ट किया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मात्रा कल्पना विशेषतः ऐसे कर्मों के लिये तो चिकित्सक के ज्ञान पर ही निर्भर है। यह तो नित्य व्यवहार के ज्ञान से ही सम्बन्ध रखता है।

चरक में वमन कराने में सहायता देने वाली औषधियों को वमनोपग नाम दिया है, उनमें म धु

यष्टीमधु, लवण आदि हैं । इसलिये मदनफल के साथ इनका उपयोग किया जाता है। इनमें कुछ द्रव्य वामक गुणों को बढ़ाते हैं, जैसे मधु तथा सैन्धव इनमें कुछ उपद्रवों से भी रक्षा करते हैं, जैसे – यष्ठीमधु, एला आदि। वमनकारक सभी औषधियों के प्रयोगों में मधु तथा सैन्धव के प्रयोग का उपदेश सभी आचार्यों ने किया है। क्योंकि मधु कफ का विलयन करता है तथा सैंधव छेदन कर्म करता है, क्योंकि ये द्रव्य अपने प्रभाव से संचित कफादि दोषों को बाहर निकालते हैं। इसी लिए छेदन कर्म को "कफ निस्सारक" भी कहते हैं।[1] इन द्रव्यों से दो कार्य होते हैं—एक से श्वास पथ की श्लेष्मल कला में कफ का स्राव बढ़ जाता है, इसको चालक कार्य कहते हैं। दूसरे से पेशियों तथा श्लेष्म-कला की रोमिकाओं में गति उत्पन्न करके कफ को बाहर निकाल देता है।

यद्यपि भिन्न भिन्न रोगों की अवस्थाओं में चरक सुश्रुत वाग्भटादि में वमनार्थ औषधियों के गुण बतलाये हैं, उनका उपयोग होना ही चाहिए किन्तु संक्षेप में सर्वावस्थाओं में मदनफल का ही प्रायः व्यवहार होता है।

वमन फल—

अच्छी तरह वमन क्रिया होजाने पर दूषित कफ के निकल जाने पर कफ जन्य विकार शांत हो जाते हैं तथा हृदय, कण्ठ, शिर आदि की शुद्धि, शरीर में लघुता एवं लाला स्राव शांति आदि फल प्रतीत होते हैं।

१—द्रव्याणिहि—अम्ल, लवण, कटूनि शारीर क्लेदादीनि छिन्दन्ति। (गंगाधर)

सर्वेषुतु मधु सैन्धवं कफ विलयनच्छेदनार्थं वमनेषु विदध्यात्। मधु सैन्धव युक्तं सुखोष्णं कृत्वा यष्टिमधु कषायेण। (च. क. १)

सर्वेषु च वमनेषु सैन्धवं मधच विदध्यात् कफ विलयन विच्छेदानार्थम् (अ. सं. सू. २७)

छिन्ने तरौ पुष्प फल प्ररोहा,
यथा विनाशं सहसा भवन्ति।
तथा हृते श्लेष्मणि शोधनेन,
तज्जा विकाराः प्रशमं प्रयान्ति।

सूचना—

वमन के बाद एक दिन तक शीतल जल, व्यायाम, अजीर्ण कारक पदार्थ, मैथुन, तैल मर्दन क्रोधादि का परित्याग करे तथा अतिश्रम अध्वगमन, अधिक वात सेवन, जागरण आदि का परित्याग करें।

:: पृष्ठ ४ का शेषांश ::

सिक) श्राप जन्य (भूत बाधा) विद्वानों तथा राजा के प्रति किये गये अपराध (कर्म भोग) आदि को प्रधान कारण माना है।

औषधियों के उत्पादन मूल्य को आंकते हुए वेदों में लिखा है कि—खोदने वाले तू औषधि को ऊपर से तोड़ जड़ से न उखाड़ जिससे इसका अस्तित्व नष्ट न हो जाय। औषधि से भी कहा है—

हे औषधे ! तू दीर्घ वीर्यवती, बलवती तथा दीर्घ आयु वाली हो।

हे औषधे ! तू दीर्घ आयु वाली होकर सैकड़ों अंकुरों सहित विविध प्रकार से उत्पन्न हो, उन्नत हो, पुष्ट हो। ऋ. १०। ९७। २५

इस प्रकार वेदों में आयुर्वेद सम्बन्धी विशाल साहित्य भरा पड़ा है। इन्हें खोजने पर आयुर्वेद के अमूल्य रत्न चिकित्सा-जगत के सामने आसकते हैं। चाहिये इन्हें खोजने वाले विद्वान! यह लेख तो केवल इस दिशा में एक छोटा सा तथा सीमित प्रयास है।

लंघन-विचार

लेखक—वैद्य त्रिपाठी जनार्दन शर्मा शास्त्री शु० भूषण, नाथद्वारा।

हमारे शास्त्रों में लंघन की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। ज्वर नाश करने में इसे सर्वोत्तम माना है। वास्तव में "लंघन" है भी ऐसा ही। शरीर के विकारों और रोगों के नाश करने में इसके सदृश अन्य कोई नहीं है।

लंघन से शरीर और मन दोनों की शुद्धि होती है जो शारीरिक और मानसिक रोग अच्छी से अच्छी औषधियों से दूर नहीं होते, वे केवल लंघनों से शीघ्र निवृत्त होते हैं। शरीर के अत्यधिक मोटेपन को एवं बेढंगेपन को नाश करने में लंघन सर्व प्रथम और सफल माना गया है। जो विद्वान् हैं, वे जानते हैं कि "लंघन" का क्या महत्व है। लंघन से कौन-कौन रोग नष्ट होते हैं, किसको लंघन कराना चाहिए, कैसे व्यक्ति को नहीं कराना चाहिए परन्तु जिन्होंने शास्त्राध्यन नहीं किया केवल जिनका "पल्लव ग्राही पाण्डित्य" है। उन्होंने रोग एवं आतुर का गूढ़ मर्म जानने की इच्छा चेष्टा जीवन में चाहे एक बार भी नहीं की हो किन्तु आतुर को लंघन करने की आज्ञा दे देते हैं। चाहे रोगी लंघन का अधिकारी हो या न हो उसको लाभ होगा या नहीं उसके विचार करने की उनमें क्षमता नहीं होती।

परिणाम इसका बुरा होता है। अनेक रोगियों के रोग बढ़ जाते हैं। कई रोगी कुटुम्बियों को त्रासित कर पंचत्व को प्राप्त हो जाते हैं।

संसार में जितने पदार्थ एवं कर्म हैं उनमें दोष भी हैं। भोजन अमृत है, क्योंकि इससे प्राणों की रक्षा होती है किन्तु वही अधिक अथवा नियम विरुद्ध सेवन किया जाता है तो विष का रूप धारण कर मनुष्य को सदा के लिए संसार से अवकाश दे देता है। स्त्री आनन्द को बढ़ाने वाली, सुख को देने वाली, कुल का नाम उन्नति करने वाली, विपत्ति में सच्चे मित्र की भांति सहायता देने वाली है, किन्तु उसके भी अधिक सेवन से अत्यधिक शारीरिक, आर्थिक और नैतिक हानियां उत्पन्न हो जाती हैं।

जैसे उदाहरण—

अधिक स्त्री सेवन करने वालों को यक्ष्मा, श्वास कासादि रोग अपना निवास स्थान बना लेते हैं, फलस्वरूप असमय में ही धर्मराज के धाम के अतिथि बन जाते हैं।

मिष्ठान्न अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन है किन्तु अधिक सेवन से अनेकानेक रोग उत्पन्न करता है, जल प्राणियों का जीवन है परन्तु अति उपयोग से मनुष्यों का प्राण हर लेता है। मदिरा थकान दूर करने एवं चित्त को प्रसन्न रखने के लिए उत्तम पदार्थ है, पर वह भी अधिक सेवन से भयङ्कर रोग उत्पन्न कर देती है। मधु (शहद) कफ पित्तनाशक द्रव्यों में सर्व प्रथम है और अनेकानेक रोगों का शमन करता है, पर उसको उष्णकर उपयोग में लेने अथवा घृत के साथ समभाग लेने पर विष का रूप ग्रहण कर लेता है।

दूध जीर्ण ज्वर के रोगियों के लिये अमृत है पर नवीन ज्वर से ग्रस्त आतुर के लिये विष है दूध और मांस बलवर्द्धक पदार्थों में श्रेष्ठ एवं उचित माने जाते हैं। परन्तु इनको भी एक साथ भक्षण करने पर कुष्ठादि भयानक रोग उत्पन्न होते हैं।

"लंघन चिकित्सा आयुर्वेदपद्धति की विशिष्ट चिकित्सा है। आयुर्वेद ग्रन्थों में इसका अति महत्व वर्णित है किन्तु बिना विचारे लंघन कराना भयानक और अनिष्टकर है। इस लघु लेख में विद्वान् लेखक ने विविध शास्त्रों के प्रमाण देते हुए लंघन किसे कहते हैं, किसे कराना चाहिए और किसे नहीं, आदि विषय उत्तम रीत्या समझाकर लिखे हैं।"

—सम्पादक।

जितने पदार्थ में गुण होते हैं, उनके साथ उनके दोष भी हैं। अतः प्रज्ञावान को चाहिये कि वह दोष एवं गुण पर पूर्ण विचार विनमय करने के पश्चात् ही ठीक निर्णय कर कार्य करे। शास्त्रों में लंघन कराने का विधान है तो निषेध के भी पूर्ण प्रमाण हैं।

लंघन किसे कहते हैं

चरक मतानुसारेण—

"यत्किञ्चिल्लाघव करं देहे तल्लंघनं स्मृतम्" ।

जिससे शरीर हल्का हो या जो शरीर को हल्का करे, उसे लंघन कहते हैं।

शरीर लाघव करं यद्द्रव्यं वा पुनः ।
तं लंघनमिति ज्ञेयं बृंहणं तु पृथग्विधम् ॥

जिस द्रव्य या जिस कर्म से शरीर हल्का हो वही लंघन है, अर्थात् जिस औषधि या काम से शरीर हलका हो उसे "लंघन" कहते हैं। जो इससे विपरीत है वह बृंहण कहलाता है।

हारीत-संहिता में कहा है—

अनशन, वमन, विरेचन, रक्तश्रुति, तप्त तोय पानैः ।
स्वेदन कर्म सहितैः षड्विधं लंघनं गदितम् ॥

भोजन नहीं करना, वमन कराना, जुलाब लेना, रक्त निकलवाना, उष्णोदक पान करना और स्वेद निकलवाना ये छः लंघन व्यक्त हैं।

सुश्रुत में स्पष्ट है—

प्रव्यक्त रूपेषु हितमेकांतेनाय तर्पणम् ।
आमाशयस्थे दोषेतु सोत्क्लेशे वमनं परम् ॥
आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्याविन्तं काल मातुरः ।
कुर्यादनशनं तावत्ततः संसर्ग माचरेत् ॥
क्रमेण बलिने देयं वमनं श्लैष्मिके ज्वरे ।
पित्त प्राये विरेकस्तु कार्यः प्रशिथिलाशये ॥
सरुजे निलजे काये सोदावर्तो निरूहणम् ।
करिपृष्ठ ग्रहार्त स्य दीप्ताग्नेरनु वासनम् ॥
शिरोगौरव शूलघ्न मिन्द्रिय प्रतिबोधनम् ।
कफाभिपन्ने शिरसि कार्यं मूर्द्ध विरेचनम् ॥

लंघन क्यों कराया जाता है

भट्टी की आग हवा के झोंके से जब बाहर आने लगती है, तब उसके ऊपर स्थापित कड़ाही की वस्तु पकती ही नहीं वह कच्ची ही रह जाया करती है। इसी प्रकार मनुष्य के शरीर में जठराग्नि रूपी भट्टी जलती रहती है। उसकी गर्मी से जब दोषों के प्रकुपित होने के फलस्वरूप बाहर निकल जाती है, तब वह आहार का पाचन उचित मात्रा में नहीं कर सकती है। यदि लघु भोजन किया जाता है तो वह शनैः शनैः पाचन क्रिया का कार्य करती है।

जब मनुष्य के शरीर में अग्निमांद्य हो जाता है, उसको मिटाने के लिये ही लंघनचिकित्सा प्रणाली प्रारम्भ की जाती है।

चरक का प्रमाण है—

जीव की नाभि और वक्षस्थल इन दोनों के मध्य में आमाशय स्थित है। आमाशय में ही "चर्व्य" "चोष्य" "पेय" और "लेह्य" चारों प्रकार के आहारों का परिपाक होता है। खाये हुए भोजन का पाक होने के पश्चात् रस और रस से रक्त निर्मित होता है।

वह धमनियों के द्वारा शरीर के भिन्न-भिन्न आशयों में पहुँचता है। इसी आमाशय से ज्वर की उत्पत्ति होती है।

चरक एवं वाग्भट्ट का निर्णय—

दूषित हुए वातादि दोष आमाशय में स्थित होकर, जठराग्नि को ढंक कर आम के साथ मिलकर शरीर के अन्य छिद्रों को ढंक कर ज्वर उत्पन्न करते हैं। आम दोष के कारण ज्वर होता है इसीलिये उस आम दोष को पक करने के लिए जठराग्नि को दीपन करने के लिए और शरीर के छिद्रों को खोलने के लिए ज्वर में लंघन कराते हैं।

लंघन से लाभ

बंगसेन का प्रमाण—

लंघनेन क्षयं नीते दोषे संधुक्षितेऽनले ।
विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवास्योप जायते ॥

—शेषांश पृष्ठ ११ पर।

आयुर्वेद में रसायन-तन्त्र

–'लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्' (चरक संहिता)

लेखक—श्री पं० लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल, आयुर्वेदाचार्य ।

हमारे आयुर्वेद में प्रशस्त रस, बुद्धि तथा स्मृति आदि के लाभ का उपाय रसायन शब्द से व्यवहृत किया गया है। शरीर में प्रशस्त रस व स्मृति आदि लाभ के लिए अनेक औषधियां तथा उनके योगों का वर्णन शास्त्र के रसायन-तन्त्र में है। कुछ विशेष औषधियों में विशिष्ट रासायनिक गुण हुआ करते हैं जिनका प्रयोग रसायन कार्य के लिये किया जाता है। शार्ङ्गधर का मत है कि जो औषधि जरा-व्याधि को नष्ट करे वह रसायन है। चरक-संहिता के चन्द्रः पुरुषीयाध्याय में 'क्षीरघृताभ्यासो रसायनानां' ऐसा कह क्षीर व घृत के उपयोग को रसायनों में श्रेष्ठ कहा है।

वास्तव में रसायन वही वस्तु है जो शरीर में आने वाली जीर्णता को दूर कर नवयौवनत्व प्रदान करे। यह माननीय विषय है कि शरीर में जीर्णता केवल शारीरिक अस्वस्थता से ही नहीं किन्तु मानसिक अस्वस्थता से पूर्णतया दृष्टिगत होने लगती है। अनेक प्रकार के रसायन प्रयोग मानसिक अशुद्धता से बिलकुल व्यर्थ होने लग गये हैं। चरक में इसी दृष्टिकोण से कहा गया है कि—योगाह्यायुः प्रकर्षार्थी जरारोग निबर्हणाः। मनः शरीर शुद्धानां सिध्यन्ति प्रयतात्मनाम्। तथा—यथास्थूलमनिर्वाह्य दोषाञ्छारीरमानसान। रसायनगुणैर्जन्तुर्युज्यतेन कदाचन। किसी भी रसायन के गुणों से लाभान्वित होने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि मानसिक व शारीरिक दोष सर्वथा ही शुद्ध किए जायें।

काय-चिकित्सा-तन्त्र में भी शारीरिक दोष शुद्धि के साथ ही साथ मानसिक स्वस्थता के भी साधन कहे गये हैं। जैसे कि ज्वर चिकित्सा में—विष्णुम् सहस्रमूर्धानं चराचर पतिं विभुम्। स्तुवन्नाम सहस्रेण ज्वरान्सर्वानपोहति। तथा भक्त्या मातुः पितुश्चैव गुरूणां पूजनेन च। ब्रह्मचर्येण तपसा सत्येन नयमेन च। जपहोम प्रदानेन वेदानां श्रवणेन च। ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च। ऐसा कह ज्वर को दूर करने में मानस-साधन को श्रेष्ठ बताया है। दैव व्यपाश्रित चिकित्सा रोग के दूर करने में एक मानसिक साधन है। मन का शरीर पर पूर्ण अधिकार है। पूर्ण स्वस्थता के लिये शारीरिक व मानसिक दोनों ही प्रकार की स्वस्थता अपेक्षित है। यदि मन को पूर्णतया स्वतन्त्र कर दिया जाये तो किसी भी प्रकार की चिकित्सा से लाभ होना दूर की बात है।

शास्त्रकार ने 'सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत त्रिदण्डवत्' ऐसा कह सत्व शब्द के पूर्व प्रयोग से हमारे अस्तित्व में मन को ही प्रधान बता उसकी महानता दिखायी है। रोगों के निदान में भी प्रज्ञापराध को ही प्रथम माना है। जैसा कि—धीधृतिस्मृति विभ्रष्टः कर्मयत् कुरुतेऽशुभम्। प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्व दोष प्रकोपणं' इत्यादि चरक के वाक्यों से स्पष्ट है। विनयाचार लोपश्च पूज्यानामभि धर्षणमित्यादि भी चरक के वाक्य उस मानसिक दोष को ही रोगों की उत्पत्ति का कारण बताते हैं। कहने का सारांश यह है कि मनः प्रधान शरीर में बिना मानसिक स्वस्थता से कोई भी चिकित्सा फलप्रद नहीं हो सकती। विशेषतः रसायन प्रयोग तो किसी भी दशा में नहीं। इस मानस-स्वास्थ्य के लिए शास्त्रकार ने कोई विशेष चिकित्सा अलग से नहीं कही है। हाँ शारीरिक शुद्धि के लिये तो वमन विरेचनादि पञ्चकर्मों का व्याख्यान है किन्तु मानस-शुद्धि के लिए केवल सद्वृत्त का ही सदुपदेश है। जिसके अनुष्ठान से आरोग्यत्व लाभ हो सकता है।

आज देखा जा रहा है, कि हमारे आयुर्वेदोक्त रसायन उतने फलप्रद नहीं हो रहे हैं जितने शास्त्रकार ने कहे हैं। इसका कारण केवल एक ही प्रयोक्ता

की अयोग्यता है जिससे कि अपने आयुर्वेद का नाम नीचा हुआ जा रहा है। देखा जाता है कि जिस च्यवनप्राश रसायन को खाकर जराजीर्ण महर्षि च्यवन वृद्ध से नवयुवक बन गये थे। आज उसी च्यवनप्राश के उपयोग से नवयौवनत्व को कौन कहे? पूर्ण स्वास्थ्य लाभ भी नहीं हो रहा है। 'आमलकं वयस्थापनानां' इस शास्त्र वाक्य के आधार पर प्रयुक्त किये गये आंवलों के सैकड़ों प्रयोग किसी की अवस्था को कायम नहीं रख रहे हैं। इसका मूल कारण यही है कि प्रयोक्ता में वह तो गुण हैं ही नहीं जिनको कि शास्त्रकार ने रसायन-प्रयोक्ता के लिये अवश्य करणीय कहे ह।

चरक संहिता के आयुर्वेद समुत्थानीय रसायनाध्याय में आचार रसायन का वर्णन मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि किसी भी रसायन का सम्यक् प्रयोग तभी कहा जा सकता है जब कि प्रयोक्ता में वह सभी गुण होवें। अन्यथा वह रसायन के योग्य नहीं है। सदाचार में वह गुण हैं जिससे मनुष्य सदा प्रसन्न चित्त रह पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर नवयौवनत्व प्राप्त कर सकता है। आचार रसायन प्राचीन ऋषियों का महान् वैज्ञानिक अन्वेषण है जिसके बल पर सम्पूर्ण रसायन-तन्त्र अवलम्बित है। खेद का विषय है कि आज हमारा आयुर्वेदज्ञ जन-समुदाय इस ओर दृष्टिपात न कर केवल औषधियों के बल पर ही रसायन का नाम रखना चाहता है। जिससे रसायन-तन्त्र के ह्रास हो जाने की अत्यधिक सम्भावना है।

'सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात। अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्। जप शौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्। देवगोब्राह्मणाचार्य गुरु वृद्धार्चने रतम्। आनृशंस्य परं नित्यं नित्यं करुणा वेदिनम्। सम जागरण स्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्। देश काल प्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहङ्कृतम् शस्ताचारमसङ्कीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्। उपसितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्। धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्।' इस प्रकार आचार रसायन का व्याख्यान कर अन्त में 'गुणैरेतैः समुदितैः प्रयुङ्क्ते यो रसायनम्। रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्नुते' इस वाक्य के कहने से रसायन के पूर्ण गुण की प्राप्ति में पूर्वोक्त विषय की प्रधानता स्पष्ट होती है।

अतः आज आयुर्वेदज्ञ जनों को यह अत्यन्त आवश्यक है कि आयुर्वेद में रसायनतन्त्र के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उपरोक्त विषय की ओर ध्यान दें। अपने प्राण स्वरूप आयुर्वेद की उन्नति में सदा ही दत्तचित्त रहें। जिससे अपने देश का महान् कल्याण हो, आयुर्वेद की जय-ध्वनि सर्वत्र ही गूँजती रहे। ऐसा न हो कि यह केवल नाम मात्र को ही रह उपहास का विषय बन जाये जिससे अपना देश महान् अज्ञान-तम में लीन हो अवनति के अन्ध-कूप में गिर पड़े। आयुर्वेद के प्रत्येक अङ्ग की रक्षा हम सब के द्वारा सर्वथा करणीय है।

:: पृष्ठ ६ का शेषांश ::

सुश्रुत के मत से—

अनवस्थित दोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम्।
ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षा रुचि लाघव कारकम्॥

अन्यत्र—

आहारं पचति शिखी दोषानाहार वर्जितः।
पचति दोषक्षये धातून् प्राणान्धातु क्षयेऽपि च॥

इससे ज्वर में पहिले औषधि सेवन की अपेक्षा उपवास करना ही लाभप्रद है। इतना अवश्य है कि—

"सामेतु लंघनं कार्यं निरामे भेषजं स्मृतम्"

वातज्वर में लंघन निषिद्ध है तो उसे समझ कर लंघन कराना श्रेष्ठ है।

पाण्डु-कामला एवं रक्ताल्पता

(आवयविक विकृति एवं चिकित्सा)

लेखक-श्री. लाला बदरीनारायण सैन जी० ए० एम० एस०

"इस लेख का पूर्वार्द्ध नवम्बर १९५७ के अङ्क में प्रकाशित हो चुका है जिसमें पांडुरोग की आवयविक विकृति एवं चिकित्सा पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने कामला एवं रक्ताल्पता का सुन्दर वर्णन एवं चिकित्सा विधि प्रस्तुत की है। श्री सैन जी आयुर्वेद शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान एवं उत्साही व्यक्ति हैं। आपकी मंजी हुई लेखनी द्वारा लिखित "दोष-धातु-मल" शीर्षक विस्तृत सचित्र निबंध धन्वन्तरि के आगामी अंकों में पाठक धारावाहिक रूप से पढ़ेंगे।"

—सम्पादक।
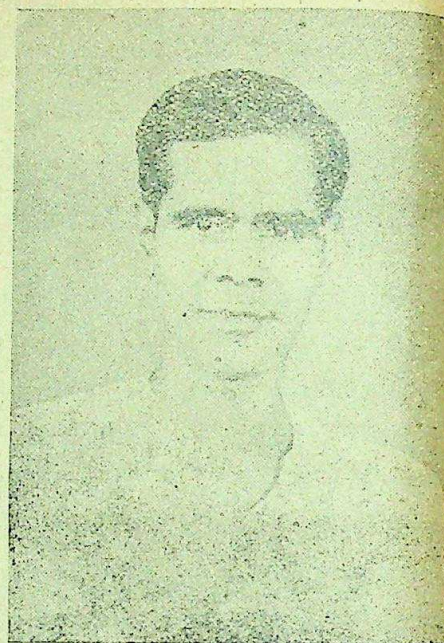
कामला रोग के आवयविक विकार के सम्बन्ध में यद्यपि कुछ पक्तियां वर्तमान आयुर्वेद ग्रंथों में मिलती हैं और एक तरह से वे सोलहो आने ठीक भी हैं तथापि सूत्र रूप में होने के कारण वे इतनी अस्पष्ट हैं कि उनसे कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है।

पाण्डु रोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते।
तस्य पित्तमसृगमांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥३३॥
हारिद्रनेत्रः सभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः।
रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥३४॥
कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रयामता ॥३५॥
तिलपिष्टनिभं यस्तु वर्चः सृजति कामली ॥१२३॥
श्लेष्मणा रुद्धमार्गं तत्पित्त कफ हरैर्जयेत् ॥१२४॥
क्रमेणाल्पेऽनुषज्येत पित्ते शाखासमाश्रिते ॥१२७॥
स्वस्थानमागते पुरीषे पित्त रंजिते ॥१३०॥

[च० चि० १६ अ०]

१—इन पक्तियों से इतना ही भर ज्ञान होता है कि-कामला बहुपित्त रोग है जो कोष्ठ एवं शाखाओं को आश्रीभूत कर रहता है इसमें मलमूत्रादि गाढ़ा पीला याने ललाई लिए पीला होता है मगर कौन सा पित्त (पंच पित्तों में से) दुष्ट होता है और कैसे कैसे दुष्ट होता है यह स्पष्ट नहीं है।

२—यदि कामला का रोगी तिलपिष्टनिभ मल का त्याग करता है तो उसे श्लेष्मा से अवरुद्ध मार्ग-जन्य कामला समझे और उसमें कफहर चिकित्सा करे। श्लेष्मा से मार्ग के अवरुद्ध होने पर पित्त क्रम-क्रम से अपने स्थान पर अल्प होने लगता है और अपने स्थान के बदले वह शाखा में आश्रित होने लगता है। पित्त जब स्वस्थान पर आजाता है तब पुरीष अपने स्वाभाविक रङ्ग से रंजित होता है मगर इस पंक्ति से यह स्पष्ट नहीं होता है कि वह मार्ग कौन सा है और उससे पंचपित्तों में से कौन सा पित्त संवाहित होता है और उस पित्त विशेष का वह कौन सा अपना स्थान है।

उक्त वर्णनों से यह सिद्ध होता है कि कामला रोग दो विभिन्न लक्षण प्रधान है एक तो वह जिसमें पुरीष का रंग रक्त पीत वर्ण का रहता है और दूसरा वह जिसमें पुरीष का रंग तिलपिष्टनिभ होता है। प्रथम में पित्त कोष्ठ एवं शाखा दोनों को आश्रित कर रहता है एवं दूसरे में केवल शाखा को आश्रित

कर रहता है। प्रथम में वही पित्त है जो पाण्डु रोग का कारण है जिसे गतांक में लिखा जा चुका है किन्तु द्वितीय में वह नहीं मालूम पड़ता है। पित्त नामक किसी वस्तु का एक मार्ग है जिसका अवरोध होता है इसके अवरोध में एक कारण श्लेष्मा भी है कामला में चाहे वह प्रथम जाति का हो वा द्वितीय जाति का वही पित्त दूषित होता है जिसका एक स्वाभाविक स्थान है, संवहन के लिए एक मार्ग है अत: यह पित्त भी स्वाभाविक जाति का है। इसके साथ ही साथ अत्यधिक भ्रम में डालने वाली एक बात यह है कि एक ओर तो कामला रोग का कारण यह बताया जाता है कि जो पाण्डु रोगी अत्यधिक पित्तल द्रव्यों का सेवन करता है उसे कामला रोग होता है दूसरी ओर चिकित्सा में यह कहा गया है मार्गावरोध जन्य कामला में खूब पित्तल द्रव्यों का सेवन करा-कर मार्गावरोध दूर करे। जिससे यह मालूम पड़ता है कि दोनों जाति के कामला में कुछ मौलिक भेद है। वर्णन सौकार्यार्थ हम दोनों का दो नाम देते हैं प्रथम का साधारण कामला (Haemolytic Jaundice) एवं दूसरे का अवरोधज कामला (Obstructive Jaundice)।

गतांक में लिखा जा चुका है कि मृत रक्तकणों से रंजक संस्थान एक प्रकार का हरित पीत वर्ण का रंजक द्रव्य विलग कर उसे रस धातु में छोड़ देता है। यह भी लिखा जा चुका है रस धातु जब अधिक पित्तल हो उठता है तब भी कणों के रंजक पदार्थ उसमें घुलने लगते हैं और रक्तकण रंजक पदार्थ विहीन होने लगता है। इस अवस्था में भी एक प्रकार का हरित पीत रंजक द्रव्य रस धातु में अधिक इकट्ठा होता है जिसके कारण रोगी का वर्ण पाण्डु होजाता है। रक्त कणों की मृत्यु भी स्वाभाविक रूप से होती ही रहती है और इस हरित पीत वर्ण के रंजक पदार्थ का निर्माण भी इसी तरह स्वाभाविक स्वस्थावस्था में भी होता रहता है। रस धातु में भी यह स्वभाव रूप से रहता ही है मगर जब किसी कारणवश इसकी स्वाभाविक मात्रा में गड़बड़ हुआ, अपने स्वाभाविक परिमाण से यह बढ़ा कि रोग का कारण बना।

रस धातु में इसके परिमाण को नियन्त्रित रखता है यकृत। रस धातु जब परिभ्रमण करता हुआ यकृत में पहुँचता है तो यकृत इस हरित पीत वर्ण के रंजक पदार्थ को छान कर अलग कर लेता है। इस प्रकार इस रंजक पदार्थ का परिमाण रस धातु में संतुलित रहता है। इसके अतिरिक्त यकृत आहार रस का भी निर्मलीकरण करता है। आहार रस यकृत द्वारा निर्मल होने के बाद ही रस धातु कहाता है। आहार रस में से भी त्याज्य वस्तुओं को यकृत छानकर अलग कर लेता है। रक्त जब परिभ्रमण करता हुआ यकृत में पहुँचता है तो यकृत सिर्फ उसमें से हरित पीत रंजक पदार्थ को ही धारण कर अलग नहीं करता बल्कि उन सभी त्याज्य वस्तुओं को छान कर रक्त को निर्मल करता है जो उसमें उसके संवहन के साथ घुल-घुल कर आ मिलते हैं। रक्त शरीर के तन्तुओं में पहुँच उसे पोषण तो प्रदान करता ही है साथ ही साथ उसे धो साफ़ कर निर्मल भी करता है। तन्तुओं में इकट्ठा होने वाले या उत्पन्न होने वाले त्याज्य वस्तुओं को जैसे श्रमाम्ल (Sarcolactic Acid) इत्यादि को रक्त धोकर अपने साथ बहा ले जाता है और यकृत आदि उसे उसमें से छानकर विलग कर शरीर के बाहर निकाल फेंकता है।

इस प्रकार यकृत द्वारा निकाले गए हरित पीत वर्ण का रजंक पदार्थ एवं रक्तस्थ अन्य त्याज्य पदार्थ तथा आहार रस से छन कर हटाये पदार्थ ये सभी मिलकर एक हरित पीत वर्ण के द्रव पदार्थ के रूप में होजाते हैं। यकृतस्थ सूक्ष्म स्रोत जो खास इसी के संवहन के लिए ही बने हैं इस द्रव पदार्थ को ग्रहण कर लेता है। ये अत्यन्त सूक्ष्म असंख्य स्रोत परस्पर संयुक्त होती हुई अधिकाधिक मोटी रूप धारण करती जाती है और अन्ततोगत्वा एक-एक मोटी नलिका के रूप में यकृत के दोनों खंडों से (दोनों में से एक-एक) निकलती है। फिर ये दोनों भी कुछ दूर आगे निकल कर परस्पर संयुक्त हो एक मोटी

नलिका का रूप धारण कर लेती है। यह मोटी नलिका ग्रहणी में आकर खुलती है। यकृत से छन कर निकला हरित पीत वर्ण का द्रव पदार्थ इन्हीं स्रोतों से होते हुए ग्रहणी में आकर गिरता है।

यकृत द्वारा स्रवित इसी हरित पीत वर्ण के द्रव पदार्थ को याकृतीय स्राव या 'पित्त' संज्ञा दी गई है। यकृतस्थ सूक्ष्म स्रोतों को जो इसका संवहन करते हैं सूक्ष्म पित्त स्रोत दोनों खण्डों से निकली मोटी स्रोत को पित्त स्रोत (दक्षिण एवं वाम पित्त स्रोत) दोनों पित्त स्रोतों के सम्मेलन से बनी मोटी नलिका को पित्त नलिका संज्ञा दी गई है।

पित्त नलिका के बीच में ही एक वर्तुलाकार का आशय इससे आ जुड़ा है। इसे पित्ताशय या पित्त कोष संज्ञा दी गई है।

यह याकृतीय स्राव यकृत से निकल कर सीधा ग्रहणी की ओर चला जाता है। बून्द-बून्द कर यह स्राव निरन्तर ग्रहणी में गिरता रहता है। मगर जब आहार द्रव्य ग्रहणी में रहते हैं उस समय यह कुछ अधिक परिमाण में गिरता है अन्यथा बून्द-बून्द कर गिरता रहता है। इसका कारण यह है कि जब ग्रहणी में आहार द्रव्य रहता है तब ग्रहणी उत्तेजित एवं प्रसारित अवस्था में रहती है। इस अवस्था में पित्त नलिका का वह भाग जो ग्रहणी को अपने आक्रोश में लिए है वह भी उत्तेजित एवं पूर्ण प्रसारित रूप में रहता है। इस अवस्था में यकृत से चला याकृतीय स्राव अपने सम्पूर्ण के सम्पूर्ण परिमाण में गिरने का मार्ग पा लेता है और ग्रहणी में गिरता है मगर जिस समय ग्रहणी खाली पड़ी रहती है उस समय ग्रहणी आकुंचित (Relaxed) अवस्था में रहता है और इस कारण पित्त-नलिका का वह भाग जो ग्रहणी को अपने आक्रोश में लिये है वह उस आकुंचन के दबाव से दबा रहता है। इस दबाव के कारण उस नलिका का मार्ग कुछ छोटा हो जाता है और यकृत से निकला स्राव सम्पूर्ण का सम्पूर्ण निकल जाने का मार्ग नहीं पाता है। इस अवस्था में कुछ तो ग्रहणी में बूंद-बूंद कर टपकता रहता है और कुछ पित्तकोष में जा जमा होता है। इस प्रकार पित्तकोष में पित्त का संग्रह होता है। जिस समय आहार ग्रहणी में है और याकृतीय स्राव का सम्पूर्ण अंश भी उसमें गिरकर पर्याप्त नहीं सिद्ध होता है उस समय ग्रहणी की उग्र उत्तेजना से उत्तेजित हो पित्त-कोष भी अपने में संग्रहित याकृतीय स्राव को पित्तनलिका में उड़ेलकर ग्रहणी की मांग को पूर्ण करता है। इस प्रकार पित्तकोष में याकृतीय स्राव का संचय एवं व्यय दोनों होते रहते हैं।

मार्गावरोध जन्य (Obctructive)—कामला में यही पित्तनलिका का या पित्त स्रोत (सूक्ष्म स्रोत) दूष्य होता है एवं यही याकृतीय स्राव दोष होता है।

साधारण कामला (Haemolytic Jaundice)—

साधारण कामला रोग का सम्बन्ध पांडुरोग के ही आवयविक विकृति से है। चूंकि कहा भी है कि "पांडु रोगी योऽत्यर्थ पित्तलानि निषेवते कामला बहु पित्तैषां कोष्ठ शाखा श्रयामता"। जिस से यह मालूम पड़ता है कि यह पांडु रोग का ही प्रवृद्ध रूप है। पित्त जो पांडु रोग में बढ़ा है वही इस रोग में भी इतना अधिक बढ़ जाता है कि इससे कोष्ठ एवं शाखा भर जाते हैं। पांडु रोग में यह पित्त एकत्रित नहीं हो पाता है वह इतना ही भर होता है कि बाहर निकल जाता है, उसमें जो कुछ भी लक्षण प्रगट होते हैं वह स्वस्थ रूप के उचित परिमाण में रक्तकणों के अभाव से होते हैं। मगर इसमें जो कुछ लक्षण विशेष रूप से दिखाई आते हैं वह पांडुरोग के अतिरिक्त अत्यधिक मात्रा में रक्तकणों से छुटे हुए रंजक पदार्थों के रसधातु में एकत्रित होने के कारण। रक्तकणों के विनाश से जो हरित पीतवर्ण का रंजक पदार्थ स्वतः निर्मित होता जाता है वह इतने अधिक मात्रा में होता है कि यकृत द्वारा छाने जाने वाले अनुपात से अधिक होता है। यकृत तो यथा शक्ति इसे छानकर बाहर करता ही रहता है जिसके कारण पित्तकोष में भी

यह पर्याप्त रूप से संचित होता है और ग्रहणी में भी प्रचुर मात्रा में आता है। इसकी प्रचुरता के कारण ही मल का रङ्ग गहरा पीला होता है और पित्ताशय भी भरा रहता है मगर यकृत के छानने वाले अनुपात से इसकी मात्रा अधिक रहती है इसलिए यह रस धातु में अपने परिमाण से अधिक बचा रहता है। इसे ही सूत्र रूप में कहा है 'कोष्ठ शाखा श्यामता" यह "कोष्ठ" एवं "शाखा" पारिभाषिक शब्द हैं जिनकी परिभाषा निम्न लिखित है—

कोष्ठ—कोष्ठः पुनरुच्यते महास्रोतः शरीर मध्यं महानिम्न-
माश्रयकृशयश्चेति पर्य्यायशब्दैस्तन्त्रे ॥

[च. सू. ११. अ. ५४ श्लो.]

शाखा—तत्र शाखा रक्तादयो धातवस्त्वक च ॥

[च. सू. ११ अ. ५२ श्लो.]

इससे साफ व्यक्त होता है कि रक्त कणों के अस्वाभाविक विनाश के कारण अधिक परिमाण में एकत्रित होने वाला हरितपीतवर्ण का रंजक पदार्थ ही इस रोग का कारण है। यह इतनी अधिक राशि में प्रस्तुत होने लगता है कि छनने पर भी पूर्ण रूप से यह नहीं छनता है। छनता तो है इतना अधिक कि कोष्ठ याने पित्तकोष इससे परिपूर्ण रहता है ग्रहणी में भी इतना अधिक गिरता है कि मल स्वाभाविक वर्ण से भी अधिक रंजित रहता है तथापि रक्त धातु (रंजित रसधातु) में भी यह एकत्रित होता रहता है। जिसके कारण त्वचा नेत्र आदि हल्दी के समान पीले हो जाते हैं। यदि यही और अधिक रूप में प्रवृद्ध हो तो इसी का नाम हलीमक होता है।

चिकित्सा—

इसकी चिकित्सा यह है कि यकृत को सबल बनाये रखे ताकि पूरे बल से अधिका-अधिक इसे छाने, इसे इसी हेतु उत्तेजित करता रहे। वृक्क को सशक्त एवं उत्तेजित रखे ताकि यह भी इसे छानने में सहायक रहे और मूल कारण पर रोक लगावे ताकि इसका निर्माण अधिक न हो। रक्तकणों को सशक्त बनाये ताकि विनाश कारण को वे सहन करें और शीघ्र ही नष्ट नहीं होने पाये।

वृक्क को शक्ति प्रदान करने के लिए एवं उन्हें उत्तेजना देने के निम्न लिखित औषधों का प्रयोग किया जा सकता है।

कूर्चशीर्षक वटी—

नारियल का फूल	१ तोला
सूरजमुखी फूल का बीज	१ तोला
छोटी इलायची	१ तोला
गोखरूक्षार	६ माशा
पुनर्नवा क्षार	६ माशा

—पुनर्नवा स्वरस की ७ भावना देकर इसमें ५० गोलियां बनावें।

अनुपान—शीतल जल से १-२ गोली एक बार में। २४ घण्टे में ३ से ६ गोली तक।

उपयोग—वृक्क उत्तेजनार्थ एवं मूत्र रेचनार्थ।

शिलारस—

शिलाजीत	६ माशा
अभ्रक भस्म	३ माशा
छोटी इलायची	सूरजमुखी बीज
ककड़ी बीज	गोखरू
मुलहठी	दारु हल्दी

—प्रत्येक १-१ तोला।

—गुड़च, आमला, पुनर्नवा एवं अर्जुन स्वरस की ७-७ भावना दे इसमें ५० गोलियां बनावें। इसे आमले के रस एवं मधु से या केवल मधु से चाटकर ऊपर से आमलक्यादि क्वाथ पीवें।

मात्रा—१ से २ गोली तक एक बार में। २४ घण्टे में ३-४ गोली।

उपयोग—इससे वृक्क सशक्त एवं उत्तेजित होता है।

ऐलादि वटी—

छोटी इलायची	पाषाणभेद
पीपर	शिलाजीत

—प्रत्येक १-१ तोला

—इन्हें योंही खरल कर इसमें ५० गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली एक बार में, २४ घण्टे में २ से ४ गोलियां।

अनुपान–गुड़।

उपयोग—वृक्क को सशक्त बनाने के लिए।

आमलक्यादि क्वाथ–

आमला सूखा हुआ		मुनक्का
विदारीकन्द	मुलहठी	गोखरू
गुडूचि	पुनर्नवा	अर्जुन

—प्रत्येक ६-६ माशा।

जल	आधा सेर
शेष क्वाथ	१० तोला

इसमें—दो मात्रा करें। प्रातः सायं पान करें।

इसके अतिरिक्त रक्तकणों को सशक्त बनाये रखने के लिए प्रयास करना चाहिए। इस निमित्त भैषज्यरत्नावली पांडुरोगोक्त कामलान्तक लौह, चन्द्रसूर्यात्मक रस तथा आनन्दोदय रस का आवश्यकतानुसार प्रयोग करें। यकृत एवं पित्तनलिकाओं को स्वस्थ सशक्त उत्तेजना देने के लिए भैषज्यरत्नावली पांडुरोगोक्त प्राणवल्लभ रस, पांडुपंचानन रस, तथा त्रिकत्रयादि लौह का आवश्यकतानुकूल व्यवहार करें। इसके अतिरिक्त निम्न लिखित योगों का व्यवहार भी आवश्यकतानुकूल किया जा सकता है।

माक्षिकरसायन—

स्वर्णमाक्षिक भस्म	६ माशा
रौप्यमाक्षिक भस्म	६ माशा
चांदी भस्म	३ माशा
भिलावे की मींग	१ तोला
चित्रकमूल	१ तोला

—घृतकुमारी रस की १४ भावना देकर इसमें १०० गोलियां बनावें।

मात्रा–१-२ गोली एक बार में, २४ घंटे में २-४ गोली।

अनुपान–मधु।

उपयोग—पित्त स्रोतों एवं यकृत तन्तुओं को बल प्रदान करने के लिए तथा उन्हें उत्तेजित रखने के लिए। इससे रक्तकणों को भी शक्ति मिलती है एवं वे पुष्ट होते हैं।

चन्दनादि लौह—

लौहभस्म		६ माशा
ताम्रभस्म		३ माशा
शुद्ध हरताल		१॥ माशा
चन्दनश्वेत	चन्दन रक्त	कहरुवा
विषाणभस्म	नागकेशर	खस

—प्रत्येक ३-३ माशे।

—घृतकुमारी स्वरस की ६ भावना दे, इसमें १०८ गोलियां बनावें।

अनुपान—मधु।

मात्रा—१ गोली। २४ घन्टे में २-३ गोलियां।

स्वर्णसिन्दूराद्यरस—

स्वर्ण सिंदूर	६ माशा
लौहभस्म	१॥ माशा
स्वर्णमाक्षिकभस्म	१॥ माशा
शुद्ध हरताल	१॥ माशा
शुद्ध काशीश	३ माशा
मुसब्बर	३ माशा
कूठ असली	६ माशा
दन्तिमूल	६ माशा

—घृतकुमारी स्वरस से खरल कर इसमें १०० गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली। २४ घन्टे में २-३ गोलियां।

अनुपान—मधु।

उपयोग—उक्त दोनों योग रक्त-कणों को सशक्त बनाते हैं, उन्हें रंजक पदार्थ प्रदान करते हैं। साथ ही साथ यकृत को स्वस्थ रखते हैं। मगर इसका प्रयोग तभी करें जब कोई वृक्क विकार नहीं हो; मूत्र में Albumen नहीं आता हो।

गतांक में पाण्डु रोग की जो चिकित्सा कही गई है उसे भी कामला रोग में ध्यान में रखना आवश्यक है चूंकि इसका मूल कारण वही है। कामला में पहले कुछ दिनों तक यानी १०-१५ दिनों तक यदि द्रव आहार रखा जाय एवं रोगी को पूर्ण विश्राम में रखा जाय तो रोग की अवधि बहुत घट जाती है। द्रव आहार में दूध एवं लवण का कोई भी योग अच्छा नहीं है। यदि केवल वार्ली साबूदाना का पानी एवं मधुर फलों का रस दिया जाय तो सबसे अच्छा है। वसाजनित पदार्थ दुग्धादि भी तब तक नहीं देना चाहिए जब तक कि मूत्र एवं नेत्र का स्वाभाविक वर्ण नहीं आ जाये। लवण भी इसमें पथ्य नहीं है।

मार्गावरोध-जन्य कामला—

[Obstructive Jaundice]

इस रूप के कामला के सम्बन्ध में भी जो आवयविक विकार का उल्लेख मिलता है वह अस्पष्ट है। कौन से मार्ग का अवरोध होता है, अवरोध किस-किस तरह से होता है इत्यादि बातों की व्याख्या नहीं मिलती है। यह मार्गावरोध दो रूप का होता है या तो यकृतस्थ सूक्ष्म पित्तस्रोतों का अवरोध हो या पित्त-नलिका में अवरोध आ जाये।

पित्तस्रोतों का अवरोध या तो अति शैत्यादि से या यकृत प्रदाह से या यकृत शोषादि (Yellow Atrophy of liver या Cirrosis of liver) से होता है। और पित्त नलिका में अवरोध या तो पित्तकोषज अश्मरी के कारण या समीपस्थ अवयवों के शोथादि से पित्त नलिका के दब जाने के कारण होता है जैसे अग्न्याशयिकव्रण, विद्रधि आदि। अग्न्याशय या अन्य समीपस्थ अवयवों में ऊपर की तरफ यदि विद्रधिव्रण हुए और अवयव सशोफ हुए तो उनके दबाव के कारण पित्त नलिका दब जाती है और उसका मार्ग इतना अधिक संकुचित हो जाता है कि यकृतीयस्राव का निष्कर्षण नहीं हो पाता है। फल यह होता है कि बढ़ कर यह पुनः यकृत में आ जाता है और अपने बाढ़ के दबाव से यह अधरा महासिरा द्वारा बाहर निकल जाता है और सारे शरीर में प्रसार पाता है। अपने रंग से सारे शरीर को रंग देता है। पित्ताश्मरी में भी यही बात होती है। पित्ताश्मरी (Gall stone) जब पित्ताशय से निकल कर पित्त नलिका में आकर अटक जाती है तब भी मार्गावरोध होता है। मगर पित्ताश्मरी-जन्य कामला एवं अग्न्याशयादि के व्रणादि-जन्य कामला में कुछ अन्तर होता है। पित्ताश्मरी जन्य कामला २४ घन्टे में ही भयानक कामला के रूप में दिखाई पड़ता है। यह एकाएक आता है और पित्ताश्मरी के पुनः धंसक जाने के बाद एकाएक अन्तर्ध्यान भी हो जाता है। चूंकि अवरोध के हटते ही तीव्रगति के याकृतीय स्राव ग्रहणी में आ गिरता है। मगर अग्न्याशयादि-जन्य व्रणादि में ऐसा नहीं होता है उसमें इसकी वृद्धि शनैः शनैः होती है। पीड़ा यद्यपि दोनों में ही होती है मगर व्रणादि वाली में कम या वेश बराबर बना रहता है और पित्ताश्मरी जन्य में ऐसा नहीं होता है।

दूसरा मार्गावरोध पित्तस्रोतों के सशोफ होने से होता है। मगर इसमें विकृति कुछ भिन्न होती है। अधिक शैत्य के कारण या अत्यधिक मद्यपान के कारण चाहे वह आहार विहारादि द्वारा यकृत में पहुँचा हो या किसी रोग के विष के कारण जब यकृत प्रदाहावस्था में आ जाता है और उसके अन्तः परमाणु प्रदाहित हो उठते हैं तो इससे यकृतस्थ सूक्ष्मपित्त स्रोतों का मुखभाग भी प्रदाहित हो कर सशोफ हो उठते हैं और मार्ग का अवरोध हो जाता है। यानी उनसे यकृत-स्राव का ग्रहण नहीं होता है। दूसरे यकृत के प्रदाहावस्था के कारण रक्त धातु में से भी वे पदार्थ छन नहीं पाते हैं जिन्हें यकृत स्वस्थावस्था में छान पित्त के रूप में बाहर करता था। अतः वे रक्त धातु में ही एकत्रित होने लगते है और कामला का रूप प्रगट होता है। यह कामला भी यद्यपि शनैः शनैः ही प्रगट होता है मगर इतने कम समय में प्रगट होता है कि

इसे भी एक बारगी ही कहा जा सकता है। यह ४-५ दिनों में ही अपने पूर्ण रूप में प्रगट हो जाता है।

इसी द्वितीय रूप के मार्गावरोध के कारणों में से एक कारण "श्लेष्मणा रुद्ध मार्ग" है। मगर यह सूत्र रूप में इस समूचे विकृति का वर्णन कर देता है। इस मार्गावरोध-जन्य कामला में लक्षण पहले से कुछ भिन्न होते हैं। इसमें कामला के लक्षण शनैः शनैः प्रगट होते हैं और शनैः शनैः जाते भी हैं मगर अश्मरी-जन्य में एक बारगी प्रगट होते हैं और एक बारगी जाते भी है। इसमें यकृत में मीठा मीठा दर्द सा होता है दबाने पर भी दर्द होता है और यकृत प्रदाह के अन्य लक्षण ज्वरादि भी रहते हैं।

चिकित्सा—

अश्मरी-जन्य मार्गावरोध के कारण उत्पन्न कामला में पित्ताश्मरी नाशक चिकित्सा करनी चाहिए जो कामला रोग का विषय नहीं है। इसी कारण चरक इत्यादि में इसकी चिकित्सा कामला रोग के अन्तर्गत नहीं रखी गई है। द्वितीय प्रकार के मार्गावरोध-जन्य कामला की ही चिकित्सा का वर्णन है।

वरुणाद्यरस—

कज्जली	६ माशा
वरुण छाल का चूर्ण	१ तोला
कुलथी का चूर्ण	१ तोला
ताम्र भस्म	३ माशा
लौह भस्म	३ माशा

—प्याज के रस से खरल कर इसमें ५० गोलियां बनावें।

अनुपान—प्याज का रस या सुसुम पानी।

मात्रा—२ से ४ गोली तक २४ घन्टे में। एक बार में १ से २ गोली तक।

उपयोग—पित्ताश्मरी नाशक।

क्षार वटी—

गोखरुक्षार	पुनर्नवाक्षार
अपामार्गक्षार	कदलीक्षार
नौशादर	मूली का नमक
वरुण छाल चूर्ण	कुलथी का चूर्ण

—प्रत्येक १-१ तोला।

—घृत कुमारी के रस से खरल कर इसमें ५० गोलियां बनावें।

अनुपान—सुसुम पानी से।

मात्रा—२४ घन्टे में २ से ४ गोली तक।

उपयोग—पित्ताश्मरी नाशक।

ताम्र रसायन—

ताम्र भस्म १ तोला को लेकर प्याज के रस की २१ भावना दें। बाद इसमें कज्जली १-१ तोला मिला कर घृतकुमारी के रस की ७ भावना काकमाची स्वरस की दें, इसमें २०० गोलियां बनावें।

अनुपान—कोष्ण जल।

मात्रा—१-२ गोली तक। एक बार में। २४ घन्टे में ३ से ६ गोली तक।

उपयोग—पित्ताश्मरी में।

द्वितीय प्रकार के मार्गावरोध-जन्य कामला में भैषज्यरत्नावली पाण्डुरोगोक्त कामलान्तक लौह, चन्द्र सूर्य्यात्मकोरस, प्राणवल्लभ रस तथा यकृत प्लीहा रोगोक्त यकृदारिलौह महामृत्युञ्जय लौह, सर्व्वेश्वर लौह या यकृद्प्लीहा लौह का आवश्यकतानुकूल प्रयोग करे। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित योगों का प्रयोग भी आवश्यकतानुकूल करना चाहिए।

चन्दनादिवटी—

रक्तचन्दन	श्वेतचन्दन
सुगन्धवाला	खस
रोहितक	—प्रत्येक ६-६ माशा
सत गन्धविरोधा	१ तोला

—पुनर्नवा स्वरस से घोटकर इसमें ५० गोलियां बनावें।

अनुपान—जल

मात्रा—१ से २ गोली तक एक बार में। २४ घंटे में ३ से ६ गोली तक।

उपयोग—यह यकृतस्थ सूक्ष्म पित्तस्रोतों के प्रदाह को कम करता है, यकृत प्रदाह को भी दूर करता है।

लौह वटी—

लौह भस्म	३ माशा
शिलाजीत	३ माशा
चित्रकमूल	६ माशा
रेवन्दखताई	६ माशा
नवसादर	६ माशा
कलमीशोरा	१ तोला
रोहितक	१ तोला

—काकमाची, घृतकुमारी एवं मूली के रस की ७-७ भावना दें, ३-३ रत्ती की गोलियां बनावें।

अनुपान—जल से।

मात्रा—१ से २ गोली तक एक बार में, २४ घंटे में २ गोली तक।

उपयोग—यह यकृत एवं पित्त-स्रोतों के प्रदाह को दूर करता है।

रक्ताल्पता—

रक्ताल्पता में मुख्य विकृति यह होती है कि रक्तकण या तो पुष्ट नहीं होते हैं या रस धातु में रंजक पदार्थ की कमी हो जाये। यदि पुष्ट एवं स्वस्थ रक्तकणों का निर्माण नहीं होता है तब रस धातु में से ये रंजक पदार्थों को सम्यक रूप से ग्रहण नहीं कर पाते हैं और इनका इस कारण स्वाभाविक वर्ण नहीं हो पाता है। बहुधा जीर्ण रोगों में ऐसा उपद्रव के रूप में होता है जो रक्तकणों के उत्पादक संस्थान की कमजोरी के कारण होता है। रस धातु में रंजक पार्थों की कमी जीर्ण रोगों में ही होती है जहां उपवासादि अधिक दिनों तक चलता रहा है। इसमें निम्न लिखित योगों का प्रयोग करें।

शिलाजत्वादि लौह—

शिलाजीत		१ तोला
लौह भस्म	मुलहठी	६-६ माशा
ताम्र भस्म		विदारीकंद
बाराही कंद		-३-३ माशा

—जल से खरल कर इसमें १०० गोलियां बनावें।

अनुपान—मधु से।

मात्रा—१ से २ गोली तक २४ घंटे में।

उपयोग—रक्तकणों के निर्माण संस्थान को बल प्रदान करता है, रक्तकणों को पुष्ट बनाता है।

माक्षिक रसायन—

स्वर्णमाक्षिक भस्म	६ माशा
रौप्यमाक्षिक भस्म	१ तोला
चांदी भस्म	३ माशा
शिलाजीत	६ माशा
अभ्रक भस्म	६ माशा

—घृतकुमारी स्वरस से घोट कर इसमें १०० गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से ४ गोली तक २४ घंटे में, एक बार में एक से दो गोली तक।

उपयोग—यह सुपुष्ट रक्तकणों के निर्माण में सहायक बनता है और रस धातु में रंजक पदार्थों की कमी को दूर कर देता है।

काशीशादि वटी—

शुद्ध काशीश	१ तोला
तुत्थ भस्म	१॥ माशा
शुद्ध हरताल	६ माशा
शुद्ध कुचला	६ माशा
अभ्रक भस्म	३ माशा
वङ्ग भस्म	३ माशा

—घृतकुमारी के रस की ६ भावना दें, इसमें २०० गोलियां बनावें।

अनुपान—मधु।

मात्रा—१ से ३ गोली तक २४ घंटे में। एक बार में १ गोली।

उपयोग—रस धातु में रंजक पदार्थों की कमी को दूर करने के लिए।

जलोदर पर पिप्पलीकल्प

लेखक—श्री वैद्य भाईशंकर पीताम्वर व्यास
संचालक-श्री रणछोड़ जी सार्वजनिक औषधालय, राजकोट।

"श्री व्यास जी वयोवृद्धि अनुभवी चिकित्सक हैं। गत ३५ वर्षों से चिकित्सा व्यवसाय कर रहे हैं। आप राजकोट वैद्य सभा के प्रमुख हैं। आपका एक सार्वजनिक चिकित्सालय है जिसमें प्रतिदिन लगभग २५०-३०० रोगी चिकित्सार्थ आते हैं। यह आपकी सफल चिकित्सा का ही आकर्षण है। जलोदर के अनेक कष्टसाध्य रोगियों ने आपकी चिकित्सा से आरोग्यलाभ प्राप्त किया है और इस लिए आपका अनुभवपूर्ण यह लेख अवश्य ही पाठकों को रुचिकर और ज्ञान वर्द्धक प्रमाणित होगा।" —सम्पादक।

जलोदर जठराग्नि मंदता का रोग है प्रायः उसकी चिकित्सा पेट का पानी निकालने के रूप में करते हैं। परन्तु पेट का पानी निकाल देने पर पुनः पानी निकालना पड़ता है। जैसे-जैसे पानी निकलता जायगा पेट बड़ा बड़ा होता जाता है। इस कारण जलोदर वाले रोगी का पानी निकालने का प्रयोग बिल्कुल व्यर्थ है।

हम अपने अनुभव से लिखते हैं कि जलोदर वाले रोगी को वर्धमान पिप्पली का प्रयोग करना चाहिये जो अत्यन्त लाभकर है और तत्काल रोगी को लाभ मालूम होने लगता है।

प्रयोग-विधि-पीपल का प्रारम्भ ७ पिप्पली से प्रारम्भ करके ४० पिप्पली तक लेजाना चाहिये, पिप्पलियों का बढ़ाना रोगी की स्थिति पर निर्भर है। यदि दशा कुछ कम लाभ की दीखे तो फिर उतार लेना चाहिये, प्रयोग के ७-८ दिन के बाद पेट छोटा होने लगेगा। छोटा होने पर उसमें यकृत तिल्ली कितने बढ़े हैं यह प्रत्यक्ष मालूम होगा। जैसे-जैसे प्रयोग में दिन अधिक लगते जांयगे वैसे-वैसे जिगर तिल्ली आदि सब कुछ छोटे होते जांयगे। उनके छोटेपन से ही वैद्यों को मालूम होजायगा कि पिप्पली का प्रयोग कहां तक चलाना है। कारण यह है समस्त रोगियों के पेट एक जैसे नहीं होते। छोटे बड़े, थोड़े या ज्यादा दिन के बढ़े हुये होते हैं। उसके अनुसार देख कर ही रोगी की स्थिति के अनुसार वैद्यों को विचार कर लेना चाहिये।

पिप्पलियों का प्रयोग दूध के साथ होता है। प्रथम दिन रोगी की स्थिति देख कर उसकी इच्छानुसार ही मात्रा में दूध लेना चाहिये और जितना दूध लिया जाय उसके समान ही जल डाल कर उसमें पिप्पली नग ७ डालकर पाक करें। जब शनैः शनैः सब पानी ताप से जल जाय और दूध मात्र शेष रहे और पिप्पलियां पक जांय तब उतार लें। उसमें से पिप्पली निकाल कर खाली समय केवल उन्हें ही प्रथम खालिया जावे। खाली समय से तात्पर्य यही है कि उन्हें उचित समय लगाकर शनैः शनैः चबा कर खाया जाय। ऊपर से दूध पिया जावे। पिप्पली खाते समय उसकी तीक्ष्णता अनुभव नहीं होती, दूध में पकने से उनकी तीक्ष्णता दूर होगई होती है। खाने में अच्छी लगेंगी। इस प्रयोग के दूसरे दिन रोगी की स्थिति देख कर ५ तोला या १० तोला दूध और बढ़ाना चाहिये। इस प्रकार प्रयोग करने पर आठ दिन में आपको, रोगी को तथा उसके सम्बन्धियों को यथेष्ट स्पष्ट परिवर्तन मालूम होगा और आश्चर्यजनक अनुभव करेंगे। पेट छोटा होने लगेगा, मूत्र मल नियत होता जायगा, पाण्डुता दूर होती जायगी और सुर्खी दीखने लगेगी। रोगी और वैद्य का उत्साह बढ़ता जायगा।

दूध पीने वाले रोगी को चाय काफी पीने का निषेध है। गरम व ठंडा पानी नहीं पिलाना चाहिये। अधिक दूध पीने से उसकी प्यास नष्ट हो जायगी। यदि रोगी नहीं माने और पानी देने का ही प्रसंग उपस्थित हो तो नारियल का पानी पिलाना चाहिये। एक दिन में दो नारियलों का पानी परियाप्त है। हमने एक रोगी को एक मास तक श्रीफल (नारियल का पानी चालू रखा था) ऐसी हर रोगी को आवश्यकता नहीं होती। जैसे-जैसे दूध बढ़ता जाय वैसे-वैसे दूध लेने का समय निर्धारित कर लेना चाहिये। दिन में तीन बार दूध लेने का निश्चय अति उत्तम है।

अन्न-यूष–हमारा अनुभव है कि कोई भी अन्न चबाकर न खावे मगर यव, मोठ, मूंग, कुलथी और चना इन पांच वस्तुओं को रोजाना अलग-अलग क्वाथ बना कर पीने का नियम रखे। पाँचवें रोज पहिली वस्तु का नम्बर आयेगा। इससे रोगी की रुचि रहेगी और पीने में भी गड़बड़ नहीं करेगा। क्वाथ में मात्रानुसार हल्दी, जीरा, धनियां, और गुड़ डालना चाहिये जिससे खुराक पर प्रीति बनी रहे। इसमें नमक कदापि नहीं डाले। क्योंकि नमक का परहेज रखना है। रोगी को नमक खाने की आदत छुड़ा देने का प्रयत्न करना चाहिये।

यदि रोगी नमक छोड़ने पर तैयार नहीं है तो क्वाथ में जवाखार डालकर पिलावें। रोज व रोज क्वाथ अलग-अलग बनाकर पिलाना है। जिस द्रव्य का क्वाथ बनाना है वह कम से कम दस तोला और पानी ८० तोला लेना चाहिए। क्वाथ विधि से जब १०-१५ तोला शेष रह जाय छानकर पिलाता रहे। यह क्रम रोज का रहेगा। यदि आवश्यक हो तो ५-५ तोला क्वाथ दो बार पिला सकते हैं, मगर स्मरण रहे एक दिन में दो तरह का क्वाथ नहीं पिलाना है।

दोपहर को पपीता खिलावें, यदि आवश्यक हो और भूख लगे। अन्य दूसरा कोई फल नहीं देना चाहिए।

दुग्ध की मात्रा–हमने एक रोगी को दस सेर दूध तक नित्य लेना कर दिया था वह भलीभांति पी लेता था। हमारे काठियावाड़ में दूध का सेर ५६ तोला भर का है।

लाभ अवधि—तीस या बत्तीस दिन में पेट का भाग बारह आना छोटा हो जायगा। पेट का पानी कहां चला गया इसका पता नहीं लगेगा। टट्टी, पेशाब रोजाना दो तीन बार आयेगा और इस प्रकार दो मास में रोगी अच्छा हो जायगा। हमने ईश्वर की कृपा से ८-६ रोगियों को इस जलोदर रोग से मुक्त किया है। सरकारी अस्पताल से छूटे हुए मरीजों को भी इस चिकित्सा से लाभ पहुँचा है।

वैद्यों को इस चिकित्साक्रम में एक बात का ध्यान रखना चाहिए। जब किसी रोगी की चिकित्सा प्रारम्भ करें उसका भार, उसके पेट की मोटाई उसका फोटो हो सके तो वह भी तथा अन्य विवरण लिख लेना चाहिए। इससे उन्हें तथा चिकित्सकों को भी उनके अनुभव का लाभ होगा और विवरण प्रकाशित कराया जा सकता है।

औषधियों की कल्पना

१–क्वाथ–दशमूल क्वाथ सब द्रव्य मिश्रित १ तोला

पुनर्नवादि क्वाथ	१ तोला
श्री पञ्च पंचाग	१ तोला
पलाश की जड़	१ तोला
रोहितक की छाल	६ माशा
भिलावा	२ नग

—इन सबको ५० तोला पानी में किसी मिट्टी कांच, चीनी, पत्थर के बर्तन में भिगो रखें। प्रातः उसका क्वाथ बनाकर ७-८ तोला शेष रहने पर सहज गरम-गरम ही पी लेना चाहिए। एक रोगी को इस क्वाथ में १ तोला कुलथी और डलवाया था।

योग नं० २–शंखभस्म केपशूल में भरकर दिन में दो बार सुबह और सायंकाल को दिलवाना चाहिए।

—शेषांश पृष्ठ २३ पर।

सर्वाङ्ग शोथ की सफल चिकित्सा

लेखक—वैद्याचार्य श्री. उदयलाल महात्मा, देवगढ़।

नाम रोगिणी—कजोड़ी परताप कुमार की स्त्री उम्र-३० वर्ष, स्थान-लसानी, देवगढ़ (राज.) ता० १६ दिसम्बर सोमवार १६५७ को चिकित्सार्थ लायी गई। उस समय उसकी अवस्था यह थी—

सर्वाङ्ग शोथ, कामला युक्त, बदन सारा पीला, एक दम रक्त की कमी, यकृत बढ़कर पेट में पसलियों के नीचे लम्बाई और चौड़ाई में एक-एक बालिश्त बढ़ा हुआ, उदर का रूप जलोदर जैसा परन्तु पानी होने की सम्भावना नहीं ज्ञात होती थी। यह रोगिणी विगत २॥ वर्ष से पीड़ित थी। इसको भयंकर पांडु हो रहा था जिससे हाथों और पैरों के सारे नाखून विकृत फटे से और बैठे हुए थे। जिह्वा एक दम रक्त शून्य, श्वास खांसी का पूरा जोर था, चल-फिर नहीं सकती थी। पेशाब २४ घंटों में २-३ तोला होता था, मल खुश्क काला सा २४ घंटे में १ छटांक के करीब उतरता था। भूख एक दम बन्द छटांक दो छटांक गाय, बकरी का दूध लेना भी असह्य था। उक्त सारी अवस्था जो रोग के करीब-करीब असाध्यावस्था की सूचना देरही थी। अवस्था गरीबी की थी। ऐसी अवस्था के कुछ रोगियों की चिकित्सा पहिले भी मेरे द्वारा हुई थी जो लोगों की जानकारी में थी ही अतः उनका आग्रह था कि चिकित्सा करें। मैं ने उनको रोग की गुरुता बता दी और प्रभु धन्वन्तरि जी का स्मरण कर चिकित्सा प्रारम्भ की और साफ बता दिया कि चिकित्सा के जो चार पाद हैं उन सबका पूरा सहयोग रहा तो प्रभु कृपा से रोगिणी शीघ्र ठीक हो जायगी।

प्रारम्भ में चिकित्सा इस प्रकार प्रारम्भ की गई—

(१) कुटकी १ तोला, दर्भमूल २ तोला का जौ-कुट क्वाथ विधिवत् बनाकर दिन में चार बार ४-४ घण्टे बाद दिया गया जो तीन दिन तक चालू रहा। इसके बाद दिन में तीन बार कर दिया जो ५ दिन तक चालू रहा।

(२) पीने के लिए मकोय बूटी (मेवाड़ी में चिर-पोटी) का विधिवत् अर्क खींचकर वोही जब भी प्यास लगे पिलाया जाता था।

(३) रस सिन्दूर	२ रत्ती
ताम्र भस्म	¼ रत्ती
अभ्रक भस्म	२ रत्ती
फौलाद भस्म	२ रत्ती
प्रवाल भस्म	२ रत्ती
स्वर्णमाक्षिक भस्म	२ रत्ती
मधु	६ माशा

—चार बार, ४-४ घण्टे बाद चटाया जाता था।

(४) दैनिक २ सी. सी. का एक सूचीवेध लिवर एक्सट्रेक्ट फोर्ट (टी. सी. एफ) का रक्तवृद्धि के लिए लगाया जाता रहा।

(५) लिवोजन १ चम्मच अर्क मकोय में मिला कर दिन में ३ बार (बी. डी. एच.) भी दिया गया। उक्त व्यवस्था से तीसरे दिन जवान नेत्र की पलकों में रक्त की वृद्धि ज्ञात हुई और यकृत शोथ में कमी होना ज्ञात होने लगा। रोगिणी के परिवार वालों को अच्छी हो जाने का आश्वासन दिया गया।

इस व्यवस्था से आठ दिन में रोगिणी की शोथ अवस्था में आधा आराम होगया।

पथ्य में—पालक, चदलोई उबली हुई का रस, सामान्य सैंधव नमक और दो काली मिर्च पिसी हुई डाल कर आधा आधा पाव दिन में २-३ बार दिया जाता था तथा बकरी का दूध सुबह शाम।

नववे दिन पुनर्नवादि चूर्ण ३ माशा दिन में ३ बार गौमूत्र दो तोला के साथ।

(२) पुनर्नवादि क्वाथ—(पुनर्नवामृता दारु पथ्या नागर साधितः गौमूत्र गुग्गुल युतः) ३ तोले की मात्रा में तीन बार दिया जाता रहा।

(३) पीने में भवके से निकाला हुआ मकोय का अर्क। चाटने को उक्त नम्बर ३ की पुड़िया और रक्त वृद्धि और यकृत सुधार हेतु लि. फोर्ट की रोजाना सूची भी।

परिणाम—इससे रोगिणी को ३-४ दस्त रात में ३-४ दिन में हो जाते थे। पेशाब की मात्रा बढ़ गई और शोथ नाम मात्र को भी नहीं रहा। रोगिणी में त्वरित गति से रक्त की वृद्धि होने लगी। यकृत शोथ जाता रहा। रोगिणी अब प्रसन्न है।

अब उसकी व्यवस्था यह है—

प्लीहा, यकृत बढ़े हुए, रक्त की कमी इससे ज्ञात होता है कि रोगिणी ने पूर्व विषमज्वर काफी भुगता है अतः उसका उपचार पंचतिक्त, मृत्युञ्जय रस, लोह मल्लयुक्त और यकृत रस द्वारा किया जायगा।

इससे पूर्व भी कई रोगियों की शोथ की चिकित्सा जो कामला युक्त थे उनको कुटकी दर्भमूल योग से और जो केवल अन्य कारणों से शोथ युक्त थे उनको कुटकी १ तोला और बाद में अजवायन १ तोला घण्टे-घण्टे के बाद ५ तोला पानी में घिस छान कर गर्म कर दिये जाने से ४-५ दिन में शोथ के रोगी ठीक हुए हैं।

जो स्थिति नेप्टाल सूची के साथ साल्ट और शुद्ध नरसार नियमित मात्रा में देने के उपरान्त भी रोगी शरीर से पानी के निकल जाने से रोगियों में आती है-घबड़ाहट, दिल की कमजोरी, जबान की खुश्की और पतनावस्था वह उक्त आयुर्वेदीय चिकित्सा में कभी नहीं आती। मैं अपने प्यारे वैद्य हकीम बन्धुओं से विनय करूंगा कि वे जल के स्थान पर पीने में अर्क मकोय ही देवें और फिर शोथ पर आयुर्वेद के हावी होने का चमत्कार देखें और दिखावें।

:: पृष्ठ २१ का शेषांश ::

योग नं० ३–आरोग्यवर्धिनी रस दो माशा और गामूत्र क्षार २ माशा शहद के साथ दोपहर और रात को दो बार खिलाना चाहिए।

योग नं० ४–लहसुन का मुरब्बा जो एक कली का हो, २ से ४ कली किसी भी समय का दूध पीते समय खिलाना चाहिए।

इतनी औषधियां जलोदर रोगी के लिए बस पर्याप्त हैं अन्य औषधियों का अनुभव होने पर फिर सेवा में प्रस्तुत करूंगा।

:: पृष्ठ २६ का शेषांश ::

रबर की गेंद सीधे हाथ के कांख में जब तक दबाकर रखे तब तक चंद्र स्वर चालू ही रहेगा और सूर्य स्वर बंद ही रहेगा। एवं च दोनों स्वरों को (सुशुम्ना को) एक बार चालू करने पर किसी भी अवस्था में रहकर दीर्घ काल तक चलाने के लिए दोनों हाथों की कांखों में दो रबर की गेंद जब तक दबाकर रखे जांयगे तब तक दोनों स्वर एक साथ चलते ही रहेंगे।

निर्दिष्ट लिंगयुक्त बालक को जन्म देने के लिए किस तरह गर्भ स्थापना करना चाहिए इसमें हम पूर्णतया समझ गये हैं। इच्छित सन्तान प्राप्ति का वैज्ञानिक विवेचन हमें अपनी जीवन यात्रा सफल बनाने में मार्गदर्शक सिद्ध होगा। विधाता के कार्यों में से एक कार्य सम्पादन करने के लिए अब हम स्वतन्त्र हो गये हैं।
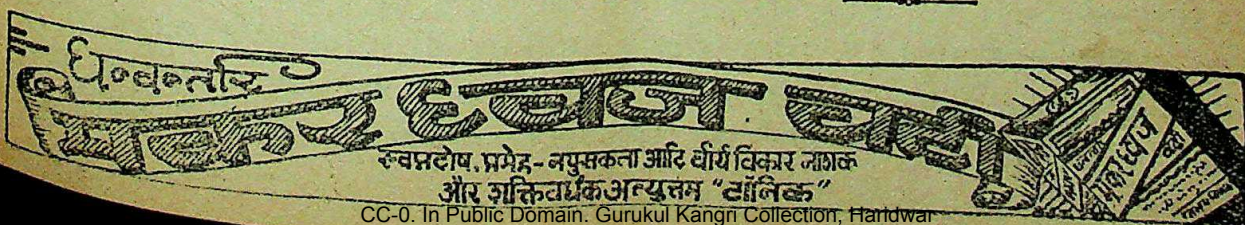
इच्छित सन्तान

लेखक—वैद्य अम्बादास पन्ढरीसा बन्हाणपुरे, दाऊदपुरा—बुरहानपूर (म. प्र.)

प्रथमोध्याय—गर्भस्थापन विधि।

[अक्टोबर १९५७ के अङ्क से आगे]

मानव जीवन यात्रा—

मनुष्य २५ वर्ष की आयु तक माता-पिता के लाड़-कौतुक में पलता हुआ स्वास्थ्य-शिक्षण आदि प्राप्त कर उदर निर्वाह के लिये स्वावलम्बी बन जाता है। तीस वर्ष की आयु तक धनोपार्जन करने लगता है। तब उसका विवाह-संस्कार होता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। ६० वर्ष की आयु में उसे बुढ़ापा ग्रसने लगता है और फलस्वरूप शरीर की कार्य शक्ति धीरे-धीरे नष्ट होती जाती है। ६० वर्ष की अवस्था में वह पूर्णतया थक जाता है और उसका जीवन परावलम्बी हो जाता है। दूसरे व्यक्ति द्वारा अपनी सेवा किये जाने की आशा करता है। किन्तु बिना "स्व" के अथवा बिना मतलब के कोई उसे इस अवस्था में अपना काम धन्दा छोड़ कर सहारा नहीं देता। तब वह हताश होकर ईश्वर नाम का सहारा लेता है। बीतती हुई जर्जरता को चुपचाप सहता जाता है। उसमें भी यदि दुर्भाग्यवश स्वास्थ्य ठीक न रहा अथवा व्याधि ग्रस्त हो गये तो रोते-चिल्लाते हुए आपत्ति का सामना करता है किन्तु अन्त में उसे हार माननी पड़ती है और परलोक गामी बन जाता है।

अपनी इच्छानुसार, अपनी दूर-दृष्टि से बनाई हुई जीवन यात्रा की रूप रेखानुसार जीवन-यात्रा अपने लिए एवं दूसरों के लिए सुखावह हो सके इसलिए आयु के २५ से ४० वर्ष के भीतर निर्दिष्ट रूपरेखानुसार बालक को (लड़के को) जन्म देना आवश्यक है। लड़की विवाह के पश्चात् पराधीन हो जाती है-वह पति सेवा-रत रहती है इसलिए बिना पुत्र के गति नहीं है। सुपुत्र को कुल-दीपक कहा गया है वह जन्म दाता की जीवन-यात्रा-पथ [illegible] प्रकाश फैलाता है। उसके बुढ़ापे का सहा[illegible] होता है।

देखिये—

> प्रदोषे दीपकश्चन्द्रः प्रभाते दीपको रविः।
> त्रैलोक्ये दीपको धर्मः सुपुत्रः कुल दीपकः॥
>
> —सूक्ति सुधा

इस कारण प्रथम सुपुत्र को जन्म देना आवश्य[illegible] माना जाता है। २५ से ४० वर्ष की आयु त[illegible] सुपुत्र उत्पन्न करने पर वह ३० वर्ष का होता हुआ धनोपार्जन कर अपना सेवा कार्य करने योग्य ब[illegible] जाता है तब तक जन्मदाता की उम्र ६०-७० [illegible] लगभग हो जाती है। उसकी विमल-ध्वज-ज[illegible] दृग्गोचर होने लगती है।

भावी जीवन में मनोवांच्छित सेवा का[illegible] करने वाला कुलदीपक, विवाह होते ही सर्व प्रथ[illegible] निर्माण करना, इस जीवन यात्रा के रहस्यमय ध्ये[illegible] को ध्यान में रखते हुए अपने पूर्वजों ने हजा[illegible] वर्ष के लोकजीवनेतिहास का अवलोकन करते हु[illegible] विवाह-संस्कार के पश्चात्, 'विधिवत् सुहागरात' की योजना की है। भारतीय संस्कृति के परंपरा क[illegible] अक्षय शिक्षण पद्धति अपने प्राचीन शिक्षणतज्ञ ऋषि-मुनियों ने "धर्म" याने "कर्तव्य-पालन" [illegible] रूप में अंकित की है। यदि कोई इस तथ्य [illegible] समझने का प्रयत्न भी न करे तो भी कम से क[illegible] धर्माचरण के हेतु उचित फल को प्राप्त कर लेता है [illegible] धर्माचरण भी न करने वाले दुःख को प्राप्त कर[illegible] हैं और अपनी जीवन यात्रा को सफल करने [illegible] अयशस्वी होकर भाग्य-विधाता को दोष देते हैं।

भारतीय के संस्कृति अनुसार विवाह संस्कार में सुहाग रात का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। सुहागरात आदर्श गृहस्थियों के लिए इच्छित सन्तान प्राप्त करने के हेतु अमूल्य योग-दान है। यह पद्धति शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक ढंग से नियोजित है। 'इच्छित सन्तान प्राप्ति" का गुप्त रहस्य उसमें छिपा हुआ है। वह इस प्रकार है—

सुहागरात के दिन दूल्हा और दुल्हन को सुशोभित वेषभूषा एवं अलंकारों से सजाकर इन्हें सौंदर्यानंद से प्रसन्नचित्त बनाकर उस दाम्पत्य के मन में परस्पर मिलन की प्रथम गांठ सम्बन्धी कामोत्पादक प्रेम भावना निर्माण कराते हैं। सुहागरात के लिए एकांत शयनागार में जिस शय्या का आयोजन करते हैं वह भी सौंदर्य परिपूर्ण मृदु-वस्त्रों से एवं सुगन्धित पुष्पों से सजाते हैं। शयनागार को सौंदर्य परिपूर्ण रञ्जित चित्रों से सुशोभित कर कामानन्द बढ़ाते हैं। एवं च परस्पर प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने के हेतु दूल्हा-दुल्हन के मुंह में मिष्ठान्न का ग्रास देता है और दुल्हन दूल्हे के मुंह में मिष्ठान्न का ग्रास देती है। पश्चात् उस एकांत शय्या पर दाहिनी ओर दूल्हा और बांये ओर दुल्हन शयन करते हैं। स्त्री का स्वभाव पुरुष की अपेक्षा ज्यादा लज्जायमान रहता है इसलिए दुल्हन अपना मुंह मोड़कर (याने बायें करवट पर) सोती है और दूल्हे राजा निर्भीकता से उसको कामवश करने के प्रयत्नों के हेतु स्वाभावतः बायीं करवट पर लेटता है। परस्पर कामवश होकर मैथुन के लिए सिद्ध होते हैं तब तक उस दाम्पत्य का चन्द्रस्वर बन्द होकर सूर्यस्वर चलने लगता है। अतः दोनों के सूर्यस्वर चलने की अवस्था में किये गये मैथुन से स्वाभावतः पुल्लिङ्गी गर्भ की स्थापना होती है। करीब ५ वर्ष तक उस दाम्पत्य की यही कामस्थिति रहती है जिसके फलस्वरूप प्रथम लड़का ही उत्पन्न होता है।

पति और पत्नी दोनों की इच्छा और ध्येय परस्पर पोषक रहने पर ही इच्छित सन्तान को प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा कदापि नहीं।

स्वर योग साधन —

निर्दिष्ट लिंगयुक्त बालक को जन्म देने के लिए गर्भ-स्थापन विधि में स्वर योग साधन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थापन है। अतः मैथुन के समय किसी एक इच्छित व निश्चित् स्वर को दीर्घ समय तक चालू रखने के योग साधन को स्वर योग साधन कहते हैं। स्वर योग साधन को पूर्ण रूपेण समझने के लिए तद् आवश्यक इन्द्रियों की रचना एवं कार्यों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। स्वर योग साधन में श्वसन संस्था की अत्यन्त महत्वपूर्ण इन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय है।

घ्राणेन्द्रिय (नाक) में दो श्लेष्मोत्पादक ग्रंथियां होती हैं जिसमें से अहर्निश श्लेष्मा का सूक्ष्म स्राव होता रहता है जिससे नाक के दोनों नथुनों में गीलापन बना रहता है। जिस तरह हुक्के में (गुड़गुड़ी में) रखे हुए जल के कारण तमाखू का अति उष्ण एवं दूषित धुवां शुद्ध एवं समशीतोष्ण बनकर आता है। ठीक उसी तरह यह श्लेष्मा दूषित श्वास को शुद्ध एवं समशीतोष्ण बनाकर श्वासपटल में प्रविष्ट कराता है।

नाक के सीधे नथुने के पार्श्व भाग में एक सच्छिद्र शंखाकृति कूर्चावलय है और बायें नथुने के पार्श्व भाग में एक सच्छिद्र शंक्वाकृति कूर्चावलय है। दोनों कूर्चावलय दो शंखाकृति हड्डियों में सटे हुये रहते हैं तथा दोनों के बीच के ऊपरी भाग पर तीसरी शंखाकृति हड्डी होती है जिसमें अंतस्त्वचा के नीचे गन्ध का ज्ञान देने वाले ज्ञान तन्तु रहते हैं जिसके अनेक छोर दोनों सच्छिद्र शंक्वाकृति कूर्चावलयों में व्याप्त रहते हैं। इन ज्ञान-तन्तुओं के कारण हम सुगन्ध या दुर्गन्ध का अनुभव करते हैं। दक्षिणाङ्ग के सच्छिद्र शंक्वाकृति कूर्चावलय के बाह्यावरण में उष्ण श्लेष्मोत्पादक ग्रंथि होती है एवं वामांग के सच्छिद्र शंक्वाकृति कूर्चावलय के बाह्यावरण में शीतल श्लेष्मोत्पादक ग्रन्थि होती है। उष्ण श्लेष्मोत्पादक ग्रन्थि में से उष्ण श्लेष्मा का सूक्ष्म स्रोत, सच्छिद्र शंक्वाकृति कूर्चावलय में से होता हुआ

सीधे नथुने में स्रवता है एवं शीतल श्लेष्मोत्पादक ग्रन्थियों में से शीतल श्लेष्मा का सूक्ष्म स्रोत सच्छिद्र शंखाकृति कूर्चावलय में से होता हुआ बाएं नथुने में स्रवता है। उष्ण श्लेष्मा का तापमान शारीरिक तापमान से १° फ० ज्यादा रहता है और शीतल श्लेष्मा का तापमान शारीरिक तापमान से १° फ० कम रहता है। तापमान संतुलन के लिए विधाता ने नाक के दो नथुने बनाये जो अभेद कूर्चा से बने हुये पड़दे के कारण विभाजित हैं। इसलिए दक्षिण स्वर से होने वाले श्वास-प्रश्वास का तापमान शारीरिक तापमान से १° फ० ज्यादा रहता है तथा बाम स्वर से होने वाले श्वास-प्रश्वास का तापमान शारीरिक तापमान से १ फ० कम रहता है। चूंकि उष्णता का प्रतीक सूर्य और शीतलता का प्रतीक चन्द्रमा है इसलिए दक्षिण स्वर को सूर्य स्वर और बाम स्वर को चन्द्र स्वर कहते हैं।

जिस तरह छन्ना कागज (Filter paper) से दूषित द्रव को छाना जाता है। शुद्ध द्रव नीचे रखे हुये पात्र में छनकर आता है और दोष छन्ने कागज के ऊपरी सतह पर जमा रहता है ठीक उसी तरह घ्राणेन्द्रिय स्थित सच्छिद्र शंकाकृति कूर्चावलय श्वास की छान बीन का कार्य करते हैं। दोष कूर्चावलयों के बाहरी भाग पर जमकर विशुद्ध वायु श्वांस पटल में प्रविष्ट होती है इस तरह गला एवं दोनों फैंफड़ों जैसे नाजुक इन्द्रियों की सुरक्षा होती है। वह दोष श्लेष्मा द्वारा नथुनों के बाहर बहकर आता है जिसे हम छींकर के बाहर फेंक देते हैं इस तरह नाक स्वच्छ बनी रहती है। चूंकि घ्राणेन्द्रिय को स्वर्ग कहते हैं उसे पवित्र एवं स्वच्छ रखना अनिवार्य है।

श्लेष्मा जल स्वरूप है। एक सतह में रहना यह जल का विशिष्ट गुण धर्म है। इसलिए शरीर जब बायें ओर झुका हुआ रहता है तथा शरीर का भार भी वामाङ्ग पर रहता है तब वामाङ्ग का सच्छिद्र शंकाकृति कूर्चावलय श्लेष्मा से भर जाता है इस कारण वामस्वर बन्द हो जाता है। उसमें से श्वास प्रश्वास आसानी से नहीं हो सकता और दक्षिणाङ्ग का सच्छिद्र शंकाकृति कूर्चालय खुला रहता है इसलिए दक्षिणस्वर से श्वास-प्रश्वास होता है। इसके ठीक विपरीत शरीर जब दाहिने ओर झुका हुआ रहता है तथा शरीर का भार भी दक्षिणाङ्ग पर रहता है तब दक्षिण घ्राणेन्द्रिय का सच्छिद्र शंकाकृति कूर्चावलय श्लेष्मा से भर जाता है इस कारण दक्षिण स्वर बन्द हो जाता है (उसमें से श्वास-प्रश्वास आसानी से नहीं हो सकता) और वाम घ्राणेन्द्रिय का सच्छिद्र शंकाकृति कूर्चावलय खुला रहता है इसलिए वाम स्वर से आसानी से श्वास-प्रश्वास होता है। एवं च शरीर का भार जब समतोल रहता है तब श्लेष्मा दोनों स० शं० कूर्चावलयों में एक सतह में समरूप से रहता है इस कारण दोनों स्वर अधखुले रहते हैं, इसलिए दोनों स्वरों में से श्वास-प्रश्वास एक साथ ही होता है जिसे सुशुम्ना स्वर भी कहते हैं।

सारांश यह है कि बाएं करवट पर शयन करने से या बाएं पुट्ठे के एवं बाएं हाथ के बल बैठने से चन्द्र स्वर बंद होकर सूर्य स्वर चलने लगता है। ठीक इसके, विपरीत स्थिति में यानी सीधे करवट पर शयन करने में या सीधे पुट्ठे के एवं सीधे हाथ के बल बैठने से सूर्य स्वर बंद होकर चन्द्र स्वर चलने लगता है। एवं च शरीर समतोल रहे ऐसी स्थिति में बैठने से यानी पद्मासन, सिद्धासन या पालथी लगाकर दोनों पुट्ठों के बल समतोल बैठने से अथवा शयन करने से दोनों स्वर एक साथ चलने लगते हैं।

एक बार चालू किये हुए सूर्य स्वर को किसी भी अवस्था में रहकर दीर्घकाल तक चलाने के लिए एक रबर की गेंद बाएं हाथ की कांख में जब तक दबाकर रखें तब तक सूर्य स्वर चलता ही रहे और चंद्र स्वर बंद ही रहेगा। इसके विपरीत यानी एक बार चालू किये हुये चन्द्र स्वर को किसी भी अवस्था में रहकर दीर्घ काल तक चलाने के लिए एक

— शेषांश पृष्ठ २३ पर।

पोथकी

लेखक—श्री पं० लक्ष्मीनारायण पाण्डेय आयुर्वेदाचार्य, बी० ए०, साहित्यरत्न ।

इस व्याधि को छूत की व्याधि कहा जासकता है क्योंकि साधारणतया यह एक दूसरे के परस्पर रूमाल आदि के प्रयोग से अथवा स्वयं के हाथ ही निरोग चक्षु पर पड़ जाने से (जो हाथ रुग्ण चक्षु पर पहिले लग चुके हों) शीघ्र हो जाती है। कभी कभी एक ही मनुष्य में एक ही आंख में पाई जाती है जिसे साधारण दशा कह सकते हैं।

यह बीमारी साधारण आंख दुखने के साथ साथ होती है। इस रोग में आंख की दोनों पलकों में दाने पड़ जाते हैं। ये दाने उबले हुए साबूदाने के समान रंग में होते हैं जो १ मि. मि. से ३ मि. मि. तक पाए जाते हैं। ये चारों और फैले हुए होते हुए भी जहां शुक्लास्तर (Cunjunctiva) होता है वहां अधिक होते हैं। यदि इन दोनों को काटकर निकाला जाय तथा अणुवीक्षण यन्त्र से देखा जाय तो उसमें बहुत से छोटे-छोटे सेल मिलेगें। इस रोग के कीटाणु का अभी सम्यग्ज्ञान नहीं हो सका है। एक जापानी वैज्ञानिक ने ही अपने ही नाम से कीटाणु का नाम B.Neguchi रखा है।

यह व्याधि शीतोष्णप्रदेश में अधिक पाई जाती है। एसे प्रायः सभी भागों में १ प्रतिशत तो आंखों के बीमारों की संख्या रहती ही है। अधिक गर्म अथवा अधिक ठण्डे देशों में यह व्याधि अत्यल्प देखी जाती है।

निदान—इसका साधारण आंख दुखने से यह अन्तर है कि इसमें दाने पड़ जाते हैं। ये ऊपर निर्देशानुसार विशिष्ट प्रकार के होते हैं अन्य जो दाने वाली बीमारियां होती हैं उनके भेदक लक्षण निम्न हैं:—

(क) वासन्तिक नेत्राभिष्यन्द (Spring catarrhal) इस व्याधि में दाने एक दूसरे से जुड़े हुए सफेद दूधिया रंग के बड़े-बड़े होते हैं।

(ख) साधारण नेत्राभिष्यन्द (conjunctivitis) इसके दाने एक पंक्ति में कुछ लम्बे तथा नीचे की पलक में अधिक होते हैं।

उपद्रव—कनीनिका क्षत् सफेदी, धुन्ध अथवा जाले के साथ लालिमा लिए हुए। यद्यपि कनीनिका में शिराएें नहीं होतीं तो भी शुक्लास्तर शोथ के कारण शिराएें बढ़कर आगे की ओर प्रविष्ट हो जाती हैं। इन्हीं शिराओं के अग्रभागों में भी दाने बन जाते हैं जो ulcer घाव उत्पन्न कर देते हैं। यह घाव तब होता है जब दाने फूट जाते हैं।

जब तक शिराओं में रक्त रहता है लालिमा बनी रहती है और जब खून सूख जाता है तों सफेदी आ जाती है। यह रोग बढ़ने पर आंख के लिए महान हानिकारक बन सकता है। इस प्रकार साधारण क्षत, कनीनिकाक्षत और सफेदी ये तीन उपद्रव विशेष परिलक्षित होते हैं।

चिकित्सा—पोथकी की चिकित्सा के पूर्व शुक्लास्तर की शोथ दूर कर लेना चाहिए जिससे औषधियों का दानों पर असर हो सके। आयुर्वेद मतानुसार चन्द्रोदय वर्ती का उपयोग बहुत ही लाभप्रद देखा गया है। तुत्थ का प्रयोग यदि सावधानी से किया जाय तो अच्छा लाभप्रद होता है।

कास की वैदिक चिकित्सा

लेखक—वैदिकगवेषक, डा० शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक' बी० ए०, एच० एम० डी० एस०।

"रोगों का घर-खांसी और झगड़े का घर-हांसी" कहावत लोक में प्रचलित है। वास्तव में खांसी एक अत्यन्त कष्टदायक रोग है। बुढ़ापे की खांसी तो और भी अधिक कष्टदायी होती है। खांसी दो प्रकार की होती है। एक शुष्क और दूसरी तर। शुष्क में कफ नहीं निकलता और तर में कफ निकलता है।

आयुर्वेद में 'कास' के लिए 'च्यवनप्राश अवलेह, द्राक्षासव, सितोपलादि चूर्ण, लवंगादि वटी, एलादि वटी प्रभृति औषधियां हैं। होमियोपैथिक में ५० औषधियां हैं, जो लक्षण के अनुसार दी जाती हैं। वेदों में भी 'कास' की चिकित्सा है।

"मुञ्चशीर्षक्त्या उतकास एनं परुष्परुराविवेश यो अस्य।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥"
—अथर्व० १। १२। ३

अर्थ—पागलपन प्रभृति शिरोरोग से तथा जो वात से उत्पन्न, पित्त से उत्पन्न और जो कफ से उत्पन्न कास (खांसी) हैं जो कि इस रोगी के जोड़-जोड़ में प्रविष्ट है। उससे इस रोगी को छुड़ा। वह रोगी वनस्पतियों को और पहाड़ों को सेवन करे।

यहां मन्त्र में तर खांसी वाले रोगी को वनस्पतियों वाले हरे भरे ऊँचे पहाड़ों पर निवास करने तथा भ्रमण का विधान है। तर खांसी पहाड़ों पर रहने से नष्ट हो जाती है।

शुष्क कास के लिये:—

"यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोनु प्रवाय्यम् ॥"
—अथर्व० ६। १०५। १

अर्थ—हे कास रोग! तू जैसे मन विचारों के साथ शीघ्र दूर प्रस्थान कर जाता है ऐसे ही तू भी मन के साथ दूर होजा।

इस मंत्र में शुष्क कास को मन के संकल्प मात्र से दूर करने का वर्णन है। शुष्क कास में कफ जम जाता है इससे खांसते समय अत्यन्त कष्ट होता है। मन में उस जमे हुए कफ को ढीला करके उसे वहां से बाहर निकालने का संकल्प करना चाहिए। मन अन्दर की विद्युत् है वह उस जमे कफ को तथा वहां के शोथ को अवश्य पिघला और ढीला कर देती है।

"यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥"
—अथर्व० ६। १०५। २

अर्थ—हे कासे! (खांसी) जैसे तीक्ष्ण बाण शीघ्र ही अपने लक्ष्य पर गिरता है, वैसे ही तू पृथिवी देह के उत्तम प्रदेश की ओर गति कर, धारणा द्वारा विशेष देश में स्थिर हो।

"यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥"
—अथर्व० ६। १०५। ३

अर्थ—"हे कासे! (खांसी) जैसे सूर्य की किरणें शीघ्र ही दूर तक फैल जाती हैं ऐसे ही तू समुद्र के फेन के साथ शांत होजा।"

इस मंत्र में शुष्क कास को 'समुद्र फेन' के द्वारा दूर करने का वर्णन है। अन्यत्र भी कहा है—

'अब्धिफेनः·········कफं च कण्ठरोगं च·······विनाशयेत्।" (राज नि०)

समुद्रफेन कफ तथा कण्ठरोग को नाश करता है।

'कासे' इस सम्बोधन से कौशिक ने इस सूक्त को कासरोग निवृत्ति परक माना है। चतुर्वेद भाष्यकार सायणाचार्य ने भी ऐसा ही माना है।

भगन्दर और उसकी सफल चिकित्सा

पं. श्री रामेश्वर चौधरी वैद्य शास्त्री, श्री धन्वन्तरि लेबोरेटरिज, समस्तीपुर (दरभंगा) ।

गुदस्य द्वयङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडकाऽऽतिकृत् ।
भिन्ना भगन्दरो ज्ञेयः स च पंचविधोमतः ॥

गुदा के दो अंगुल स्थान के पार्श्व में उत्पन्न पीड़ा करने वाली पिडका फटी-फटी हुई भङ्गन्दरपिडका कहलाती है और वह भगन्दर पांच प्रकार का होता है । जैसे सुश्रुत ने भी कहा है—

वात पित्त श्लेष्म सन्निपातागन्तु निमित्तः । शतपोनकोष्ट्र ग्रीव परिस्रावि शम्बूका वर्तोन्मार्गिणों यथा संख्यं पंच भगंदरा भवन्ति ।

१—शतपोनक—

कषाय रूक्षैस्त्वतिकोपितोऽनिलस्त्व-
पानदेशे पिडका करोति याम् ।
उपेक्षणात पाक मुपैति दारुण,
रुजा च भिन्नाऽरुणफेन वाहिनी ।
तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां
व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥

अर्थात्–कषाय रुक्ष पदार्थों से अति प्रकुपित वायु गुदप्रदेश में जिस पिडका को करती है वह पिडका लापरवाही करने से दारुण पाक को प्राप्त करती है, और फूटी हुई पीड़ान्वित होती है । एवं रक्त वर्ण की झाग को निकालती है । उससे मूत्र, मल, शुक्र भी आने लगता है; वह बहुत से व्रणों वाला शतपोनक (चालनिका, सहस्रधार) कहलाता है ।

२—उष्ट्रग्रीव–प्रकोपणैः पित्तमति प्रकोपितं
करोति रक्तां पिडकां गुदाश्रिताम् ।
तदाऽऽशुपाका हिम पूति वाहिनीं
भगन्दरं तुष्ट्र शिरोधरं वदेत् ॥

पित्तप्रकोपक आहारों से अति प्रकुपित पित्त गुदा के आस पास उष्ट्र की ग्रीवा के समान पिडका को करता है उसे उष्ट्रग्रीव नाम का भगन्दर कहते हैं ।

३–परिश्रावी–कण्डूयनो घन स्रावी कठिनो मन्द बेदनः ।
श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः ॥

अर्थात्–परिस्रावी भगन्दर अधिक कण्डू वाला, घनस्रावी, कठिन, श्वेताभ भास, एवं कफज होता है । जिसका विशेष विवरण सुश्रुत ने इस प्रकार किया है—

श्लेष्मा तु प्रकुपितः शुक्लाव भासांस्थिरां, कण्डुमतीं पिडकां जनयति, साऽस्य कण्ड्वादीन वेदना विशेषांजनयति अप्रति क्रियमाणा च पाक मुपैति, व्रणश्च कठिनः संरम्भी कंडू प्रायः पिच्छिल मजस्र मास्रावं स्रवति उपेक्षितश्च वात, मूत्र, पुरीष, रेतांसि विसृजति; तं भगंदरं परिश्राविण मित्या चक्षते ॥ (सु. चि. स्था. अ. ४)

४—शम्बूकावर्त—

बहु वर्ण रुजास्रावा पिडका गोस्तनोपमा ।
शम्बूकावर्तवन्नाड़ी शम्बूकावर्तको मतः ॥

अर्थात्—अनेक वर्ण वाली, अनेक रुजाओं वाली और अनेक प्रकार स्राव करने वाली गोस्तन के बराबर लघु शङ्ख के आवर्तों के समान आवर्तों वाली नाड़ी रूप पिडका शम्बूकावर्त नामक भगंदर कहलाती है ।

५–उन्मार्गी–क्षताद्गतिः पायुगता निबर्धते
ह्यु पेक्षणात् स्युः क्रिमयो विदार्यते ।
प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखै-
र्व्रणै स्तदुन्मार्गि भगन्दरं वदेत् ॥

सुश्रुत में इसका विषद वर्णन निम्न प्रकार है—

मुढेन मांस लुब्धेन यदास्थि शल्य मन्नेन सहायवहृतं यदावगाढ़ पुरीषोन्मिश्रम पानेनाधः प्रेरितम सम्यगागतं गुदं क्षिणोति, तत्र क्षत निमित्तः कोथ उपजायते, तस्मिश्च क्षते पूय रुधिराकीर्णे मांसकोथे भूमाविव जल प्रक्लिन्नायां क्रिमयः सञ्जायते, ते भक्षयन्तो गुदमनेकधा पार्श्व तो

दारयन्ति, तस्य तैर्मार्गैः क्रिमि कृतैर्वात मूत्र पुरीष रेतांसिऽभिनिः सरन्ति, तं भगन्दरमुन्मार्गिण मित्या चक्षते ॥

अर्थात्—उन्मार्गी भगन्दर आगन्तुज है। इसकी उत्पति प्रायः मांसादि के साथ युक्त अस्थि शल्य के अवगाढ़ पुरीष के साथ-साथ गुदा तक जाने से और वहां उससे क्षत होने से होती है। तदुन क्रिमि उत्पन्न होकर खाते हुए सड़न युक्त गुदा को बहुत प्रकार से विदीर्ण कर देते हैं तत्पश्चात् उन छिद्रों में से वात, मूत्र और मलादि भी आने लगते हैं।

अवस्था विशेष से असाध्य—

बात मूत्र पुरीषाणि क्रिमयः शुक्रमेव च।
भगन्दरात् स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥

अर्थात्—भगन्दर से स्रवित होते हुए अधोवायु, मूत्र, पुरीष, क्रिमि और शुक्र रोगी को मार देते हैं।

चिकित्सा—

हमारे पूर्वज आयुर्वेद के पारंगत महर्षियों तथा आयुर्वेद शास्त्र वेत्ताओं ने अनेक योग और चिकित्सा क्रम का वर्णन किया है। इन सम्पूर्ण योगों को प्रयोग में लाया जाना अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी मैं अपने चिकित्सा काल में लाए हुए प्रयोगों को निम्नाङ्कित पंक्तियों में प्रकट किया है, हमारे वैद्य बन्धु हमारी इस तुच्छ सेवा से लाभ प्राप्त करेंगे।

भगन्दर स्वभावतः भयंकर एवं दुःसाध्य होते हैं सान्निपातिक असाध्य और विशेषतः क्षतज भगन्दर कृमि होजाने पर और असाध्य होजाते हैं। इसलिए इसकी चिकित्सा कृमि आदि की उत्पत्ति से पूर्व ही करनी उचित है।

भगन्दर की फुन्सी उत्पन्न होते ही इस प्रकार यत्न करे कि जिससे पके नहीं। और शोधन रक्त निकलवाना और सेचन इत्यादि से इसकी चिकित्सा करे।

वर(बड़) के पत्ते, ईंट, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवादि इनको अच्छे प्रकार से पीसकर जहां तक फुन्सी हों वहां तक लेप करे तो फुन्सी अच्छी हो जाती हैं।

स्नुह्यर्क दुग्ध दार्वी भिर्वर्ति कृत्वां विचक्षणः।
भगन्दर गति ज्ञात्वा पूरयेतां प्रयत्नतः ॥
एषां सर्व शरीरस्थां नाड़ीं हन्यान्न संशयः ॥
—भैषज्यरत्नावली

अर्थात्—भगन्दर को शुद्ध करके विचक्षण वैद थूहर का दूध, आक का दूध, दारुहल्दी इनको पीस यत्नपूर्वक भर दें। इससे भगन्दर भर जाता है।

—भांगरे को पीस पुल्टिस करके बांधते रहने से थोड़े ही दिनों में भगन्दर शुद्ध होकर भर जाता है।

—ऊंट की तथा बिड़ाल की और कुत्ते के पांव की हड्डी पानी में घिस कर लेप करने से भगन्दर भर जाता है।

भगन्दर नाशक मलहम (र. त. सा. प्र. ख.)—रसकपूर, सिन्दूर, सेलखड़ी, मुर्दासङ्ग, सफेदा, सफेद कत्था, कपूर, चिकनी सुपारी की राख प्रत्येक १-१ तोला और सत्यानाशी के बीज ८ तोला मिला कपड़छान चूर्ण करे। फिर चार गुना धोया गौघृत मिला मलहम बनाले। इस मलहम के लगाने से भगन्दर में सत्वर लाभ होता है। साथ-साथ उपदंश, नासूर, गम्भीर व्रण, अर्श, पामा, फोड़ा फुन्सी, दाद, सब दूर होते हैं।

करवीरादि तैल (चक्रदत्ते)—कनेर, हल्दी, जमाल गोटा, कलिहारी, सेंधव, चीता, बिजोरा नीबू का रस और इन्द्रजौ, इनके कल्क से पकाया तैल भगन्दर का नाश करता है।

व्रणगजांकुश रस (र. त. सा. द्वि. ख)—शु. हिंगुल फिटकिरी का फूला, रसौत, शु. मनःशिल, शु. गुग्गुल, शु. पारद, बायविडंग, अजवायन, गज

पीपल, काली मिर्च, अर्कमूल त्वक, वरुन छाल राल और हरड़ इन २१ द्रव्यों को सम भागलें। पहिले पारद, गन्धक की कज्जली कर हिंगुल, मनःशिल, ताम्र और लौह मिलावें। राल और गुग्गुल को सरसों के तेल में कूटकर मक्खन सदृश बनालें। शेष औषधियों का कपड़छान कर चूर्ण करे। पश्चात् राल, गुग्गुल मिश्रण के साथ पहिले भस्म और शेष चूर्ण मिलावें। उसे सरसों के तैल में मिलाकर लोहे के खरल में कूट कर एक जीव बना १-१ रत्ती की गोली बनालें और सुबह शाम व्रणगुजांकुश रस १ गोली जसद भस्म १ रत्ती अमृतासत्व ३ रत्ती मिला मधु से चटा कर ऊपर से हरड़, बहेड़ा, आमला भैंसिया गुग्गुल और वायविडंग का क्वाथ पिलाने से सत्वर लाभ होता है।

साथ-साथ भोजन के बाद—विडंगासव $\frac{1}{4}$ औंस एलाद्यरिष्ट आधा औंस और त्रिफलाद्यरिष्ट $\frac{1}{4}$ औं. का सेवन करावें। बाह्योपचार में भगन्दर-नाशक मलहम, करवीरादि तैल का प्रयोग करने से शीघ्रतिशीघ्र भगन्दर नष्ट होजाता है।

पथ्य—शाली धान के चावल, मूंग, विलेपी, जंगली पशु पक्षियों का मांस, परवल, सहिजन, बेंत की कोपल, कच्ची मूली, तिल और सरसों का तैल तिक्त वर्ग, घृत और शहद इन सब पथ्यों का दोषानुसार सेवन करे।

अपथ्य-जो भगंदर का व्रण भर कर सूख भी गया हो तो भी यह मनुष्य एक वर्ष पर्यन्त दंड, कसरत, मैथुन, युद्ध, घोड़ा, हाथी आदि की सवारी और भारी अन्नपान का भोजन सब त्याग देवे। ❖

गोदुग्ध अमृत है

डा० श्याममोहन कपूर एल० एस० एम० एफ० मैनपुरी।

मैं एक एलोपैथिक चिकित्सक हूँ। मेरे पास एक महिला जो सरकारी कर्मचारी हैं, इलाज के लिये आईं। इन्हें सब अच्छे डाक्टरों ने एक्सरे द्वारा तथा स्वयं मैंने भी तपैदिक की बीमारी निश्चित् की जिसमें दोनों फेफड़ों में व्रण हो गये थे। कई एक अस्पतालों में उन्हें आखिरी स्टेज होने के कारण भरती भी नहीं किया और घर पर जाकर मरने की अनुमति दी।

वे निराश होकर मेरे पास आईं और कहा मेरा शरीर सैकड़ों (करीब ३००) इन्जेक्शनों से जरजर हो गया है और खर्च और गरीबी के कारण मेरी नाक में लौंग भी नहीं है। मेरा हृदय भी उनकी दीन दशा देखकर द्रवित हो गया। मैंने भगवत् स्मरण किया कि भगवान् इनका कष्ट अवश्य दूर हो। उनकी प्रेरणा से मैंने उन्हें गाय का दूध जितना पी सकें तथा २ दवाइयां खाने को बताईं। उन्होंने एक गाय खरीद कर उसकी सेवा करना शुरू की तथा एक सेर दूध प्रातः, एक सेर शाम पीना शुरू किया—१५ दिन में ही उनका स्वास्थ काफी सुधर गया तथा बुखार, खांसी सब गायब हो गईं। २ माह में वे बिलकुल स्वस्थ हो गईं और अब तक सरकारी काम कर रही हैं। बीमारी से पहले उनके ३ पुत्रियां थीं, उसके बाद उनके एक पुत्ररत्न हुआ जो पूर्ण स्वस्थ है।

यह है गऊ माता की कृपा तथा उनके दूध का महत्व।

मैंने जिन भीषण रोगों के रोगियों को गऊ दुग्ध दिया वे सब स्वस्थ हो गये, खास तौर पर क्षय रोग में। समस्त वैद्य समुदाय तथा ऐसे रोगियों से प्रार्थना है कि इसका अनुभव करें और लाभ उठावें।

पूर्व का अत्यन्त घातक सांप

दबोइया

श्री रामेशवेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

"चरक, सुश्रुत आदि में सांपों के अनेक नाम आये हैं। वैद्य समाज अब उन सांपों से प्रायः अपरिचित है। इस लेख के लेखक श्री रामेशवेदी ने सांपों की अनेक जातियों को पालकर सूक्ष्म अध्ययन किया है। प्रस्तुत लेख में सुश्रुत के मण्डली सांपों के अन्तर्गत आदर्श मंडली का सचित्र परिचय देते हुए विद्वान् लेखक ने इस घातक सांप का स्वरूप, विविध भाषाओं में नाम, विष की घातकता आदि पर स्पष्ट और सुन्दर प्रकाश डाला है। हमें विश्वास है कि पाठकों के ज्ञान में इस वैज्ञानिक तथा सुव्यवस्थित अध्ययन से अभिवृद्धि होगी। आयुर्वेद के अजगर, दर्वीकर, राजियन्त आदि सांपों के सचित्र परिचय भी हम श्री वेदी द्वारा पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने का विचार कर रहे हैं।"

—सपादक।

३१ जनवरी १९५६ के दैनिक हिन्दुस्तान (दिल्ली) में एक सांप का शोक सम्वाद छपा था। लखनऊ के सम्वाददाता ने इसमें लिखा था—'लखनऊ के चिड़िया घर का एक मूल्यवान प्राणी बहुत बचाव करने पर भी सर्दी खाकर मर गया। वह भारत में प्राप्त भयङ्कर विषधर सांपों में से था। यह जिसको डस लेता वह कुछ क्षण ही जीवित रह सकता था जब कि काले नाग का खाया हुआ कुछ मिनट भी जी सकता है। वह गोमती की बाढ़ में गत वर्ष बह आया था। उसे दो रिक्शा मजदूरों ने पानी में पड़े देखा था और वे उसे चिड़िया घर में ले आये और कुछ थोड़े से पैसे में अधिकारियों को बेच आये। पीछे पता चला कि वह तो रसल्स वाइपर अंग्रेजी किस्म का सांप है। उसको एक विशेष बक्स बनवा कर बिजली के ताप यन्त्रों से गरम करके रखा गया था। गत वर्ष की सर्दी वह काट गया किन्तु वह इस वर्ष सर्दी से मर गया। यह विषधर बहुत कड़ी सर्दी सहन नहीं कर सकता।'

उक्त तिथि के आसपास के अनेक दैनिकों ने भी इस समाचार को प्रायः ऐसे ही रोचक शब्दों में दिया है। इसे पढ़ कर मेरे अनेक मित्रों ने उत्सुकता से मुझे इस सांप के बारे में अनेक प्रकार की जिज्ञा-साएं प्रकट की हैं। हरिद्वार में यह सांप असाधार नहीं है और हर साल मुझे कोई आधा दर्जन रसल वाइपर तो मिल ही जाते हैं।

विविध भाषाओं के नाम

उक्त सम्वाद में इसका नाम रसल्स वाइपर दि है। यह लैटिन नाम है जो समस्त संसार के वैज्ञा निकों में प्रचलित है। वैज्ञानिक दृष्टि से हमारे दे की नैसर्गिक सम्पदा का अध्ययन करने वाले प्रा भिक मनीषियों में से एक विद्वान् डाक्टर पैट्रि रसल ने १७६६ ई० में इसका ध्यान आधुनिक जग की ओर खींचा था। उनके सन्मान में इसे डाक्ट पेट्रिक का रसल वाइपर (रसल्स वाइपर) कहने लगे इससे पूर्व भी हमारे देशवासी इस सांप से भल भांति परिचित थे। जनसाधारण में यह दबोइ नाम से प्रसिद्ध है। दबोइया का अर्थ है दबकैल खतरा देखकर यह अपने सिर को शरीर में छि लेता है। शायद इसी आदत के कारण इसे यह ना मिला है। हिन्दी का यह दबोइया नाम अंग्रेजी भी अपना लिया गया है। "महर्षि सुश्रुत ने आद मण्डली के नाम से इसका वर्णन किया है।" इस पीठ पर सुन्दर गोल-गोल निशान होते हैं इ

विशेषता को सुश्रुत ने आदर्श मण्डल शब्द में दर्शाया है। मलयालम, मलाबार, मैसूर आदि में इसके जो नाम प्रचलित हैं वे भी मण्डलों के विशेषता के आधार पर बने हैं। ये गोल निशान पीठ पर तीन पंक्तियों में चले गये होते हैं। इस विशेषता के कारण इसे चेन-वाइपर या नेकलेस वाइपर भी कहते हैं।

कहां-कहां मिलता है—

यह सामान्यतया मैदानों में पाया जाता है। कभी-कभी सात हजार फीट की ऊंचाई पर भी पाया गया है। भुटान के पहाड़ों के पास ब्रह्मपुत्र घाटी में देखा गया है। कुल्लू और काश्मीर की घाटियों में पांच हजार से छह हजार फीट की ऊंचाई तक देखा गया है, यद्यपि यह मैदानों का तथा घाटियों में दो से तीन हजार फीट तक का निवासी है। घने जंगलों को छोड़ कर सब जगह मिल जाता है। ऐसे खुले प्रदेशों को अधिक पसन्द करता है जहां सूर्य की धूप अच्छी तरह लगती है कुछ क्षेत्रों में जैसे पंजाब में. बम्बई के पड़ौस में और ब्रह्मा के कुछ भागों में तथा मद्रास प्रेसीडेन्सी में अधिक पाया जाता है। राजपूताना और बंगाल में भी मिलता है। ब्रह्मा, लंका, चीन, स्याम, मलय प्रायः द्वीप, बोर्नियों, डच, ईस्ट इण्डीज, सुमात्रा और जावा में तथा कोमेडो के द्वीपों में भी रहता है।

नाप—

एशिया के मण्डली सांपों में वाइपर्स में यह सब से बड़ा सांप है। बहुत सुन्दर रंगों वाला यह सरीसृप बम्बई में पांच फीट तक पहुंच जाता है। हरिद्वार में इस लम्बाई का दबोइया मैंने कभी नहीं देखा। हर साल मेरे पास जो दबोइया आते हैं उनमें कभी-कभी नौ इन्च के बच्चे भी रहते हैं। अधिकतर तीन साढ़े तीन फीट तक के रहते हैं। इस प्रदेश में यह सामान्यतया अधिकतम लम्बाई चार फीट एक इन्च प्राप्त करता है। इस नाप के सांप का घेरा छह इन्च सिर की चौड़ाई दो इन्च होती है। पूंछ की लम्बाई सात इन्च होती है।

फूत्कार-एंजिन के शब्द जैसी—

छेड़ने पर यह इकट्ठा होजाता है। गुस्से में तेजी से और स्थिरता से फूत्कार मारता है। इसके फेफड़े बड़े होते हैं। इनमें हवा भर लेता है और उसे अपने नथुनों से बाहर निकलता है जिससे ऊंची आवाज पैदा होती है। इसकी आवाज सब सांपों से ऊंची होती है। एक शान्त कमरे में यह आवाज पास खड़े हुए इंजन की सी लगती है। श्वास के प्रत्येक उच्छ्वास और निश्वास के साथ शरीर ऊपर उठता है और नीचे गिरता है जिस तरह धौंकनी चलाई जा रही होती है। हमला करने के लिए जब तैयार होता है तो भयंकर फूंकार करता है। एक बार किसी ने इसकी फूंकार सुनी हो तो वह इसे भूल नहीं सकता। पिटारी को छेड़ने पर यह जोर से फूंकार उठता है। ऐसा मालूम देता है कि भरी हुई फुटबॉल के किसी छिद्र से हवा निकल रही हो।

आदर्श मण्डली (रसलस वाइपर)

अत्यन्त घातक सांप—

पूर्व के भयावह सांपों में मनुष्य जीवन के साथ फनियर के बाद दबोइये का सम्बन्ध है। बड़े विष दन्तों के कारण और एक बहुत अधिक विष डालने के कारण विष विद्या के कुछ विशारद इसे सामान्य
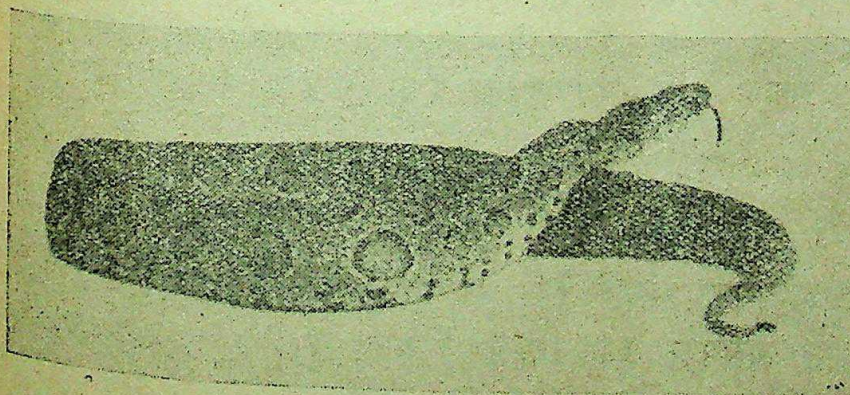
फनियर से अधिक भयङ्कर समझते हैं। परीक्षण में देखा गया है कि इसके विष की खरगोश के लिए न्यूनतम घातक मात्रा शिरा द्वारा ७.२६ मिलिग्राम प्रति किलोग्राम है। इस सांप से काटी गई मुर्गी आधे से सवा मिनट में मर जाती है। कुत्ते सात मिनिट में और बिल्ली करीब एक घंटे में मरती है। घोड़ा प्राय: साढ़े ग्यारह घंटे में मरते हैं। वॉल (१८८३) के परीक्षणों के अनुसार पक्षियों की अपेक्षा छोटे स्तन पोषितों को मरने में कुछ देर लगती है। ४ घनशतिमान सी. सी. की मात्रा में ताजा विष गिरगिट को दस मिनट में मार देता है। एक्टन और नौलेस १९१४ ने मालूम किया है कि जङ्गली चूहे के लिए न्यूनतम घातक मात्रा ०.५ से २.५ मिलिग्राम प्रति सौ ग्राम है और मृत्यु आठ से चौदह घण्टों के अन्दर होती है खरगोस और गिनिपिगों में जब घातक मात्राऐं डाली गई तो विष का कार्य इतना जल्दी नहीं हुआ जितना फनियर के विष से होता है। विष का कार्य मुख्य-तया स्थानिक प्रतीत होता है, रक्त को जमा देने के कार्य के कारण विष उस स्थान पर ही रह जाता है। जङ्गली चूहों के उदाहरणों में सात सौ ग्राम भार वाले प्राणियों में शिरा द्वारा आठ से नौ मिलिग्राम, दो से चार घण्टे में घातक था। प्राणी ने पहले बेचैनी दिखाई, श्वर उखड़ता सा मालूम दिया, फिर दम घुटने लगा, श्वास बन्द होने के कारण आक्षेप पैदा होने लगा और पिछले अंगों का पक्षाघात हो गया। मृत्यु श्वास बन्द होने के कारण होती है। श्वास बन्द होने के कुछ समय बाद भी हृदय की धड़कन कुछ समय जारी रहती है। वॉल ने बताया है कि मेंढक पर इसका प्रभाव बहुत कम होता है। पांच सेण्टीग्राम (९६ ग्रेन) फनियर का सूखा विष एक मेंढक को सत्तर मिनट में मार देता है परन्तु इतना ही रसलस वाइपर का विष तुलना में बहुत तुच्छ प्रभाव उत्पन्न करता है और नौ घण्टे में मेढक फिर पूर्णतया स्वस्थ हो जाता है।

फनियर की तुलना में रसलस वाइपर की विष ग्रन्थियां छोटी होती हैं। बहुत बार ऐसा होता है कि काटने में यह सांप कुछ सैकिण्डों तक उस स्थान पर दांत गढ़ाए रहता है। एक बार कुत्ते के साथ यह कुछ गजों तक घसीटता चला गया था। मेजर एक वॉल का विश्वास है कि एक दंश में यह जितना विष घाव में पहुँचा सकता है वह क्षुद्र प्राणियों को तो निस्सन्देह शीघ्रता से मार देता है परन्तु बड़े प्राणियों को इतनी जल्दी मारने के लिए अधिक विष की आवश्यकता होती है। एक उदाहरण में एक जवान आदमी सात घंटे में मरा था। एक पोस्ट मास्टर की करीब साढ़े तेईस घंटे बाद मौत हुई थी। दवोइये ने उसे एड़ी पर काटा था। ढाई फीट लम्बे दवोइये के अंगुली पर दंस से एक आदमी की सत्ताईस घण्टे में मृत्यु हुई थी। मौत जल्दी हो या देर से, यह इस बात पर निर्भर करता है कि दंश में विष की मात्रा घाव में कितनी डाली गई है। इसके दंश से बहुधा मनुष्य मर जाया करते हैं। केवल आत्म-रक्षा के लिए या छेड़े जाने पर ही यह मनुष्य को काटता है। साधारणतया मनुष्य को काटने में इसका विशेष झुकाव नहीं होता, परन्तु जब काटता है तो पूरी शक्ति और दृढ़ता से।

ग्राहक नम्बर

आपका ग्राहक नम्बर अंक के रेपर पर आपके पते के साथ दिया गया है, उसे नोट करलें और पत्र व्यवहार के समय अवश्य लिख दिया करें।

सिंघाड़ा और उसका उपयोग

वैद्य रामचन्द्र शाकल्य, इंदौर ।

मनुष्य के शरीर के लिए शाक-फलों की अत्यधिक आवश्यकता है । फल और शाक जितना खाद्योज और लवण अपने पास रखते हैं अन्न नहीं रख पाते । अन्नों से विटामिन की सम्पूर्ण शक्ति नहीं प्राप्त हो सकती । आधुनिक वैज्ञानिक कहते हैं कि खनिज लवण के अतिरिक्त हमारे खाद्य में एक तत्त्व और होता है जिसे विटामिन कहते हैं । यह विटामिन सभी खाद्य–पदार्थों में कम या ज्यादा पाया जाता है । इस विटामिन के सम्बन्ध में यहां तक कहा गया है कि यदि हमारे भोजन में सभी तत्व मौजूद हों किन्तु विटामिनों का अभाव हो तो उस भोजन से हमारी स्वास्थ्य-रक्षा नहीं हो सकती । शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है । स्कर्वी और बेरी-बेरी जैसे कठिन रोग भोजन में विटामिन के अभाव से ही होते हैं । अर्थात् ये बहुत उपयोगी खाद्य-पदार्थ हैं । इनको विटामिन और खनिज लवणों का भण्डार समझना चाहिये ।

एक बात इसमें और है, इनके साथ सूर्य भगवान् की किरणें खुलकर क्रीड़ा करती हैं । सूर्य की किरणों में नंगे बदन रहने से हमें अल्ट्रावायलेट किरणें इनसे प्राप्त होती हैं । और उसका अद्भुत प्रभाव हमारे बाह्य शरीर पर पड़ता है । ये किरणें प्रातः काल एवं सायंकाल की धूप में विशेषकर पाई जाती हैं । ये ही किरणें हमारे रक्त को तेज प्रदान करती हैं और घासों को हरीतिमा । इन्हीं सूर्य किरणों से शाक-फल अपना जीवन तत्व ग्रहण करते हैं । सूर्य की किरणें छन-छन कर उनमें एकत्र होती हैं उनको खाकर हम अपने शरीर में सूर्य की किरणें ले जाते हैं । इस प्रकार इसका आश्चर्यजनक प्रभाव हमारी आन्तरिक प्रणाली पर पड़ता है । यही कारण है कि प्राचीन काल के ऋषि-मुनि शाकाहार और फलाहार करके दीर्घ जीवन और स्वास्थ्य प्राप्त करते थे ।

ये रोगी और निरोगी दोनों को समान रूप से गुणकारी होती हैं । इनका छिलका न उतारने का विधान बताया गया है परन्तु फिर भी कहा गया है कि केवल इन शाक-फलों के ही छिलके उतारे जांय जो खाये न जा सकें और कड़े हों । क्योंकि छिलके आंव के रोगियों को हानि पहुँचा सकते हैं । कड़े आवरण को तोड़ने में हाज्मा बिगड़ जाने का डर रहता है । ऐसे ही शाक-फलों में सिंघाड़ा भी एक है ।

परिचय—

सिंघाड़े की बेल बड़े-बड़े तालाबों में हुआ करती है । तालाब, पोखर और झीलों में बहुत होता है । इसका फल कोनादार होता है । इसके इधर-उधर सींगों की तरह दो कांटे होते हैं । इसलिए इसे संस्कृत में 'शृंगाटक' कहते हैं ।

इस फल के ऊपर काला छिलका होता है । इसी छिलके के तीन बड़े-बड़े कांटे होते हैं । छिलका दूर करने पर भीतर सफेद रङ्ग की गिरी निकलती है । यही खाने के काम में आती है । सिंघाड़ा हमारे देश में बहुत होता है ।

इसे संकृत में–शृंगाटक, सिंघाड़ा, बंगला में -पानी फल, मराठी में—सिंघाड़ा, लैटिन में—Trapa-lispinosa (ट्रेपालिसपीनोसा) अंग्रेजी में–water caltrop (वाटर केलट्राप) कहते हैं ।

गुण—

सिंघाड़ा पौष्टिक, हलका, ग्राहक, रुचिवर्द्धक, वीर्योत्पादक, रुधिर विकार नष्ट करने वाला, शीतल, स्वादु, वातकारक, कफकारक, पित्त और दाह नष्ट करने वाला होता है । यह कच्चा भी खाया जाता है । इसकी गिरी को सुखाकर पीस लेने से आटा बन जाता है जो पूरी या रोटी बनाने के काम में आता है ।

वैज्ञानिक विश्लेषण से सिंघाड़े में नीचे लिखे अनुसार तत्त्व पाये जाते हैं—इसमें ७०.० प्रतिशत पानी, १.१ प्रति० खनिज पदार्थ, ४.७ प्रति० प्रोटीन ०.३ प्रति० वसा, २३.६ प्रति० कार्बोहाइड्रेट, ०.०२० प्रति० कैल्शियम, ०.१५ प्रति० फासफोरस, ०.८ मिलिग्राम प्रति सौ ग्राम लौहा और २० इ०यू० विटामिन ए प्रति सौ ग्राम होता है। शेष विटामिनों की जाँच नहीं हुई हैं।

उपयोग—

(१) वीर्यवर्द्धक दवा–सिंघाड़े के आटे का हलुआ बनाकर खाने से वीर्य बढ़ता है।

(२) गर्भिणी के रक्तस्राव की दवा–सिंघाड़े के आटे की दूध के साथ लपसी बनाकर सेवन करने से गर्भवती स्त्री का रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

(३) यह कच्चा और उबालकर दोनों तरह से खाया जाता है।

(४) इसकी तरकारी भी बनती हैं जो कि उत्तम होती है।

(५) सिंघाड़ा की निकली गिरी को सुखाकर पीस लेने से आटा बन जाता है जो पूरी-रोटी बनाने के काम में आता है।

(६) कहीं-कहीं लोग मसाला और कड़वा तैल डालकर इसका अचार भी बनाकर रखते हैं, जोकि बड़ा स्वादिष्ट होता है।

(७) सिंघाड़े को आग में पानी के साथ पकाकर खाया जाता है। जिसके पक जाने पर इसका स्वाद सुन्दर और सोंधा हो जाता है।

पाक-विज्ञान की दृष्टि से—

सिंघाड़े की गिरी को निकाल कर सुखा ली जाती है। सुखी हुई गिरी कई तरह के पकवान बनाने के काम में आती है। यह बाजारों में सर्वत्र अधिक तादाद में उपलब्ध होती है।

सिघाड़े का आटा—

सिंघाड़े का आटा, सूखी हुई गिरी को पीस लेने से बनता है। यह आटा अधिकतर उपवास में बहुत उपयोग किया जाता है। इसे नाना तरह से स्वादिष्ट, मन के लायक मीठा एवं चरपरा बनाकर खाया जाता है।

सिंघाड़े का हलुआ—

सिंघाड़े के आटे का हलुआ बनाया जाता है जोकि 'उपवास' में अधिकतर (फलीयार) फलाहार के रूप में ग्रहण किया जाता है। यह पाक घी, शक्कर, इलाइची आदि डाल कर बनाया जाता है।

सिंघाड़े की खीर—

सिंघाड़े के आटे की दूध के साथ खीर बनायी जाती है। जोकि सेवनीय होती है। इसी तरह बनायी गई लपसी भी हितकारी होती है।

सिघाड़े के कोन्डाले—

यह चरपरा बनाया जाता है जोकि 'उपवास' में ग्राह्य है। इसमें सिंघाड़े का आटा, मूंगफली के दाने सेंककर और उन्हें कूटकर मिला देते हैं एवं सेंधानमक, मिर्च आदि डालकर इसे गूंथ लेते हैं (पानी में) तथा छोटे-छोटे गोल कोन्डालें बनाकर घी का पोताया, पराठे जैसे लगाया जाता है और आगी पर सेंक कर बनाया जाता है एवं उसे बड़े चाव से खाया जाता है।

वस्तुतस्तु सिंघाड़ा एवं उसका उपयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है जोकि उपर्युक्त निर्देश किया जा चुका है। अतः 'सिंघाड़ा' उपयोगी एवं हितकारी है।
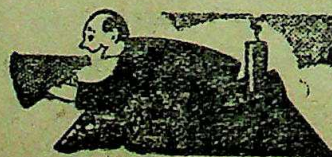
प्रतिदिन प्रयोग

विषम ज्वर नाशक सुदर्शन मिश्रण—
(रसेन्द्रसारसंग्रह का योग)

सुदर्शन चूर्ण	१० तोला
शुद्ध कुचला	१ तोला
सोड़ाबाई कार्ब	२॥ तोला

—सबको खरल में डालकर अच्छी तरह घोट कर शीशी में मजबूत कार्क लगा दें।

मात्रा—१॥ माशे से ३ माशे तक अवस्था व बलानुसार सुबह शाम प्रयोग करावें।

सेवन विधि—चूर्ण फांक कर गरम चाय या गरम जल पीलेना।

गुण—यह हर तरह के विषमज्वर में जादू की तरह काम करता है। मंद-मंद ज्वर बना रहना हड़कल आदि को २-३ खुराक में ही निर्मूल कर देता है।

सिद्धसागर चूर्ण—

अजवायन		५ तोला
हर्र		५ तोला
पीपल	जीरा	सैंधा नमक
कालानमक		नवसादर
सत्त नीबू		सोंठ
	—प्रत्येक २॥-२॥ तोला	
काली मिरच		५ तोला
चित्रक छाल		१। तोला
अम्लबेत		१। तोला

—सबका वस्त्रपूत चूर्ण कर शीशी में मजबूत कार्क लगाकर रखलें।

मात्रा—१॥ माशे से ३ माशे तक, गरम जल के साथ समयानुसार दिन में दो-तीन बार।

गुण—किसी भी तरह पेट में गुड़गुड़ाहट अपचन आध्मान तथा उदरशूल को दूर करता है तथ अग्नि को प्रदीप्त कर भूख खुलकर लगाता है। यह मेरी पेटेन्ट पाचक औषधि है। पेट विकार के रोगी को तुरन्त एक मात्रा दे देता हूं, अनपच के कारण अतिसार को भी मट्ठा के साथ देने से शीघ्र लाभ करता है।

खाज खुजली व घाव का मलहम—

पीली वैसलीन	१ पौंड
सिंदूर	५ तोला
गंधक आवलसार	राल
मुर्दाशङ्ख	कबीला
कत्था सफेद —प्रत्येक २॥-२॥ तोला	
कपूर	१ तोला
मंशिल	१ तोला
नीलाथोथा	आध तोला
कालिया तेल कानपुर का	१॥ तोला

निर्माण विधि—पहले लोहे की कढ़ाई में वेसलीन गर्म कर गंधक व राल को पिघला लेवें। बाद शेषौषधि का कपड़छन चूर्ण डालकर मंद आंच में ही लोहे के डंडे से खरल करें। जब रंग कुछ काला सा होने लगे तब उतार कर कपूर और कालिया तेल डालकर घोट दें। कुछ शीतल होने पर टीन के डिब्बे में रखलें। बस मलहम तैयार है।

गुण—किसी भी तरह की खाज खुजली को पहले उसे धोकर, यों ही या कपड़े पर दवा फैलाकर लगावें, अति शीघ्र लाभ होगा। खाज खुजली

तो १-२ दिन में ही भाग जाता है तथा घाव जल्द भर जाता है।

नोट—पाक करते समय धुंए से बचें।

विशूचिकान्तक वटी—

(धन्वन्तरि अङ्क २ भाग २३ पृष्ठ ६८३ में कुछ हेरफेर कर)

लाल मिरच के छिलके	१ तोला
शुद्ध हींग	३ माशा
आम की गुठली	½ तोला
जायफल	½ तोला
जायपत्री	३ माशा
अफीम	१ माशा
शुद्ध हिंगुल	३ माशा

विधि—अफीम को छोड़ कर शेष औषधियों को कपड़छान चूर्ण करलें, बाद में थोड़े जल में अफीम घोलकर सब दवाओं को इस जल से घोटलें पश्चात् पुनः अमृतधारा आधा तोला के साथ खूब घुटाई करें फिर मूंग सम गोली बनालें।

मात्रा—१ से ३ गोली प्याज के रस के साथ रोग की उग्रता के अनुसार दिन में ३-४ बार।

गुण—किसी भी कारण से दस्त या कै हो देते जांय। एक दो खुराक में ही लाभ होते देखा गया है। यदि अधिक दस्त व कै होने से नाड़ी क्षीण होती हो शरीर ठंडा होता जारहा हो तो इसके साथ १ गोली मृतसंजीवनी रस अद्रक स्वरस मिला कर देने से शीघ्र लाभ होता है। इसके सेवन से अति शीघ्र नाड़ी ठीक गति पर आजाती है। शरीर गर्म होकर रोगी को बल प्राप्त होजाता है। यदि आवश्यकता हो तो पुनः दो घंटे के बाद दूसरी खुराक दी जा सकती है। अधिक प्यास लगने पर पीपल छाल जलाकर उससे पानी बुझाकर दिया जाता है।

पथ्य देने के पूर्व १ खुराक सिद्धसागर चूर्ण दे देना चाहिए। खुलकर भूख लगने पर प्रथम अरहर दाल का यूष देना चाहिए। बाद गेहूँ का दलिया या पुराने चावल की पतली खिचड़ी थोड़ी सों जीरा सेंधा नमक के साथ देना चाहिए।

अभी मैं केवल अपने ४ प्रयोग ही भेज रहा हूँ जो सद्यः फलकारक हैं और मेरे पेटेन्ट हैं मैंने इन प्रयोगों को कई बार बनाकर लाभ उठाया है। तथा अन्य प्रकाशित कई प्रयोग तैयार कर लिए हैं। बाद परीक्षण के पुनः सेवा में प्रेषित करूंगा।

—डा० मदनसिंह शिक्षक वै. भू.
प्रधानाध्यापक प्रा० शाला भूलन पो० पानागढ़।

× × ×

अर्श के मस्सों पर—

प्याज	१ तोला
महुआ फूल	१ तोला

—दोनों को कूट कर लुगदी बना गुदा मार्ग पर रख कर लंगोट (पट्टी) बांधे। सात रोज तक इसी प्रकार करे और जिमीकन्द का शाक खाए (कहीं इसे सूरन भी कहते हैं) इसको पहिले टुकड़ा कर इमली के पत्तों में रख उबाल लें, बाद में घृत में अच्छी तरह से कर मसाला मिला लें।

द्वितीय प्रयोग—

वृश्चिका जिसको बिछुआ भी कहते हैं। पेड़ ती[illegible] हाथ ऊँचा, पत्ते बड़े, फल पकने पर काले होते हैं कोई इसे 'बाघ-नख' भी कहते हैं। उन्हें कूट कर तिल्ली के तैल में जलाएं। जलने पर घोंट कर उस कज्जली में फाहा भिगो कर गुदा मार्ग पर रख पट्टी बांधे। फिर गर्म ईंट करके नीम व बकायन के पत्ते रख कर मामूली सेंक करे। सात दिन में पूर्ण आराम होगा।

छाजन पर—

महुआ पानी में सड़ा कर पीस मोटा लेप करें ऊपर असली सिंदूर बुरक कर बांध दें। यह पट्टी तीन दिन बांधें, २५ घण्टे में पट्टी खोले। उसमें कीटाणु सूक्ष्म सूत के माफिक पट्टी के साथ निकलेंगे रोग जड़ से दूर होगा।

सर्पदंश[illegible]
जब[illegible]
हुई मिट्[illegible]
५ तोला[illegible]
तो उसक[illegible]
दीखे ते[illegible]
आंख में[illegible]
व[illegible]
बरसात[illegible]
होते हैं[illegible]
स्थान मे[illegible]
होजाता[illegible]
कर नाक[illegible]
मगज[illegible]
जिंदा ह[illegible]
नोट—[illegible]
कुछ[illegible]
पास स[illegible]
पकने त[illegible]
नेवला[illegible]
छोटा थ[illegible]
था तव[illegible]
बोलते है[illegible]
सर्प से[illegible]
की।

विषमज[illegible]
कलि[illegible]
फिट[illegible]
शोर[illegible]
—[illegible]
के रस में[illegible]
और उस[illegible]

सर्पदंश नाशक—

जब सर्प काटे उसी समय केंचुआ की निकाली हुई मिट्टी पानी में घोल कर २॥ तोला मिट्टी ५ तोला जल में पिलादें। अगर जीव (मनुष्य) मर गया हो तो उसकी आंखों पर रोशनी (लाइट) करे लाइट दीखे तो समझो जिन्दा है। अपनी परछाईं उसकी आंख में दीखे तो जीवित है। यह परीक्षा है।

वाउसिया एक कन्द होता है। आलू के समान बरसात में, उसमें बेल चलती है, पत्ते मेंहदी के जैसे होते हैं। खाने में कुछ खट्टे लगते हैं। झरबेरी के स्थान में ज्यादा होते हैं। फल हवा लगने से कड़वा होजाता है। उसे पीसकर १ छटांक घृत में पतला कर नाक द्वारा (पैर ऊपर किए हुए) पिलादें, दवा मगज में पहुँच जायगी। आध घंटे में मनुष्य जिंदा होजायगा।

नोट—वाउसिया कन्द जो ऊपर लिखा है उसकी बेल कुछ लालिमा लिए होती है और फली पत्तों के पास सर्प की जीभ के समान दो-दो लगती हैं और पकने तक काली हो जाती हैं। यह मैंने सर्प और नेवला की लड़ाई होते समय देखा है कि नेवला छोटा था और सर्प बड़ा था जब सर्प उसे काटता था तब वह झरबेरी के (जिसको हमारे यहां दड़े बोलते हैं) पास जाकर इस कंद को खाकर पुनः सर्प से लड़ता था। इसलिए इसकी मैंने परीक्षा की।

—पं० केशवप्रसाद मिश्रा वैद्य शास्त्री
पो० वकतरा (भोपाल)

× × ×

विषमज्वर (मलेरिया पर)—

कली का बना हुआ चूना सुहागा
फिटकरी सफेद कौड़ी
शोरा कलमी सोमल

—प्रत्येक १-१ छटांक ले बारीक पीस नीबू के रस में गोली बना सुखाकर एक हांड़ी में रक्खे और उसको कपड़मिट्टी कर सखाकर १० सेर उपलों से गजपुट में फूंक दो। स्वांग शीतल हो जाने पर निकाल कर सब दवा के बराबर अतीस और चौथाई नौंसादर मिलालें।

मात्रा—तीन-तीन रत्ती ६ माशा शहद में मिलाकर चाटे। ऊपर से २-३ घूंट गरम पानी पीवें।

आंख के कुकरों पर—

सफेद फिटकरी समुद्रझाग
शीशा नमक, कलमीशोरा
—प्रत्येक १-१ तोला।
नीलाथोथा ३ माशा

—सबको खरल कर आंखों में लगावें।

आंख के फूले की दवा—

सोना मक्खी फिटकरी शोरा कलमी
समुद्रझाग नीले कांच की चूड़ी
—प्रत्येक १-१ तोला।
अफीम ६ माशा

—सबको खरल में पीसें, जब बारीक होजाय तब १ पाव नीम के पत्तों का रस खरल करते-करते इसमें सखादें। जब खूब बारीक होजावे तब आंख में लगावें।

दांतों का श्रेष्ठ मंजन—

नीला थोथा कत्था सफेद १४-१४ माशा
सेंधा नमक ७ माशा
जीरा सफेद ३॥ माशा
धनियां भुना हुआ ७ माशा
सौंठ मिर्च मस्तंगी
कशीस कचरी कबाबचीनी
मौलसिरी —प्रत्येक १॥।-१॥। माशा

नीलेथोथे को आग में खीलकर लेवें, फिर सबको अलग-अलग पीस छान कर एकत्र करलें। इस मंजन से दांतों का दर्द, रक्त का निकलना, हिलना, सूजन यह सब दूर होते हैं। दांतों की जड़ मजबूत हो जाती हैं। मसूड़ों का खराब मांस दूर हो कर दांतों की सब बीमारियां दूर होती हैं।

दाद, खाज, फुन्सी, खुजली नाशक—

चूना	२॥ तोला
गंधक	४ तोला
पानी	१। सेर

—तीनों चीजों को मिलाकर चीनी के बर्तन में आध घन्टे उबालो। फिर ठण्डा होने पर छान करके बोतलों में भरलो। रुई की फुरैरी से लगाओ।

सुजाक की अचूक दवा—

चन्दन का तेल	तारपीन का तेल
शीतलचीनी का तेल	—प्रत्येक १-१ तोला
केवड़े का इत्र	३ माशा
खस का इत्र या गुलाब का इत्र	३ माशा

—सब चीजों की परीक्षा करके असली लेनी चाहिये, सबको एक शीशी में मिलाकर रख देना और सबके बराबर यूकेलिप्टस ओईल मिला देना चाहिये।

मात्रा—५ बूंद तक बताशे में रखकर पानी के साथ प्रातः काल खिलाना चाहिये।

अक्सीर दर्द—

इन्द्रायणमूल चूर्ण	१ माशा
कुचला	१ माशा

पीसकर शहद से २-२ रत्ती की गोलियां बनावें १-१ गोली ताजे पानी के साथ सेवन करने से दर्द मिटता है। पेट दर्द में तो अक्सीर है।

--श्री. वैद्य अर्जुनसिंह शर्मा आयुर्वेदाचार्य,
कुमावास रोड, जेजूसर (नवलगढ़)

× × ×

बिगड़ी हुई चेचक पर—

निम्न प्रयोग से माता (चेचक) के कई बिगड़े हुए रोगी मैंने आरोग्य किए हैं, उत्तम योग है—

अपामार्ग (औंगा) की जड़ ताजी उखाड़ लावे या किसी से खुदवा कर मंगवाले। उसे गंगाजल या शुद्ध ताजी कूप जल के साथ स्वच्छ पत्थर पर चन्दन वत् घिसे। इसे कांच पत्र में रखते जांय। अंगुली से या रुई की फुरहरी से सब चेचकों पर लगावे। बैठी हुई और बिगड़ी हुई चेचक २ घण्टे में बताशे की तरह उठ आवेंगी। रोगी को कुछ ज्वर भी बढ़ जायगा किन्तु कोई हानि नहीं होगी, इसी में से ८-१० बूंद की मात्रा में रोगी को पिलादें। यह क्रिया केवल एक दिन और एक ही बार करें। रोगी कुछ समय में निरोग हो जायगा। इस दवा का किसी से मूल्य नहीं लेना चाहिए। खाने को गुड़ और भुने चने थोड़ी मात्रा में देते रहें। आगरे में भुने चनों की तैयार की हुई लौज मिलती है हम उसे ही रोगी को देते हैं। एक सप्ताह में खुरंट पड़ कर झड़ जाते हैं और रोगी भला चंगा होजाता है। जिस पत्थर पर अपामार्ग की जड़ घिसें वह स्वच्छ हो, नमक, मिर्च का न हो। रोगी के पास अगरबत्ती अवश्य जलावें!

चेचक निरोधक—

जहां पर चेचक का जोर हो तो अपने बच्चों को चेचक निकलने से पूर्व, जब बच्चे को ज्वर हो आया हो, मुंह लाल हो तब अपामार्ग की जड़ और खाने की हल्दी दोनों को सम भाग चन्दन की तरह घिस कर बीसों नाखूनों पर लगावें, एक तिलक माथे पर बीच में तथा एक जिह्वा पर लगावे। भगवान् की कृपा से चेचक नहीं निकलेगी।

—श्री रतनलाल वैद्य विशारद
श्री रतन फार्मेसी, पृथ्वी का नगला (आगरा)

समाचार एवं सूचनाएँ

विहार प्रा. वैद्य सम्मेलन

संयुक्त समिति के प्रस्ताव—

मुजफ्फरपुर, २५ दिसम्बर। बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की स्थायी समिति तथा कार्य कारिणी समिति की संयुक्त बैठक गत २१ दिसम्बर शनिवार को ८ बजे रात्रि में मखदुमपुर (गया) में प्रतिनिधि-वासस्थान एच० ई० स्कूल में सम्मेलन के सभापति श्री वैद्यनाथ मिश्र, शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। सरकार ने १ अप्रेल १९५७ ई० से "मेडीशन एण्ड टायलेट प्रिपरेशंस एक्साइज ड्यूटीज एक्ट १९५७" के नाम से एक कानून प्रचलित कर सम्पूर्ण भारत में आयुर्वेदीय आसव अरिष्टों पर जो प्रतिबन्ध लगाया है, उस पर अत्यन्त क्षोभ प्रकट करते हुए सरकार से अनुरोध किया गया कि वह आसव-अरिष्टों के निर्माण पर लगाए गए प्रतिबन्ध को अविलम्ब हटाले; क्योंकि मद्य के अन्तर्गत आयुर्वेदीय आसव अरिष्ट नहीं आसकते। कच्चे पानी में या किसी द्रव्य के क्वाथ में रोगनाशक औषधियां डाल कर जो औषधि प्रस्तुत की जाती है, उसे ही आसव अरिष्ट कहा जाता है जैसे कुमार्यासव, द्राक्षारिष्ट कुटजारिष्ट आदि। इस विधि से तैयार की गयी औषधि गुण में अधिक प्रभावकारी और टिकाऊ हो जाती है। किसी आसव अरिष्ट में मद्य के समान नशा नहीं होता। ऐसी दशा में इन्हें मद्य की श्रेणी में लाना आयुर्वेद के प्रभाव और प्रचार पर रुकावट डालने जैसा है, यह जनता के साथ घोर अन्याय और वैद्यों के साथ जबर्दस्ती है।

बैठक में निश्चय किया गया कि गत अप्रैल मास में खगड़िया में सम्पन्न बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के २० वें अधिवेशन में पारित प्रस्ताव पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कराकर उसे आगामी बजट अधिवेशन के पूर्व ही विधायकों में वितरण किया जाय और उनके द्वारा इन प्रस्तावों के शीघ्र कार्यान्वयन के लिए सरकार पर जोर डाला जाय।

यह भी निर्णय किया गया कि बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के प्रतिनिधि निर्वाचन के लिए मोतीझील, मुज्जफ्फरपुर कार्यालय से प्रेषित सदस्य सूची को बिहार राजकीय गजट में यथा शीघ्र प्रकाशित कराने के लिए बिहार राज्य आयुर्वेद यूनानी कौंसिल के सभापति जस्टिज श्री बशिष्ठ नारायण राय से अनुरोध किया जाय कि वे प्रतिनिधि निर्वाचन के लिए उचित कार्यवाही करें। बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की वास्तविक परिस्थिति को परिचय कराने के लिए एक प्रतिनिधि मण्डल श्री वैद्यनाथ मिश्र शास्त्री के नेतृत्व में चिकित्सा मंत्री श्री वीरचन्द्र पटेल के पास भेजने का निश्चय किया गया। निश्चय किया गया कि सदस्यों को वैद्य सम्मेलन तथा आयुर्वेद की रीति नीति से परिचित रखने के ध्येय से बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का एक त्रैमासिक मुख पत्र १९५८ से प्रकाशित किया जाय। बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की नवीन नियमावली के लिए श्री जगदीश नारायण शर्मा, प्रधान सचिव के संयोजकत्व में एक उपसमिति का निर्माण किया गया। बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के मोहनियां (शाहाबद) में आगामी मार्च मास में होने वाले २१ वें वार्षिक अधिवेशन के सभापति का निर्वाचन कार्य सम्पन्न करने के लिए एक निर्वाचन समिति का निर्माण किया गया और उसे सभापति का निर्वाचन सम्पन्न करने के लिए पूर्ण अधिकार दिया गया।

—श्री. जगदीशनारायण शर्मा, प्र. मंत्री।

धन्वन्तरि शील्ड की घोषणा

श्री अष्टांग आयुर्वेद महा विद्यालय, इन्दौर के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर नगर सुप्रसिद्ध वैद्यराज पं० लक्ष्मीनारायण जी त्रिवेदी द्वारा, श्री धन्वन्तरि प्रतिमा की एक शील्ड जिसकी

कीमत ५०१ रुपये होगी और जो रनर ट्राफी के रूप में मध्य प्रदेश के समस्त आयुर्वेदिक विद्यालयों की सामूहिक वाद-विवाद प्रतियोगिता में आने वाले सर्व प्रथम विद्यालयों को भेंट की जावेगी, की घोषणा की गई। यह प्रतियोगिता प्रति वर्ष वसंत उत्सव के अवसर पर श्री अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय इन्दौर द्वारा सुव्यवस्थित रूप से आयोजित की जाती रहेगी। उक्त महत्वपूर्ण घोषणा के लिये उपस्थित जनता द्वारा वैद्यराज जी को हार्दिक धन्यवाद दिया गया और आशा व्यक्त की गई कि विशुद्ध आयुर्वेदिक प्रचार प्रसार में इस शील्ड द्वारा विद्यार्थियों में अच्छा उत्साह एवं संलग्नता व्याप्त होगी। यह घोषणा समारोह के अध्यक्ष श्री वित्त मंत्री जी के समक्ष की गई जिस पर उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की।

× × ×

श्री अष्टांग आयुर्वेद महा विद्यालय इन्दौर का,

३८ वां वार्षिकोत्सव,

श्री अष्टांग आयुर्वेद महा विद्यालय इन्दौर का ३८ वां वार्षिक अधिवेशन एवं पूज्य स्वामी द्वारकाप्रसाद जी महराज की पुण्य तिथि, इन्दौर की अपार जनता, प्रसिद्ध डाक्टर, वैद्यों एवम् नेतागण की उपस्थिति में मा. वित्त मंत्री श्री मिश्रीलाल जी गंगवाल की अध्यक्षता में बड़े समारोहपूर्वक मनाई गई।

इन्दौर बैंक के मैनेजर श्री एन. डी. जोशी द्वारा स्वागत भाषण के पश्चात् पंडित श्री लक्ष्मीदत्त जी शास्त्री द्वारा संस्था की अभी तक की प्रगति एवं भावी रूपरेखा पर विस्तृत प्रकाश डाला गया एवम् जनता से विशुद्ध आयुर्वेद की उन्नति में संस्था को पूर्ण सहयोग देने की अपील की गई। अन्त में मा. वित्तमंत्री महोदय ने विशुद्ध आयुर्वेद की ओर पूर्ण रूप से अग्रसर होने और चमत्कारिक ढंग से चिकित्सा करके जनता के समक्ष होने के लिए सारगर्भित भाषण के साथ वैद्यों को प्रोत्साहित किया।

आश्रम के प्रांगण में "सर्पगन्धा" नामक दिव्य बनौषधि के पौधे को श्रीमान् वित्त मंत्री महोदय के कर कमलों द्वारा लगाया गया। हिमालय निवासी स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी महाराज के कर कमलों द्वारा "बंगाल अशोक" वृक्ष का आरोपण हुआ। उक्त संस्था एक वृहत् बनौषधि वाटिका का निर्माण कर रही है जो इस दिशा में मध्य प्रदेश के लिये एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करेगी।

अन्त में संस्था के अध्यक्ष वयोवृद्ध वैद्यराज पं. ख्यालीराम जी द्विवेदी ने वित्त मंत्री महोदय एवम् उपस्थित जनता का आभार प्रदर्शन किया और वार्षिक अधिवेशन की समाप्ति हुई।

—संयोजक।

× × ×

भिषगरत्न डा० श्री लक्ष्मीपति

प्रिन्सिपल आयुर्वेद कालेज त्रिवेन्द्रम् का स्वागत

स्थानीय सद्वैद्य सभा द्वारा दिनांक २६।१२।५७ को सायंकाल ७ बजे श्री स्वामी लक्ष्मीराम चिकित्सालय भवन में डा० श्री ए० लक्ष्मीपति का स्वागत किया गया, जिसमें नगर के वैद्य एवं प्रतिष्ठित नागरिकों ने भाग लिया। डा० श्री ए० लक्ष्मी पति का परिचय देते हुए श्री रामप्रकाश स्वामी, रजिस्टार, राजस्थान इण्डियन मैडीसिन्स बोर्ड, जयपुर ने बताया कि डा० साहब एलोपैथी के बहुत पुराने स्नातक हैं, किन्तु आयुर्वेद के सिद्धान्तों ने आपको आयुर्वेद के अध्ययन एवं चिकित्सा के प्रति आकृष्ट किया, और आज करीब ४० वर्ष से आयुर्वेद की सेवा करते आ रहे हैं। दो वार आप निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद कांग्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके हैं। आप आयुर्वेद के उत्थान के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। आजकल आप कैंसर की आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा कर उसके लिये अन्वेषण करने में लगे हुए हैं। आपका स्वागत करते हुए स्थानीय वैद्य समाज अपने को गौरवान्वित मानता है।

स्वागत का उत्तर देते हुए डा० लक्ष्मीपति ने अपने भाषण में वर्तमान आयुर्वेद की समस्याओं का दिग्दर्शन कराया, और कहा कि यह समय आयुर्वेद का परीक्षण काल है, इस परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक वैद्य को सचेष्ट होना चाहिए, और दूसरी पद्धति के चिकित्सकों के मुकाबिले में अपने को कभी हीन नहीं समझना चाहिए।

आयुर्वेदिक और एलोपैथिक सिद्धान्तों की तुलना करते हुए आपने बताया कि मेरा अनुभव है कि आयुर्वेद के सिद्धान्त इतने व्यापक और सुविचारित हैं कि उनकी सत्यता कभी मिटाई नहीं जा सकती। अन्त में मंत्री श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा ने सबका आभार मानते हुए धन्यवाद दिया और विशेषतः डा० साहब को जिन्होंने कृपा कर समय प्रदान किया।

× × ×

राजस्थान सरकार द्वारा आयुर्वेदिक औषधालय को प्रोत्साहन

पाली नगर के एलोपैथिक होस्पिटल के बाहर चले जाने से चिकित्सा की भारी कमी होजाने के कारण राजस्थान सरकार ने आयुर्वेद की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये पुराने एलोपैथिक भवन को आयुर्वेदिक औषधालय के लिए प्रदान किया। इसका उद्घाटन पाली जिलाधीश श्रीमान पुरुषोत्तम लाल जी सुखवाल के कर कमलों द्वारा दिनांक ११-१२-५७ को सम्पन्न हुआ।

—श्री रणछोरदास वैद्य।

× × ×

सर्वोदय सम्मेलन में देशी चिकित्सा की मांग—

हमारे निकट आदर्श-ग्राम वैराफीरोजपुर में ता० ६-७-८ दिसम्बर सन् ५७ ई० को सर्वोदय सम्मेलन सम्पन्न हुआ, जिसमें श्री सिद्धराज ढड्ढा मन्त्री विनोवासंघ, डा० सुशीला नायर, श्रीमती मदालसादेवी, श्री सलकानी जी M. P. श्री कपिल भाई, श्री रामसरन जी M. P. श्री. बनारसी दास चतुर्वेदी आदि महान नेता पधारे, तथा लगभग २० हजार जनता प्रतिदिन सम्मिलित थी। उसके साथ ही आयुर्वेद वाचस्पति श्री पं० त्रिलोकीनाथ शास्त्री M. Sc. A. के नेतृत्व में वैद्य गणों का विशाल समूह एकत्रित हुआ तथा जनता को भारतीय चिकित्सा पद्धति राष्टीय चिकित्सा पद्धति बनने योग्य क्यों है इसका युक्ति-युक्त सम्पादन कर जनता को इतना मुग्ध बना दिया कि जनता वहां से उठकर जलूस बनाकर घूमी और "जय आयुर्वेद" "आयुर्वेद जिन्दावाद" "कृषकों की ये मांग है आज, रोटी कपड़ा देशी इलाज" के गगनभेदी नारों से सम्मेलन गूंज उठा। इसके बाद श्री त्रिलोकी नाथ शास्त्री ने वैद्य समाज तथा जनता पर किये गये आघात मद्य-कर कानून इत्यादि की बावत पूर्णतया समझाया तथा पार्लियामेंट सदस्यों से निवेदन किया कि वे जनता की आवाज सुनें और ऐसे कानून का विरोध करें और इसे हटवायें तथा आयुर्वेद को राष्टीय चिकित्सा पद्धति घोषित कराने के पक्ष का प्रबल समर्थन करें। श्री सिंहराज जी शास्त्री स्याना (बुलन्दशहर)

× × ×

गया जिला वैद्य सम्मेलन—

विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के साथ-साथ गया जिला वैद्य सम्मेलन भी मखदुमपुर जिला गया में बड़ी धूम-धाम के साथ सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन का विस्तृत विवरण हमको प्राप्त हुआ है किन्तु स्थानाभाव के कारण हम संक्षिप्त में ही प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है कि पाठक एवं समाचार प्रेषक हमारी इस विवशता के लिए क्षमा करेंगे।

—सम्पादक।

२१।१२।५७—प्रातः २ बजे प्रभात-कीर्तन। जीप गाड़ी में भैरव राग में "धन्वन्तरि जय जय-बोल" गाते हुए ५ मील घूमा। जनता की अपार भीड़ स्थान-स्थान पर स्वागत करते हुए मिली। ८ बजे श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल आयु०

पंचानन द्वारा झण्डोत्तोलन कार्य सम्पन्न हुआ। श्री बी. एम. दास आयुर्वेद कालेज की ओर से प्रदर्शनी का प्रबन्ध किया गया जिसमें प्रचार मन्त्री श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने धन्वन्तरि के लगभग २५ विशेषांक, सुधानिधि, अन्य अनेक पुस्तकों एवं औषधियों से सहायता की। हजारों हरी-सूखी बनस्पतियां सुव्यवस्थित रूप में रखी गई। इस प्रदर्शनी का उद्घाटन २ बजे श्री शुक्ल जी द्वारा किया गया। रात्रि में गया जिला वैद्य सम्मेलन की कार्यकारिणी की बैठक हुई। आगामी वर्ष के लिए श्री. धीरेन्द्रमोहन मिश्र (डल्लू जी) सभापति सर्व सम्मति से निर्वाचित हुए एवं श्री हरिश्चन्द्र जी मिश्र प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुए।

प्रान्तीय एवं जिला सम्मेलन के लिए विस्तृत पंडाल की रचना की गई थी जिसके विविध द्वार बिहार की आयुर्वेद विभूतियों के नाम पर निर्मित किए गए थे। प्रान्त से तथा प्रान्त के बाहर से अनेक आयुर्वेद महारथियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया जिनकी विस्तृत नामावलि स्थानाभाव के कारण नहीं दी जा सकी।

× × ×

संक्षिप्त समाचार—

दिनाङ्क १६-११-५७ को पुनर्वसु आयुर्वेद महाविद्यालय बम्बई के अध्यापकों एवं छात्रों ने श्री महर्षि पुनर्वसु आत्रेय जयन्ति समारोह माण्डवा (राजस्थान) निवासी वैद्यराज किशोरीदत्त जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य काव्यतीर्थ के सभापतित्व में मनाया।

—श्री वैद्य डाक्टर धाराप्रसाद अमोलक चन्द मिश्रा एल. एम. पी. एण्ड एस. आयुर्वेद विशारद के राजस्थान सरकार के स्वास्थ्य विभाग में नियुक्त होने के उपलक्ष में एक अभिनन्दन समारोह श्री. रामसहाय जी पाण्डेय मंत्री बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षता में ता० २६।६।५७ को मनाया गया जिसमें डा० मिश्रा जी को बम्बई की विभिन्न आयुर्वेदिक संस्थाओं की ओर से मानपत्र एवं पुष्पाहार भेंट किया गया।

—मालवा आयुर्वेद मण्डल की विशेष बैठक श्री स्वामी सुन्दरदास जी M. Sc. A. की अध्यक्षता में हुई तथा उसमें—

१ आसवारिष्टों को मद्य मानकर उनके निर्माण और बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाने के विरुद्ध,

२ वैद्यों को औषधि निर्माण हेतु अहिफेन का लाइसेन्स देने के हेतु,

३ सरकारी औषधिलायों के चिकित्सकों के वेतन वृद्धि हेतु।

४ स्कूलों के बच्चों के स्वास्थ्य परीक्षण के लिए वैद्यों को दी गई सुविधा वापिस लेने के विरुद्ध प्रस्ताव पास किए गए।

—फतहपुर जिला वैद्य सम्मेलन का वार्षिकोत्सव ता १०।१०।५७ को श्री पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल आयुर्वेद पंचानन आयुर्वेद बृहस्पति के सभापतित्व में धूम-धाम से मनाया गया।

—श्री सुरेन्द्रबहादुर शास्त्री मंत्री बृहत्तर ग्वालियर नगर वैद्य समाज, लश्कर ने सचित्र आयुर्वेद के अक्टूबर १९५७ के अंक में प्रकाशित समाचार "कि फ्लू के प्रसार के समय ग्वालियर के एक वैद्य द्वारा मनों की तादाद में औषधियों की मांग की गई" का प्रतिवाद किया है और इसे असत्य बतलाया है।

—ता० २०।१०।५७ रविवार को भिष्टूर ग्राम में आर्वी के एस. डी. ओ. श्री टी. वी वानखंडे की अध्यक्षता में आर्वी वैद्य मण्डल की ओर से जन स्वास्थ्य समारोह मनाया गया।

—कविराज नित्यानन्द जी शर्मा वैद्यवाचस्पति D.S.c.A. ने राजस्थान इण्डियन मैडीसन बोर्ड के चुनाव को अनियमित बताते हुए बोर्ड के कार्य में की गई धांधली और भ्रष्टाचार की ओर अपने लम्बे वक्तव्य के द्वारा सरकार का ध्यान आकर्षित किया है और उसकी निष्पक्ष जांच करने की मांग की है।

शारीरिक-चित्र

ये चित्र अनेक रंगों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये गये हैं। इन सभी चित्रों का साइज एक समान २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढ़े हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी अवयवों का विवरण हिन्दी में लिखा गया है।

नं० १-अस्थि-पञ्जर—

इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढंग से दर्शाया गया है। हाथ की अंगुलियों की, पैर की, रीढ़ की, छाती की सभी अस्थियां स्पष्ट समझ में आ सकती हैं। मूल्य ५)

नं० २ रक्त परिभ्रमण—

इस चित्र में शुद्ध-अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिराएं अपने प्राकृतिक रंगों में दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्त-भ्रमण का पृथक् चित्र है। हृदय एवं संबन्धित शिरा-धमनी का पृथक् चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर में सम्पूर्ण धमनी तथा दूसरे हाथ और दूसरे पैर में शिराऐं दर्शाई हैं। मूल्य ५)

नं० ३-वातनाड़ी संस्थान—

इस चित्र में सम्पूर्ण वात-नाड़ी मण्डल (Nervous System) का सुन्दर व स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वग-वात नाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क का सम्बन्ध का चित्रण पृथक् किया गया है। चित्र अपने ढङ्ग का निराला है। मू. ५)

नं० ४ नेत्र रचना एवं दृष्टि-विकृति—

इस चित्र में पृथक्-पृथक् ६ चित्र हैं। १-दक्षिण चक्षु-इसमें चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाए हैं। २-पटलों और कोष्ठ को दिखाने के लिए चक्षु का क्षितिजकाट। ३—चक्षु से सम्बन्धित नाड़ी। ४—दृष्टि-भेद (दर्शन सामर्थ्य)। ६—साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ में आएगा। मूल्य ५)

चारों चित्र एक साथ मंगाने पर मूल्य केवल १६)

पता-धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि

माता (चेचक) अंक

भाग ३२ अंक ६

धन्वन्तरि

जून १९५८ (माता-अंक) भाग ३२ अङ्क ६

सम्पादक—
वैद्योपाध्याय देवीशरण गर्ग
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc.

वार्षिक मूल्य ५.५० इस अङ्क का ७५ नया पैसा

—इस अङ्क में—

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़
प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़

आगामी अङ्क के

विशेष लेख

आदि आदि

अत्युपयोगी लेखों के अतिरि[illegible] प्रयोग-समाचार आदि पढ़िये

भाग ३[illegible]
अङ्क ६

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० अ० १-४०

भाग ३२	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़	जून
अङ्क ६	का मुख पत्र	१६५८

माता-अंक

समाचार पत्रों से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों में शीतला (माता) का प्रकोप भीषण रूप से होरहा है। इस महामारी से अनेक बच्चों का जीवन अकाल में ही समाप्त हो जाता है तथा संकट से पार पाजाने वाले बच्चों के शरीर पर यह व्याधि अपना भयानक रूप सदैव के लिये छोड़ जाती है तथा उनके रूप को विकृत कर देती है। इस रोग के निवारण के प्रयत्न में 'धन्वन्तरि' भी कुछ सहयोग देसके एतदर्थ हमने अनुभवी चिकित्सकों से इस महामारी पर अपने अनुभव लिख भेजने की प्रार्थना की था। फलस्वरूप कई उत्तम लेख प्राप्त हुए हैं जिनको इस अंक में प्रकाशित किया जारहा है। आचार्य परमानन्दन जी शास्त्री ने अपने "भारत में शीतला रोग की समस्या" शीर्षक निबंध में इस विषय के सभी पहलुओं पर सुन्दर सप्रमाण संक्षिप्त विवेचन किया है तथा इससे अधिक हमारे लिये लिखना शक्य नहीं है और न आवश्यक ही।

चिकित्सकों से निवेदन है कि वे इस अंक का अध्ययन करें तथा अपने निकटवर्ति जनता में इस रोग के विषय में आयुर्वेदीय दृष्टि को रखते हुए जनता को इस भीषण महामारी से बचाने का सुप्रयास करें। अनुभवी चिकित्सकों से भी निवेदन है कि वे अपने सफल अनुभव (विस्तृत लेख नहीं) धन्वन्तरि द्वारा रखने की अवश्य कृपा करते रहें। आपके अनुभवों से आपके सहयोगी लाभ उठावेंगे तथा पीड़ित जनता को इस रोग के कष्ट से बचाते हुए आयुर्वेद प्रचार में सहायक होंगे।

वैद्य देवीशरण गर्ग।

भारत में शीतला रोग की समस्या

लेखक—आचार्य परमानन्द शास्त्री ।

भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों, विशेषतः विहार राज्य के विभिन्न अंचलों से जो समाचार प्राप्त हो रहे हैं और विभिन्न राज्य सरकारों की जो स्वास्थ्य विज्ञप्तियां प्रकाशित हो रही हैं उनसे पता चलता है कि इस वर्ष सारे भारत में किसी न किसी रूप में शीतला का रोग महामारी बन कर फैलने वाला है।

बसन्तकाल आने से पहिले ही देश में, विशेषतया विहार राज्य में इस रोग की जैसी प्रगति देखी गयी है, उससे भी यह आशंका दृढ़ होती जाती है कि बसन्त काल में और उसके बाद ग्रीष्म काल में भी छिटपुट, इस मौसमी रोग का प्रकोप अत्यधिक बढ़ सकता है।

एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली के ज्ञाता लोग पहिले से ही सतर्क होते देखे गए हैं, यह शुभ लक्षण अवश्य माना जायगा। किन्तु उन लोगों ने इसके प्रतिकारार्थ जो कदम उठाए हैं, वे वैज्ञानिकता के साथ ही मानव जीवन की यथार्थ सुरक्षा के अनुकूल नहीं हो सकेंगे। अखिल भारतीय मेडिकल एशोशियेसन की विहार शाखा की एक बैठक गत १५ फरवरी ५८ को पटने में हुई थी जिसमें यह कहा गया कि चेचक से बचाव की एक मात्र तथा सर्वाधिक निश्चित (?) तथा विश्वसनीय विधि टीका है और पटने में विहार राज्य सरकार के स्वास्थ्य विभाग की जीप गाड़ियां लोगों को टीके लेने के लिए अनुरोध करती हुई नगर में चक्करें काटती हुई भी देखी गयी हैं।

किन्तु यदि सत्य कहना कोई दोष नहीं माना जाता हो तो यह मुक्त कंठ कहा जायगा कि हमारे स्वास्थ्य अधिकारी एलोपैथी के प्रति कूट भक्ति से प्रेरित होकर ही स्मौल पौक्स वैक्सिनेशन तथा काउपौक्स इनोक्यूलेशन का व्यापक प्रचार कर रहे हैं और सरकार के इस अराष्ट्रीय कार्य में भारतीय एलोपैथ चिकित्सक स्वरूप हानि के भय से इस प्रकार के अराष्ट्रिय चिकित्सा प्रकार का समर्थन करते हैं।

शीतला रोग में चीन जैसे देश में भी ईसा से भी पूर्वकाल में टीके का प्रचार था। जिसे ऐतिहासिक अध्ययनशील व्यक्ति जानते हैं। फिर इस टीका पद्धति का क्यों कर परित्याग हुआ, यह भी इस सम्बन्ध में विचारणीय अवश्य है।

भारतीयों के विश्वास का समर्थन—

इस रोग के सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत के अधिकांश नर नारी इस रोग को स्वभावतः सांघातिक नहीं मानते। यही कारण है कि इस रोग में चिकित्सा के प्रति विशेष जागरूकता नहीं बरती जाती प्रत्युत स्वच्छता और पवित्रता पर ही विशेष ध्यान दिया जाता आया है। यह भारतीय जनता की स्वास्थ्य विषयक दूरदर्शिता पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा भी परिपुष्ट की जा चुकी है और इसके सम्बन्ध में टीका के प्रथम आविष्कर्त्ता डाक्टर जेन्नर की यह स्वीकारोक्ति है ही, कि शीतला रोग इतना मृदुरोग है कि इससे मृत्यु सुनी नहीं जाती।

डाक्टर साइडनहम ने तो यहां तक कह दिया कि डाक्टर या परिचारिका द्वारा गलती नहीं की जाय तो यह सभी रोगों से अधिक आसान रोग है।

फिर भी एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली के कूट भक्त सरकारी स्वास्थ्य अधिकारी तथा एलोपैथिक चिकित्सक जगत की अदूरदर्शिता से इस रोग से बचाव के नाम पर जितने अधिक राष्ट्रीय धन और राष्ट्रीय स्वास्थ्य का अपव्यय किया जारहा है वह अपने

को सुसभ्य तथा सुसंस्कृत कहलाने वाली किसी भी सरकार के लिये लज्जा का विषय होना चाहिये।

टीके से मृत्यु में वृद्धि—

बृटिश मेडिकल जर्नल लान्सेट के १९५१ के एक अंक में डाक्टर सी० के० मुलार्ड ने यहां तक लिखा है कि चेचक के टीके में चेचक फैलाने की निश्चित प्रवृत्ति रहती है और यह और भी मुख्य बात है कि वह चेचक बहुधा उग्र रूप का हुआ करता है।

राज्यों के स्वास्थ्य प्रतिवेदनों से भी यह स्पष्ट होजाता है कि सामूहिक रूप से टीका लगाये जाने पर भी दिनोंदिन इस रोग से होने वाली मृत्यु संख्या में वृद्धि ही होती गयी है। बम्बई राज्य के स्वास्थ्य प्रतिवेदन (१९५१ के पृ० ५१) में लिखा है कि १९५० में १९४९४१६ व्यक्तियों को प्राथमिक टीके तथा २००६१२२ व्यक्तियों को दुबारा टीके लगाये जाने पर भी उस वर्ष चेचक का भयानक प्रसार हुआ था।

इसी प्रकार, १९४५ में कलकत्ते में मृत्यु संख्या सप्ताह में ५ सौ से भी अधिक बढ़ गई थी, यह लन्दन की पत्रिका 'टाइम्स' में लिखा मिलता है।

आधुनिककाल में भी इस रोग में टीके से होने वाले लाभालाभ के आंकड़ों और विभिन्न विद्वानों द्वारा समय पर व्यक्त किये गये मतमतान्तरों से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत जैसे सभ्य एवं सत्य और अहिंसा के पुजारी राष्ट्र में ऐसी अराष्ट्रिय प्रणाली का प्रयोग होना ही नहीं चाहिए।

'वैक्सिनेशन इन्क्वायरर' नामक पत्रिका में बहुत उदाहरणों से इस टीके के हानि लाभ बताये गये हैं, उन्हें वहीं से देखना अच्छा है। परन्तु, यह सिद्धान्त सा निकलता है कि चेचक से साधारण लोगों की अपेक्षा टीका लेने वालों की मृत्यु अधिक होती है।

उदाहरण स्वरूप, १९५२ ई० तक २१ वर्षों में इङ्गलैंड तथा वेल्स में ५ वर्ष से कम के दो ही बच्चे चेचक से मरे थे; किन्तु ९९ बच्चे टीका व्यापत्ति के दुष्प्रभाव से मरे। १९३८ से १९४२ तक २० रोगी टीका व्यापत्ति से मरे थे। रोग से एक भी व्यक्ति नहीं मरा था।

यही नहीं, टीका लेने के बाद व्यापत्ति के दुष्परिणामस्वरूप बाल पक्षाघात, एनसेफालिटिस, कामला, धनुष्टंकार, फिरंग आदि रोग होते देखे गये हैं और कैंसर तथा बहुमूत्र तथा अनिद्रा रोग भी इस टीके की व्यापत्ति से होते हैं।

स्वर्गीय डाक्टर ए. आर. वेलेस, ओ. एम. एफ. आर. एस. का कहना है कि सभी रोगों के लिए स्वास्थ्य की अवस्था ही एक मात्र बचाव के लिए आवश्यक है और किसी भी स्वस्थ शरीर में रोग से बनायी वस्तु को रक्त में प्रविष्ट कराना, रोग से भी बड़े संकट को उत्पन्न करना है।

टीका रोगनिवारक नहीं—

टीका और रोग सम्बन्धी आंकड़ों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट पता चलता है कि चेचक का टीका ही एकमात्र रोगनिवारक नहीं है। इङ्गलैंड में १९३१-४० में केवल ३६ प्रतिशत ही बालकों के टीका लगाये गये। फिर भी, इन देशों में चेचक का प्रकोप शान्त सा रहा। अमेरिका में पंचमांश जनता को ही टीका लगाया गया। किन्तु, वहां भी रोग का प्रसार नहीं और मैक्सिको, इटली, फिलिपाइन आदि देशों में सामूहिक टीका लगाने पर भी इस रोग से पर्याप्त संख्या में लोग मरते देखे गये हैं। फिर, भला! किस औचित्य पर इस टीके की उपयोगिता मानी जाय?

टीका कानून की अनावश्यकता—

यह भी इस सम्बन्ध में विचारणीय है कि भारत सरकार द्वारा अनिवार्य टीका कानून आज भी चालू है। इङ्गलैंड में १९४९ में ही राष्ट्रिय भैषज्य सेवा कानून द्वारा इङ्गलिश टीका कानून में संशोधन कर दिया जा चुका है और यह टीका एच्छिक बना दिया गया है।

प्रमुख ब्रिटिश मेडिकल जर्नल–लान्सेट के संपादक को भी यह अंगीकार करना पड़ा है कि टीकों की भी अपनी सीमाएं होती हैं। उन्होंने साहसपूर्वक मिस्र में मित्र सेनाओं को चेचक से बचाने और सांघातिक रक्तस्रावी चेचक का रोकने के कार्य में टीके की पूर्णतः असफलता के रेकर्ड प्रकाशित किये हैं।

विभिन्न आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि आज चेचक से जितना भय नहीं, उससे अधिक मारात्मक रोग भय चेचक के टीके से है। इङ्गलैंड तथा वेलस में १९३६ के दिसम्बर तक पिछले ३३ वर्षों में चेचक से कुल ११८ बच्चे मरे थे, किन्तु टीके से मरे २६१ बच्चे! १९५२ में १२ व्यक्ति टीके से मरे थे, चेचक से कोई भी नहीं मरा था!! स्कॉटलैंड में चेचक से मरे ८ तो टीके से १०, और अन्य १५ व्यक्तियों को टीकोत्तर एनसेफालिटिस तथा स्लीपिंगसिकनेस के रोग हुए थे!!!

इस सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि टीके को सुधारने के अब भी प्रयास हो ही रहे हैं। क्या इसका यह अर्थ नहीं कि ये लोग रूपान्तर से टीके के खतरों का अनुभव कर ही रहे हैं? इस पर भी तुर्रा यह कि सरकार आंख मूंदकर टीकों पर ही जोर देती जा रही है।

विश्व स्वास्थ्य-संघ की अविवेकिता

यदि स्पष्टवादिता दोष नहीं, तो मुझे यह कहने को बाध्य होना पड़ता है कि विश्व स्वास्थ्य संघ नामक संघटन विश्व स्वास्थ्य की सबसे बड़ी बाधा है। जिसमें वैक्सिन तथा सीरम के निर्माता लोगों के प्रतिनिधि तथा टीका पन्थी सरकारी स्वास्थ्य अधिकारी भरे पड़े हुये हैं। इनसे किसी निष्पक्ष निष्कर्ष के निकलने की संभावना करना बालू से तेल निकालने की आशा करना है।

टीके से अगणित हानियां

ब्रिटिश मेडिकल जर्नल (१९ अगस्त १९१९) में अलेक्जैंडर प्रैन्सिस, एम. बी. सी. एम. ने स्पष्ट लिखा है कि शरीर प्रणाली में थोड़ी ही वस्तुएं ऐसी हैं जो टीके की अपेक्षा अधिक क्षतियां कर सकती हैं। किसी खास उदाहरण में टीका भले ही लाभ करे, किन्तु वह भी शरीर प्रणाली को क्षति पहुंचा कर ही लाभ दिखाता है। और टीके का बराबर व्यवहार अगणित हानियां पहुंचाता है।

१८८० से प्रारंभ कर १९५७ तक पिछले ७७ वर्षों के लाभा-लाभ के आंकड़ों के देखने से भी यह स्पष्ट होजाता है कि चेचक के टीके भारत जैसे उष्ण कटिबन्धीय देश के लिए हानिप्रद ही हैं। और यह एलोपैथी की कृपा है कि टीके के निर्माण में लाखों लाख रुपयों की बरबादी के साथ-साथ लाखों-लाख व्यक्तियों के जीवन और स्वास्थ्य की भी बरबादी की जा रही है।

यह भी जानना आवश्यक ही है कि मनुष्य के लिए अनावश्यक पशुओं पर विशेष अत्याचार करना अनुचित है। और चेचक के टीकों के निर्माण में गाय के प्रति नृशंषता का व्यवहार भारतीय परम्पराओं के सर्वथा प्रतिकूल है। और यदि भेड़ को ही गाय के स्थान पर उपयोग में लाया जाता हो तो भी सर्वथा अनुचित ही कहा जायगा।

पशुओं पर परीक्षण की व्यर्थता

डाक्टर जौर्ज विलसन, एम. डी. एल. एल. डी. का कहना है कि मैं यह मानने को तैयार हूं कि पशु जीवन पर अत्याचार तथा उनकी हत्या से जिस पर कीटाणुवादी अनुसन्धान आधारित है और बिना जिसके परीक्षण असंभव है, एक भी मानव जीवन की रक्षा हुई हो या मानव कष्ट को कम किया जा सका हो, यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता है।

और राष्ट्रीय मेडिकल समाज के कार्यपाल सचिव डाक्टर इन्सफ्भिरमन का स्पष्ट कहना है कि पशुओं पर परीक्षण कर मानव के लिए औषधि निकालने का कोई मूल्य ही नहीं है। वह सर्वथा व्यर्थ है। क्योंकि, पशु शरीर रसायन से मान

शरीर रसायन अत्यन्त विभिन्न हुआ करता है।

उदाहरणार्थ, एक कुत्ते का मेटाबोलिज्म मनुष्य के मेटाबोलिज्म से उच्चतर होता है। इस लिए पशु और मानव के शारीरिक तत्वों के महान् पार्थक्य के कारण पशुओं पर परीक्षण कर मानव के लिए औषधि निकालना व्यर्थ है।

अन्तराष्ट्रीय कैन्सर अनुसन्धान समाज के उपाध्यक्ष डाक्टर रौबर्टबेल का स्पष्ट कहना है कि मुझे विश्वास हो गया है कि पशुओं पर किये जाने वाले परीक्षण प्रगति के मार्ग में बाधक हो चुके हैं।

लन्दन विश्वविद्यालय के भैषज्याध्यापक डाक्टर क्लिफर्ड विलसन एम. ए. डी. एम. (औक्सन), एफ. आर. सी. पी., ने लान्सेट (१६५३) में लिखा है कि कठिनाइयां क्यों कर आयीं और गलतियां क्यों कर की जासकी हैं, जिनसे हमारे सामने की समस्यायें स्पष्ट होने के बदले धुंधली बन गई हैं, इसके कई कारण हैं। वे ये हैं (१) परीक्षणों के परिणामों को जल्द बाजी में बिना सोचे बिचारे मानवों रोगों की समस्याओं पर प्रयोग कर दिया जाता है। (२) मानव रोग संबन्धी सुस्थापित तथ्यों को परीक्षण वादियों द्वारा उपेक्षित कर दिया जा चुका है।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होजाता है कि चेचक में टीका लगाये जाने से कोई भी यथार्थ लाभ नहीं होने को और उसके व्यवहार से अनर्थक असंख्य पशुओं के प्रति नृशंस व्यवहार की परम्परा का अकारण कारण बनना पड़ता है। इससे तो अच्छा है कि जिस खर्च से टीके का निर्माण और प्रयोग किया करते हैं उसी खर्चे से यदि सफाई और स्वच्छता की व्यवस्था हो तो चेचक ही क्या अन्य कई एक तथाकथित संक्रामक रोगों से भी बचा जा सकता है।

और ग्लासगो के एक प्रतिष्ठित डाक्टर के कंठ में कंठ मिला कर मैं भी यही कहूँगा कि सारी समस्या पर विचार करते हुये मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सरकारी हैसियत से चिकित्सा विभाग को हिस्टीरिया का दौरा हो गया है और जनता में आतंक छाया हुआ है।

शीतला और आयुर्वेद—

शीतला रोग ऐसा कोई रोग नहीं जिसका सफल निवारण आयुर्वेद विज्ञान में नहीं हो। प्रत्युत, एलोपैथिक विज्ञान ही ऐसा एक मात्र विज्ञान है जिसमें न तो इसका सफल निवारण ही कोई आज तक आविष्कृत हो सका है और न इससे बचने का ही कोई निश्चित् उपाय उन्हें ज्ञात हो सका है।

ईसा से भी शताब्दियों पूर्व चीन के चिकित्सकों ने ही टीके का आविष्कार कर लिया था। किन्तु इस आसुरी चिकित्सा से अधिक हानि देखकर ही शायद उस देश के विवेचक चिकित्सकों ने उक्त पद्धति का परित्याग कर दिया था।

भारतीय चिकित्सा विज्ञान के पण्डितों को यह बात स्पष्ट मालूम होगी ही कि यह संक्रामक रोग क्रूरग्रह मंगल की दुष्टि दृष्ट पड़ने पर ही व्यापक रूप से फैलता है जिसके लिए सूर्य पर भी कम उत्तरदायत्व नहीं है।

ज्योतिष के विद्यार्थी यह जानते हैं कि मसूरिका शीतला इत्यादि रक्त सम्बन्धी रोग मंगल ग्रह के साथ सम्बन्ध रखते हैं। मङ्गल का सायन (ट्रापिकल) वर्ष १.८८ वर्ष का होता है। यह उसके मध्यम भूमिनीच (मीन एवरेज पेरिजी) का कालान्तर है। जब कभी मङ्गल भूमि के निकटतम आजाता है तो मङ्गल जन्य जन मारियां प्रगट होती हैं और उन्हें प्रकट होना भी चाहिए ही।

फिलोसोफिकल ट्रान्सक्सन्स आफ रायल सोसायटी (२०८) में मसूरिका की पुनरावृत्ति के विषय में डाक्टर जौन बानवी के पत्र से निम्नलिखित उद्धरण देना ही पर्याप्त होगा। कि "जिन निष्कर्षों का आधार इस अनुसन्धान द्वारा प्राप्त परिणाम हैं वे हमारे ज्ञान की बर्तमान अवस्था में पूर्ण रूप से सूत्र वद्ध नहीं किए जासकते। तथापि इतनी बात तो सिद्ध ही प्रतीत होती है कि मसूरिका में बड़े

प्रकोप के साथ बार-बार नियत कालान्तर के पश्चात् आक्रमण करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। मसूरिका के कीटाणुओं की पूरी जीवनचर्या कोई असाधारण नहीं और यह स्वमेव बड़ा ध्वनिपूर्ण संयोग है।

प्रोफेसर विजेवस्की इस परिणाम तक पहुँच गये हैं कि सूक्ष्म जीवों की प्रचण्डता उसी अनुपात से बढ़ती है जिससे वातावरण की विद्युत का खिंचाव बढ़ा करता है।

बराह मिहिराचार्य ने अपनी बृहत्संहिता में जनमारियों एवं महामारियों के ज्योतिषीय कारणों की विस्तृत चर्चा की है। इसका भी यही स्पष्ट अर्थ निकलता है कि कुछ विशेष आकाशीय घटनाओं तथा रोगों के विभिन्न प्रकारों में अवश्य ही पारस्परिक अनुसारिता है।

आचार्य चरक ने भी जनपदोद्ध्वंसनीय अध्याय में देवी का कोप ही कारण माना है। इस सम्बन्ध में किसी दूसरे निबन्ध में वितृत विचार किया जायगा।

आयुर्वेद के अनुसार शीतला का निदान

आयुर्वेद हमें सिखलाता है कि शीतला के दो भेद हैं। एक छोटी शीतला जिसे मसूरिका कहते हैं और प्रचलित भाषा में उसे ही खेसड़ा की बीमारी कहा करते हैं। और दूसरा भेद है बड़ी शीतला जिसे चेचक कहते हैं।

इन दोनों ही शीतला प्रकारों के कारण और सम्प्राप्ति, आयुर्वेद विज्ञान के अनुसार एक ही हैं। केवल शरीर दोषों की मात्रा में न्यूनाधिक्य इनका प्रयोजक माना जाता है।

आयुर्वेद कहता है कि—

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धध्यशनाशनैः ।
दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥
क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषाः समुद्गताः ।
जनयन्तिशरीरेऽस्मिन् दुष्टरक्तेन संगताः ॥

अर्थात्—कड़वा, खट्टा, नमकीन और खारा पदार्थों का भोजन, विरुद्ध भोजन, अजीर्ण भोजन, दुष्ट अन्न, शिम और शाकादि का आहार, विषादि संस्पर्श, दूषित वायु और जल का सेवन, देश पर क्रूरग्रहों की दृष्टि आदि से वातादि दोष प्रकुपित होकर शरीर दुष्ट रक्त के साथ मिलकर शरीर में शीतला रोग उत्पन्न करते हैं। माधवाचार्य, वाग्भट्ट, भावमिश्र आदि आचार्यों ने इस रोग पर पर्याप्त विचार किया है और आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इस रोग का पूर्व रूप इस प्रकार दिया है कि-

"तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूगात्रभंगोऽरतिर्भ्रमः ।
त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररागश्च जायते ॥"

अर्थात्—इस रोग के उत्पन्न होने से पूर्व ज्वर, खुजली, गात्र वेदना, अनवस्थित चित्तता, भ्रम त्वक् की स्फीति और वैवर्ण्य तथा आंखों का लाल होना ये लक्षण उत्पन्न होते हैं।

भावमिश्र के विचार—

इस शीतला रोग के सम्बन्ध में श्री भावमिश्र ने लिखा है कि-

"देव्या शीतलयाऽक्रान्ता मसूर्येव हि शीतला ।
ज्वरयेच्च यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरः ॥
सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान् प्रचक्ष्महे ।
ज्वरपूर्वा बृहत् स्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ।
सप्ताहान्निःसरत्येव सप्ताहात् पूर्णतां व्रजेत् ॥
ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति स्वयम् ।
तासां मध्येयदा काचित् पाकंगत्वा स्फुटेत् स्रवेत् ।
तत्रावधूलनं कुर्याद् बनगोमय भस्मना ॥
निम्बसत्पत्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत् ।
जलंच्च शीतलं दद्यात् ज्वरेऽत्रिनतु तत्पचेत् ॥
स्थापयेत्तत्स्थले पूते रम्ये रहसि शीतले ।
नाशुचिः संस्पृशेत्तन्तु न च तस्यान्तिकं व्रजेत् ॥
बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि ।
प्रयोजयन्त्येवऽपरे मतं तेषामथ ब्रुवे ॥

—भावप्रकाश।

अर्थात्—शीतला देवी (मंगल के रक्त प्रकोप की अधिष्ठात्री देवी) से आक्रान्त मसूरिका रोग ही शीतला रोग है। यह सात प्रकार का होता है और भूताधिष्ठित विषमज्वर में जिस प्रकार ज्वर बढ़ता है, उसी प्रकार इसमें भी जानना चाहिए। ज्वर के साथ बड़े फोड़ों वाली शीतला बड़ी शीतला है। यह एक सप्ताह में तो निकलती ही है, एक सप्ताह में भरती है और तीसरे सप्ताह में सूखकर आप ही गिर जाती है। इनमें यदि कोई पककर फूट जाय और उससे स्राव निकलने लगे तो जंगली कंडे की राख उस पर बुरक देनी चाहिए। नीम के पल्लव से पंखा करते हुए मक्खियों को उड़ाया करें। पानी ठंडा ही दें। ज्वर रहने पर भी गरम पानी नहीं दें।

रोगी को पवित्र, एकान्त, रमणीय स्थान में रखें। अशुचि होकर न छुएं और न रोगी के निकट जांय। बहुतेरे वैद्य इसमें औषधि प्रयोग नहीं करते हैं और कुछ वैद्य औषधि प्रयोग करते भी हैं।

शीतला के वातादि भेद----

आयुर्वेद के पण्डितों ने इस रोग को भी वाताविकृत भेदों से भेदयुक्त किया है। उसके अनुसार—

वातज शीतला में फोड़े या फुन्सियां श्याम वा अरुण वर्ण, रूक्ष, तीव्र वेदनायुक्त और कठोर होती हैं और विलम्ब से परिपाक लेती हैं। पित्तज शीतला में सभी फोड़े फुन्सिया रक्त, पीत वा शुक्ल वर्ण दाह तथा उग्रवेदना से युक्त और शीघ्रपाकी होती हैं। इसमें सन्धियों और हड्डियों के जोड़ों में टूटने सा दर्द, खांसी, कंप, बेचैनी क्लान्ति, तालु ओष्ठ जिह्वा का सूखना, प्यास, अरुचि ये लक्षण होते हैं।

कफज शीतला में सभी फोड़े, फुन्सियां श्वेत वर्ण, चिकनी अतिशय स्थूल, खुजली तथा अल्प वेदना से युक्त और दीघ पाकी होती हैं। इसमें कफस्राव (नजला) स्तैमित्य, शिरोवेदना, गात्रगौरव, वमन का वेग, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य ये लक्षण दीखते हैं।

त्रिदोषज शीतला में फोड़े फुन्सियां नीलवर्ण, चूड़ा के समान चिपटी, किंचित् उन्नत, वेदनायुक्त तथा दुर्गन्ध स्राव वाली होती हैं और दीर्घ काल में परिपाक लेती हैं।

रक्तज शीतला में मलभेद, अंगों का टूटना, दाह, प्यास, अरुचि, मुंह का पक जाना, आंखों का लाल होना, तीव्र वेग वाला ज्वर हो आना, तथा पित्तज शीतला के सभी लक्षण उत्पन्न होते हैं।

पित्तश्लैष्मिक शीतला में रोमकूपों के समान उन्नत फोड़े उत्पन्न होते हैं और कास और अरुचि ये दो लक्षण विद्यमान रहते हैं।

इनके अतिरिक्त चर्मदल नाम की एक और शीतला होती है जो दुश्चिकित्स्य मानी गयी है। इसमें कण्ठरोध, अरुचि, देह का जकड़ जाना, प्रलाप और बेचैनी ये सभी उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

शीतला की सात बहिन—

भारतीय समाज में साधारणतः यह विश्वास सर्वत्र प्रचलित है कि शीतला भगवती सात बहिन हैं और सातों बहिनें इस रोग में आती हैं। आयुर्वेदशास्त्रानुसार ये सातों बहिनें सप्तधातुगत शीतलाएं हैं। जिनके सम्बन्ध में थोड़ा बताना यहां भी अनावश्यक नहीं होगा।

आयुर्वेद में रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र—ये सात धातुयें शरीर में मानी गई हैं और यह शीतला रोग इन सातों धातुओं-गत भी हुआ करते हैं। इनमें—

रसगत शीतला में फोड़े-फुन्सियां जल बुद्बुद के समान वर्णवाली, अल्प दोष प्रकोप वाली, तथा फूटने पर पानी सा स्राव देने वाली होती है।

रक्तगत शीतला में फोड़े-फुन्सियां लालरंगवाली, तथा पतले चर्म वाली होती हैं। वे शीघ्र पक जाती हैं। फूटने पर इनमें से रक्त निकल आता है।

मांसगत शीतला में फोड़े-फुन्सियां कठिन, स्निग्ध तथा पुरु धर्म विशिष्ट होती हैं। ये विलम्ब

से पकती हैं। इसमें शरीर में दर्द, प्यास, खुजली, ज्वर और चित्त चांचल्य हुआ करते हैं।

मेदोगत शीतला में फोड़े-फुन्सियां मंडलाकार, कोमल, किंचित उन्नत, घोर ज्वर उत्पादक, स्थूल, चिकनी और वेदनायुक्त होती हैं। इसमें मनोविभ्रम, चित्तचांचल्य और संताप ये उपद्रव होते हैं।

अस्थिगत शीतला में फोड़े-फुन्सियां गात्रसमवर्ण, क्षुद्राकृति, रूक्ष और चिपटी तथा किंचित उन्नत होती हैं। इसमें अत्यन्त मोट, वेदना और बेचैनी रहती है।

मज्जागत शीतला में अस्थिगत शीतला के लक्षण रहा करते हैं। और ऐसा बोध होता है कि मानो मर्म स्थान टूट रहे हैं। और हड्डियों में बिरनी (ततैये) की डंक मारने जैसी पीड़ा होती है। शुक्रगत शीतला में फोड़े-फुन्सियां देखने में तो पकी सी मालूम पड़ती हैं किन्तु रहती हैं आम ही। ये चिकनी रूक्ष, और अत्यन्त वेदनायुक्त होती हैं। इसमें स्तैमित्य, अरति, मूर्च्छा, दाह और मत्तता ये उपसर्ग लक्षित होते हैं। यह प्राणनाशक हुआ करती हैं।

इन सातों शीतला के दोषज भेद—

आयुर्वेद के आचार्यों ने इन सातों शीतलाओं में भी वातादि दोष की परिकल्पना की है और परिचायक लक्षण दिये हैं। इन पर यहां मैं अधिक विचार करना अनावश्यक सा मानता हूं। और इतना निवेदन भी आवश्यक मानता हूँ कि इस रोग के साधारण आक्रमण होने पर पवित्रता और शान्ति के अवलम्बन से शतप्रतिशत रोगी आराम पाते हैं। यदि विशेष आक्रमण हो तो अनुभवी वैद्य का सहयोग लेना चाहिये।

शीतला की चिकित्सा

यहां मैं शीतला की चिकित्सा के कुछ एक प्रयोग, जो बिलकुल अव्यर्थ हैं, बताना आवश्यक समझता हूं।

शीतला ज्वर होने पर प्रथम उपवास कराना चाहिये। कोष्ठ शुद्धि तथा भूख लगने पर हलका भोजन जैसे पुराने चावल, मूंग, चना, गेहूँ, जौ साबूदाना, अनार, सेव, आदि अल्प मात्रा में बिना मीठा दिये दूध भी देना चाहिये।

दाने भर आने पर दूध या रसदार वस्तु देना बंद करदें। नमक का बिलकुल परित्याग कर देना चाहिये।

रोगी के रहने की जगह शान्त रहे। विशेष ठंडी या गर्म जगह पर रहना हानिप्रद रहता है। खिड़की और दरवाजे पर लाल पर्दे लगादें। नीम के पत्ते और पल्लव चारों ओर लटका दें। रोगी के घर में जूठे मुंह कोई नहीं जाय। नीम के पत्ते, गूगल, वायविडंग, जटामांसी, धूमन, जौ इस पंडग धूप का घर में आग पर जलाते रहना चाहिये।

ऐसी सावधानी बरतनी चाहिये कि एक भी दाना फूटने नहीं पाये। दाना फूटने से दाग जीवन भर रह जाता है। खुजलाने से बचाना चाहिये। दस्तावर दवा भूल से भी नहीं देनी चाहिये। इससे कभी-कभी माता का निकलना रुक जाता है।

पटोलादि क्वाथ—

यदि दवा देने की आवश्यकता जान पड़े तो परवल के पत्ते, गिलोय, मोथा, अडूसे की छाल, दुरालभा, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, खेत पापड़ा इन नौ वस्तुओं को समान भाग में लेकर यवकुट करके रखलें। दो तोले दवा आधा सेर पानी में पकाकर आध पाव शेष रहने पर उतार ले। और आधी छटांक की मात्रा में ३-३ घंटे पर वयस्क को तथा एक-दो चम्मच बच्चों को अवस्थानुसार देना चाहिए।

शीतला से बचने के उपाय—

शीतला रोग मुख्यतः सफाई खोजता है, अतः सफाई से रहना चाहिये।

(१) चैत्र कृष्णा १४ को चूने से पोते हुये गमले में थूहर की शाखा रोपकर लाल पताका लगाकर घर के ऊपर रखने से वर्ष भर शीतला का भय नहीं रहता है।

(२) हरड़ का बीआ रविवार या मङ्गलवार को स्त्री बाएँ बाजू पर तथा पुरुष दाएँ बाजू पर बांधें।

(३) गीदड़ की हड्डी बांधने से भी तान्त्रिक लोग शीतला प्रतिशोध बतलाते हैं।

(४) नीम के बीज १, बहेड़े का बीज १, हल्दी छोटी १, तीनों को ठंडे पानी में (हो सके तो गंगाजल अच्छा रहेगा) पीस कर पीने से शीतला का भय नहीं रहता है, एक सप्ताह पीना उत्तम है।

(५) इमली छाल ४ आने भर, हल्दी ४ आने भर शीतल जल से पीसकर प्रातःकाल एक सप्ताह तक नित्य प्रति पीने से शीतला का भय नहीं रहता।

(६) केले के ८ बीजों का करीब ५ रत्ती चूर्ण मधु या दूध के साथ एक बार भी खा लिया जाय तो एक वर्ष तक शीतला का भय नहीं रहता है। १-५ वर्ष तक के बच्चों को १। रत्ती, ५-१५ तक के लिए २॥ रत्ती और १६ से ऊपर वालों को ५ रत्ती मात्रा देनी चाहिये।

(७) प्रतिदिन पवित्र भाव से शीतलाष्टक एक आवृति पढ़ने से शीतला का भय नहीं रहता है।

शीतला प्रतिषेधक वटी—

नीम तथा इमली के पत्ते, कंटकारी, आंवला, मरिच और हल्दी समान भाग लेकर गंगाजल से पीस कर १ आने भर की गोलियां बनायें। बड़े को दो गोलियां तथा बच्चे को १ गोली प्रतिदिन शीतल जल के साथ एक सप्ताह देने से शीतला का भय नहीं रहता है। केवल कंटकारी के पंचांग की १ आने भर वटी बनाकर उसका प्रयोग भी समान लाभप्रद होता है।

ग्रहों के संस्थान से शीतला—

भारतीय ज्यौतिष विज्ञान इस बात का प्रबल समर्थक है कि ग्रहों की दुष्टस्थानता से ही रागादि हुआ करते हैं। राष्ट्रिय जीवन में यदि दुष्ट ग्रहों का संपर्क होतो राष्ट्रिय रूप में और यदि वैयक्तिक जीवन में दुष्ट ग्रहों का सम्पर्क हो तो वैयक्तिक रूप में ऐसे रोगों का शिकार बनना पड़ जाता है।

आयुर्वेद के पण्डित इस बात से पूर्ण परिचित हैं कि रक्त का अधिपति ग्रह मंगल है और शारीरिक सौन्दर्य का अधिपति बुध हुआ करता है। शीतला में रक्तविकृति से चर्म की सुन्दरता पर भी दुष्प्रभाव पड़ा करता है। अतः मंगल के साथ बुध की भी दुष्टता विचारणीय है। रोग स्थान और रोगकारक ग्रह के साथ के सम्बन्ध पर भी विचार करना आवश्यक होता है और राहु के संक्रामक रोगकारक होने के चलते राहु से इनके संबध पर भी अपेक्षित विचार करना चाहिये ही। इस लिए कारक ग्रह पर राहु का प्रभाव पड़ने पर यह अनुमान करना सर्वथा संगत होगा कि यह रोग शारीरिक दोष से या राष्ट्रिय जल वायु के चलते राष्ट्रियक्षेत्र में फैला है या संक्रामकता के कारण। और अष्टम भाव तथा उसके अधिपति के संबन्ध में उचित तारतम्य के द्वारा रोग की मारात्मकता का भी सुन्दर रूप से विचार किया जा सकता है।

सारांश यह कि आज स्वतंत्र भारत को क्रूर चिकित्सा पद्धति का दामन छोड़ कर अपने प्राचीन विज्ञान आयुर्वेद की व्यापक रूप से शरण लेनी चाहिये जिससे मेरा विश्वास है कि न केवल शीतला रोग से अपि तु अन्यान्य महामारियों से भी त्राण अनायास मिल सकता है।

मसूरिका

लेखक—श्री अत्रिदेव विद्यालङ्कार।

"याः सर्वगात्रेषु मसूरमात्रा
मसूरिकाः पित्तकफात् प्रदिष्टाः।"

मसूरिका नाम से इतना स्पष्ट है कि इसका सम्बन्ध 'मसूर' के साथ कुछ है, अत्रि पुत्र ने मसूरिका का उल्लेख करते हुए पिडिकाओं का रङ्ग ताम्रवर्ण बताया है। मसूर के समान इनका रंग लाल-भूरा होता है, साथ ही ये पिडिकायें चपटी होती हैं, यह स्थिति सहसा इनमें नहीं आती, यह तो पीछे से आती है, जब कि पिडिकाओं के अन्दर भरा द्रव भाग घट्ट बनकर इसका केन्द्र का उभरा स्थान नीचे बैठ जाता है, तब इनकी यह स्थिति आ जाती है। पीछे से इनके ऊपर जो शुष्क खुरण्ड बनता है, वह भी लाल रंग का ही होता है। इसे इसी समानता से मसूरिका कहा है।

इसको बंगला में वसन्त कहते हैं, क्योंकि प्रायः करके यह रोग वसन्त ऋतु में फैलता है। वसन्त ऋतु में कफ का प्रकोप होता है, इसलिए इस ऋतु में प्रायः जो रोग होते हैं, उनका सम्बन्ध कफ से रहता है। कफ का एक रोग उदर्द है, जिसमें फुन्सी निकलती हैं। इनको कोठ भी कहते हैं। जिनमें पस या पानी भरता है, उनको पिडिका कहते हैं। वसन्तऋतु में होने वाले रोगों में कफ की प्रधानता रहती है, पित्त का संयोग रहता है। वायु का प्रकोप प्रायः कम होता है।

मसूरिका में भी यही स्थिति आती है। मसूरिका जिसे सामान्य बोलचाल में छोटी माता या बड़ी माता रूप से पहिचानी जाती है; इसे शीतला भी कहते हैं। यह रोग भारतवर्ष में पहले था, परन्तु इसका वास्तविक प्रसार पुर्तगाल के आगमन से कहा जाता है। शीतला शब्द १४ वीं शदी से पहले के ग्रन्थों में मेरे देखने में नहीं आया। सम्भवतः यह शब्द सबसे प्रथम भावप्रकाश या पुराणों में मिलता है। पुराणों में शीतला स्तोत्र एवं टीके का भी उल्लेख आज मिलता है। गाय के स्तनों के साथ इस टीके का सम्बन्ध बताया है।

यह रोग जनपदोध्वंसी है, इस रोग का फैलाव वायु से होता है; वायु से बचना मनुष्य के लिए सरल नहीं, क्योंकि वायु जीवन है, इसलिए भले ही मनुष्य अपनी वैयक्तिक स्वास्थ्य रक्षा करले परन्तु बाहर की वायु से बचना असम्भव रहता है। इसमें काल स्वभाव भी सहायक होता है। ऋतु में होने वाला परिवर्त्तन इस में रोगोत्पन्न करता है। हेमन्त में संचित कफ वसन्तऋतु में सूर्य की किरणों से पिघलकर रोग उत्पन्न करता है।

इस रोग में शरीर रोग का क्षेत्र या भूमि है, वसन्त ऋतु में काल स्वभाव से यह क्षेत्र बीज की उत्पत्ति के लिए उचित क्षेत्र-बीज ग्रहण योग्य होता है। बीज वायु मंडल में से रोगी के शरीर में पहुंचता है। यह बीज रोगी के लिए निःश्वास, उसके वस्त्र आदि में आश्रित रहता है, वहां से वायु में संचरित होता है, वायु से उर्वरा बने मनुष्य देह रूपी क्षेत्र में आकर पनपता है और रोग उत्पन्न करता है।

इन अवस्थाओं में आहार का न पचना, शीत लगना, रोगी के सन्निकर्ष में आना आदि बातें बढ़ा देती हैं। जिससे रोग विशेष रूप से उत्पन्न होता है। इस रोग में दूसरे संक्रामक रोगों की भांति विशेषता यह है कि रोग फैलने के समय इस में तीव्रता रहती है, मध्य में कुछ कमी होती है और पीछे साधारण स्थिति आजाती है। इसलिये

मृत्यु संख्या रोग के प्रारम्भ में अधिक होती है और अन्त में कम होती है।

रोग का संक्रमण होने पर रोग उत्पन्न का समय सामान्यतः १० से १४ दिन है, प्रायः करके बारह दिन है। इस रोग का विष छालों के द्रव में विशेष रूप से रहता है। इसलिए जब यह द्रव बाहर आता है (रोगी के खुजाने से या रगड़ से जब छाले फूटते हैं) तब यह रोग विशेष रूप से फैलता है। पहले यह रोग मुख्यतः बच्चों में होता था, परन्तु अब कुमार एवं युवकों को भी होता है।

रोगी के देखने पर—रोगी बच्चा होता है या युवा होता है, वह सहसा रोगी होजाता है उसे कम्पकपी या सर्दी लगती है, शिर दर्द, कमर में दर्द, चक्कर आना, जी मचलाना, वमन और अतिशय निर्बलता कई बार रहती है।

परीक्षा करने पर—रोग उत्पत्ति के मध्यवर्ति समय में रोगी थका हुआ होता है, ताप परिभ्रमण प्रथम दो दिनों में १०२° से १०४° फा. तक पहुँच जाता है। शरीर पर उभरे हुए दाने कोठ भी इस समय दीखते हैं, ये दाने इस समय बहुत बारीक होते हैं जैसा कई बार शीत पानी से स्नान करने पर निकल आते हैं। ये छोटे चमकने वाले, काले, लाल होते हैं ये कक्षा में भी होते हैं, त्वचा में लालिमा आजाती है, प्लीहा कुछ बढ़ जाती है, वास्तविक दाने तीसरे दिन निकलते हैं। ये पहिले शुष्क फुन्सी के रूप में होते हैं, पांचवें-छठे दिन पानी आकर छाले का रूप धारण कर लेते हैं। इनमें पूय का रूप नवें दिन होता है, बारहवें दिन पूय के ये छाले फूट जाते हैं, सोलहवें दिन इनमें छिलका पपड़ी बननी प्रारम्भ होजाती है। दाने सबसे पहिले माथे पर दिखाई देते हैं फिर शिर पर, पीठ पर, कलाई में, सारे मुख पर तथा सामने के भाग में हाथ पैर छाती पर दीखते हैं। दाने प्रायः करके बाह्य पृष्ठ भाग पर जो प्रायः नंगा रहता है तथा जहां पर दबाव पड़ता है, वहां पर निकलते हैं। कक्षा में भी प्रायः फैल जाते हैं, अधिकतर, उदर पर, वंक्षण में, ग्रीवा में, शाखाओं की संधियों में निकलते हैं। हाथों की अपेक्षा टांगों पर कम निकलते हैं। इसमें भी हाथ पैर में ऊपर के भाग में नीचे के भाग की अपेक्षा दाने कम निकलते हैं। दाने हथेली और पैर के तलवे पर भी निकल आते हैं कनीनिका तथा मुख के अन्दर भी निकलते हैं।

दानों का आकार अलग अलग रहता है यह काले लाल (याः सर्वगात्रेषु मसूरमात्रा) होते हैं जो कि जल्दी ही कठोर गोली के आकार की फुन्सी बन जाते हैं। छाले बनने पर इनका आकार मोती के समान होजाता है। इनका केन्द्र जरा दबा रहता है जिसका कारण स्वेद प्रणाली या रोम छेद का दबाव है। पूय पड़ने पर इनका रङ्ग पीला होजाता है, इसके चारों ओर लाल चक्कर बन जाता है चारों ओर की त्वचा मोटी होजाती है। छाला फटने के पीछे भूरी काली पपड़ी बन जाती है, जो कि सामान्यतः २ से तीन सप्ताह में अलग होती है। इसके पीछे निशान रह जाता है, जो कि प्रायः स्थायी होता है।

छालों की उत्पत्ति के समय बहुत विक्षोभ खुजलाहट होती है, त्वचा कठोर होजाती है, इसमें दर्द होता है, इस समय रोगी के शरीर से बहुत दुर्गन्ध आती है। जब वास्तविक दाने निकलते हैं, तब सामन्यतः ताप परिमाण घट कर ९९° या इससे भी कम आजाता है और जब छाले बनने लगते हैं तब पुनः बढ़कर १०१° तक पहुँच जाता है। इसके पीछे तीसरे सप्ताह के बीच में यह धीरे-धीरे कम होकर सामान्य अंश पर आजाता है। रोग की तीव्रावस्था में रोगी बहुत निर्बल दीन रहता है, नींद नहीं आती और प्रलाप भी हो सकता है (इस समय कस्तूरी मुलेठी को तगरादिक्वाथ या ब्राह्मी रस के साथ देना चाहिए)। मूत्र में थोड़ा सा एल्ब्युमिन आता है।

विद्वानों की मान्यता है कि यदि टीका ठीक प्रकार से किया गया है तो चेचक का होना सम्भव नहीं, यदि टीके की सफलता की परीक्षा करली जाय तो रोग के दूसरे दिन परीक्षा करने से चेचक का सन्देह निकल जाता है।

सामान्यतः रोग तभी भयानक या घातक होता है जब रक्तस्राव या अन्य रोग साथ में होजाता है। उपद्रवों में स्वरयंत्रशोथ, कास, ब्रोंको-निमोनिया, हृदय की निष्क्रियता, अस्थि शोथ, कनीनिकाव्रण, व्रणशोथ, कर्ण शोथ, कर्ण विद्रधि, अण्ड शोथ, शय्या व्रण, छाले आदि हैं। इस रोग में १२ वां से १४ वां दिन बहुत चिन्ता पूर्ण होता है। प्रारम्भिक ज्वर जितना हलका रहता है, उतना ही इसका पूर्व कथन अच्छा होता है।

चिकित्सा—रोग प्रतिरोध के रूप में टीका इस रोग का उचित प्रतिबन्धक बताया जाता है। टीके का ठीक समय ३ से ६ मास की आयु है, इस समय यदि टीका सफलतापूर्वक होजाता है, तो पांच सात वर्ष तक रोग की सम्भावना नहीं रहती है। दूसरी बार टीका ७ वें और १४ वें वर्ष में करवा देना चाहिये, अथवा रोग जब बहुत व्यापक रूप में फैल रहा हो तब करना चाहिये। रोगी के घर को पूर्णतः स्वच्छ करना चाहिए। रोग होने पर रोगी को पृथक् रखना चाहिए। जब तक सब पपड़ी न उतर जाये और व्रण भर न जाएँ।

रोग शान्ति उपाय—रोगी को शान्त खुली वायु-युक्त घर में रखना चाहिये, उसके ऊपर सीधी धूप नहीं आने देनी चाहिये। रोग प्रारम्भ होने पर एक लाख इकाई की मात्रा में पैंसलीन प्रति चार घन्टे के अन्तर से देना चाहिये। ज्वर की अवस्था में दूध देना चाहिये, जब ज्वर उतर जाये तब आहार की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। स्वच्छता—शिर के बालों को कटवा देना चाहिये, दिन में दो बार गरम पानी से त्वचा को साफ करना चाहिये। सबसे प्रथम त्वचा पर पोटासियम परमैंगनेट के घोल का सान्द्र घोल त्वचा पर लगा देना चाहिये, इसको दूसरे दिन या पीछे से १% घोल से पुनः गीला कर देना चाहिये। छालों के फूटने के समय पोटासियम परमेंगनेट का यह रंग बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। विष इस घोल से [१०००० में १ भाग] नष्ट हो जाता है। मुख को वर्फ के शीतल जल में भिगोये पतले वस्त्र से ढांक कर ऊपर से केले का नरम पत्ता या छूटा परचा रख देना चाहिये। दुर्गन्ध के लिये पोटासियम परमेंगनेट के स्थान पर कार्बोलिकएसिड का घोल बरत सकते हैं। आंखों पर वैसलिन लगा देनी चाहिये और दिन में दो बार आंखों को बोरिकलोशन से धो देना चाहिए। यदि आंख में कोई दाना हो जाये तो इसके लिए एक औंस वैसलीन में हाइड्राजराई औक्साईड्पालेवा ८ ग्रेन और एट्रोपीनसल्फेट १६ ग्रेन मिलाकर बनाई वेजलीन लगानी चाहिए। यदि अब भी सूजन हो तो प्रति चार घंटे के अन्तर से १०% एल्ब्युसिड़ बूंद डालनी चाहिये।

कमर या शिर दर्द को कम करने के लिये एस्पायरीन १० ग्रेन और फिनस्टीन ७ ग्रेन की पुड़ियां देनी चाहिये। नींद लाने के लिये पोटासियम ब्रोमाईड ३० ग्रेन, डोवरस पाउडर १० ग्रेन देना चाहिये। प्रलाप के लिए हायोसीन हाईड्रोब्रोमाईड ग्रेन $\frac{1}{100}$ का इन्जैक्शन देना चाहिये। गले की सूजन के लिये १ पाइन्ट पानी में टिंचर बैंजोयन की ६० बूंद डालकर उसका वाष्प लेना चाहिये। प्रत्येक भोजन के पीछे मुख को ग्लैसरीन थायमोलक के फोये से साफ कर देना चाहिए।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

इसमें चिकित्सा विभाग इस प्रकार से किया गया है, पिडिका निकलने में प्रथमावस्था, पूयसंचार होने पर द्वितीयावस्था तथा छिलड़ उतरने में तृतीयावस्था। इसी क्रम से चिकित्सा विधि है।

प्रथमावस्था में—स्वल्प लक्ष्मीविलास या कफ चिन्तामणि देना चाहिये, यदि ज्वर प्रबल हो और रोगी में प्रलाप हो तो कस्तूरीभूषण देना चाहिये। इसके स्थान पर रससिन्दूर या स्वर्णसिन्दूर २ रत्ती मात्रा में दे सकते हैं। सामान्यतः तुलसीपत्र रस या पान का रस देते हैं कफ की अधिकता होने पर आर्द्रक या विल्वपत्र रस देते हैं। दिन में तीन चार बार देना चाहिये। भोजन में लाजामण्ड साबूदाना, मूंग का पानी देना चाहिये।

द्वितीयावस्था में—जब दाना निकल जायें तब सब औषधि बन्द करके रोगी को वमन या विरेचन

देना चाहिये (ज्वर उतरने पर)। इसके लिये नीम की छाल और परवल के पत्तों के क्वाथ में मैनफल का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये। हिंचा शाक का रस और मधु या करेला का रस और हल्दी का चूर्ण देना चाहिये। हिंचाशाक का रस या करेले के रस की मात्रा ८ तोला और मधु दो तोला देना चाहिए। वमन के पीछे लाजमण्ड देना चाहिये। मण्ड में बेदाना या नारियल का पानी मिलाकर दे सकते हैं। २ तोला किसमिश को आधा सेर दूध में पकाकर इसे लाजमण्ड के साथ मिला कर दे सकते हैं। पिडिका निकलने पर दूध मिश्रित पथ्य देना उचित है। अवस्था भेद से घी मिश्रित मूंग या चने का यूष तथा एक समय दूध मिश्रित लाजमण्ड या यवमण्ड देना चाहिये। रोगी को अतिशय दाह होता हो तो मूंग और आंवले का यूष बहुत लाभ करता है। एक समय मूंग और आंवले का यूष और एक समय दूध और लाजमण्ड देना चाहिये। औषध में रससिन्दूर या कज्जली को देना चाहिये, वातिक लक्षणों में दशमूलादि, पैत्तिक लक्षणों में द्राक्षादि और कफ के में किराताादिक्वाथ देना उत्तम है। यदि दोष निर्णय न हो सके तो निम्बादि क्वाथ देना चाहिये। अमृतादि क्वाथ, पटोलादि क्वाथ, खदिराष्टक क्वाथ सब प्रकार की मसूरिका में लाभप्रद हैं। विरेचन के लिये त्रिफला क्वाथ और निशोथ का चूर्ण उत्तम है।

पच्यमान या तृतीयावस्था में—

इस अवस्था में निर्बलता तथा वायु का प्रकोप विशेष होता है, इसके लिए प्रतिदिन गुडूच्यादि काथ देना चाहिये। सोंठ का चूर्ण और गुड़ साथ में देने से रोग में शांति होती है। ज्वर हो तो इन्दुकलावटी देनी चाहिए। प्रातःकाल में पटोलादिकाथ और सायंकाल इन्दुकलावटी दें। पथ्य—अन्नमण्ड, लाजमण्ड, घी में संस्कृत दूध देना चाहिए।

उपद्रव चिकित्सा—

ज्वर तीव्र होने पर सन्निपात ज्वर या वातश्लैष्मिक ज्वरों के लक्षणों में कस्तूरी भूषण देना चाहिये जब तक लक्षण शांत न हों इसको देना चाहिए। कास-श्वास, गले में घर्घराहट होने पर अष्टांगावलेहिका देनी चाहिए। गले में व्रण हों तो जात्यादिकाथ में मधु डालकर गण्डूष करने चाहिए। स्वच्छता के लिए अष्टांग धूप मकान में रोगी के पास जलाना चाहिए। जब छाला फूट जाय तो चादर पर उपले की बारीक राख कपड़छन करके उस पर रोगी को लिटा देना चाहिए, इसे फिर समय समय पर बदलते रहना चाहिए।

प्यास अधिक होने पर मुलहठी और सौंफ से सुवासित जल या शृतशीत जल रोगी को देना चाहिए। अरुचि होने पर आंवले का या दाडिम का रस देना चाहिए। श्लेष्म शुष्क हो तो वासा, मुलहठी, किसमिस, मरिच इनका क्वाथ देना चाहिए। कास अधिक होने पर चन्द्रामृत रस या तालीशादि चूर्ण देना चाहिए। आंख में पिडिका हो जाये तो मधुकादि प्रलेप और आश्च्योतन [हल्दी लोध, हरड़ कपूर का] बरतना चाहिए। मकरध्वज का प्रयोग उपद्रव शांति के लिए उत्तम है। अतिसार होने पर मोथे का जल देना चाहिए। गले में व्रण या पीड़ा हो आवाज न आये तब राल, देवदारू, चन्दन, अगरु, गुग्गुल इनका धूम देना चाहिए। शरीर से क्लेद बाहर आने पर पंचवल्कल चूर्ण [पीपल, गूलर, पिलखन, वट और अम्लवेतस या इमली इनकी छाल का वस्त्र में छना चूर्ण] शरीर पर डालना चाहिए।

छिलके उतरने पर कच्ची हल्दी और कोमल नीम पत्र पीसकर इसका उबटन शरीर पर लगाकर स्नान करवाना चाहिए।

पथ्यापथ्य—जब तक पिडिकायें बाहर न आयें तब तक नवज्वर की भांति जलसागु, (जल से साधित साबूदाना) जलवार्लि, लाजमण्ड, मसूर, मूंग का यूष देना चाहिए। इनमें मिश्री या निम्बू का रस, अनारदाना मिलाकर देना चाहिए। पिडिका निकलने पर लाजमंड, यवमण्ड उत्तम है। अपथ्य—परिश्रम, थकान, धूप, आलु, मत्स्य, अम्ल, लवण असमय आहार, अपथ्य हैं।

बाल-सांसर्गिक ज्वर
(रोमान्तिका)

लेखक—आ० वि० पं० श्री देवदत्त जी शर्मा वैद्य शास्त्री, पठानकोट (पञ्जाब)

"रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्याः कफपित्तजाः।
कासो रोचक संयुक्ता रोमान्त्यो ज्वर पूर्वकाः॥"

छोटे बच्चों में उत्पन्न होने वाले सांसर्गिक रोगों में यह रोग प्रधान है। इस समय यह रोग देश के विविध भागों में फैला हुआ है और वैद्यों के पास इस रोग से पीड़ित अनेक बच्चे पहुँच भी रहे हैं। मैंने अपने ४०-४५ वर्ष के ऊपर के चिकित्सा काल में जो कुछ इस रोग पर अनुभव किया है आज के इस छोटे निबन्ध में केवल उतने मात्र की चर्चा की जायगी। व्यर्थ के पुस्तकीय पिष्ट-पेषण से पाठकों के मस्तिष्क को कष्ट देने का प्रयास मेरा उद्देश्य नहीं, इसी से यथा शक्ति मैंने इस निबन्ध को लघु से लघु रूप देने का यत्न किया है।

बाल सांसर्गिक ज्वर—

संज्ञा की कल्पना मेरी निजी है और यही नाम मैंने ऊपर आरम्भ में दिया है। प्राचीन ग्रन्थों में इस रोग के लिए 'रोमान्तिका' संज्ञा दी है पर वह मुझे इसलिए नहीं भाती कि जो लक्षण शास्त्रों में कहे गये हैं वह सम्पूर्ण वर्तमान के रोग में नहीं मिलते। हां बहुत लक्षणों में साम्यता आवश्यक है, पर उतनी साम्यता मात्र से ही प्राचीन संज्ञा को दे देना मुझे अच्छा नहीं लगता। अपने साहित्य को पूर्ण करना और बढ़ाना यह तो विद्वानों का काम है, पर मुझ जैसे साधारण वैद्य से लक्षणों में अन्तर होते हुए उस रोग का प्राचीन नाम ही दे देना सहा नहीं जाता। इसी से मैंने प्राचीन संज्ञा होते हुए भी नवीना संज्ञा की कल्पना की है; यह अनधिकार चेष्टा मुझे स्वयं बुरी जान पड़ती है पर क्या करूं? बाध्य हूँ। जिससे विवश होकर मुझे इस प्रकार करना पड़ रहा है। किसी अगले लेख में संज्ञा सम्बन्धी विचारों पर पुनः स्पष्ट करने का यत्न करूंगा। अभी तो लेख बढ़ने के भय से विषय को यहीं छोड़ता हूँ।

बाल रोगों में यह रोग एक महत्व का रोग है, जो उनके जीवन में एक बार और अनेक बार भी होते देखा गया है। ऋतु सन्धि में होने वाला यह रोग बसन्त-ग्रीष्म और वर्षा ऋतु के आरम्भ में ही अधिकता से देखा जाता है। रोग का विस्तार औपसर्गिक रूप में वस्त्रों आदि से होता है। रोग जन्तु आज तक देखे नहीं गए, पर तर्क के आश्रय ही उनका अस्तित्व स्वीकार किया गया है। रोम कूपों में दिखाई देने के कारण ही शास्त्रकारों ने सम्भव है उसे 'रोमान्तिका' संज्ञा दी हो, जो उस काल के अनुसार उचित ही कहनी चाहिये।

संसर्ग के बाद एक से दो सप्ताह के अन्दर ही रोग के आरम्भिक लक्षण दिखाई देने लगते हैं। पहले आरम्भ में भारी जुकाम का बोध होता है और फिर आंख लाल होकर उससे जल-स्राव होने लगता है। छींक आती हैं और बच्चा बार-बार नाक को मलता है। स्वल्प सा ज्वर उसी समय दीखने लगता है और फिर ज्वर की ऊष्मा धीरे-धीरे बढ़ कर १०१ से १०२ डिग्री तक हो जाती है। जीभ एक विशेष प्रकार के रङ्ग का बोध करती हैं और नाड़ी तीव्र और शीघ्र गामिनी होती है। बच्चे से प्रकाश सहन नहीं होता। आंखों के श्वेत भाग में ही लालिमा और भारीपन होता है। साथ ही साथ कष्टदायक कास होती है जिससे बच्चों को बड़ा कष्ट होता है नाक और आंख से अधिक प्रमाण में जलस्राव होता है और छींकें बार-बार जोर से आती हैं। बेचैनी तब बहुत अधिक होती है इससे बच्चों को बड़ी अशान्ति का अनुभव होता है।

चौथे दिन प्रायः बहुत बच्चों को रोमान्तिका दिखाई देने लगती है। पहले तो यह कपाल पर दिखाई देती हैं, फिर धीरे-धीरे बढ़ कर सम्पूर्ण शरीर पर फैल जाती हैं। तब ज्वरोष्मा भी बढ़ती है।

रोमान्तिका के बहुत छोटे छोटे दाने बाहर दीखते हैं जो लाल होते हैं। इसके बाद दाने निकल आने पर ज्वरोष्मा कम होने लगती है।

जिन रोगियों को रोग भयानक रूप से दबाये रहता है उन्हें अतिशय प्रतिश्याय, जोर की कास, श्वासवाहिनियों और कफ स्थान की दुष्टता अधिकता से देखने में आते हैं। साथ ही साथ न्यूमोनिया (फुफ्फुस सन्निपात) भी उत्पन्न हो जाता है।

रोमान्तिका में रक्तपित्त एक संकर रोग है, जिसके उत्पन्न होते ही भयानक स्थिति का सन्देह हो जाता है। इसी से सन्निपात होकर रोगी ४-५ दिन बाद इस संसार से चलता बनता है। गलगण्ड, गर्दशूल, नेत्राभिष्यन्द आदि रोग रोमान्तिका के उपद्रव स्वरूप अनेक बच्चों में देखे जाते हैं रोगान्त में अन्तुज क्षय, ग्रन्थीक्षय, शोष आदि देखने में आते हैं जो बहुत समय तक बच्चों को कष्ट देते हैं। कभी-कभी तो यह रोग बच्चे का अन्त करके ही दम लेते हैं।

चिकित्सा—

इस रोग के लिए विविध औषधियों का प्रयोग वैद्य लोग अपने अनुभव के आधार पर करते हैं। परन्तु मुझे जो कुछ अनुभव हुआ है उसके आधार पर मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि इस रोग के लिए 'गोरोचन' के समान अन्य सिद्ध महौषधि कोई नहीं है। गोरोचन के प्रभाव से रोमान्तिका विष शीघ्र ही फूटकर बाहर आता है और विष के बाहर आते ही ज्वरोष्मा कम हो जाती है। गोरोचन रोमान्तिका विष के लिए एक अद्भुत ईश्वरीय देन है, जिससे शीघ्र से शीघ्र इस रोग से छुटकारा मिलता है। रोमान्तिका विष एक अज्ञात विष है जिसके विषाणु इस रोग के कारण है। इस रोग में ज्वरघ्न चिकित्सा भयानक फल दिखाती है। जो औषधि विष को बाहर निकालती है वही इसकी चिकित्सा में सफल होती है। क्योंकि विष के बाहर आते ही ज्वरोष्मा स्वयं कम हो जाती है। आयुर्वेद शास्त्र में—

"......गोरोचना हिमा तिक्ता वश्या मंगल कांतिदा।
विषालक्ष्मी ग्रहोन्माद गर्भस्राव क्षतस्रजित ॥"

—भावमिश्र

गोरोचन के विषय में इस प्रकार साधारण चर्चा है। गोरोचन गाय बैल के पित्ताशय से हरित पीताभ पत्थर के समान कठिन टुकड़ा सा प्राप्त होता है वैद्य लोग बच्चों के न्यूमोनियां (फुफ्फुस सन्निपात) में इसका प्रयोग चिरकाल से करते चले आये हैं। मन्त्र शास्त्र में इसका प्रयोग बहुत देखने में आता है। इधर यंत्र लिखने में भी इसका प्रयोग बहुत होता है। तन्त्र शास्त्र में मोहन और वशीकरण के अनेक योग हैं उनमें आधे से भी अधिक योगों में गोरोचन का प्रयोग हुआ है। गोरोचन का उत्पादन उतना नहीं जितना इसका व्यय है। इसी से धूर्त लोग इसके नाम से अनेक नकली वस्तु तैयार कर सर्वसाधारण की आंखों में धूल झोंक रहे हैं। असली गोरोचन का भाव दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। इसलिए नकली गोरोचन भी अब मनों की तादाद में तय्यार होकर बाजार में बिकने पहुँच गया है। नकली गोरोचन से कुछ भी लाभ नहीं होता, यह तो सभी वैद्य जानते हैं, पर इसके नाम की ठगी से वही वैद्य बच सकते हैं जिन्होंने कभी स्वयं असली गोरोचन का प्रयोग किया हो।

गोरोचन कर्पूरादि वर्ग में पढ़ा गया है। इस वर्ग में आने से स्वभावतः सुगन्धित होना चाहिए यह बात सर्व विदित है। पर इतना तीव्र गन्धयुक्त यह द्रव्य नहीं जिस प्रकार का कर्पूर। असली गोरोचन से एक भीनी सी मीठी सुगन्ध आती है।

गोरोचन भी कस्तूरी आदि के समान तीव्र है। इसलिए इसे भी सम्भाल कर प्रयोग कराना चाहिए। सम्भव है अन्य वैद्य भी इसका प्रयोग इस रोग में करते हों। पर वह किस प्रकार इसका प्रयोग करते हैं यह तो कुछ कहा नहीं जा सकता, पर मैं इसे एक मिश्रण के रूप में प्रयोग में लाता हूँ। इसलिए मैंने जिस गोरोचन मिश्रण का अनेकों वर्षों से बराबर व्यवहार किया है उसी का योग नीचे लिखे देता हूँ।

गोरोचन मिश्रण —

गोरोचन असली ४ तोला, मृगश्रृङ्ग भस्म ८ तोला, प्रवालपिष्टी ८ तोला और अमृतासत्व १६ तोला। इन सबको एक पहर बढ़िया खरल में डाल कर खूब घोटें। गोरोचन मिश्रण तैयार हो गया। आधी से १ रत्ती तक माता के दूध, गाय के दूध, मधु अथवा उचित अनुपान से दिन में ३-४ बार प्रयोग करें।

गुण—यह रोमान्तिका में तो एक मानी हुई औषधि है ही, पर इसमें यह विशेषता है कि रोमान्तिका के बाद भी जो सूक्ष्म ज्वर रह जाता है उसके लिए भी यह अमृत है। मेरे नित्य व्यवहार की औषध है जिसे मैं वर्षों से प्रयोग में लाकर पूर्ण लाभ उठा रहा हूँ। आज सर्व साधारण और वैद्यों के विशेष लाभ के लिए यह योग लिख दिया है जिससे वह यश और धन दोनों ही प्राप्त करें।

मैं रोग की शङ्का होते ही माता के दूध, गाय के दूध अथवा मधु की १० बूंद के साथ ½ रत्ती से १ रत्ती तक दिन में ३-४ बार अवस्था के अनुसार गोरोचन मिश्रण का प्रयोग करता हूँ फलस्वरूप दाना शीघ्र निकल आता है और कोई उपद्रव भी उत्पन्न नहीं हो पाता। दाना निकलते ही ज्वर धीरे-धीरे कम हो जाता है।

गौरोचन तो इस रोग के लिए एक मानी हुई औषधि है ही पर जहां गौरोचन न हो वहां शास्त्रोक्त त्रिभुवनकीर्ति रस से भी लाभ उठाया जा सकता है। त्रिभुवनकीर्ति चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक एक चम्मच शहद में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। इससे भी रोमान्तिका दाना निकलने में बड़ी सुविधा प्राप्त होती है। ज्वर रहने पर दाने निकालने के लिए त्रिभुवनकीर्ति रस बहुत ही उत्तम साधन है। इसके प्रयोग से दाना खूब भर कर निकलता है और दाना निकलते ही ज्वर कम होने लगता है। यह औषधि दाना निकालने के लिए बहुत ही उत्तम और लाभदायक सिद्ध हुई है।

ज्वर, प्रतिश्याय, नाक से तरल स्राव, छींक अधिक, वेदना, अङ्गों में भारी थकान, बेचैनी आदि लक्षण रहने पर दिन में एक बार प्रातः गोरोचन मिश्रण का प्रयोग करना चाहिए और साथ ही साथ दिन में तीन बार प्रति तीन घण्टे बाद, नागामृत वटी २ चावल और अमृतासत्व २ रत्ती का मिश्रण कर ३ पुड़िया बना मधु से देनी चाहिए।

नागामृत वटी का योग इस प्रकार है—

शुद्ध वत्सनाभ, छोटी पीपल, लवंग, पीपलामूल, जायफल, दालचीनी, जावित्री, सोंठ, अकरकरा, कालीमिरच, सोहागे का फूला, शुद्ध सिंगरफ, १-१ तोला, केशर काश्मीरी ३ माशा तथा बढ़िया नैपाली कस्तूरी १ रत्ती।

विधि—प्रथम शिंगरफ को आर्द्रक स्वरस में पीस उसमें शुद्ध वत्सनाभ मिला खूब घोटें। फेनाभ होने पर उसमें शेष वस्तु कपड़छान की हुई मिला दें। कस्तूरी और केशर को अलग आर्द्रक के स्वरस में घोट कर मिलावें और फिर इतना आर्द्रक स्वरस इसमें दें जितने में औषधि सब डूब जावे। अब खूब घुटाई करावें। जब आर्द्रक स्वरस सूखने लगे तो इसमें भिलावे के क्वाथ की भावना दें और सूख जाने पर शीशी में रखलें।

मात्रा—चौथाई से आधी रत्ती तक।

अनुपान—मधु अथवा अन्य।

गुण—यह नागामृत वटी शोथहर, ज्वरनाशक, अवसादक, पीडाहर, पाचक, रसायन, कफनाशक, स्वेदोत्पादक, वेदनाशामक, उत्तेजक, शीतहर, प्रतिश्यायनाशक, दीपक, कफघ्न, जन्तुघ्न, आक्षेपहर और रोमान्तिका आदि रोगों के विषाणुओं को नाश करने वाली है। हमारे नित्य व्यवहार में आने वाली औषधि है जिसे कई वर्ष से विविध कफ विकार, वातकफ विकारों में प्रयोग करके हमने पूर्ण लाभ उठाया है। आप व्यवहार कर अवश्य प्रसन्न होंगे।

रोमान्तिका ज्वर में फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) बड़ा धोखा देता है। यह छिपे रूप में

इस ज्वर में सहसा उत्पन्न हो जाता है। इस लिए चिकित्सक को इससे खूब सावधान रहना चाहिए। न्यूमोनियां होते ही तत्काल उसे रोकना चाहिए। यदि इसकी ओर चिकित्सक ने जरा भी लापरवाही की तो बड़े से बड़े अनर्थ की संभावना का सुख देखना पड़ता है।

ज्वर के साथ ही कफ कास तो इस रोग में होता ही है पर जरा भी श्वास तीव्र होने पर तत्काल न्यूमोनियां का सन्देह होने पर त्रिभुवनकीर्ति रस २ चावल, सितोपलादि चूर्ण २ रत्ती और मुलहठी चूर्ण ३ रत्ती मिश्रण कर चार पुड़ियां बना दिन में चार बार शर्बत बनफ्सा के साथ मिलाकर बार-बार चटाना चाहिए।

यदि कफ कास के साथ ही श्वासवाहिनियों में कफ सञ्चय हो तो प्रथम वमन की औषधि का व्यवहार करना चाहिए। वमन के लिए अनेक योग और औषधि हैं, पर हम तो उसारेरेंवद (रेंवद उसारा) १ से २ रत्ती तक, चम्पा पुष्प (पीत) का जीरा आधी रत्ती और मधुयष्ट्यादि चूर्ण १ रत्ती मिला कर खूब मर्दन कर माता के दूध से जरा शहद मिला कर उसी के साथ देते हैं इससे बहुत अच्छी वमन सुखपूर्वक हो जाती है जिसमें सब संचित कफ आसानी से बाहर निकल जाता है। रोगी को जरा भी तकलीफ नहीं होती। इस प्रकार करने से फुफ्फुस सन्निपात (श्वसनक सन्निपात-न्यूमोनिया) का भय बहुत अंशों में कम हो जाता है। पर जहां इतने पर भी फुफ्फुस सन्निपात रह जाता है वहां वमन के बाद पाठा, मुलहठी दोनों ६-६ माशा बांसापत्र ६ माशा पोहकरमूल ३ माशा और मिश्री ३ माशा इन सबको १ पाव पानी में काथ कर जब पानी पकते हुए आधी छटांक रहे तो उतार कर छान उसमें अढ़ाई तोला मुलहठी काथ और १ तोला द्राक्षारिष्ट मिला कर एक शीशी में रख देते हैं। फिर प्रति २ घण्टे के बाद १-१ चम्मच समान भाग उष्णोदक मिलाकर दिलाते रहते हैं। इससे बहुत छोटे बच्चों के फुफ्फुस सन्निपात (न्यूमोनिया) में बड़ा लाभ दिखाई देता है।

फुफ्फुस सन्निपात (श्वसनक) का तीव्र स्वरूप दृष्टिगत होने पर नारदीय लक्ष्मीविलास आधी रत्ती से १ रत्ती तक मधु से दिया जाता है, इसके साथ ही गोरोचन मिश्रण की ३ पुड़िया बराबर चलती हैं।

इस रोग की चिकित्सा में प्रधानता से ध्यान में रखने की बात यही है कि स्नेह स्वेद आदि की चिकित्सा से इस रोग में कुछ भी लाभ नहीं होता कभी-कभी तो महान अनर्थकर सिद्ध होते हैं। इस लिए इस प्रकार की चिकित्सा कभी भी इस रोग में न करनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि, केवल ज्वरघ्न औषधियों का प्रयोग भी इस रोग में न करना चाहिए। ज्वरघ्न औषधि रोग विष का तो नाश करती ही नहीं, केवल ज्वर उतारती हैं। ज्वर तभी तक रहता है जब तक रोगविष शरीर में बना रहता है। रोग विष रहते ज्वर दूर नहीं होता। कदाचित ज्वर किसी औषधि से कम भी होजावे तब भी सूक्ष्म ज्वर तो तब तक जाता नहीं जब तक विष शरीर में बना रहे। इसके साथ ही कभी-कभी तो ज्वरघ्न औषधियां शीतता उत्पन्न कर देती हैं जिससे हृदय दुर्बल होकर रुग्ण को यम मार्ग के दर्शन करने होते हैं। इसलिए कभी भूल कर भी ज्वरघ्न औषधि बार-बार इस रोग में न देनी चाहिए। हां यदि ज्वर बहुत ही अधिक हो और ज्वर की ताप मात्रा कम करनी ही हो तो इस प्रकार की औषधि चाहिए जो रोग विष को नाश करते हुए ज्वर को कम करें। इस प्रकार की औषधों में प्रवालपिष्टी १ रत्ती अमृतासत्व ६ रत्ती का मिश्रण कर ६ पुड़िया बना प्रति घण्टा या २ घण्टा के बाद दाडिमावलेह के साथ देनी चाहिए। यह पुड़िया ज्वर को कम करने के साथ ही रोग विष को भी कम करती है। हिमांशुरस भी इस अवस्था में बहुत लाभ दिखाता है। यह भी रोग-विष को शान्त करते हुए ज्वर को कम करता है। इस रस की १ से २ रत्ती तक की मात्रा शर्बत बनपशा से देनी चाहिए। पर यह ध्यान रहे कि उपरोक्त योगों के साथ साथ ही गोरोचन मिश्रण अवश्य देते रहना चाहिये। गोरो-

चन इस रोग की प्रधानौषधि है। इसलिए उसे विचार-पूर्वक रोग की सभी अवस्थाओं में आरम्भ से अन्त तक दिन रात में अवश्य देते रहना चाहिए। इस रोग की सभी अवस्थाओं में गोरोचन मिश्रण से लाभ पहुँचता है इसलिए इसे निःसंकोच प्रयोग करना चाहिये। शास्त्रों में हिमांशुरस के बहुत से प्रयोग लिखे हैं। हम जिस हिमांशुरस का प्रयोग ज्वर कम करने के लिये करते हैं। उसका प्रयोग नीचे दिया जाता है। इसके साथ भी गोरोचन मिश्रण दिन में एक बार अवश्य देना चाहिये।

हिमांशु -- प्रवालपिष्टी, अकीकभस्म, जहरमोहरा खताई, हजरुलयहूद (बेर पत्थर) सब २-२ तोला सर्दचीनी (कंकोल) और छोटी इलायची यह दोनों ५-५ तोला। सबका कपड़छान चूर्ण कर अर्क गुलाब और केवड़ा अर्क में खूब घोटकर छाया में सुखा कर रख लें। यही हिमांशुरस है। मात्रा--१ से २ रत्ती, दिन में तीन चार बार गुलकन्द, दूध, तन्दुलोदक मिश्री आदि के जल से विचार कर प्रयोग करें। गुण--ज्वर की तीव्रता, ज्वरजन्यप्रदाह, पित्त प्रधान ज्वरावस्था और मूत्राघात आदि में बहुत उत्तम है। जब ज्वरोष्मा सीमा से बाहर हो तो तब बार-बार १५-२० मिनट के बाद इसका प्रयोग कराने से ज्वर शीघ्र ही सीमित होता है।

इस रोग में बहुत से उपद्रव देखे जाते हैं। जिन रोगियों को दाने निकल आते हैं उनके उपद्रव स्वयं शान्त होजाते हैं। फिर भी जो उपद्रव दिखाई दें उन की चिकित्सा अवश्य तुरन्त ही करनी चाहिये। उपद्रवों के उत्पन्न होते ही उनकी चिकित्सा के साथ-साथ गोरोचन मिश्रण भी अवश्य चालू रखना चाहिए। गोरोचन मिश्रण इस रोग के लिए ईश्वरीय देन है। इसलिए इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

रोग के आरम्भ से लेकर अन्त तक स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। यह संक्रामक रोग है इसलिये रोगी बच्चे से अन्य बच्चों को दूर रखना चाहिये। रुग्ण बच्चे के कमरे में गूगल का धूम्र देते रहना चाहिये। जहां तक हो वहां तक कम से कम प्रकाश का प्रबन्ध कमरे में रहे, यह ध्यान रखने की बात है। घृत का दीपक जलाया जाय तो बहुत ही उत्तम है। सूर्य प्रकाश कमरे में रहे और वायु का आना जाना ठीक रहे यह ध्यान भी देना चाहिये। पीने के लिये उबाल कर ठंडा किया जल और पथ्य लघु देना चाहिए। प्रायः यह रोग स्वतः शान्त होजाता है, इसलिए बिना जरूरत औषधि की भरमार न करनी चाहिए।

शीतला

कविराज श्री. नानकचन्द्र वैद्य शास्त्र, दिल्ली।

यह एक संक्रामक रोग है जो प्राय: भारत तथा अन्य देशों में ग्रीष्म तथा शरद् ऋतु में बड़े वेग से फैलता है। विचार की दृष्टि से देखा जाय तो यह रोग पित्त के प्रकोप से दूषित रक्त के प्रभाव से सर्व देह में होता है। आयुर्वेद में इसे मसूरिका कहते हैं।

यथोक्तम्

मसूराकृति संस्थाना: पिड़का: स्युर्मसूरिका: ॥

हेतुनाह—

कट्वम्ल लवण क्षार विरुद्धाध्यशनाशनैः।
दुष्टनिष्पाव शाकाद्यैः प्रदुष्ट पवनोदकैः ॥१॥
क्रूर ग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषाः समुद्धताः।
जनयन्ति शरीरेऽस्मिन् दुष्टरक्तेन सङ्गताः ॥२॥

अर्थात्—पूर्वोक्त कटु अम्लादि तथा क्षारीय अन्नपानादि से देशकाल प्रकृति तथा संयोग या मान से विरुद्ध द्रव्यों के सेवन से, भोजन पर पुनः भोजन करने से, दुष्ट (वासी, क्लिन्न दुर्गन्धयुक्त) खाने से, शाकादि के अधिक खाने से तथा देश की जलवायु दूषित हो जाने से, शनि, मङ्गलादि क्रूर ग्रहों के देश को देखने से, दोष वातादि बढ़कर इस देह में दुष्ट होकर रक्त से मिलकर मसूराकृति पिडिकाओं को देह में उत्पन्न कर देते हैं।

तन्त्रान्तरेऽपि—

पित्तं शोणित संसृष्टं यदा दूषयति त्वचम्।
तदा करोति पिडिकाः सर्वगात्रेषुदेहिनाम् ॥३॥
मसूर मुद्गमाषाणां तुल्याः कोलोपमा अपि।
मसूरिका स्तुता ज्ञेयाः पित्तारक्ताधिका बुधैः ॥४॥

अर्थात्—पित्त रक्त से मिलकर जब त्वचा को दूषित कर देता है तो सर्व शरीर में मसूर, मूंग, माष तथा बेर के समान पिड़का उत्पन्न पित्तरक्ताधिक्य से हो जाती हैं। पाश्चात्य मत में इसके दो भेद मानते हैं (स्मालपॉक्स या पॉक्स) परञ्च आयुर्वेद में वातज, पित्तज, रक्तज, त्रिदोषज, रोमान्तिका तथा सप्तधातुगत स्वीकार करते हैं।

पूर्वरूप—

तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरतिर्भ्रमः।
त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्र रागश्चजायते ॥५॥

निदान का परिशिष्टकर्ता शीतला को सात प्रकार से मानता है।

यथाचोक्तम्—

देव्या शीतलयाऽऽक्रान्ताः मसूर्यः शीतलावहिः।
ज्वरयेयुर्यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरे ॥६॥
ताश्च सप्तविधाः ख्याता स्तासां मेदान्प्रचक्ष्महे।
ज्वर पूर्वा बृहत्स्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ॥७॥

१—यह बृहत् शीतला सात दिन तक निकलती है और ७ दिन में पूर्ण होती है और तृतीय सप्ताह में सूख जाती है तथा स्वयं झरने लग जाती है।

२—वातश्लेष्म से उत्पन्न होने वाली कोदों के समान हो जाती हैं कोई उसे पाक हुई कहते हैं परञ्च उसका पाक नहीं होता। वह जल शूक की तरह अंगों को वेधवत् पीड़ा करती है। वह सात दिन वा दश दिन में बिना औषधि के शान्त हो जाती है।

३—गर्मी से उत्पन्न होने वाली कण्डू तथा स्पर्शन प्रिय होती है उसे पाणिसहा कहते हैं, सात दिन में स्वयं शोष होती है।

४—सर्षपाकार, पीत सरसों के समान वर्णयुक्त नाम से सर्षपिका इसमें अभ्यङ्ग का निषेध कहा है।

५—किंचित् उष्मा के कारण ये राई के समान पिड़का बालकों को होती है यह बिना कष्ट स्वयं सूख जाती है।

६—कोष्ठवद्रता से रक्त, मण्डल युक्त, ज्वर पूर्व होती है। इसमें व्यथा भी होती है, तीन दिन ज्वर रहता है।

७—सप्तमी चर्मभिधा इसके मिलने से बहु-फोट-युक्त दिखाई देती है, जहां एक ही पिड़का कृष्ण होने से उसे चर्मजा कहते हैं।

मसूरिका का विस्तार बहुत है अतः लेख विस्तार के भय से निदान वर्णित भाग को वैद्य महानुभाव स्वयं देख सक्ते हैं, अतः अधिक नहीं लिखा है।

चिकित्सा—

जहां तक मेरा अनुभव है उसीका अनुकूल वर्णन होगा। शीतला ग्रसित रोगी को सदा स्वच्छ स्थान पर रखना तथा उसके वस्त्रादिकों को अन्य व्यक्ति के स्पर्शादि से रक्षा करनी चाहिए, जब रोगी को ज्वर, छींक, कास आदि हों और मुख पर रक्ताभ कान्ति हो मसूर के समान कण्ठ या मुख पर पिड़का दिखाई दें तो उसे उसी रात्रि केसर १ या २ तिरियां (फूल) मुनक्के में रख कर दे देने से सभी विकार एक या दो दिन में सर्व त्वचा में बाहिर दृष्टिगोचर होने लगते हैं, पुनः ७ दिन में वह पूर्ण होकर शांत होने लग जाते हैं।

जहां तक देखा गया है इस पाप रोग में दैवी उपचार अर्थात् शीतला का ध्यान, स्तोत्र पाठादि से भयङ्कर शीतला का रोगी थोड़े ही दिनों में स्वस्थ होने लग जाता है। इसलिए मेरा अनुभव है कि शीतलाष्टक का पाठ रोगी के पास सुनाने से असाध्य रोगी भी बहुत शीघ्र रोग मुक्त हो गये हैं।

उक्तञ्चयथा—

न मन्त्रौनौषधं तस्य पाप रोगस्य विद्यते।
त्वामेकां शीतले धात्रींनान्यां पश्यामि देवताम्॥

शीतलाष्टक पुस्तक विक्रेताओं के पास सहज ही से मिल सकता है उसके श्रद्धा तथा विश्वास सहित पाठ से असाध्य रोगी स्वस्थ होते मैंने देखे हैं।

अब आयुर्वेदीय चिकित्सा का वर्णन करता हूँ—

ज्वर के उत्पन्न होने पर जल का स्पर्श न करें तथा निर्वात गृह में वास करें। भांग का चूर्ण कपड़े में बांधकर देह पर मर्दन करें।

रुद्राक्ष तथा मरिच इनको वासी जल में घिस कर पीने से तीन दिन में रोगी पाप रोग से मुक्त हो जाता है। मुनक्के का क्वाथ देना भी हितकर होता है।

रोमान्तिका में काला जीरक के पत्र का क्वाथ हरिद्रा का प्रक्षेप डाल पिलाने से ज्वर, विस्फोट, मसूरिका दूर हो, अथवा—

ऊंटकटारे की जड़, वा अनन्तमूल इनको विधि-पूर्वक ग्रहण कर क्वाथ पिलाने से लाभ होता है। हरिद्रा तथा इमली के पत्ते शीतल जल से पीने से भी लाभ होता है।

विशेष कषाय—

परवलपत्र, गिलोय, मोथा, वांसा, धमासा, चिरायता, निम्ब, कुटकी, पित्तपापड़ा, सब समभाग २ तोला का क्वाथ बनाकर पीने से मसूरी जो कच्ची हो उसे शान्त करता है और पक्व को सुखा देता है। इससे उत्तम औषधि मसूरिका नाशक अन्य नहीं है।
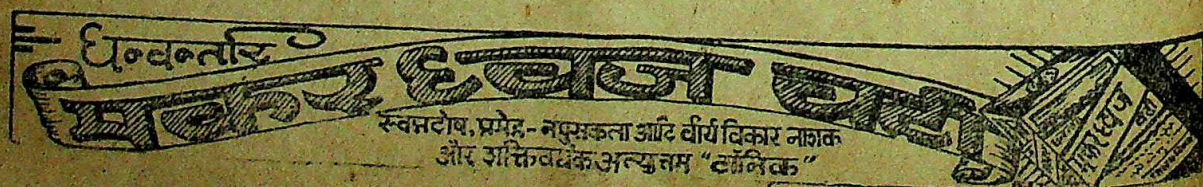
शीतला रोग

विद्यावाचस्पति गणेशदत्त शर्मा, 'इन्द्र' आगर (मालवा)

शीतला, अपने नाम से सर्वविदित रोग है। इसे सर्वसाधारण "माता" नाम से पुकारते हैं। इसी का नाम चेचक है। संस्कृत में इसे मसूरिका नाम दिया है। यह एक भयङ्कर संक्रामक रोग है। इसका विष वायु में घुल मिल जाता है, और रोगी के उस वायु में श्वासोच्छ्वास लेने पर इसका प्रभाव हो जाता है। इसका पहला लक्षण शिथिलता और जुकाम देखा गया है। शीतला के विष को अपना प्रभाव दिखाने में एक से दो सप्ताह तक लगते हैं। वस्त्र और शरीरादि के स्पर्श से भी यह रोग लग जाता है। वैसे तो यह रोग जीवन में चाहे जब हो जाता है, परन्तु बहुधा बच्चों को तो होता ही है। जीवन में एक बार इस रोग का आक्रमण होने पर दूसरी बार शायद ही होता है, और तीसरी बार प्रतिकरोड़ एकाध को ही देखा गया है। यह एक दुष्ट रोग है जो प्राणी के लिए प्रकृति का अभिशाप ही माना जाना चाहिए।

वसन्त ऋतु में प्रायः यह रोग अधिक फैलता है। वैसे किसी भी मौसम में इसका उपद्रव होजाता है, जब कि गर्मी का प्रभाव उस मौसम में होने लगे। जर्मन डाक्टर लुईकूने का कहना है कि एक प्रकार का विजातीय द्रव्य शरीर में उत्पन्न होता रहता है, जब यह अधिक बढ़ने लगता है तो प्रकृति उसे निकालना चाहती है और वह शीतला की फुन्सियों के रूप में बाहर आता है। पहले शरीर टूटने लगता है। फौरन ही शीतज्वर हो जाता है। कंपकंपियां आरम्भ हो जाती हैं। मलबद्ध हो जाता है। कमर और सिर में पीड़ा होने लगती है। ज्वर का तापमान १०४ डिग्री तक हो जाता है। भूख नहीं लगती। प्यास बढ़ जाती है। यह स्थिति ४८ घण्टे रहती है, बाद में दाने निकलने लगते हैं। पहले मुख, मस्तक पर, बाद में छाती, पेट और भुजाओं पर, सबसे बाद में पेट के निचले भागों पर दाने उभरते हैं। ये दाने धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं। रोग की भयङ्करता दानों के छोटे बड़े आकार से ही जानी जाती है। जितना उपद्रव इनका मुख पर होता है, उतना अन्य भाग पर नहीं। आंखें सूजकर बन्द हो जाती हैं। नाक, कण्ठ आदि भी इससे आक्रान्त हो जाते हैं। रोगी परेशान हो जाता है, छटपटाता है और शतशत फोड़ों के दर्द से व्याकुल हो उठता है। रोग की भयङ्करता ११-१२ दिन तक रहती है और दो हफ्ते में आराम हो जाता है।

आयुर्वेद ग्रंथों में शीतला के अनेक भेद हैं। यथा—पित्तज, कफज, रक्तज, सन्निपातज, रक्तगत, मांसगत, मेदगत, अस्थिगत, वीर्यगत आदि। रस रक्त तक जिस शीतला का अंश रहता है, वह बिना चिकित्सा के ही आराम हो जाती है। कफज और पित्तज भी दुस्साध्य नहीं होती। वातपित्त-श्लेष्म-वातज शीतला अधिक कष्टसाध्य है। सन्निपातज असाध्य होती है। अस्थिमज्जा और वीर्यगत शीतला भी असाध्य है। शीतला में खांसी होना, हिचकियां आना, ज्वर का बढ़ जाना, जलन, नाक और आंखों से खून बहना, कण्ठ में घरघराहट आदि उत्पात असाध्यता के सूचक हैं।

शीतला कई प्रकार का माना गया है। बड़ी, कोद्रवा (कोदों के दाने जैसी), राई के दाने जैसी, सर्षपिका (सरसों के दाने जैसी) चिकनपाक्स, मीजल्स (खसरा) इत्यादि।

शीतला को भयङ्कर कष्टसाध्य और असाध्य रोग माना है। समाज में इसे देवी का प्रकोप मान कर बीमार का औषधोपचार नहीं करते बल्कि उसे माता जी के भरोसे छोड़ देते हैं और भजन, पूजन, गंडा, ताबीज, मानता आदि करते रहते हैं। परन्तु यह भ्रम है। जब यह एक रोग है तो इसका इलाज भी आवश्यक है। हां, इतना जरूरी है कि इलाज

बड़ी सावधानी से किया जाय। माता के भरोसे छोड़ बैठना बड़ी भारी भूल है। स्कंदपुराण ने तोः—

"नमन्त्रंनौषधंतस्यपापरोगस्यविद्यते ।
त्वमेकां शीतले धात्रींनान्यांपश्यामि देवताम् ।"

अर्थात्—सिवायशीतलादेवी के इस भयंकर रोग के लिए न तो कोई मंत्र ही है और न औषधि ही, इत्यादि कहा है। और यहां तक कह दिया है कि—

"शीतलेशीतलेचेतियोब्रूयाद्दाहपीडितः ।
विस्फोटक भयंघोरं क्षिप्रंतस्य प्रणस्यति ।"

अर्थात्—शीतला का रोगी यदि "शीतला शीतला" इत्यादि नामोच्चारण करता है तो उसका महारोग आराम हो जाता है।

"शीतलेत्वंजगन्माता शीतलेत्वंजगत्पिता ।
शीतलेत्वंजगद्धात्री शीतलायैनमोमनः ।"

स्कंदपुराण इस श्लोक को ही शीतला की दवा बता कर मौन होगया है। परन्तु इस प्रकार विश्वास कर लेने मात्र से रोग को कोई लाभ पहुंचना संभव प्रतीत नहीं होता।

शीतला की रोक थाम के लिए तथा उसका उपद्रव कम करने के लिए चेचक का टीका लगवाना आवश्यक है। छोटे बच्चों को जरूर टीका लगवा देना चाहिए। एक बार के टीके का प्रभाव जन्म भर रहता है, यह भूल है ६-७ साल बाद चेचक का टीका लगाते रहने से ही इस बीमारी से प्राण हानि संभव नहीं। परन्तु ऐसा होता कम है। बचपन का टीका जीवन भर के लिए रक्षक मान लिया जाता है। पहला टीका ३ और ६ महीने की उम्र में बालक को लगवा देना चाहिए। टीके प्रातः दो जगह लगाए जाते हैं परन्तु तीन चार जगह लगाने से विशेष बेफिक्री होजाती है। टीका लगवाने के एक हफ्ते बाद बीमारी से लड़ने की क्षमता रक्ताणुओं में उत्पन्न हो जाती है, इस लिए चेचक फैलने के दिनों में भी टीका लगवाया जा सकता है। यद्यपि टीके की यह प्रथा विस्तार रूप से पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत मानी जाती है, किन्तु यह प्रथा हमारे देश में भी पहले प्रचलित थी, ऐसे प्रमाण उपलब्ध हुए हैं, परन्तु पद्धति और निर्माण में कुछ अन्तर था।

शीतला की चिकित्सा में सबसे पहली सावधानी यह रखनी चाहिए कि रोगी को अन्य स्वस्थ पुरुषों से दूर रखा जाय। रोगी के कास में आने वाली हरेक वस्तु को रोगाणु रहित बनाने के बाद ही काम में लानी चाहिए। रोगी को एक साफ सुथरे कमरे में रखना चाहिए, जिसमें कोई सामान न हो। कमरे में प्रकाश और शुद्ध वायु को आने देना चाहिए। परिचारक के अतिरिक्त लोगों को कमरे में नहीं आने जाने देना चाहिए। स्वास्थ्य समाचार पूछने वालों को भी अन्दर नहीं आने-जाने दिया जाय। कमरे के बाहर सुगन्धित द्रव्य जलाने चाहिये। रोगी के थूक, मलमूत्रादि को राख से ढांकते रहना उचित है। परिचारक को कमरे में जाने के वस्त्र अलग और बाहर जाने के वस्त्र अलग अलग रखने चाहिए। खिड़की और दर्वाजों पर लाल रंग के पर्दे लटकावें और उन्हें मर्करी लोशन से छींटते रहें तो और भी अच्छा हो। कीटाणु नाशक पदार्थ जैसे नीम के पत्ते आदि रोगी के कमरे में यत्र-तत्र रखे जावें जो रोज बदलते रहें। यदि कमरे में बाहर से तेज और शीतल हवा आती हो तो उसकी रोक आवश्यक है। इसी प्रकार प्रकाश की अधिकता भी ठीक नहीं है।

शीतला के रोगी को नमक नहीं देना चाहिये। इससे फुन्सियों में खुजालहट होने लगती है। आरम्भ में ५-६ दिन तक दूध दिया जा सकता है परन्तु बाद में बन्द कर देना चाहिये। चिकित्सक यदि चाहे तो थोड़ा ताजा मीठा दही भी दे सकता है। यदि त्वचा में खुजलाहट हो तो नीम की छोटी सी टहनी से धीरे-धीरे खुजलाने देना चाहिये। परिचारिकों को कमरे में जाने से पूर्व एक उपवस्त्र पहन लेना चाहिए जिसे कमरे से बाहर आकर निकाल देना चाहिये। अपने हाथों को फार्मेलिन के हल्के घोल से अथवा साबुन से धो लेना आवश्यक है।

शीतला के रोगी को प्यास बहुत लगती है, अतएव उसे पीने के लिये ठण्डा स्वच्छ पानी थोड़ा-थोड़ा देते रहना चाहिये। पानी न देना भयङ्कर भूल है। पानी न देने से रोग बढ़ने लगता है। मूंग की दाल का पानी भी तृषा शामक और ज्वर को कम करने वाला है। यह एक विचित्र धारणा लोगों में घर कर गई है कि शीतला का रोगी जो भी पदार्थ खाने को मांगे उसे देना चाहिए, क्योंकि रोगी नहीं मांगता बल्कि शीतला माता मांगती है, परन्तु यह धारणा भूल है। खाने के लिए बहुत सोच समझ कर ही हल्के, सुपच और गुणदायक पदार्थ देने चाहिए। तैल से बनी चीजें, तीक्ष्ण, खट्टी, लाल मिर्च, अति शीतल, कब्ज करने वाली चीजें कभी नहीं देनी चाहिये। बादल के गर्जन और बिजली की कड़क से रोगी को बचाना चाहिये। किसी के रोने की आवाज भी बीमार के कानों तक नहीं जाने देनी चाहिये।

मुनक्का में केशर के दो तीन फूल मिलाकर रोगी को देना हितकर है। गधे की लीद को गौमूत्र में भिगो कर थोड़ी थोड़ी धूनी देनी चाहिये। व्रणों पर गधे की लीद की राख बुरकना भी लाभप्रद है। शीतला के रोगी को हल्का सा जुलाब जरूर दे देना चाहिये। मेरे अनुभव में नीचे लिखा जुलाब का नुस्खा अत्यन्त उपयोगी है—

सौंफ, शाहतरा, नीलोफर के फूल, बनफशा के फूल, चार-चार माशा और सात दाने उन्नाव। सब को ४० तोला जल में ४-५ घण्टे तक भिगोदें। बाद में मसल-छान कर ३ माशा धुली हुई खूबकला फंका कर ऊपर से उक्त जल में आवश्यकतानुसार शर्बत नीलोफर डालकर पिला देवें। टंड के मौसम में इस में ३ माशा मुलहठी और ६ माशा अजमोद भी मिला देनी चाहिए खूबकला चेचक में बड़ी उपयोगी है। स्मरण रहे खूबकलां खूब धोकर ही देनी चाहिये, शीतला के रोगी को अंजीर का पानी बड़ा ही हितकर है। अंजीरों को पानी में ८-१० घण्टा भिगोने से पानी तैयार होजाता है। मुनक्का में दो-चार दाने अनविधे मोती देदेना भी हितकारी है। बच्चों को मोती पीसकर मुनक्का में देना चाहिए। गर्मी के बढ़ जाने पर अर्क केवड़ा में अर्क सौंफ मिलाकर एक-एक औंस दिन में दो-तीन बार दिया जासकता है। रोगी को थोड़ा-थोड़ा शहद भी चटाना चाहिए।

करंज के पत्तों को रोगी के घर में लटका देना भी शीतला में हितकारी है। करंज के पत्तों पर रोगी को सुला देने से चेचक के दाने बहुत जल्दी बाहर निकल आते हैं। छोटा पंचमूल, बृहद्पंचमूल, रास्ना, आंवला खस, धमासा, गिलोय, धनियां और नागरमोथा इनका क्वाथ शीतला में अत्यन्त लाभकारी है। मजीठ की छाल और बड़ की छाल का लेपन व्रणों पर अत्यन्त हितकारी है। जब व्रण पकने पर हों तब नीचे लिखा क्वाथ पिलाइए।

मुलहठी, दाख, गिलोय, अनार और गन्ने की जड़ का क्वाथ शहद या गुड़ डालकर थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें। छोटी हर्रे शीतला में बड़ी लाभप्रद हैं। घिस कर दो-तीन हर्र रोज पिलाते रहें। यदि चेहरे पर चेचक के दाग पड़ गये हों तो २-३ महीने तक लगातार हर्र के सेवन से मिट जाते हैं या कम हो जाते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा में थोड़ा थोड़ा नीली बोतल में तैयार किया हुआ पानी दिन में २-३ बार देना चाहिये। यदि रोगी को यह जल अधिक दिया गया तो हानि करेगा। रोगी के बकवास की दशा में नीला प्रकाश सारे शरीर पर डालना चाहिए, हरे कांच के प्रकाश से दाने बाहर निकल आते हैं और सूख जाते हैं।

सारांश कि शीतला एक भयङ्कर संक्रामक रोग है इसमें औषधोपचार के साथ ही सफाई, शुद्धि और रोगी के आहार विहार की ओर बड़ी सतर्कता से ध्यान देना चाहिए। यही एक रोग ऐसा है जो लोगों को बदसूरत, काना और अन्धा बना डालता है।

चेचक (माता) रोग

व उसकी चिकित्सा

लेखक — साहित्यायुर्वेद रत्न डॉ० अर्जुनसिंह वर्मा, जेजूसर (राजस्थान)

यह एक तीव्र संक्रामक विस्फोटक ज्वर है। जो बच्चों में अधिक घातक होता है। इसे अंग्रेजी में स्माल पाक्स 'Small Pox' मरहठी में देवी उर्दू में चेचक तथा बोलचाल में मसूरिका शीतला माता आदि कई नामों से पुकारते हैं।

वैसे तो यह रोग हर एक आयु के मनुष्यों के होता है, किन्तु अधिकांश बच्चों को ही हुआ करता है।

मसूर के समान इसके दाने होने से इसका नाम मसूरिका रक्खा गया है। किन्तु इसमें अनेक प्रकार के छोटे बड़े दाने हुआ करते हैं और अनेक प्रकार के उपसर्ग विकार भी पैदा होते हैं। तेज ज्वर के साथ सारे शरीर पर दाने से हो जाते हैं।

यह एक संक्रामक रोग होने से एक से दूसरे को होता है। इस रोगी के कपड़े, दानों का पीप आदि के संसर्ग से यह दूसरे आदमी को होता है। यह व्याधि जन्तुजन्य होने से फैलती है। खाने-पीने, रहने सहने की गन्दगी से मन में इस रोग का भय होने से, जलवायु दोष से, त्रिदोष विकार से यह व्याधि होती है।

इसका प्रभाव मैले, कुचैले, काले रंग के एवं निर्बल प्रकृति के बालकों तथा मनुष्यों को ही अधिक हुआ करता है। इस रोग से बाल मृत्यु संख्या काफी बढ़ गई है।

पहिले ही दिन जाड़े के साथ १०३-१०४ अंश तक ज्वर आता है। उसी समय सिर, कमर और बदन में सख्त दर्द तथा कै होती हैं। बच्चों में प्रारम्भिक जाड़े के बदले आक्षेप आते हैं। रोग के चौथे रोज वास्तविक विस्फोट निकल आते हैं। ये पहले पहल माथा और पहुंचे पर निकलते हैं और २४ घण्टे के भीतर चेहरे के अन्य भागों पर, शाखाओं पर तथा थोड़े मध्य शरीर पर दिखाई देते हैं विस्फोट निकलते ही ज्वर उतरता है। लक्षणों की तीव्रता घटती है और रोगी कुछ आराम महसूस करता है। पांचवें या छटे दिन विस्फोटकों में पानी भरता है, वे अधिक उभर आते हैं। परन्तु इनका मध्य कुछ दबा रहता है। आठवें दिन उत्पत्ति क्रमानुसार माथे से शुरू होकर इनमें पूय बनना प्रारम्भ होता है। इस समय ज्वर फिर चढ़ता है और लक्षण भी तीव्र होते हैं।

मसूरिका रोगी के कमरे में एक प्रकार की गंध होती है जो इस पूयावस्था में अधिक रहती है। ग्यारहवें दिन स्फोट फटने लगते हैं। अथवा शुष्क होकर उन पर काले भूरे खुरन्ट जमने लगते हैं। ज्वरादि लक्षण भी कम होने लगते हैं और चार पांच दिनों में रोगी अच्छा होजाता है। परन्तु खुरन्ट कई दिन बाद धीरे-धीरे उतरते हैं। उतरने के बाद उनके स्थान पर गढ़े पड़ जाते हैं, जिससे शरीर विशेषतया चेहरा विकृत होजाता है।

इस रोग में विविधता बहुत होती है। कभी-कभी रोग बहुत सौम्य विशेष करके टीका लगाये हुए रोगियों में बहुत होता है। कभी-कभी बाह्य त्वचा की भांति विस्फोट मुख, ग्रसनिका, स्वरयंत्र, आमाशय की श्लेष्मल त्वचा पर भी निकल आते हैं। जिससे स्वरभङ्ग, निगलने में कष्ट आदि लक्षण होते हैं। कभी-कभी विस्फोटक त्वचा तथा मल मूत्रादि द्वारा रक्त का स्राव होता है। सम्मिलित या रक्तस्रावी मसूरिका के रोगी के बचने की आशा बहुत कम होती है और जब बचता है तब अन्धा, बेहरा तथा अन्य रीति से विकल होकर बचता है। एक बार रोग से बचने के बाद दूसरी बार रोग होने की सम्भावना बहुत कम होती है। प्रतिबन्धक टीका

लगाने से यह रोग बहुधा नहीं होता है। अतः टीका लगवा दें। नाल काटते समय अनविधे मोती भर दें। या चालीस दिन के अन्दर ४-६ मोती निगलवा दें। माता निकलते में गर्म इलाज, माता ढलने पर ठण्डा इलाज करें।

आयुर्वेद में इसके ५ भेद माने हैं—

(१) वातज (२) पित्तज (३) कफज (४) रक्तज (५) सप्त धातु जन्य।

चिकित्सा—

अब आयुर्वेदिक चिकित्सा लिखता हूँ। ब्राह्मी-वटी १ से ३, दिन में तीन बार पानी के साथ दें। प्रवाल पिष्टी १ से २ रत्ती दिन में तीन बार शहद में मिलाकर दें। पटोलादि काढ़ा दिन में तीन चार बार देना चाहिए। लक्ष्मीनारायण रस १ से २ रत्ती दिन में तीन बार शहद से दें। अगर रोगी को कब्जियत हो तो द्राक्षादिगुटी ५-६ देनी चाहिए।

गुठली सहित २ छुआरे उसके बराबर खोपरा, ६ अनविधे मोती सब खरल में कूट-पीस इसकी ४ गोली बना १ गोली निहार मुंह खावे। उचित आहार रक्खें। ऐसा करें तो साल भर तक माता नहीं निकलेगी। यह मात्रा ७ वर्ष के बालक के लिए है। इससे कम उम्र वाले को तदनुसार घटा दें। हर साल ये एक दफा खिलादें। एक आदमी के लिए एक ही दफा बनावें। दूसरे के लिए अलग बनावें।

इस रोग के रोगी को कब्जीयत न रहे इसलिए द्राक्षादि गुटी ५-६ गोली दिन भर में दे देनी चाहिए। दिन में ३-४ बार रुद्राक्ष की माला (दाना) पानी में घिस कर ठीक होने तक वह पानी पिलाना चाहिए। जो मसूरिका बाहर निकल कर फिर भीतर चली जाय तो कचनार की छाल का काढ़ा बनाकर उसमें सोनामक्खी की भस्म डालकर पीने से मसूरिका बाहर निकल आती है। मुख तथा गले में व्रण हो तो आमले तथा मुलैठी के काढ़े से कुल्ला करावें।

मुलहठी, बहेड़ा, आमला, मूर्वा, दारुहल्दी की छाल, नीलकमल, खस, लोध, मजीठ इनका

से मसूरिका नष्ट हो जाती है तथा फिर कभी नहीं होती। लिसौड़े की छाल को पीसकर आंखों पर गाढ़ा लेप करें। मसूरिका में आरने कण्डों की राख का भुरकना हितकारी है।

शीतला के पूर्व ज्वर आवे तो शीघ्र केले के स्वरस या अड़ूसा के स्वरस या चमेली के पत्तों के स्वरस, मुलैठी के रस या चन्दन सफेद को घिसकर इनमें शहद मिलाकर पीने से शीतला के विकार नष्ट होते हैं।

लाल चन्दन, अड़ूसा, नागरमोथा, गिलोय, दाख इनको घोटछान कर पीने से शीतला का ज्वर शान्त हो जाता है। गधी का दूध रोगी को दिन में २-३ बार रोज पिलावें। गाय के घी को कांसे की थाली में ठण्डे जल से कई बार धोकर उसमें कपूर मिलाकर गोटियों पर लगाने से जलन शान्त होती है।

खूबकला चेचक के मरीज के बिस्तर में रोज नई डालने से तथा २४ घंटे तक पानी में भिगोकर छानकर उस पानी को पिलाने से बुखार घटता है।

चेत के प्रारम्भ से असाढ़ के अन्त तक चेचक का मौसम है। इसलिए इन दिनों शाम को चन्दन का शर्बत और शर्बत जीसोन (गुड़हल) को मिलाकर पीते रहने से चेचक प्रायः होती ही नहीं।

गोटियों का मुरझाना शुरू होने से सन्दल (चन्दन का तेल) लगाना चाहिए।

चेचक का कष्ट बढ़ने पर तिली के तेल या चमेली के तेल में थोड़ा पिपरमेंट मिलाकर किसी पक्षी के पर से गोटियों पर लगाना चाहिए।

समाक, गुलाब के फूल और मसूर की दाल को गुलाबजल में पकाकर कुल्ले या गरारे कराने से गला चेचक की तकलीफ से बचा रहता है।

कटय्या की जड़ आधपाव लेकर काढ़ा बनाकर पिलावें। हल्दी को पानी में पीसकर ४-४ रत्ती की गोली बनाकर १-१ गोली ठंडे पानी से खिलावें।

मोती सच्चे, जहरमोहरा, बन्शलोचन, हजरत

ले कूटपीस गुलाबजल में घोटकर ४-४ रत्ती की गोली बना सुबह शाम धारोष्ण दूध या ताजे जल से दें।

इमली के बीजों की गिरी ५ तोला। खाने की हल्दी २॥ तोला कूटपीस मटर के बराबर गोली बना ताजे जल से दें।

राल, हींग, लहसुन की धुनी दें। मोती मुनक्का में खिलावे।

हरी दूब की जड़ का पानी पिलावें। लालचन्दन, बांसे की छाल, नागरमोथा, गिलोय, मुनक्का, इन सबको गंगाजल या साधारण जल में पीसकर पिलावें।

गुलबिछवा घास को ४ रत्ती माता के दूध में घिसकर पिलादे शीघ्र आराम होगा। नीम की पत्ती या मोरपुच्छ से हवा करें। यदि माता के फफोले बड़े हों तो पांच दिन के बाद सुई से फोड़दें अथवा उष्ण ऋतु में गुलाब के फूल, मौलसिरी के पत्ते और बुरादा चन्दन की धूनी दें। शीत काल में सोसन के पत्ते और झाऊ की लकड़ी की धूनी दें।

यदि फफोलों में घाव होजावे तो सूखे गुलाब के फूल, सफेदा काशगरी, सिंदूर, बबूल का गोंद बारीक पीस बुरके। तिल्ली के तेल में तेल से चौगुना दूध डाल जलावें जब तेल मात्र रह जाय तब उतार छान लगावें। सिर्फ लौंग का पानी पीने को दें। सफेद चन्दन, सींक का जीरा, नेत्रबाला, चिरायता, कुड़ा की छाल, स्याह जीरा, गिलोय, छोटी इलायची, कमलगट्टा की मींग, खस, पाषाणभेद, लालचन्दन, बालछड़ बारहसिंगा, तुलसी पत्र, कालीमिर्च, केशर, कस्तूरी गोरोचन, सोने के बरक, मूंगा शुद्ध, अनबिधे मोती, सबको बराबर लें, गंगाजल या गुलाबजल से मूंग बराबर गोली बनाना, और जल की घूंट से देना।

सफेद पुनर्नवा की जड़ और कालीमिर्च दोनों ४-४ माशे लेकर शीतल जल के साथ पीसकर पान करने से मसूरिका का निवारण होता है। पुरुष के दाहिने अंग में और स्त्री के बांये अंग में हरड़ की मींग को बांधने से मसूरिका नहीं निकलती।

नीम की कोमल पत्तियां ३ और कालीमि[र्च] ३ इन दोनों को एकत्र शीतल जल के साथ पीस[कर] मसूरिका के दिनों में कुछ समय तक सेवन [करने] से मसूरिका का भय नहीं रहता।

कुछ यूनानी चिकित्सा लिखता हूं—

बनफशा के फूल ७ माशे, उन्नाव और नि[...] मुनक्का ६-६ दाने। अंजीर ३ दाने और खूब[कलां] ७ माशे। लेकर सबको पानी में पकाकर छान और शरबत उन्नाव मिलाकर पिलायें।

मीठे अनार के ३ माशे दानों को मिट्टी के शकोरे में रखकर अध-भुना करे और उन्हें मुंह[में] रख कर चूसें। यह चेचक के बाद की खांसी [में] फायदेमंद है।

चेचक के बाद होने वाले श्वास के लिए खूब[कलां] असली ५ माशे पीले रंग के अंजीर ५ दाने [...] कतरा हुआ आबरेशम (रेशम का कोया) ५ [...] तथा शहद ४ तोले लेकर पानी में पकाकर छान[कर] पीवे।

ऐलोपैथिक चिकित्सा—

ग्लूकोज सोल्यूशन २०-२५ C. C. नस में लगा[वें।] दानों पर बोरिक पौडर लगावें। सीबाझोल म[लहम] या पेन्सिलीन मलहम भी लगावें। सिबाजौल टे[बलेट] २-२ गोली चार-चार घण्टे पर पहिले दिन [...] फिर एक गोली करके दूसरे दिन से देना चा[हिए।] पेन्सिलीन की एक लाख यूनिट चार-चार घ[ण्टे] इन्जेक्शन लगाने से दाने जल्द सूख जाते हैं। [...] अन्य उपद्रव नहीं होते और रोगी जल्द आ[...] लाभ करता है, दानों पर ओलीव ओईल ल[गाना] चाहिए। जिस चादर पर रोगी सोता हो सल्फोनाम[ाइड] १ ड्राम एसिडबोरिक १ ड्राम थोड़ा-थोड़ा बराबर [...] देना चाहिए। कभी-कभी रोगी के मुंह से खू[न] आता है। इस पर रिडौक्शन (या सेलीन) १ [...] केलसीम लेक्टेट १० ग्रेन तीन बार रोज अन्य द[वा के] साथ देना चाहिए। दानों में पीव आ जाने पर [...] खुजलाहट और दुर्गन्ध आने लगती है। [...] उन पर—

मेंथल, थायमल, एसिड बोरिक, एसिड सैलीसाइलिक, आयल युकलिप्टस, लाइकर कैल्सी ...के १-१ ड्राम, ओलीव आईल १६ औंस मिलाकर ...ना चाहिए। गर्म पानी में बोरिक एसिड देकर आंखों को बराबर धोते रहना चाहिए। एक दो बूंद ...लिकुइड पैराफीन दे देने से आंखें सटती नहीं। यदि आंखों में दाने दिखाई पड़े तो मरक्यूरो-...लोशन और पेन्सिलीन आई आईन्टमेंट व्यव-...करना चाहिए। यदि कौर्नियल अल्सर हो तो ...लीन ब्लू या औप्टल ए देना उचित है। अन्य ...णों की लक्षणानुसार चिकित्सा करनी ...हिए। अच्छे हो जाने पर दानों के स्थान में गढ़े ...जाते हैं जो सुन्दरता को नष्ट कर देते हैं। कच्चे नारियल के पानी से कुछ दिनों तक नित्य ...ने से साफ होजाते हैं। डदमल क्रीम भी लगाना ...च्छा है।

...योपैथिक चिकित्सा लिखाता हूँ—

सेरेसीनियां ३०—चेचक की अव्यर्थ औषधि ...इसको बुखार आने के दिन से दिन में दो बार ...देने से अनायास ही बीमारी हल्की होकर ...ठीक हो जाती है तथा दाग मिट जाते हैं।

आरम्भिक ज्वर में—एकोनाइट, बेलोडोना।

गोटियां दीखने पर—एटिमटार्ट, थूजा, सेरे-...सीनियां।

पीब भरते समय—एटिम टार्ट, मार्कसाल, ...सिस, एपिसमेल।

गोटियां एकाएक बैठ जाने पर—सल्फर या रुबीनीज् केम्फर।

आंखों या गले की सूजन में—एपिस, वेलाडोना।

बकझक या सन्निपात में—वेलाडोना, हायोसाइनम, रसटाक्स, स्ट्रेमोनियम, वेरेट्रमविरिड।

एकाएक सुस्ती या मूर्च्छा में—आर्सेनिक बेप्टीसीया।

आंखों में तकलीफ होने पर—सल्फर, मार्ककोर, लाल, नीली, हरी, काली, बैंगनी आदि रङ्ग की गोटियां होने पर—क्रोटेलस, सल्फर, लैकेसिस।

खुजली में—सल्फर, एपिसमेल।

हृदय की गति विषम होने पर—डेजीटेसिल।

चेचक के दाग मिटाने के लिए—सेरेसीनिया।

ये सब दवाइयां ३० शक्ति की देनी चाहिए।

वायोकेमिक दवाइयां लिखता हूँ—

फे० फा० ज्वर, तेज नाड़ी, प्यास, पेट, पीठ, कमर, सिर और छाती में दर्द—का. मू. साथ में देना।

का० मू० मुख्य औषधि—इससे विस्फोटों में पीप नहीं पड़ती है। फे. फा. व का० मू० अदल-बदल कर दें। मसूरिका प्रतिवंधन के लिये का. मू. ३x शक्ति की देनी चाहिए ने० स० यदि पित्त का प्रकोप हो।

का० स० के बाद खुरन्ट उतारने में सहायता देने के लिए तथा नयी त्वचा बनने में के लिए। कल्के० स० विस्फोटक पक कर जब फूटने लगते हैं तब।

मसूरिका (शीतला) की चिकित्सा

लेखक—श्री पं० केशवदेव शर्मा आयुर्वेदाचार्य, कोसी (मथुरा)

आहार विहार परिचर्या तथा उपद्रवों के सम्बन्ध में सतर्कता आदि उपायों द्वारा चिकित्सा की जाती है।

रोगी को एक स्वतन्त्र हवादार मकान में रखा जाता है कुछ तज्ज्ञों की राय है कि लाल रङ्ग की किरणों से पूयभवन कम होकर त्वचा पर दाग भी कम होजाते हैं इसलिए रोगी के कमरे के दरवाजों एवं खिड़कियों पर लाल रङ्ग के पर्दे टांगे जाते हैं।

आरम्भ में रोगी को विरेचक औषधि देकर कोष्ठ शुद्ध किया जाता है। उसके बिस्तरे और ओढ़ने के कपड़े हलके एवं मुलायम होने चाहिये, उसका कमरा तथा खाने के पदार्थ शीतल रखने का प्रयत्न करना चाहिये। खुजलाने से त्वचा का दूषित होने का भय रहता है इसलिए त्वचा को खरोचना उचित नहीं है बच्चों को रोकना बहुत कठिन है इसलिए उनके पंजे कपड़े या खाट से बांधकर रखना चाहिये।

खुरन्ट उतरने के दिनों में प्रतिदिन कार्बोलिक घोल या जन्तुघ्न तैल लगाकर पश्चात् गरम पानी से स्नान कराया जाता है। जब तक खुरन्ट पूर्ण तरह से नहीं उतरते तब तक अन्य लोगों से मिलना जुलना बन्द कराया जाता है तथा उपद्रवों की लाक्षणिक चिकित्सा की जाती है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा—

इस रोग को लोक में प्रायः रोग न मानकर शीतला नामक (सेड़) देवी का प्रकोप मानते हैं और इसकी चिकित्सा नहीं कराते। चिकित्सा कराने पर देवी के कुपित होने का भय उनके हृदय में घुसा रहता है। किन्तु आज का युग ज्ञान का और विज्ञान का युग है उन सभी को यह समझ लेना चाहिए कि यह रोग प्रकृति देवी के ऊपर है क्योंकि इस रोग के होजाने पर बिना किसी चिकित्सा करा[ये] प्रकृति देवी के नियमानुसार चलने से अर्थात् मिथ्[या] आहार विहार न करने से स्वतः ठीक होजाता है।

यदि चिकित्सा की आवश्यकता पड़े तो [नि]म्न चिकित्सा करनी चाहिये,

१—मसूरिका के आरम्भ में ही हुलहुल के पत्तों [के] स्वरस में चन्दन के कल्क को डालकर पीना, अथ[वा] केवल हुलहुल के पत्तों का स्वरस पीने से इस[का] भय नहीं रहता इसकी मात्रा अवस्थानुस[ार] बच्चों को ३-३ माशे रस दो बार दिन में।

२—नीम के बीज, बहेड़े के बीज और हल्दी इन[को] शीतल जल के साथ अच्छी तरह पीस कर पी[ने] से फिर मसूरिका नहीं निकलने पाती।

३—ज्वर आने पर मसूरिका की शंका होने पर [कें]के खम्बे का रस, मुलहठी का चूर्ण मिलाकर पी[ने] से शीतला सम्बन्धी विकार नष्ट हो जाते हैं।

४—मसूरिका के आरम्भ में रोगी के वय और ब[ला]नुसार वमन विरेचन से कोष्ठ शुद्धि करा[नी] चाहिए क्योंकि ऐसा करने से संचित दोष न[ष्ट] होजाते हैं और मसूरिका स्वयं ही सूख जा[ती] हैं। किन्तु पित्तजन्य मसूरिका एवं पित्त प्र[कृति] वाले कमजोर और डरपोक एवं गर्भिणी को वम[न वि]रेचन इस रोग में नहीं करावे।

वमन के लिए—परवल के पत्ते, निम्ब की छाल अ[डू]वासा इनको सम भाग लेकर क्वाथ बना[कर] देने से वमन होजाती है।

—अथवा ब्राह्मीरस में शहद मिलाकर दोनों [की] मात्रा १ तोला श्रेयस्कर है।

धूप—बांस की छाल, तुलसी, लाख, बिनौला, [सा]भिंगी, जौ की भुसी और वच, ब्राह्मी, [...]

धूप रोगी के कमरे में देनी चाहिये जिससे रोगी का प्रसार कम हो जाता है।

दोषभेदाऽनुसार—

वातमसूरिका में—दशमूल, रास्ना, आमला, खश, जवासा, गिलोय, धनिया, मोथा इन औषधियों का क्वाथ रोज पिलाने से वातज मसूरिका शान्त होती है।

पित्तज एवं रक्तज मसूरिका में निम्बादि काथ—नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पाठा, परवल के पत्ते, कुटकी दोनों चन्दन, वासा, जवासा, आमला, इनके काथ को करके और खूब ठण्डा मिश्री मिलाकर पीने से दोनों तरह की मसूरिका शान्त होती है।

पित्तजन्य मसूरिका में शोधन कभी नहीं करना चाहिये। अर्थात् वमन विरेचन नहीं करना चाहिये। केवल संतर्पण (खीलों का चूर्ण मिश्री सहित निम्बादि काथ के साथ) देना चाहिये।

रक्तज मसूरिका—रक्तमोक्षण कराना उचित है।

कफजन्य मसूरिका—अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, हरड़, आमला, इन्द्रजौ, जवासा, परवल के पत्ते नीम की छाल इन सब औषधियों का काथ शहद मिलाकर पीने से कफजन्य मसूरिका ठीक होती है।

—सिरस और गूलर की छाल, खैर और नीम के पत्ते इनको पीस कर लेप करने कफजन्य एवं पित्तजन्य मसूरिका ठीक होती हैं।

सन्निपातजन्य-मसूरिका में उपरोक्त निम्बादि काथ का सेवन श्रेष्ठ है।

यदि निकली हुई मसूरिका पुनः अन्तः प्रविष्ट हो गई हो या अच्छी तरह न निकली हो तो—

कचनार की छाल के क्वाथ को स्वर्ण माक्षिक का चूर्ण मिलाकर पिलाने से फिर बाहर निकल आती है।

—चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, पित्तपापड़ा —इनका क्वाथ पीने से कच्ची मसूरिका भर जाता है तथा पकी हुई शीघ्र ठीक हो जाती हैं। इससे उत्तम इस रोग की ज्वर एवं अन्य उपद्रवों को शान्त करने वाली औषधि नहीं हैं।

मुख एवं गले में यदि व्रण उत्पन्न हो गये हों तो आमले और मुलहठी के क्वाथ में मधु मिला कर कुल्ले करने से ठीक होजाते हैं।

आंखों में यदि मसूरिका उत्पन्न होगई हो तो—मुलहठी, त्रिफला, मूर्वा, दारुहल्दी की छाल, नील-कमल, खश, लोध एवं मजीठ इनको पीस कर लेप करने से अथवा इनके क्वाथ द्वारा आश्च्योतन करने से आंखों में उत्पन्न हुई मसूरिकाएं नष्ट होती हैं तथा फिर से उत्पन्न नहीं होती।

अथवा

लिसौड़े की छाल को पीस कर आंखों पर लेप करने से नेत्रगत मसूरिका नष्ट होती हैं।

काले जीरे के पत्तों के क्वाथ में हल्दी का चूर्ण मिलाकर पीने से रोमान्तिका मसूरिका ज्वर विसर्प व्रण नष्ट होते हैं।

१. गांव में या मुहल्ले में (चेचक) मसूरिका फैलने पर ऊंटकटेरा (कटेली का भेद) को उखाड़ कर घर के दरवाजे पर लटका देना चाहिये। और उसी का एक फूल (कोई-कोई जड़ (मूल) ग्रहण करते हैं) रोगी के पीने के जल में डाल देना चाहिये और प्यास लगने पर उक्त जल को छानकर पिलाने से मसूरिका शीघ्र ही निकल जाती हैं और उसमें कोई उपद्रव नहीं उठने पाता।

२. बच्चों के मसूरिका (चेचक) निकलने पर रोगी को उत्तम केशर ½ रत्ती से १ रत्ती तक की मात्रा में दिन में दो बार गंगाजल में मिश्रित कर पिलाना चाहिए जिससे दूषित रक्त शीघ्र ही चेचक के दानों में निकल कर खुरन्ट पड़ जाते हैं।

३. चेचक वाले रोगी के कमरे में चारों ओर लाल रङ्ग का कपड़ा टांग देना चाहिये ऐसा करने से

चेचक में पूय (मवाद) पड़ने की शंका नहीं रहती और शीघ्र ही आराम होजाता है।

४—चेचक रोग में रक्तापामार्ग (ओंगा) की जड़ शुभदिन में प्रातः लाकर उसे गंगाजल से धोकर साफ किए हुये पत्थर पर चन्दन की तरह घिस कर थोड़ी सी रोगी के मस्तक पर तिलक सदृश लगाना चाहिये एवं शरीर में उसके छींटे देने चाहिये। तथा थोड़ा सा गंगाजल मिला कर एक छोटी चम्मच रोगी को पिला देनी चाहिये; एवं उस जड़ का थोड़ा सा टुकड़ा एक लाल वस्त्र में बांधकर रोगी की शैया (पलङ्ग) से बांध देना चाहिये। ऐसा करने से सोपद्रव चेचक भी ठीक होजाती है।

५—मसूरिका ठीक होने के पश्चात् भी मसूरिका जन्य व्रणों में खुजाने से अधिक घाव होजाते हैं उनमें रक्तापामार्ग के पत्तों को गंगाजल से पीसकर लेप करने से घाव शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं और उनमें खुजली भी नहीं चलती।

६—मसूरिका की शंका होने पर रोगी को मुनक्का के ६-१० दाने (बीज) गंगाजल में पीसकर पिलाने से चेचक नहीं निकलने पाती या अन्तः प्रविष्ट हो तो दूसरे दिन और उसी तरह पिलाने से शीघ्र निकल आती है।

७—करेले के पत्तों का रस उसके पूर्व रूप में पिलाने से मसूरिका नहीं निकलती।

८—घर में किसी बच्चे को चेचक निकलने की सम्भावना होने पर या चेचक निकल आने पर निम्न प्रयोग को काम में लेना चाहिये। किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे नीम के वृक्ष (अर्थात् अपने घर में या घर का पेड़ न हो) से एक डाली तुड़वा कर उसमें से प्रत्येक बालक को २½ पत्ती के हिसाब से सद्यःगेरू से रंगे हुये वस्त्र की चीर में बांध कर हरेक बच्चे के पैर में २½ पत्ता बंधी हुई उक्त चीर बांध देनी चाहिये। ऐसा करने से प्रथम तो चेचक निकलती नहीं यदि निकलती भी है तो बहुत न्यूनावस्था में, जो कि ज्वराधिबाधा रहित शीघ्र शान्त हो जाती है। तथा

९—जपहोमोपहारैश्च दानस्वस्त्ययनार्चनैः।
विप्रगोशम्भु गौरीणां पूजनैस्ताश्शमंनयेत् ॥
स्तोत्रं च शीतला देव्या पठेत् शीतलिकान्तिके।
ब्राह्मणःश्रद्धया युक्तस्तेन शाम्यन्ति शीतला ॥

जप होम बलिदान स्वस्ति वाचन पूजन और विप्र गौ भगवान शंकर गौरी का पूजन करने से शीतला शान्त होती है। शीतला से पीड़ित रोगी के पास किसी ब्राह्मण द्वारा श्रद्धापूर्वक शीतलादेवी के स्तोत्र पाठ कराया जावे तो शीतला देवी शीघ्र ही शान्ति को प्राप्त होती है। जनहित के लिये स्तोत्र निम्न प्रकार से है।

अथ शीतला स्तोत्रम्

ओ३म् अस्य श्री शीतला स्तोत्र मंत्रस्य महादेव ऋषिस्त्रिष्टुप छन्द श्री शीतला देवता शीतलोपद्रव शान्त्यर्थं जपे विनियोगः।

स्कन्द उवाच—

भगवन् देवदेवेश ! शीतलयास्तवंशुभम्।
वक्तुमर्हस्यशेषेण विस्फोटक भयापहम् ॥

ईश्वर उवाच—

वन्देहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्।
यामासाद्य निवर्तेत् विस्फोटक भयं महत् ॥
शीतलेशीतलेचेति यो ब्रूयाद्दाह पीडितः।
विस्फोटकं भयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥
यस्त्वामुदकमध्येतु ध्यात्वा सम्पूजयेन्नरः।
विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥
शीतले ज्वर दग्धस्य पूतिगन्धयुतस्य च।
प्रनष्टश्चक्षुषः पुंषस्त्वामाहुर्जीवितौषधम् ॥
नमामि शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्।
मार्जनीं कलशोपेतां शूर्पालङ्कृत मस्तकाम् ॥
शीतले तनुजान् रोगान्नृणां हरसि दुस्तराम्।
विस्फोटक विदीर्णानां त्वमेकामृतवर्षिणी ॥
गलगण्ड ग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणानृणाम्।
तद्दन ध्यान मात्रेण शीतले ! यान्ति ते क्षयम् ॥

न मत्रं नौषधं किंचित् पाप रोगस्य विद्यते।
त्वमेका शीतले धात्री नान्या पश्यामि देवताम्॥
मृणाल तन्तु सदृशीं नाभि हृन्मध्य संस्थिताम्।
यस्त्वां संचिन्तयेद्देवी! तस्य मृत्युर्न जायते॥
अष्टकं शीतला देव्या यः पठेन्मानवः सदा।
विस्फोटक भयं घोरं कुले तस्य न जायते॥
श्रोतव्यं पठितव्यं च नरैर्भक्ति समन्वितैः।
उपसर्ग विनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत्॥
शीतलाष्टक मेतद्धि न देयं यस्यकस्यचित्।
किन्तु तस्मै प्रदातव्यं भक्ति श्रद्धान्वितोहि यः॥
इति श्री काशी खण्डे शीतलाष्टक स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

आठवां और नवां प्रयोग उनके लिये हैं जो कि उक्त रोग में औषधि कराने में भय करते हैं एवं रूढ़िवादी हैं। उनके लिए तथा सबके लिए दोनों प्रयोग बहुत ही लाभदायक हैं।

१०—मसूरिकाजन्य व्रणों पर जङ्गली (अरण्य) कण्डे की राख भुरकने से वे शीघ्र सूख जाते हैं।

पथ्य—

चेचक वाले रोगी के पथ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि बिना पथ्य के कोई औषधि लाभ नहीं पहुँचा सकती और रोग वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। औषधि अथवा वैद्य को उसकी बदनामी भोगनी पड़ती है। यथा—

सन्तापयन्तिकमपथ्यभुजं न रोगाः।

अतः सर्व प्रथम रोगी का पथ्य सेवन करना आवश्यकीय है। पीने के लिए रोगी को विपुल जल देना चाहिए, जौ का यूष, फलों का रस, ग्लूकोज आदि हल्के पदार्थ देने चाहिए, विरेचन से कोष्ठ शुद्धि करनी चाहिए।

भुने चना, गुड़, मुनक्का आदि हल्के शीघ्र पचने वाले पदार्थ देने चाहिए। दूध नहीं देना चाहिए, इससे पूय पड़ने की शंका रहती है, नमक मिर्च नहीं देना चाहिए इनसे व्रणों में खुजली बढ़ती है, व्रणों पर मक्षिका पात नहीं होने देना चाहिए उन्हें नीम की डाली से उड़ाते रहना चाहिए। रोगी को शुद्ध वायु एवं प्रकाश में रहना चाहिये। उसके पास एक पवित्र व्यक्ति रहना चाहिए और अन्य किसी को उसके पास नहीं जाने देना चाहिए। रोज ही धूप देनी चाहिए।

वैक्सीन (Vexin)—

चेचक के लिए चेचक के टीके का प्रयोग किया जाता है, इसके बचपन में प्रयोग से बाल्यकाल में तो चेचक नहीं निकलती किन्तु फिर युवावस्था में उसका आक्रमण हो जाता है। वह भी जब हर दूसरे वर्ष २-३ बार टीके का प्रयोग हो जावे तो, किन्तु सम्प्रति जिनके दो तीन बार टीका लग गया है उनके भी चेचक निकलती देखी गई है।

चेचक (माता) और नीम

श्री पं० रामेश्वर चौधरी वैद्य शास्त्री, समस्तीपुर (दरभंगा)

यह कहने की आवश्यकता नहीं होगी कि चेचक एक बहुत बड़ा भयङ्कर रोग है, जिससे कि हमारे देश में प्रत्येक साल कितने ही आदमी इस चेचक के चपेट में आकर मरते हैं और कितने ही बहु-प्रयास बाद आंख या चेहरा को खोकर उसकी निशानी लिये जीते हैं। वह (चेचक) जब उग्र रूप धारण कर लेता है तो कितने ही चिकित्सकों के सारे प्रयोग निष्फल हो जाते हैं।

इसलिए हमारे देश में इस व्याधि को दैवी प्रकोप समझ कर इसकी चिकित्सा दैवी पूजन, पाठ, धूपेत्यादि धार्मिक कृत्यों के द्वारा की जाती है।

आयुर्वेद शास्त्र में जो चेचक की चिकित्सा लिखी गई है उसमें सबसे अधिक नीम ही का प्रयोग देखने को मिलता है। वस्तुतः नीम इस रोग की खास सर्वसुलभ महौषधि है।

नीम हमारे प्रान्त में प्रचलित चेचक की एक खास दवा होने के कारण, हमारा जो अनुभव है वह मैं लिख रहा हूँ, आशा है हमारे बुद्धिमान चिकित्सक तथा अन्य पाठकगण इसका व्यवहार कर पूर्ण लाभान्वित होंगे।

नीम—

नीम भारतवर्ष की एक अनोखी ईश्वरीय देन है। इसके वृक्ष हिन्दुस्तान में प्रायः सब जगह पाये जाते हैं और यहां के जन-समाज में रात दिन काम में आने वाली एक घरेलू दवा है। इसे सब कोई जानते हैं, इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता मैं नहीं समझता।

प्रयोग—

यदि किसी मुहल्ले में चेचक फैली हुई हो तो उससे बचने के लिये निम्न लिखित प्रयोग करना चाहिए।

१—नीम की लाल रङ्ग की कोमल पत्तियां ७ और ७ सात काली मिर्च इनको सुबह शाम एक महीने तक नियमपूर्वक खाने से १ साल तक चेचक नहीं निकलती।

२—नीम के बीज बहेड़े के बीज और हल्दी —इन तीनों को १॥-१॥ माशे की मात्रा में मिलाकर शीतल जल में पीस छान कर २१ दिन पीने से चेचक होने का डर नहीं रहता।

३—३ माशे नीम की कोपलों को १५ दिन तक लगातार खाने से ६ महीने तक चेचक नहीं निकलती। अगर निकलती भी है तो आंखें खराब नहीं होतीं।

४—यदि चेचक के दाने शरीर में निकल आयें तो उस अवस्था में बड़ी सावधानी, पवित्रता और धैर्य के साथ रोगी की सेवा करनी चाहिए। क्योंकि बिना उपद्रव के चेचक स्वयं समय आने पर शान्त हो जाती है। यदि चेचक में उपद्रव हो तो उस अवसर पर भी सिर्फ नीम ही के द्वारा रोगी का उपचार करने से बहुत उत्तम लाभ होता है तथा दैवी प्रकोप के मानने वाले श्रद्धापूर्वक पूजनादि कर काशी खण्डोक्त शीतलाष्टक स्तोत्र का पाठ करें, वा किसी विप्र द्वारा करावें।

५—रोगी के कमरे में नित्यप्रति ताजे नीम की पत्तियां टांगनी चाहिए। कमरे के दरवाजे पर तथा खिड़कियों में नीम की पत्तियों की वन्दनवार बांधनी चाहिए।

६—यदि रोगी को अधिक दाह हो तो उसके बिस्तर पर कोमल नीम की पत्तियां बिछानी चाहिए। जब बिस्तरे पर की पत्तियां मुरझा जांय तो उनको बदल देना चाहिए।

७—यदि रोगी को अधिक जलन मालूम हो तो नीम की पत्तियों को पीसकर पानी में घोलकर कपड़े से छान लेना चाहिए और मथानी से मथने पर फेन निकलता है, फेन रोगी के शरीर पर लगाना चाहिए। इससे जलन शीघ्र शांत हो जाती है

८—चेचक के घाव पर कभी भी मक्खियां नहीं बैठने पावे इस बात पर खूब ध्यान रखना आवश्यक है। परिचारक को उचित है कि वह नीम की पत्तियों का चमर बनाकर उसी से चेचक के रोगी पर हवा करता रहे और मक्खियों को उड़ाता रहे।

९—चेचक के दानों में इतनी गर्मी होती है कि रोगी उसे सहन नहीं कर सकता। उसी की गर्मी से रोगी को अगर चेत नहीं पड़ता हो तो ऐसी दशा में नीम की कोमल पत्तियों को पीस कर चेचक के दानों पर लेप करना चाहिए।

तथा नीम के बीजों की गिरी को पानी में पीस कर लेप करने से भी जलन शांत हो जाती है। लेप में ध्यान रखने की बात है कि जो कोई भी लेप हो चेचक पर पतला हो, मोटा नहीं होने पावे। मोटा लेप भूल कर भी नहीं लगावें।

१०—रोगी को अधिक प्यास लगती हो तो नीम की छाल को जलाकर उसके अंगारों को पानी में डालकर बुझावें और उसी पानी को छानकर रोगी को पिलावें इससे प्यास शांत हो जायगी। यदि इस प्रयोग से भी प्यास नहीं रुके तो एक सेर पानी में १ तोला नीम की कोमल पत्तियों को औटाकर जब आधा पानी शेष रहे तब उतार, छानकर रोगी को पिलावें। इससे प्यास अवश्य शांत हो जायगी। प्यास के अतिरिक्त यह प्रयोग चेचक के विष और ज्वर के वेग को भी हल्का करता है। इसके प्रयोग से चेचक के दाने शीघ्र सूख जाते हैं।

(११) कभी-कभी चेचक के दाने ठीक से न निकलकर बहुत कम निकलते हैं। जिससे चेचक की गर्मी और विष शरीर के अन्दर ही रह जाता है। परिणाम यह होता है कि रोगी शरीर के भीतर गर्मी सहने में असमर्थ होकर छटपटाने लगता है, और प्रलाप करने लगता है। यदि ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाय तो नीम की हरी पत्तियों का रस सबेरे, दोपहर और शाम को १-१ तोले की मात्रा में पिलाना चाहिये। इससे दाने खुलकर निकल आते हैं।

१२—जब चेचक के रोगी के व्रण सूख जांय तब उसे नीम की पत्तियों से युक्त उबाला हुआ पानी से स्नान करवाना चाहिए और स्नान के बाद निबोलियों के तेल की सारे शरीर में मालिश करनी चाहिए।

१३—जब चेचक के दाने अच्छे हो जाते हैं तब उनकी जगह पर छोटे-छोटे गड्ढे दिखाई देते हैं और आकृति बिगड़ जाती है। उन स्थानों पर यदि कुछ दिनों तक नीम का तैल अथवा नीम के बीजों की गिरी को पानी में पीसकर लगाया जाय तो वे दाग मिट जाते हैं।

१४—चेचक होने के बाद बहुत से रोगियों के बाल सिर से झड़ने लग जाते हैं। ऐसी दशा में सिर में कुछ दिनों तक लगातार नीम के तैल की मालिश करने से फिर से बाल शीघ्र जम जाते हैं।

मसूरिका (चेचक) एवं अग्निहोत्र

सूर्य चिकित्सा विशारद पं० नन्दकिशोर शर्मा, सुसनेर (शाजापुर)

मसूरिका के आरम्भ में प्रतिश्याय, ज्वर, सोते-सोते चौंक पड़ना, बेहोशी, निरन्तर ज्वर का रहना, पसीना न आना, हाथों की हथेलिओं में खराब गन्ध आना, शरीर पर व मुख मंडल पर अरुणिमा मालूम पड़ना, आदि लक्षण होने पर मसूरिका का पूर्व रूप समझना चाहिए, इस प्रकार ४-५ दिन में दाने निकल आते हैं।

इस रोग में तुलसी दल ३ से २४ तक और काली मिर्च आयु, बल, कालानुसार देखकर घोटकर गरम करके देना चाहिए। अथवा ब्राह्मी वटी दिन में तीन बार तुलसी के अनुपान से देनी चाहिए। पथ्य में आधा दूध आधा पानी चार माशे सोंठ डालकर पानी जल जाने पर देना चाहिए। अधिक प्यास होने पर पीपल की छाल जलाकर पानी के साथ देना चाहिए। अधिक दस्त हों तो कपूर वटी देनी चाहिये। अधिक दस्त होने से शीतला भीतर घुस जाती है। उसमें जायफल १ माशा, जावित्री १ माशा, लौंग ४ दाने इन सबका काढ़ा बनाकर देना चाहिये।

अथवा

नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पाठा, परवल के पत्ते कुटकी, अडूसा, आंवला, खश, लालचन्दन, सफेद चन्दन समान भाग लेकर कूटकर चूर्ण बनालें। फिर इसमें से १ तोला लेकर काढ़ा बनावें और मिश्री मिला कर पिलावें। यह क्वाथ ज्वर और विषैली मसूरिका को ठीक करता है यदि किसी कारण से मसूरिका भीतर चली जावे तो उसको भी बाहर निकालता है।

(२) बिना बिंधे मोती ५, लौंग ५ दाने को पीसकर १ तोला पानी में गरम कर पिलाने से रुकी हुई शीतला शीघ्र निकल आती है।

यदि मसूरिका निकल आवे या निकलने का भय हो तो अपने घर में बांस की छाल, तुलसी, पीपल, की लाख, बिनौला, मसूर, जौ की भुसी, जौ का आटा, धत्तूर व सींगिया विष, घृत, बच, ब्राह्मी और हुलहुल के बीजों का सम भाग चूर्ण बनाकर धूनी देनी चाहिये। धूनी देते समय आंखें बन्द कर ऊपर से कपड़ा ढंक देना उचित है।

मसूरिका के भेद—

मसूरिका के नाना प्रकार के भेद हैं जब तक देख कर परीक्षा न की जावे तब तक दोषनुसार चिकित्सा करना कठिन है, फिर भी कुछ साधारण या दोषानुसार नाम मात्र बता देना उचित है।

पित्तज मसूरिका में वमन विरेचन निषेध है, किंतु धान की खीलों में शर्करा मिलाकर तर्पण करना उचित है एवं निम्बादि क्वाथ पीना चाहिये।

कफज मसूरिका में वृहत्पंचमूल क्वाथ पान कराना चाहिये।

नेत्रों में यदि शीतला हो तो खश, लोध और मजीठ का लेप कराना चाहिये। ऊंटकटारे की जड़ को मुलहठी के साथ घोटकर पान करने से मसूरिका रोग का भय नहीं रहता।

पीली कौडी को गुलाबजल में चन्दन की तरह घिसकर साथ ही २१ काली मिर्च घोटकर पिला देवें नित्य ७ या १४ दिन पिलाने से मसूरिका का भय नहीं रहता।

भटकटैया की जड़ ६ माशे और २१ काली मिर्च नित्य घोटकर पीने से मसूरिका के आक्रमण का भय नहीं रहता।

रुद्राक्ष के एक बड़े दाने को चन्दन की तरह घिस कर उसमें ११ कालीमिर्च मिला कर बासी शीतल जल में मिश्रित कर ५-७ दिन तक पिलाना चाहिये।

अब हम पाठकों को सरल से सरल उपाय बताते हैं—

(१) करेले के पत्तों का स्वरस २ तोला, हरी हल्दी का स्वरस १ तोला मिलाकर प्रातः और संध्या समय पीना चाहिये। हरा करेला नहीं मिले तो सूखे का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये। इससे विस्फोटक मसूरिका का विष शांत होजाता है। पागलपन कमजोरी एवं बेहोशी शांत होती है। इसके स्वरस का सूचीवेध करने से अत्यन्त लाभ होता है हम अपने माननीय डाक्टरों से प्रार्थना करते हैं कि वे इसकी परीक्षा करें।

(२) इमली के बीज ३ माशे हल्दी ३ माशे पीस कर नित्य पिलाने से शीतला रोग उत्पन्न होने का भय नहीं रहता। चेचक शांत होकर कभी उसका प्रकोप नहीं होसकता।

(३) मसरिका का पाक होजावे तो आरने कंडों की राख को कपड़े में छान कर बुरकना चाहिये इससे खाज बन्द होजाती है। घाव सूख जाता है। पीव की सड़न नष्ट होजाती है।

(४) राल, हींग, लहसन को जलाकर दिन में २ बार धूप देनी चाहिये।

चेचक और अग्निहोत्र—

प्राचीन काल में प्रत्येक द्विज नित्य अग्निहोत्र करते थे, हवन सामग्री में ऐसी-ऐसी बनौषधियों का मिश्रण होता था, जिनका धूम्र शरीर में जाकर बड़ा अच्छा तत्व उत्पन्न करता था। इससे गृहस्थ में प्रायः कोई रुग्ण नहीं हुआ करते थे। कभी-कभी हैजा, चेचक, प्लेग आदि का प्रकोप होने की सम्भवना होती है तो डाक्टर लोग उसकी पूर्व सुरक्षा के रूप में उस रोग के टीके लगाते हैं। ताकि भविष्य में उस व्यक्ति पर उस रोग के आक्रमण की सम्भावना न रहे। उनका कहना है कि इस टीके की औषधि से रक्त में ऐसा प्रभाव उत्पन्न होजाता है, कि उस रोग का आक्रमण सफल नहीं हो सकता डाक्टरों की यह खर्चीली एवं आडम्बर पूर्ण प्रक्रिया यज्ञ द्वारा अधिक अच्छी तरह हो सकती है। हवन करने से उसमें जलाई हुई औषधियां सूक्ष्म होकर निकटवर्ती लोगों के शरीर में प्रवेश करती हैं और उनके रक्त में ऐसा प्रभाव छोड़ देती हैं कि फिर वहां रोगों का आक्रमण नहीं होसकता और पूर्व सुरक्षा की व्यवस्था अपने आप होजाती है।

आजकल बड़े-बड़े मेलों में हैजा आदि रोगों के टीका लगाने में बहुत धन खर्च होता है फिर भी हैजा आदि की समुचित रोक नहीं होती। प्राचीन काल में ऐसे पर्वों पर बड़े बड़े यज्ञ होते थे। जिनके कारण अधिक जन समूह इकट्ठा होने पर भी रोग आदि बढ़ने का भय तो दूर उल्टे आगन्तुकों को आरोग्य लाभ होता था।

जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती जाती है वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली एवं उपयोगी बनती जाती है। लालमिर्च को साधारण सूंघने से कोई विशेष बात न होगी पर यदि उसे अग्नि में जलाया जाय तो मिर्च का एक टुकड़ा काफी दूर तक वायु में फैल जायगा और अपनी तीव्र गन्ध से खांसी उत्पन्न करके लोगों को परेशान कर देगा। होम्योपैथिक चिकित्सा के चिकित्सक गन्ध शक्ति को बहुत महत्व देते हैं, वैद्य लोग भी लंघन के रोगी के घर में पूड़ी-पकवान नहीं बनने देते। पकवान बनाते समय वायु में जो घी एवं अन्न की गन्ध उड़ती है उसमें पर्याप्त आहार तत्व रहता है, उसे नाक द्वारा ग्रहण कर लेने पर रोगी का लंघन बिगड़ जायगा।

अथर्व वेद में अनेक रोगों के निवारण के लिए अनेक मन्त्र हैं। किसी जमाने में ऐसे अनेक तत्वज्ञ ऋषि थे जो उन मन्त्रों का प्रयोग और विधान भली प्रकार समझते थे। तदनुसार वे असाध्य रोगियों को अच्छा ही नहीं करते थे वरन् मृतकों को जीवित् कर देने की विद्या जानते थे।

शतपथ में कहा है—

भैषज्य यज्ञा वा एते।

ऋतु सन्धिषु व्याधिर्जायते तस्मादृतु सन्धिषु प्रयुज्यन्ते।

अर्थात्—यह भैषज यज्ञ है। ऋतु परिवर्तन

के समय जो व्याधियां उत्पन्न होती हैं उनके निवारण के लिए इनका प्रयोग होता है।

यज्ञ से राजयक्ष्मा जैसे असाध्य एवं कष्ट-साध्य समझे जाने वाले रोग भी दूर हो जाते हैं चरक ऋषि का भी ऐसा ही मत है।

प्रयुक्ता यथा चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुरोजित: ।
तां वेद विहिता मिष्टि मारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ।।

—चरक चिकित्सा खण्ड ८। १२२

प्राचीन काल में जिस यज्ञ के प्रयोग से राजयक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था रोग मुक्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्य को चाहिए कि उसी वेद विहित यज्ञ का आश्रय लें।

मध्यकालीन युग में यवनों के आक्रमण एवं उनके राज्याधिकार के समय आयुर्वेद एवं यज्ञ प्रक्रिया की अमूल्य निधि अथाह जलराशि एवं अग्नि में डाल दी गई, फलस्वरूप यज्ञ विद्या का लोप होकर यह क्रिया संदिग्ध समझी जाने लगी।

इसी पुरातन ऋषि प्रणीत हवन संस्कृति को वर्तमान युग में पुर्नजीवन प्रदान करके सारे भारत में प्रसार कराने वाले पूज्य श्रीराम जी शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि मथुरा के संचालक ने इस विषयक सैकड़ों उपादेय ग्रन्थ लिखकर इस प्रक्रिया को क्रियात्मक रूप से प्रारंभ कराया है। उक्त आचार्य जी के तत्वावधान में (तपोभूमि मथुरा में) यज्ञ चिकित्सा होती है।

रोगियों की शारीरिक स्थिति अलग-अलग प्रकार की होती है। जिन्हें कोई साधारण मन्द रोग होते हैं उन्हें चलते फिरते स्नान करने आदि साधारण कार्यों में कुछ कठिनाई नहीं होती वे हवन पर स्वयं बैठ सकते हैं। जिनको यह असुविधा है उन्हें आहुति आदि स्वयं तो नहीं देनी चाहिए पर हवन स्थान के निकट आराम के साथ बैठना चाहिए। जो रोगी बिलकुल असमर्थ हैं उनकी शय्या के समीप ही हवन किया जा सकता है। वे हवन की ओर मुख किये हों।

ऐसे हवन देवाह्वान के लिए नहीं चिकित्सा प्रयोजन के लिए होते हैं इसलिए इनको देव पूजन आदि की उतनी सर्वाङ्ग पूर्ण प्रक्रियाएं न बन पड़े तो चिंता की बात नहीं है। तांबे के हवन कुण्ड में अथवा भूमि पर ही १२ अंगुलि चौड़ी १२ अंगुलि लम्बी ३ अंगुलि ऊंची पीली मिट्टी या बालू की वेदी बना लेनी चाहिए। हवन करने वाले उसके आस-पास बैठें। यदि रोगी हवन पर बैठ सकता हो तो पूर्व की ओर मुख करके बिठाना चाहिए। शरीर शुद्धि एवं ब्रह्म संध्या गायत्री मन्त्र से करके वेदी और अग्नि का जल अक्षत आदि से पूजन करके गायत्री मन्त्र के साथ हवन आरम्भ कर देना चाहिए। संक्षिप्त हवन विधान पुस्तक तीन आने में अखंड ज्योति कार्यालय मथुरा से मंगाई जा सकती है।

औषधि द्रव्य निम्न हैं—

मेंहदी की जड़, नीम की छाल, हल्दी, कलौंजी जावित्री, बांस की लकड़ी, खैर की छाल, श्योनाक समभाग मिला लें। इन औषधियों का दसवां भाग शकर व दसवां भाग घृत मिलाकर हवन करें।

चेचक उपद्रव सहित शांत हो जायेगी।

यज्ञ चिकित्सा पर हमारा स्वयं अनुभव—

गत वर्ष जब कि वातश्लेष्मिक ज्वर (इन्फ्लूऐंजा) का आक्रमण हुआ था हमारे परिवार एवं परिजनों में साप्ताहिक हवन होते रहे, फ्लू साहब ने पधारने की कृपा नहीं की।

चेचक (SMALL-POX)

लेखक—कविराज गौरीशङ्कर श्रीवास्तव।

चेचक का नाम सुनते ही आबाल वृद्ध सभी के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह एक संक्रामक, स्पर्शा-क्रमक, जनपद-व्यापी तथा प्राणघातक बीमारी है और इसीलिए इसकी गणना महामारियों में की जाती है। यद्यपि आयु पर इसका कोई प्रतिबन्ध नहीं है फिर भी बालकों पर इसका प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। यह रोग छोटी-छोटी फुन्सियों से प्रारम्भ होता है जो बाद में भरतीं, पकतीं और झड़ती हैं।

अंग्रेजी में इसका नाम Variola या Small pox है। साधारण बोलचाल में इसे चेचक या माता रोग कहते है। संस्कृत साहित्य में इसका वर्णन शीतला या इच्छा वसन्त नाम से पाया जाता है।

आधुनिक विज्ञानविद् इसे संक्रामक रोग (Infectious Disease) मानते हैं। जिस प्रकार हैजा, टायफायड और संग्रहणी पानी से होने वाले सांसर्गिक रोग (Water born diseases) हैं उसी प्रकार यह चेचक रोग हवा द्वारा होने वाला संक्रामक (Air bron disease) रोग है। किस खास जन्तु के कारण यह पैदा होता है इसका तो सही पता नहीं लग सका है फिर भी यह निश्चित् रूप से मान लिया गया है कि इसके कीटाणुओं का प्रवेश मनुष्य के शरीर में प्रत्यक्ष संसर्ग के अति-रिक्त हवा के मध्यम से ही होता है।

लक्षण

१-जन्तुओं के स्वस्थ्य शरीर में प्रविष्ट होने के १२ दिन के भीतर रोग के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं।

२-एकाएक जोर का ज्वर जो उतरता नहीं है। सिर में भयानक दर्द; आंखों में ज्वाला और उनका लाल होना। कमर में दर्द।

३—तीसरे दिन ज्वर का वेग कुछ कम होजाता है और साथ ही चेहरे पर, कलाई के अगले भाग पर तथा सारे शरीर पर हलकी लाल-लाल फुन्सियां दिखाई देने लगती हैं जो प्रारम्भ में तो बिलकुल छोटी रहती हैं किन्तु तीन चार दिन के भीतर फोड़े का रूप धारण कर लेती है।

४—यह फोड़े छाले की तरह भरे रहते हैं जिनका मध्य भाग कुछ दबा सा रहता है। फिर इनमें पीव पड़ती है और ज्वर का उद्वेग पुनः तेज हो जाता है।

५-इसके बाद यह फोड़े सूखने लगते हैं और लगभग तीन सप्ताह में पपड़ी पड़ जाती है। पपड़ी झड़ जाने के बाद शरीर पर माता के दाग कायम रहते।

६-चेचक में अनेक रोगी मर जाते हैं; कई रोगियों को अन्धापन, बहिरापन या कुरूपता स्वीकार करनी पड़ती है।

चेचक की विशेषतायें

१-चेचक का ज्वर बहुत तेज रहता है और इसमें रोगी बेहोशी की अवस्था में चौंकता है।

२-सबसे पहिले चहरे और बांह में गोटियां निकलती हैं और सबसे पहिले चहरे पर की गोटियां ही सूखती हैं।

३—तलहत्थे और तलवों में भी गोटियां निकलती हैं।

४—गोटियां निकलने में अधिक से अधिक तीन दिन लगते हैं।

५—गोटियां धनगर्भ होती हैं, यानी यदि उनमें कांटा गढ़ाया जाय तब भी नहीं दबतीं।

६—कभी-कभी दो-दो या तीन-तीन अथवा

और भी अधिक गोटियां एक साथ दल-बद्ध हो जाती हैं।

पाश्चात्यमत से चेचक पांच भागों में विभक्त की गई है।

चेचक की श्रेणियां

१—जब गोटियां अलग-अलग निकलती हैं जो संख्या में कम होती हैं और सभी उपसर्ग हल्के रहते हैं-यह Distinct Variety कहलाती है।

२—पीव भरी गोटियों की संख्या बहुत अधिक। वे एक से एक या एक साथ मिली रहती हैं। उपसर्ग बहुत प्रबल रहते हैं। यह Confluent variety कहलाती है। और प्रायः असाध्य होती है।

३—इसमें गोटियां दलबद्ध भाव से या थक्के के थक्के बांधकर निकलती हैं। गोटियों की संख्या अधिक होती है। इसे Corymbose variety कहते हैं। यह कष्टसाध्य होती है।

४—इसमें गोटियां चीड़े की तरह चिपटी रहती हैं और बीच का भाग झुका रहता है। गोटियां बहुत अधिक होती हैं और वे जगह-जगह पर सड़ने लगती हैं जिनमें बदबूदार श्राव निकलता है। इसमें तुरन्त जान चली जाती है। इसे Malignant variety कहते हैं।

५—इसमें गोटियां रक्तिम होती हैं और उनमें से लोहू निकलता है तथा अन्य श्लेष्मिक स्थानों से भी रक्तस्राव होने लगता है। इसके उपसर्ग सन्निपातिक होते हैं तथा यह भी प्राणघातक है। इसे Haemorrhagic variety कहते हैं।

आयुर्वेदिक मत से शीतला-निदान

आयुर्वेदिक मत से शीतला सात प्रकार की बताई गई है।

१. बड़ी शीतला—इसमें ज्वर आकर बड़ी फुन्सियां निकलती हैं। यह सात दिन में निकलती, सात दिन में भरतीं और तीसरे सप्ताह सूख कर स्वयं गिर जाती हैं।

२. दूसरी शीतला—कफ वात जन्य होती है। यह कोदों के आकार की होती है जो पकती नहीं है। सर्वाङ्ग में छेदने जैसी पीड़ा होती है। यह सात अथवा दस दिन में बिना चिकित्सा ही शान्त हो जाती है।

३. तीसरी शीतला—"पाणिसहा" कहलाती है। इसमें खुजली होती है और स्पर्श अच्छा लगता है। सात दिन में स्वयं सूख जाती हैं।

४. चौथी शीतला—"सर्षपिका" कहलाती है। यह पीली सरसों के समान वर्ण और आकार की होती है। इसके निकलने पर अभ्यंग वर्जित है।

५—पांचवीं शीतला किंचित् ऊष्मा के कारण सरसोंवत् निकलती हैं और स्वयं ही सूख जाती है।

"किञ्चिदूष्म निमित्तेन जायते राजिका कृतिः।
एषा भवति बालानां सुखं शुष्यति च स्वयम्॥"

६—छटी शीतला-कोठ के समान लाल ऊंचे और विस्तीर्ण मण्डल युक्त होती है। इसमें ज्वर आता है और पीड़ा होती है।

७—सातवीं शीतला में फोड़े बहुत होते हैं और बड़े-बड़े होते हैं। बड़े होकर एक में मिल जाते हैं। फोड़े काले पड़ जाते हैं। यह चर्मजा शीतला कहलाती है।

इसमें दूसरी तीसरी chicken pox और चौथी तथा पांचवीं प्रकार की शीतला को Measles (खसरा) के अन्तर्गत लेकर शेष तीन प्रकार की शीतला को Small pox भेदान्तर्गत रखा जा सकता है। छटवीं शीतला-Heamorrhagic और सातवीं चर्मजा-malignant श्रेणी में रखी जा सकती है।

प्रतिबन्धक उपाय

रोग प्रारम्भ होने से लेकर पपड़ी गिर जाने तक यह रोग अत्यन्त संसर्गजन्य रहता है। फोड़ों के पानी और पपड़ी में रोग के असंख्य जन्तु वर्तमान रहते हैं जो प्रत्यक्ष संसर्ग अथवा हवा के माध्यम से निरोग व्यक्ति की श्वास के साथ शरीर में घुसकर

रोग उत्पन्न करते हैं। यह रोग जनपद व्यापी—यानी एक गांव से दूसरे गांव में पहुँचने वाला भी है। अतएव इसके लिए निर्दिष्ट किये गए प्रतिबन्धक उपायों का व्यक्ति और समाज दोनों के हितार्थ अवश्य पालन करना चाहिए—

१—रोग होते ही उसकी सूचना स्वास्थ्य विभाग को दे देनी चाहिए। ऐसा करने से स्वास्थ्य विभाग को रोग का फैलाव रोकने के लिए सब सावधानियों के प्रति जागरूक होजाने में सहायता मिलती है।

२—रोगी को अन्य व्यक्तियों के संसर्ग से अलग रखना चाहिए। यदि इसकी सुविधा न हो तो उसे अस्पताल में भेज देना चाहिए। पपड़ी के पूरी तरह गिर जाने तक रोगी को अन्य व्यक्तियों से मिलने जुलने से बचाना चाहिए।

३—रोगी के कमरे को जन्तु-विहीन Disinfect कर लेना चाहिए। रोगी के व्यवहार में आने वाले कपड़े, बिछावन, वर्तन सामान आदि सभी पदार्थ Disinfect कर लेना आवश्यक है। इसके लिये कमरे में गन्धक चार-छै मिनट जलाना अच्छा है। कपड़ों को धूप में डाल कर सुखा लेना चाहिए। वर्तनों को गरम पानी में उबाले बिना काम में नहीं लाना चाहिए।

४—टीके लगवाना (Vaccination)—यह रोग के प्रतिबन्ध का विश्वसनीय इलाज है। चेचक के टीके में गाय के बछड़े के लस का उपयोग किया जाता है। इस लस में चेचक के जन्तु रहते हैं जो बहुत ही निःसत्व रहते हैं। टीका लगने पर चेचक के छाले उठते हैं जो असल रोग की अपेक्षा सौम्य प्रकार के होते हैं। छालों के उठते समय श्वेत रक्त कणों में रोग के विरुद्ध लड़ने की क्षमता आ जाती है।

चेचक के टीके का इतिहास

डाक्टर जेवर इस टीके के आविष्कारक कहे जाते हैं। उन्होंने यह अनुभव किया कि जिन गायों को चेचक (Cowpox) हो जाता है उन गायों के दुहने वाले व्यक्तियों के हाथों में एक प्रकार की फुन्सियां उठ आती हैं और फिर उन्हें चेचक का रोग नहीं होता। तब उन्होंने उस लस को शरीर में टोंच कर यह सिद्ध किया कि लस के टोंचे हुए मनुष्यों को चेचक का रोग नहीं होता।

जो लस आजकल टीके के लिए प्रयुक्त होता है उसमें गाय के बछड़े की लस का उपयोग होता है। सबसे पहिले चेचक की लस को गाय में टोंच कर उसमें ही चेचक रोग को उत्पन्न किया जाता है। फिर गाय के शरीर पर आने वाले फोड़ों की लस को बछड़े के पेट पर टोंचते हैं। बछड़े के पेट पर उठने वाले फोड़ों की लस को ग्लेसरिन में निकाल लेते हैं और उन्हें शीशियों में स्वरक्षित रखते हैं जिससे अन्य जन्तुओं द्वारा दूषित न हो सके।

टीके लगवाने की विधि

छोटे बच्चों की प्रत्येक भुजा पर दो तीन छोटे छोटे जख्म बनाए जाते हैं। उन जख्मों में चेचक की लस (Calf lymph) भरदी जाती है। तीन चार दिन के भीतर प्रत्येक जख्म के स्थान पर एक छोटी फुन्सी उठती है। उसमें शीघ्र ही पीव आजाती है और फोड़ों के आस पास की जगह सूख कर लाल हो जाती है। फोड़े के पास खुजली अधिक मचती है। दस दिन के भीतर पपड़ी आजाती है और तीन सप्ताह में पपड़ी गिर जाती है। इन जख्मों के स्थान पर एक स्थाई चिह्न बन जाता है।

बच्चों को ३ से ६ माह की आयु से ही टीके लगवा लेना अच्छा है। चेचक के दौर में तीन माह के पहिले ही टीके लगवा लेना चाहिए। टीकों के द्वारा जो प्रतिबन्धक शक्ति आती है वह लगभग ७ वर्ष तक कायम रहती है। इसलिए प्रति सात वर्ष के बाद टीके की क्रिया दुहराते रहना चाहिए।

आनुसंगिक उपाय

१—जहां और कोई कृमिनाशक पदार्थ ((Disinfectant) न मिले वहां नीम के पत्तों का प्रयोग किया जा सकता है। इन पत्तों की धूनी घर के भीतर

जलाई जा सकती है और खिड़की के दरवाजों पर उसके हरे पत्ते रखे जा सकते हैं।

२—खिड़की और दरवाजे सब खुले रखे जाना उचित है; किन्तु उनमें लाल या पीले रंग के पर्दे पड़े रहने चाहिए। इससे बाहर की तेज और सीधी रोशनी चेचक के छालों पर नहीं पड़ेगी।

३—शाम-सवेरे रोगी के कमरे में धूप-धूना जलाना चाहिए।

४—दाने निकल आने पर हलका सुपाच्य भोजन देना चाहिए। अन्न कम से कम दिया जाए! धान की लाई, दूध, मिश्री बिस्कुट हल्के और सौम्य फल। नमक भूल कर भी रोगी को नहीं खिलाना चाहिए इससे छालों पर खुजली चलती है।

५—बढ़ी हुई भूख पर, यदि ज्वर न रहे तो मूंग की दाल का यूष परवल लौकी, टमाटर का साग, पुराने चावल, फुलके आदि दिये जा सकते हैं।

वातावरण की सौम्यता

चेचक का रोग बड़ा सूक्ष्म ग्राही (Sensitive) है। उस पर वातावरण और यहां तक कि विचारों का प्रभाव भी पड़ता है। इसलिए वातावरण की सौम्यता के साथ विचारों को भी सौम्य रखना आवश्यक है। रोगी परिचर्या में रहने वाले व्यक्तियों की मानस-भूमि सौम्य, सरल तथा उत्तेजनाहीन रहना आवश्यक है।

जोर-जोर से बोलना, क्रोध, हिंसा, क्रूरता, घृणा, उद्वेग आदि युक्त वार्ता रोगी के समीप कदापि नहीं करना चाहिए। यदि हो सके तो परिचारकों को भी निरामिष सादा भोजन पर रहना चाहिए।

प्राचीन काल में क्षौर कर्म भी एक तीक्ष्ण कर्म समझा जाता था। इस लिए उसे करने का निषेध था। किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में सैफ्टीरेज़रों ने इसे एक दैनिक कृत्य का रूप दे दिया है। अतएव रोगी के सामने व्यर्थ की डाढ़ी बढ़ाए फिरना अशोभनीय है। अच्छे भले साफ सुथरे कपड़ों में रोगी को रखना और घर वालों को भी रहना हितावह है।

भूलकर भी रोगी के सामने अश्लील हरकतें अथवा बातें नहीं करना चाहिए। ऐसी भी बातों से परहेज करना चाहिए जिससे रोगी उत्तेजित होता हो।

शीतला की चिकित्सा और उपचार

भावमिश्र ने शीतला को मसूरिका का भेद माना है। उनका मत है कि—

१—शीतला पर बैठने वाली मक्खियों को नीम के पत्तों समेत टहनियों से उड़ावें।

२—यदि कोई दाना पके या पककर फूटे तो उस पर बन-उपलों की भस्म बुरकना चाहिए।

३—ज्वरावस्था में अथवा साधारण तथा शीतल जल का ही प्रयोग करे। गरम जल भूल कर भी न दे।

४—रोगी को पवित्र, रमणीक, शान्त और शीतल स्थान में रखें।

५—शीतला रोग में सम्पूर्ण उपचार शीतल ही करे।

६—रोगी के कमरे में भूलकर भी जूठन आदि नहीं फैलावे।

७—जप, होम, स्तुति वाचन पूजन और ब्राह्मण गाय सदाशिव जगदम्बा आदि का अर्चन करे।

चिकित्सा

शीतला के पूर्व रूप में ज्वर आने पर नीचे लिखी चिकित्सा करनी चाहिए।

१—सफेद चन्दन का रस अडूसे का रस मुलैठी का रस चमेली के पत्तों का रस शहद के साथ।

२—लाल चन्दन अडूसा नागरमोथा गिलोय मुनक्का
—इनका हिम बनाकर पिलावें।

चेचक पर दो अनुभूत प्रयोग

३—यदि चेचक के दानों में बन्ध पड़ गए हों,

तीव्र वेदना हो और मुंह पर दाने अधिक पड़ जाने से कुरूप होने का भय हो उस समय मनुष्य की हड्डी को जल में घिसकर चन्दन की भांति दानों पर लेप करिए और आश्चर्य देखिये।

(४) यदि चेचक के कारण आंख में फुत्ती पड़ गई हो तो चेचक के जो दाने गिरते हैं उनकी भुसी को बारीक पीसकर काजल की भांति आंख में आंजिये। कुछ ही दिनों में फुत्ती कटकर आंख साफ हो जायेगी।

कुछ विश्वस्त होम्योपैथिक औषधियां

(५) केलिम्यूर—यह चेचक की व्याधि की सर्वश्रेष्ठ दवा है। इसके नियमित प्रयोग से चेचक आसानी से निकल जाती है। यह पीव युक्त गोटियों को ठीक करता और मूत्रपिण्ड प्रदाह आदि को नियमित करता है।

(६) 'केम्फोरा' दाने एकाएक बैठकर भयानक अवस्था उत्पन्न हो जाना।

(७) 'हिपर सल्फ' दाने सूखने के समय विस्फोट निवारण के लिए।

(८) 'केलिसल्फ' सरलता से दाने गिरने के लिए।

(९) 'चायना' आरोग्य होने पर कमजोरी दूर करने के लिए।

पनसाहा माता (Chicken pox)

यह हल्के प्रकार का चेचक रोग है जो अक्सर पांच, छै साल तक के बालकों को ही होता है और १२ से २१ दिनों में आसानी से शांत हो जाता है। इसकी गोटियां हल्की होती हैं जो भरती हैं और झड़ जाती हैं।

कभी-कभी यह पनसाहा माता भी सड़ने वाली (Gangrenous Vari Cella) हो जाती है जो समय पर सूखती नहीं हैं और उनका आकार बढ़ता जाता है। इसके दाने काले हो जाते हैं और जख्म गहरे लाल रंग के घेरों से घिर जाते हैं।

ऐसे उपद्रव पैदा हो जाने पर रोगी को सावधानी से संभालना चाहिए। पनसाहा माता की गोटियां अक्सर कमजोर और चिड़चिड़े स्वभाव वाले पोषणहीन बालकों की ही खराब होती हैं क्योंकि वे मना करने पर भी नाखूनों से खुरन्टों को उखाड़ते और खुजाते रहते हैं। इसलिए उनका खुजलाना हर सम्भव उपाय द्वारा बन्द कराना चाहिए।

पोटेशियम परमेंगनेट के हलके लोशन से शरीर को दो-चार बार अंगोंछ देना चाहिए। ओलिव आयल (जैतून का तैल) हलके हाथ या कबूतर के पर से विकृत दानों पर लगाना चाहिए।

शेष सभी सावधानियां और उपचार शीतलावत् ही करना उचित है।

खसरा (Measles)

इसे बहुधा छोटी माता कहते हैं। यह भी बालकों का ही रोग है। इसकी गोटियां छोटी और मृदु होती हैं जिनसे खतरा बहुत कम होता है। फिर भी यह छुतही बीमारी है और इसमें भी पूरी-पूरी सावधानी बर्तनी चाहिए।

इस रोग में विशेष उपसर्ग यह है कि ज्वर आता है, आंखें लाल हो जाती हैं और खांसी होती है। ज्वर चढ़ने के तीसरे दिन हलकी फुन्सियां चहरे, छाती, पेट, हाथ-पैर आदि पर उभर आती हैं। दो तीन दिन के बाद ज्वर कम हो जाता है और सप्ताहान्त में यह छोटी माता शान्त हो जाती है।

इस रोग में थोड़ी सी भी लापरवाही से बालकों को न्यूमोनियां होते देखा जाता है। इसलिए उससे सदैव सावधान रहना चाहिए।

यह निश्चित् हो जाने पर कि बालक को खसरा है उसे अवस्थानुसार "सिवाजोल" की गोली देते रहना चाहिए। इससे खसरा निरापद निकल जाता है।

समाचार एवं सूचनाएं

वैद्य कहलाने में लज्जा

मुख्य मंत्री द्वारा संयुक्त शिक्षा की निन्दा—

नैनीताल २५ जून। उत्तर-प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द ने यहां आयुर्वेदिक शिक्षा समिति के सम्मुख भाषण देते हुए कहा कि आयुर्वेद के छात्रों को आयुर्वेद तथा एलोपैथी की संयुक्त शिक्षा देना 'जघन्य अपराध' होगा। आपने उथली आयुर्वेद शिक्षा को सर्वथा अविचार पूर्ण बताया।

मुख्य मंत्री की मुख्य चोट लखनऊ विश्व विद्यालय द्वारा 'B. M. B. S.' डिग्री सम्बन्धी शिक्षा पर थी। यह शिक्षा लखनऊ राज्य आयुर्वेदिक कालेज में दी जाती है।

उक्त कालेज में पढ़ने वाले क्षात्र अपने को वैद्य कहलवाना नहीं चाहते और उसके लिए वे हड़तालें तक करते रहे हैं। अपने को आचार्य अथवा वैद्य कहलाने में वे अपना अपमान अनुभव करते हैं और ऐसी डिग्री पाने के उत्सुक हैं जो एलोपैथिक छात्रों को मिलने वाली डिग्रियों के सदृश्य हो।

(हिन्दुस्तान से)

\+ \+ \+

यज्ञोपवीत संस्कार के समय—

वैद्यों की सभा

श्री शिव शान्ति औषधालय, रूपसपुर गया में, मोतीहारी आयुर्वेद कालेज के प्राचार्य श्री दारोगाप्रसाद मिश्र के दो पुत्रों का (श्री राधेश्याम मिश्र एवं श्री अशोककुमार मिश्र) का यज्ञोपवीत संस्कार ६।५।५८ को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर गया जिला के उपाधिकारी श्रेष्ठ वैद्यों की एक सभा भी की गई। सभा की अध्यक्षता पं० रामचन्द्र पाठक साहित्य-व्याकरण आयुर्वेदाचार्य साहित्यरत्न ने की। सभा में श्री श्यामाकांत वैद्य जी ए. एम. एस. साहित्य शास्त्री तथा कामेश्वर पाठक आयुर्वेदाचार्य, पं० चन्द्रेश्वर मिश्र, पं० विंध्येश्वरी आयुर्वेदाचार्य, पं० रामानुज मिश्र आयुर्वेदाचार्य, पं० रमाकान्त मिश्र, पं० धरणीधर मिश्र आयुर्वेदाचार्य, पं० कमला मिश्र आयुर्वेदाचार्य एच. एम. डी., वैद्य विश्वनाथ मिश्र, वैद्य राजेश्वर मिश्र, वैद्य युगेश्वर मिश्र, वैद्य उपेन्द्र मिश्र, वैद्य रामलोची मिश्र आदि वैद्यों का सुन्दर भाषण हुआ।

विषय था विहार के वयोवृद्ध वैद्य पं० भृगुरायाश्रम मिश्र भू. पू. चैयरमैन विहार राज्य देशीय चिकित्सा फेकल्टी द्वारा निर्मित तथा विहार सरकार द्वारा स्वीकृत—

"ग्राम पंचायतों में स्वास्थ्य स्वावलम्बन की योजना"

इस योजना पर पूज्य विनोबा जी का आशीष भी प्राप्त है। वैद्यों ने योजना के प्रसार आदि के लिए विविध सुझाव प्रस्तुत किए।

सभा का उद्घाटन वैद्य पं० अंशुमान शर्मा एम. ए. काव्यतीर्थ आयुर्वेदाचार्य साहित्यालंकार के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर गया के प्रसिद्ध वैद्य श्री राधारमण शास्त्री अध्यक्ष बी. एन. दास आयुर्वेद कार्यालय ने ५००) पांचसौ रुपये की दवा निःशुल्क वितरण के लिये स्वागताध्यक्ष पं० प्रमोदशरण मिश्र जी ए० एम० एस० (पञ्चानर्स) साहित्याचार्य को प्रदान की। ऐसे उदार हृदय वैद्यों का स्वागत है। रात के ८ बजे से पं० श्री नागेश्वर पाठक कविरत्न संस्कृत वाचस्पति के सभापतित्व में एक कवि सम्मेलन प्रस्तुत

किया गया। सम्मेलन का उद्‌घाटन कविवर पद्म-नारायण सिंह "कमल" ने निम्न स्तवन के द्वारा सस्वर सम्पन्न किया।

"धन्वन्तरि की जय जय बोल" इत्यादि।

पं० धरणीधर वैद्य ने गया जिला के प्रख्यात मगही कवि श्री कमलेश जी की अमृतध्वनी प्रस्तुत की। बाद में सामवेद के पाठ से सभापति जी ने सभी को मुग्ध कर दिया।

११ बजे रात से संगीत का कार्य रातभर चला। श्री शिववल्लभ तिवारी, श्री रामस्वार्थ सिंह, श्री महाराज जी घेजग, श्री सिद्धनाथ मिश्र, श्री रामकृपाल सिंह इसराजिया, श्री देवनन्दन जी, श्रीमती शान्तिदेवी जी आदि गायक गायिकाओं के गायन अति उत्तम रहे।

स्वागताध्यक्ष के धन्यवाद देने के बाद ५ बजे भोर में कार्यक्रम समाप्त हुआ। इस अवसर पर एक हजार लोगों को भोजन भी कराया गया सैंकड़ों दरिद्रों को वस्त्र बांटे गये।

पटना आयुर्वेद कालेज के भू० पू० प्रिन्सिपल गुरुवर पं० हरिनारायण चौबेजी तथा पं० भृगुरा-माश्रम मिश्र आदि वृद्ध वैद्यों का आशीषवचन भी पढ़ कर सुनाये गये।

समाचार दाता—श्री दारोगाप्रसाद मिश्र।

\+ \+ \+

जींद तहसील वैद्य मण्डल—

आज २५-५-५८ को आर्यसमाज मन्दिर में पं० रामचन्द्र जी प्रधान जिला वैद्य मण्डल संगरूर की अध्यक्षता में तहसील वैद्य मण्डल जींद का चुनाव निम्न प्रकार से हुआ।

१—प्रधान श्री वैद्य अमृतलाल जी
२—उप प्रधान श्री वैद्य तारासिंह जी गोयल
३—उप प्रधान श्री वैद्य श्यामलाल जी
४—प्रधान मन्त्री—श्री वैद्य खुशीराम जी
५—उप मन्त्री श्री वैद्य रामदयाल जी
६—उप मन्त्री श्री वैद्य धर्मसिंह जी
७—कोषाध्यक्ष श्री वैद्य ज्ञानसिंह जी गोयल
८—आडीटर श्री वैद्य प्यारेलाल जी
९—प्रचार मन्त्री—श्री वैद्य लक्ष्मण सिंह जी
१०—श्री वैद्य गिरधारीलाल जी

सदस्य कार्य कारिणी—

१—वैद्य श्री श्रीराम जी २—वैद्य श्री तेलुराम ३—श्री वैद्य लालचन्द जी ४-श्री वैद्य भगवानसिंह जी ५—श्री वैद्य रामकृष्ण जी।

संरक्षक—

१—वैद्य मामचन्द जी वत्स २—वैद्य बनवारी लाल जी। चुनाव सर्व सम्मति से हुआ।

—वैद्य श्री खुशीराम जी मन्त्री
तहसील वैद्य मण्डल, जींद शहर।

\+ \+ \+

संक्रामक रोगों पर

आयुर्वेदीय अनुसंधान

विहार राज्य आयुर्वेद विज्ञान सम्मेलन की अनुसंधान शाखा की एक बैठक सम्मेलन के सभा-पति कविराज विद्यानारायण शास्त्री की अध्यक्षता में १० जून को सम्मेलन कार्यालय ईशीपुर (भागलपुर) में हुई।

देश में व्यापक रूप से फैलने वाली शीतला और हैजे की जटिल समस्याओं पर गम्भीरता से विचार विमर्श हुआ। अभी शीतला और हैजे के प्रतिषेध के लिए व्यवहृत होने वाली औषधियों पर विचार हुआ और निश्चय हुआ कि शीतला प्रति-शेध वटी तथा विशूचि निरोध वटी नामक औषधि ८०% प्रतिशत लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। इसकी १-१ मात्रा सात दिन तक लगातार प्रातः जल से खानी पड़ती है जिससे १ वर्ष तक चेचक और हैजा होने

का भय नहीं रहता है। अभी तक ४० हजार व्यक्तियों पर ये औषधियां प्रयुक्त हो चुकी हैं। व्यापक पैमाने पर व्यवहार में लाने की व्यवस्था करने का निश्चय हुआ है तथा सभी वैद्यों एवं औषधि निर्माताओं से अनुरोध किया गया है कि वे इन प्रतिषेधक औषधियों को बनाकर शीतला और हैजे के भयङ्कर मौत से जनता की रक्षा करें। जिन वैद्य एवं औषधि निर्माताओं को औषधि बनानी हो उन्हें सहर्ष नुस्खा दिए जाने का निश्चय किया गया। जनता को अधिक लाभान्वित करने तथा औषधि के लाभ का प्रतिशत निश्चित् करने की व्यवस्था पर विचार हुआ, इसलिए वैद्यों और औषधि निर्माताओं से अनुरोध किया गया कि वे इन औषधों को जनता में निःशुल्क वितरण करावें।

—कविराज जगदीशप्रसादसिंह

कार्यालय-मन्त्री।

आवश्यक सूचना—

राजस्थान सरकार द्वारा संचालित (गवर्नमेंट-आयुर्वेदिक कालेज जयपुर का नवीन सत्र दिनांक ७ जौलाई सन् १९५८ से प्रारम्भ होरहा है। प्रायोगिक विषयों के प्रशिक्षणार्थ महाविद्यालय के साथ चिकित्सालय (Outdoor) आरोग्यशाला (Indoor) भैषजनिर्माणशाला (Pharmacy) प्रयोगशाला (Laboratory) प्रदर्शनालय (musium) तथा प्रसूतिगृह (maternity ward) का समुचित प्रबन्ध है। जल-बिजली एवं भृत्य सहित छात्रावास की व्यवस्था है।

संस्कृत-मध्यमा या तत्सम अथवा प्रवेशिका या तत्सम, अथवा संस्कृत विषय के साथ मेट्रिक या हायरसेकेण्डरी उत्तीर्ण प्रवेशेच्छुक छात्र प्रवेश हेतु अपने आवेदन-पत्र प्रवेश शुक्ल ५) के पोस्टल आर्डर केसाथ दिनांक ६-७-५८ से पूर्व ही भिजवायें।

प्रिंसपल-गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज, जयपुर।

धन्वन्तरि का आगामी विशेषाङ्क

काय चिकित्सांक

इस विशेषाङ्क का सम्पादन आपके

चिर परिचित सुप्रसिद्ध

आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

करेंगे

●

इस विशेषाङ्क में--

● कायचिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्तों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया जावेगा।

●● कायचिकित्सा सम्बन्धी नवीन आकर्षक सामिग्री से पूर्ण युक्त होगा।

●●● कायचिकित्सा सम्बन्धी समस्त रोगों पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डाला जायगा।

●●●● किस रोग की कौन आयुर्वेदीय चिकित्सा है और वह चिकित्सा ऋषियों ने किस आधार पर निश्चित् की है इस पर विशेष पर विचार किया जायेगा।

●●●●● प्रत्येक रोग में कौन कौन उपद्रव मिलते हैं उनका नष्ट करने के लिए कौन आयुर्वेदीय उपचार अपेक्षित हैं इस पर पूर्ण उहापोह किया जावेगा।

इसका अभिप्राय यह है कि

●

★ **कायचिकित्साङ्क** एक बहुमूल्य विशेषाङ्क होगा।

★★ **कायचिकित्साङ्क** में असंख्य आयुर्वेदीय ग्रन्थों का सार सञ्चित किया जावेगा।

★★★ **कायचिकित्साङ्क** एक ऐसी पाठ्य पुस्तक के अभाव की पूर्ति करेगा। जिस पर अभी तक साङ्गोपाङ्ग विधि से कोई व्यक्ति या आचार्य नहीं कर सका।

यह वैद्यों के लिए जीवन साथी, आयुर्वेद विद्यार्थी के लिये बहुमूल्य पाठ्ययग्रन्थ और चिकित्सा संसार के लिये प्रकाश का जगम गता नक्षत्र होगा।

इस प्रकार की कल्पना अभी तक देखने को नहीं मिली, धन्वन्तरि की विशेषाङ्क परम्परा का यह अत्युत्तम समुज्ज्वल रत्न होगा।

लेखकों से प्रार्थना है कि वे पहिले श्री त्रिवेदी जी से लिख कर पूछलें कि किस विषय पर वे लिखना चाहते हैं तथा क्या लिखना चाहते हैं। इस विषय पर विस्तृत निर्देश वे स्वयं करेंगे।

—देवीशरण गर्ग, सम्पादक।

वैद्योपयोगी चिकित्सा-साहित्य

एलोपैथी—

	रु०-न०पै०
वर्मा एलोपैथिक चिकित्सा—ले० डा० रामनाथ वर्मा	१२-००
एलोपैथिक गाइड—ले० डा० रामनाथ वर्मा (चतुर्थ संस्करण)	१०-००
एलोपैथिक निघण्टु—ले० डा० रामनाथ वर्मा	१०-५०
एलोपैथिक योगरत्नाकर—ले० रामनाथ वर्मा	१३-००
व्याधिविज्ञान—ले० डा० आशानन्द पञ्जरत्न (दो भाग)	१८-००
क्लीनिकल मेडीसिन—ले० श्री अत्रिदेवगुप्त सं० डा० हरिश्चन्द्र वर्मा (दो भाग)	२५-००
माडर्न मेडिकल ट्रीटमेंट हिन्दी—ले० डा० एम० एल० गुजराल	२०-००
मलेरिया—ले० डा० मनमोहन धूप	२-२५
सूचीवेधविज्ञान—ले० डा० रमेशचन्द्र आयुर्वेदाचार्य	७-५०
हृदय-परीक्षा—ले० डा० रमेशचन्द्र आयुर्वेदाचार्य	२-००
कफ-परीक्षा—ले० डा० रमेशचन्द्र आयुर्वेदाचार्य	१-२५

शरीर विज्ञान—

हमारे शरीर की रचना—ले. स्व. डा. त्रिलोकीनाथ वर्मा-प्रथम भाग (सातवां संस्करण)	१०-१२
सुश्रुत-शारीर-स्थान—व्याख्याकार—डा० जे० डी शर्मा	५-००

आयुर्वेद—

भैषज्यरत्नावली—गोविन्ददास विरचित, कविराज नरेन्द्रनाथ मित्र द्वारा संशोधित परिवर्धित, श्री जयदेव विद्यालंकार द्वारा अनुवादित, आयुर्वेदाचार्य पं० हरिदत्त द्वारा परिमार्जित तथा पं० लालचन्द्र वैद्य द्वारा परिशोधित, छठा संस्करण	१०-५०
रसतरङ्गिणी—कविराज नरेन्द्रनाथ के आदेशानुसार प्राणाचार्य सदानन्द द्वारा रचित, पं० हरिदत्त कृत संस्कृत तथा आयुर्वेदाचार्य पं० धर्मानन्द कृतिहिन्दी अनुवाद सहित पांचवां संस्करण	१०-००
रसामृत—आचार्य श्री यादव जी त्रिकमजी विरचित	५-०
द्रव्यगुणविज्ञान—आचार्य श्री यादवजी त्रिकमजी विरचित	३-५०
सुश्रुत संहिता—श्री अत्रिदेव गुप्तकृत हिन्दी अनुवाद और डा. घाणेकर की भूमिका सहित	१५-००
भावप्रकाश निघण्टु—हरीतक्यादि प्रिंसिपल पं० विश्वनाथ द्विवेदी कृत सरल, विस्तृत हिन्दी टीका सहित (तीसरा संस्करण)	७-००
भावप्रकाश—(सम्पूर्ण) भाषा टीका—ले. लालचन्द वैद्य (२ भागों में)	२०-००
गंगयति निदान—जन यति गंगाराम द्वारा लिखित आयुर्वेदाचार्य पं० नरेन्द्रनाथ शास्त्री द्वारा अनुवादित	६-००
मेघविनोद—मेघमुनि प्रणीत, पं. नरेन्द्रनाथ शास्त्री कृत सौदामिनी भाषाभाष्य सहित	६-००

यूनानी—

यूनानी चिकित्सा सागर—हकीम मनसाराम शुक्ल द्वारा हिन्दी में लिखित	१०-००
यूनानी तिब्ब का फार्माकोपिया—हकीम मनसाराम शुक्ल कृत	५-००

गुप्त सिद्ध प्रयोगांक

(चतुर्थ भाग)

मांग बहुत, शीघ्र समाप्त होने की सम्भावना

इस वर्ष के विशेषांक ने चिकित्सक-समाज में तहलका मचा दिया है नवीन ग्राहक इतनी तेजी से बन रहे हैं कि इस विशेषांक का शीघ्र समाप्त हो जाना निश्चित् ही समझें। अतएव हम अपने ग्राहकों तथा अन्य वैद्यों से साग्रह निवेदन कर देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि वे अपने परिचित वैद्यों को शीघ्र ही ग्राहक बनाकर इसे प्राप्त करने का आदेश कर दें। इसके समाप्त हो जाने पर इतना बड़ा और उपयोगी साहित्य फिर इतने कम मूल्य में कदापि नहीं मिल सकेगा। इसका आगामी संस्करण का मूल्य निश्चित् ही १०-१२ रुपये से कम नहीं होगा।

राज-संस्करण ही मंगावें

यह साहित्य जीवन-पर्यन्त काम देने वाला है। नित्य-प्रति उलटने-पलटने तथा पढ़ने की आपको आवश्यकता होगी। ऐसा साहित्य २८ पौंड का बढ़िया सफेद कागज पर छपा हुआ ही उचित है। अतएव नवीन ग्राहकों को १) का लोभ नहीं करना चाहिए तथा शीघ्र ही ६।।) मनियार्डर से भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिए।

प्रशंसापत्रों के ढेर

इस बार के विशेषांक को पढ़ने वालों ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। हजारों ग्राहकों से हमको प्रशंसापत्र मिले हैं तथा रोजाना मिल रहे हैं। हमको उन प्रशंसापत्रों से बड़ा उत्साह मिला है और हमारा साहस बढ़ा है अतएव प्रशंसापत्र प्रेषक सज्जनों के हम आभारी हैं। उन सभी पत्रों को प्रकाशित करना नितान्त असम्भव है। कुछ विद्वानों के प्रशंसापत्र प्रकाशित कर दें और कुछ नहीं यह भी उचित प्रतीत नहीं होता अतएव प्राप्त प्रशंसापत्रों को हम प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। हमारे सच्चे प्रशंसक वे सज्जन हैं जो बिना किसी लोभ-लालच के धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बना रहे हैं, हम उनको हृदय से धन्यवाद देते हैं।

भवदीय
देवीशरण गर्ग।

इस प्रकार यह पाते हैं कि क्रियायें मूलतः तीन हैं। अधिष्ठान मूलतः क्या है—इस सम्बन्ध में भी प्रकृति का निर्माण ही बताता है; यद्यपि कि सृष्टि में एक नहीं अनेक अधिष्ठान दिखाई पड़ते हैं तथापि तुलना करने पर उनमें भी समानता मिलेगी और यह पायेंगे कि सभी अधिष्ठान जिस रूप में नजर आते हैं उसी रूप में मूलतः वे नहीं हैं, बल्कि कुछ क्रियाओं के परिणाम स्वरूप हैं। अतः अधिष्ठान भी क्रिया का ही परिणाम है। ऊपर जिन तीन क्रियाओं का वर्णन किया गया है उसी परिणाम स्वरूप ये उत्पन्न होते हैं। इसके सम्बन्ध में आगे वर्णन किया जायेगा।

अतः यह पाते हैं कि क्रिया एवं क्रियाशक्ति के योग का ही विस्तार सारी सृष्टि है और इन दोनों ही को प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने अनादि अनन्त माना है—भारतीय दार्शनिकों ने इन दोनों को अलग अलग माना है यद्यपि दोनों का सम्बन्ध अभिन्न है। क्रियाशक्तिविहीन क्रिया का नाम मूल प्रकृति दिया है एवं क्रियाशक्ति का नाम परमात्मा या परम चेतन माना है।

तत्र सर्व एव अचेतन एष वर्गः,
पुरुषः संयुक्तश्चेतयिता भवति १० ॥
—सु० शा० १ अ.

तस्मात्तत्संयोगात अचेतनं चेतनवदिव लिंगम्।
गुण कर्तृत्वेऽपि तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः॥
—सां० का० २

क्रिया

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है मूल क्रिया तीन हैं, सत्व, रज एवं तम, इन तीनों की क्रियाशक्तिविहीनावस्था मूल प्रकृति कहलाती है इसी अवस्था का नाम समावस्था भी है। ये तीनों एक साथ रहने वाले हैं, एक दूसरे में रहने वाले हैं। मगर कोई भी क्रिया तब तक सम्पादित नहीं हो सकती, जब तक कि वह शक्ति सम्पन्न नहीं हो और उसे अवलम्ब नहीं हो, जिस पर अवस्थित हो उसके माध्यम से वह क्रिया करें। परमचेतन के सान्निद्ध से उसमें क्रियाशक्ति का आविर्भाव होता है और यह सक्रिय होता है। इसकी यह क्रियाशक्ति सम्पन्न अवस्था का नाम महत्तत्व, बुद्धितत्व प्रकृति या मूलक्रिया है।

यद्यपि कि उक्त तीनों क्रिया हैं तथापि माध्यम रूप भी है और इन दोनों का सम्बन्ध ऐसा है कि एक से दूसरे को कभी भी विलग नहीं किया जा सकता। दोनों एक दूसरे में रहते हैं ऐसा कि एक ही नाम से दूसरे का भी बोध होता है। यद्यपि कि सत्व, रज एवं तम, तीनों क्रिया रूप है तथापि सत्व एवं रज क्रिया प्रधान क्रिया है एवं तम माध्यम प्रधान। क्रिया प्रधान क्रिया वह है जिसका परिणाम माध्यम या अवलम्ब हो।

जब सत्व, रज, तम तीनों क्रियाशक्ति सम्पन्न होती है तो इसमें क्रिया करने का भाव आता है। यद्यपि कि यह क्रिया रूपा है तथापि जड़ या अचेतन होने के कारण इसका यह भाव नष्ट हुआ रहता है, क्रियाशक्ति के आविर्भाव के साथ साथ इसमें क्रिया का भाव आता है, अतः इस अवस्था का नाम बुद्धितत्व भी है जैसा कि कहा भी है—

अध्यवसायो बुद्धिः॥ सां. द. २ अ० श्लो० १३॥

महत्तत्व भी इसी का नाम है—महत्तत्व इसलिए कि इसी से सारी सृष्टि का निर्माण होता है। जब ये तीनों क्रियायें क्रियाशील होती हैं तब एक दूसरी नई बात होती है। सत्व, तम दोनों विरोधी क्रिया हैं—सत्व का क्रिया प्रकाश है एवं तम का आवरण अतः इन दोनों के बीच संघर्ष स्वयं आ जाता है। इस विरोधाभाव या अहंभाव के कारण ही इस अवस्था का नाम अहंकारावस्था है।

सत्व एवं तम के बीच संघर्ष के आजाने से फिर एक परिवर्त्तन आता है। अहंभाव के कारण सत्व में भी संघर्ष का आविर्भाव होता है एवं तम में भी होता है। सत्व एवं संघर्ष के योग से ग्यारह प्रकार की क्रियायें उत्पन्न होती हैं। जिसे एकादश इन्द्रिय कहते हैं और तम एवं रज के संयोग से

पांच प्रकार की क्रियायें उत्पन्न होती हैं जिसे तन्मात्रा कहते हैं। ये सोलह क्रियायें कैसे उत्पन्न होती हैं इनके सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा।

चूंकि सत्व एवं रज क्रिया प्रधान क्रिया है अत: इसकी क्रिया का परिणाम भी क्रिया ही होता है और रज एवं तम क्रिया एवं अधिष्ठान प्रधान क्रिया है अत: इसके क्रिया का परिणाम क्रिया एवं अधिष्ठान दोनों ही होता है। सत्व तथा रज के संयोग से उत्पन्न होने वाली ग्यारह क्रियाओं में पांच तो प्रकाश प्रधान होती हैं और पांच स्पर्श प्रधान और एक उभय प्रधान, पांच प्रकाश प्रधान क्रियाओं को पंच-ज्ञानेन्द्रिय, पांच स्पर्श प्रधान को कर्मेन्द्रिय एवं उभय प्रधान को मनेन्द्रिय कहते हैं। इन ग्यारह क्रियाओं का सामूहिक नाम इन्द्रिय या क्रिया प्रधान क्रिया इकाई कहते हैं। इकाई इसलिए कि जिस प्रकार एक से नौ तक की संख्या तथा शून्य के योग से जितनी भी संख्यायें हैं सभी का निर्माण होता है, उसी प्रकार इन ग्यारह प्रकार की क्रियायों के पारस्परिक योग से जितनी भी अन्य क्रियायें हैं सभी उत्पन्न होती हैं।

रज एवं तम के संयोग से जो पांच क्रियायें उत्पन्न होती हैं वे क्रिया एवं अधिष्ठान दोनों मय होते हैं या दोनों के मिश्रिण होते हैं। चूंकि तम क्रिया रूप होते हुये भी माध्यम प्रधान होता है। अत: इन दोनों के योग से उत्पन्न होने वाला योग यद्यपि कि एक ही होता है तथापि इसमें दोनों रहते हैं। रज एवं तम क्रिया है अत: इनके संयोग से क्रिया ही उत्पन्न होती है। मगर चूंकि तम माध्यम प्रधान है अत: माध्यम अवशिष्ट रूप में रहता है। इन दोनों याने क्रिया अंश एवं अवशिष्ट अंश दोनों का सामूहिक नाम तन्मात्रा है। इसका अर्थ है कि किसी मात्रा में दो वस्तु एक साथ है। चूंकि इनकी मात्रा इतनी तनु है कि वह अङ्कों से प्रगट नहीं किया जा सकता, इसलिए इसे तन्मात्रा कहते हैं।

नियमतः दो प्रकार की क्रियायों के संयोग से क्रिया ही उत्पन्न होती है मगर रज एवं तम इन प्रकार की क्रियायों से क्रिया के अतिरिक्त एक ऐसा अंश भी बचा रह जाता है जो क्रिया होते हुए भी क्रिया से बिलग है। अब तक सत्व, रज, तम केवल क्रिया रूप ही रहे हैं क्रिया के सिवाय उनमें और कोई विशेषता नहीं रहती मगर इस योग में ऐसी एक विशेषता आ जाती है। इसी को कहा है–

अविशेषाद विशेषारम्भः –सां दर्शन ३ अ०

रज एवं तम के संयोग से उत्पन्न हुए तन्मात्रायों के क्रिया अंश का संयोग तो एकादश इन्द्रियों से होता है [जिसके सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा] तथा तन्मात्राओं के अवशिष्ट अंश से महाभूतों का निर्माण होता है।

तन्मात्राओं के इन दोनों अंशों में बहुत कम अन्तर रहता है। क्रिया अंश क्रिया होते हुये भी अधिष्ठान क्रिया है–किसी भी योग्य अधिष्ठान पर अवस्थित हो अधिष्ठान का निर्माण करने की सामर्थ्य रखता है और अवशिष्ट अंश अधिष्ठान अंश होने के कारण अधिष्ठानों का निर्माण करता है। ऐसी बात भी नहीं है कि यह अधिष्ठान अंश अधिष्ठान ही हो, यह भी क्रियावान है–मगर इस क्रिया का परिणाम सिवाय अधिष्ठान निर्माण के अन्य कुछ भी नहीं होता है। अत: महाभूतों में क्रिया भी होती है जिसे अधिष्ठान क्रिया भी कह सकते हैं।

पंच महाभूतों के मिश्रण से याने पांचों महाभूत जब एक साथ मिश्रित होते हैं तब इन पांचों का क्रिया अंश एवं अधिष्ठान अंश दोनों ही परस्पर मिश्रित होता है। पांचों के पांच क्रिया अंश मिश्रित होने के पश्चात् तीन हो जाते हैं। इन तीनों का सामूहिक नाम दोष, धातु या मल है। इसका याने धातु का काम अब यह होता है कि अधिष्ठान अंश को अपने में बन्दी बना या उन्हें धारण कर एक अणु का रूप ले लेता है। इसका काम अधिष्ठान अंश को धारण करना है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि तन्मात्राओं के अवशेष अंश याने अधिष्ठान अंश के पारस्परिक

संयोग से महाभूतों का निर्माण होता है। अवशेष अंश याने तन्मात्राओं के अधिष्ठान अंश, यद्यपि कि अधिष्ठान है तथापि क्रिया रूप ही रहता है-मगर सिवाय अधिष्ठान निर्माण के कोई दूसरी क्रिया नहीं करता। इसका क्रिया अंश जो इन्द्रियों से संयुक्त होता है वह भी क्रिया रूप ही है मगर इन दोनों क्रियायों में अन्तर यह है कि अवशेष अंश स्वतंत्रता-पूर्वक अधिष्ठानों का निर्माण नियमबद्ध रूप से निरन्तर करते चले जाते हैं उसमें उन्हें कोई रुकावट नहीं है मगर इन्द्रियों से मिलने वाले क्रिया अंश यद्यपि कि अधिष्ठान क्रिया ही है तथापि केवल क्रिया रूप ही है। ये तब तक किसी अधिष्ठान का निर्माण नहीं कर सकते जब तक कि बीज रुपा योग्य अधिष्ठान का संयोग इसे प्राप्त नहीं होता। जब किसी योग्य बीज रुपा अधिष्ठान से इसका संयोग होता है तब यह उस पर आरूढ़ हो उसका विस्तार करने लगता है। क्रिया रूप होने के कारण बीज में यह क्रिया ले आता है और जैसा बीज रहता है वैसी इसकी क्रिया होती है चूंकि यह अधिष्ठान क्रिया है अतः इसमें सभी अधिष्ठानों के निर्माण की शक्ति रहती है मगर यह स्वतः अधिष्ठान का निर्माण नहीं करता और तन्मात्रा का अधिष्ठान अंश स्वतः अधिष्ठानों का निर्माण करता है।

इस प्रकार यह देखते हैं कि तन्मात्राओं के दोनों ही अंश क्रिया रूप हैं। याने क्रिया अंश भी एवं अधिष्ठान अंश भी। दोनों में सादृश अधिष्ठान का भी है-ऐसा नहीं है कि क्रिया अंश एकदम अधिष्ठान विहीन है और अधिष्ठान अंश क्रिया-विहीन है। क्रिया अंश को भी वही अधिष्ठान प्राप्त है जो अधिष्ठान अंश को है, मगर यह इससे स्वतः अधिष्ठानों का निर्माण नहीं करता है इसके अतिरिक्त यह कोई अन्य क्रिया नहीं करता। अतः यह क्रिया होते हुये अधिष्ठान क्रिया कहाता है जो क्रिया प्रधान क्रिया याने इन्द्रियों से भिन्न होता है।

अधिष्ठान क्रिया में अधिष्ठान एवं क्रिया अंश दोनों ही एक साथ रहते हैं ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मूल क्रिया के साथ रहता है याने दोनों को एक दूसरे से विलग नहीं किया जा सकता। मगर जब यही पांचों महाभूत एक साथ मिश्रित होते हैं तब क्रिया एवं अधिष्ठान अंश दोनों विलग हो जाते हैं। यद्यपि कि विलग होने पर भी ये दोनों अभिन्न ही रहते हैं तथापि दोनों को एक दूसरे से विलग किया जा सकता है। विलग होते ही ये दोनों पुनः महाभूतों में ही परिवर्तित हो जाते हैं। याने प्रकृति का क्रिया अंश एवं अधिष्ठान अंश जो कि अब तक ऐसे रहे हैं कि उन्हें एक दूसरे से विलग नहीं किया जा सकता वही पांचों महाभूतों के मिश्रण के बाद ऐसे हो जाते हैं कि विलग किये जा सकते हैं। पांचों महाभूतों के एक साथ मिलने पर क्रिया अंश अलग धातु के रूप में आ जाता है और अधिष्ठान अंश अलग और दोनों मिलकर एक अणु का निर्माण करते हैं। अणु से उसके क्रिया अंश को हम विलग कर सकते हैं और उनका विलग होना ही उस अणु का नाश कहाता है। मगर महाभूतों से हम ऐसा नहीं कर सकते और इसी कारण महाभूत नश्वर नहीं हैं। सारी नश्वर सृष्टि पंचमहाभूतों के संयोग से बनी है।

दोष, धातु या मल क्रिया हैं, इनकी क्रिया है महाभूतों के अधिष्ठान अंश को धारण करना। उन्हें धारण कर यह अणु के रूप में आता है। धारण क्रिया में उनका पोषण एवं वृद्धि दोनों ही सम्मिलित हैं।

पांच महाभूतों की पांच क्रियायें मिलकर तीन क्रियाओं में परिवर्तित होती हैं और ये तीन क्रियायें हैं स्पर्श क्रिया, रूप क्रिया एवं अवलम्ब क्रिया जिन्हें क्रमशः वायु, पित्त एवं कफ संज्ञा दी गई है। इन तीनों की क्रियायें अनेक रूप से क्रिया करती हैं जिनका वर्णन आगे किया जायगा। जब ये तीनों माध्यम या अधिष्ठान अंश से अधिक या बराबर होते हैं तब तो ये स्वयं क्रियाशील रहती हैं मगर जिसमें माध्यम अंश क्रिया अंश से अधिक होता है उसमें यह स्वयं क्रियाशील नहीं होता है। यह तभी क्रियाशील होता

शील होता है जब किसी अन्य अधिक क्रिया अंश वाले के साथ संयुक्त होता है। जब ये तीनों क्रिया अंश सम या बराबर रहते हैं तब अणु को एक साकार रूप प्रदान करते हैं, यदि ये सम या बराबर नहीं होते तब ऐसा नहीं होता है।

महतत्व, एवं अहंकारावस्था तक तो क्रिया असीम रूप की होती है मगर इन्द्रियों, पञ्चतन्मात्राऐं एवं महाभूतों में क्रिया कुछ सीमित रूप की होजाती है। इन्द्रियां क्रिया प्रधान क्रिया होती है एवं तन्मात्राऐं एवं महाभूत अधिष्ठान या माध्यम प्रधान क्रिया होती है। यद्यपि कि जितनी भी क्रियाऐं हैं सभी इन्द्रियों से ही उत्पन्न होती हैं मगर वह किसी भी अधिष्ठान का निर्माण क्रिया नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त की कोई सीमा नहीं है। अधिष्ठान क्रिया द्वारा जितने भी अधिष्ठान हैं सभी का निर्माण होता है। ऐसा कोई अधि- नहीं जो इसका परिणाम न हो मगर सिवाय अधिष्ठान निर्माण के अन्य कोई क्रिया नहीं करती। यद्यपि कि अधिष्ठान निर्माण में इसकी कोई सीमा नहीं है। इस प्रकार यह दोनों क्रियायें असीम होते हुये भी सीमाबद्ध होजाती हैं अतः क्रिया यहां आकर ससीम असीम होती है। इन्द्रियों एवं पञ्चतन्मात्रायों के योग सूक्ष्म शरीर में तथा सम धातुओं के योग में क्षेत्रीय होजाती है। इसमें विशेषता यह आती है कि क्रिया अपने क्षेत्र में तो सभी क्रियाओं को करता है मगर उन्हीं क्रियाओं को जिन्हें वह अपने क्षेत्र में किया करता है उसे अपने क्षेत्र के बाहर नहीं कर सकता। इसमें क्रिया केन्द्रित होजाती है और उस केन्द्र को छोड़ अलग क्रिया नहीं करती। जहां दोष-धातु-मल सम नहीं होते वहां इनकी क्रिया सीमित होती है और जिसमें माध्यम ही अधिक होता है उसमें भी क्रिया सीमित होती है। क्रिया अंश के अधिक होने पर क्रिया तो स्वयं होती रहती है मगर चूंकि क्रिया स्वयं सम नहीं होती अतः इसकी क्रिया इतनी सीमित होजाती है कि सिवा एक दो क्रिया के वह उन अन्य क्रियाओं को नहीं करती जिन्हें वह करने में समर्थ भी है। जिसमें माध्यम अंश अधिक है उसमें भी यही बात होती है यद्यपि माध्यम अंश के अधिक होने पर भी धातु सम अवस्था में है तथापि वह सिर्फ उन्हीं क्रियाओं तक सीमित रहता है जिसे इसके माध्यम ईजाजत दे।

इस प्रकार यह देखते हैं कि क्रिया चार वर्ग की हो जाती है एक असीम, दूसरी ससीम असीम, तीसरा क्षेत्रीय और चौथी सीमित। महतत्व एवं अहंकारावस्था तक असीम, इन्द्रिय, तन्मात्रा, एवं महाभूतों में ससीम असीम, सूक्ष्म शरीर एवं सम धातु जो माध्यम अंश के बराबर हो उसमें क्षेत्रीय एवं अन्य शेष में सीमित क्रिया होती है।

अधिष्ठान—

यह पहले लिखा जा चुका है कि मूल प्रकृति अधिष्ठान एवं क्रिया दोनों ही है और अहंकारावस्था तक दोनों एक ही रहते हैं। मगर इसके बाद ये दोनों अपना-अपना विस्तार अलग-अलग करने लगते हैं। क्रियायों के विस्तार के सम्बन्ध में कुछ पहले 'क्रिया' नाम से लिखा जा चुका है और कुछ सूक्ष्म शरीर के वर्णन में लिखा जायगा। तन्मात्रायों से एक ऐसी क्रिया विलग होती है जिसकी क्रिया अधिष्ठान का निर्माण करना होता है। अधिष्ठान क्रिया पांच हैं और इनके पारस्परिक संयोग से पांच महाभूत नामक अधिष्ठानों की उत्पत्ति होती है। ये पांच महाभूत भी तन्मात्रायों के अधिष्ठान क्रिया के समान क्रिया रूप ही होती है। 'इन्द्रिय तन्मात्रायों की उत्पत्ति' के वर्णन में आगे यह बताया जायगा कि कैसे-कैसे इनकी उत्पत्ति होती है।

महाभूतों के पारस्परिक संयोग से द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। महाभूतों का संयोग दो तरह से होता है एक वह जिसमें पांचों के पांचों महाभूत संयुक्त होते हैं और दूसरा वह जिसमें चार या अधिक महाभूत एक साथ संयुक्त नहीं होते। जिसमें पांचों के पांचों महाभूत संयुक्त होते हैं उनमें एक परिवर्तन यह है कि पांचों महाभूत की

क्रियाऐं परस्पर मिलकर दोष धातु या मल का रूप लेता है जिसके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। पांचों महाभूतों की संख्या, परिमाण आदि पर धातुयों का अनुपातादि निर्भर करता है। पहले यह लिखा जाचुका है कि दोष धातु या मल तीन हैं इनका काम है स्पर्श, रूप एवं अवलम्ब प्रदान करना।

जिसमें पांचों महाभूत एक साथ संयुक्त नहीं होते उसमें ऐसी बात नहीं होती है, उसमें 'दोष' धातु या मल का निर्माण नहीं होता है। जिसमें पांचों महाभूतों का संयोग नहीं होता है उस मिश्रण से जो अधिष्ठान का निर्माण होता है उसे इन्द्रिय अगोचर निर्माण कहते हैं और जिसमें पांचों के पांचों (चाहे जिस किसी भी संख्या एवं मात्रा में वे क्यों न रहें) संयुक्त होते हैं उसे इन्द्रिय-गोचर निर्माण या द्रव्य भी कहते हैं।

द्रव्य उसे कहते हैं जिस में क्रिया माध्यम या गुण दोनों ही एक साथ समवाय रूप से रहे। जैसे एक लोहे के टुकड़े को लें। इसमें क्रिया (दोष, धातु या मल) तथा माध्यम या गुण समवाय रूप से एक साथ रहते है—जैसा कि कहा भी है।

यत्राश्रिता कर्म्म गुणाः कारणं समवायी यत्।
तद् द्रव्यं··························॥५०॥
प्रयत्नादि कर्म्म चेष्टितमुच्यते॥ ४८ ॥
समवायी तु निश्चेष्ट कारणं गुणः॥ ५१ ॥
[च० सू० १ अ०]

लोहे के टुकड़े में उसका कर्म्म याने कफ पित्त· वायु है, उपादान कारण है (महाभूतों का अधिष्ठान अंश जो अब स्वयं निश्चेष्ट हो गये हैं चूंकि उनका क्रिया अंश धातु का रूप ग्रहण कर उनसे विलग हो गया है) और ये दोनों समवाय रूप से एक दूसरे के साथ रहते हैं। लोहे के टुकड़े में से कफ पित्त वायु को अलग किया नहीं कि लौह पुनः अपने मूल रूप महाभूत में परिवर्त्तित हो जाता है फिर वह लोह रहता नहीं। अतः द्रव्य वह है जिसमें सिवाय उसके क्रिया अंश एवं अधिष्ठान अंश के और कुछ नहीं रहता और जिनमें से एक को भी विलग करते ही पुनः महाभूत का महाभूत हो जाये। इसे ही तत्व (Elements) भी कहते हैं।

द्रव्य दो प्रकार के होते हैं एक शुद्ध द्रव्य दूसरा मिश्रित द्रव्य। शुद्ध द्रव्य वह है जो अणु रूप में केवल क्रिया अंश तथा अधिष्ठान अंश का योग है याने उसमें इन दो के अतिरिक्त तीसरी और कोई वस्तु नहीं हो और जिनका आगे विश्लेषण होने पर महाभूत हो जाये। मिश्रित द्रव्य वह है जिसमें क्रिया अंश एवं अधिष्ठान अंश दोनों ही हो मगर अधिष्ठान अंश में विभिन्न प्रकार के शुद्ध द्रव्यों के अणु हों और विश्लेषण में उन अणुयों को पृथक् किया जा सके।

शुद्ध द्रव्यों का निर्माण केवल पांचों महाभूतों के मिश्रण से होता है और मिश्रित द्रव्यों का निर्माण पांचों महाभूत एवं शुद्ध द्रव्यों दोनों ही के मिश्रण से होता है। शुद्ध द्रव्य अणु (Atoms Molicules) के रूप में होते हैं और मिश्रित द्रव्य परमाणु (Cells) के रूप में होते हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि पञ्च महाभूतों का मिश्रण दो प्रकार का होता है एक से इन्द्रिय अगोचर एवं दूसरे से इन्द्रिय गोचर-निर्माणों की उत्पत्ति होती है।

इन्द्रिय-गोचर द्रव्य पुनः दो प्रकार के होते हैं एक निराकार दूसरा साकार। जब पञ्च-महाभूतों का मिश्रण ऐसा हो कि उसमें पांचों के पांचों महाभूत सम्मिलित हों मगर उनके मिश्रण के परिणाम में महाभूतों का क्रिया अंश माध्यम अंश की अपेक्षा अधिक हो तो वह निराकार रूप धारण करता है। जैसे-जैसे इसमें माध्यम अंश बढ़ता जाता है वैसे वैसे इनकी साकारता बढ़ती जाती है। जिसमें क्रिया अंश की अपेक्षा माध्यम अंश अधिक होता है वह साकार रूप धारण करता है। साथ ही साथ यह आवश्यक तीनों क्रिया अंश याने स्पर्श, रूप एवं अवलम्ब (वायु, पित्त, कफ) परस्पर बराबर रहे। यदि तीनों क्रिया अंश बराबर हुए और इन तीनों का योग माध्यम अंश की अपेक्षा कम रहे

तब पांचों महाभूत का मिश्रण साकार रूप धारण करता है इन तीनों क्रिया के बराबर होते हुए भी यदि माध्यम अंश क्रिया अंश से न्यून है तो वह साकार रूप नहीं लेता याने वह निराकार ही रहता है। साकार के लिए यह दोनों ही बात आवश्यक है याने तीनों क्रिया का बराबर रहना तथा क्रिया की अपेक्षा माध्यम अंश का अधिक होना, निराकार के लिए क्रिया अंश को माध्यम अंश की अपेक्षा अधिक रहना आवश्यक है चाहे क्रिया अंश परस्पर बराबर हो या न हो।

निराकार या साकार दोनों ही इन्द्रिय गोचर द्रव्य पंचभौतिक हैं, इनके संख्या, परिमाण, अनुपातादि पर दोनों चीज निर्भर करती हैं, क्रिया अंश एवं माध्यम अंश। महाभूतों के परिमाणादि के अनुसार क्रिया अंश भी परस्पर बराबर याने सम या विषम होता है।

जिस प्रकार पंच-महाभूतों के मिश्रण से पञ्च-महाभूतों की पांच विभिन्न क्रियायें परस्पर मिश्रित हो तीन क्रिया का रूप लेती है उसी प्रकार पञ्च महाभूतों के पांच विभिन्न अधिष्ठान भी परस्पर मिलकर तीन रूप होते हैं स्पर्श अधिष्ठान, रूप अधिष्ठान एवं अवलम्ब अधिष्ठान। महाभूतों के मिश्रण में उनका जैसा अनुपातादि रहता है वैसा ही अनुपातादि इसका होता है। अतः सभी द्रव्य चाहे वे साकार हों या निराकार शुद्ध द्रव्य हो या मिश्रित पञ्चभौतिक है और जिसमें जिस क्रिया एवं अधिष्ठान का आधिक्य होता है उसके मूल महाभूत के नाम पर तत् प्रधान द्रव्य कहाता है या क्रिया के नाम पर तत् द्रव्य कहा जाता है ऐसे सभी द्रव्य पञ्चभौतिक हैं तीनों क्रिया एवं अधिष्ठानमय हैं जैसा कहा भी है—

तन्मयान्येव भूतानि तद्गुणान्येव चादिशेत्।
तैश्च तल्लक्षणः कृत्स्नो भूतग्राम व्यजन्यत् ॥

—सु० शा० १ अ० १४ श्लो०

तत्र पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां समुदायाद्द्रव्याभिनिर्वृत्तिः उत्कर्षस्त्वभिव्यञ्जको भवति ग्रादि ॥

—सु० सू० २४ अ० श्लोक १

ऊपर लिखा जा चुका है कि जब पांचों महाभूत एक साथ मिश्रित होते हैं तो उनका क्रिया अंश एवं अधिष्ठान मिश्रित हो पांच से तीन हो जाते हैं। याने ये कुछ स्थूल होते हैं, जितना सूक्ष्म पांचों अलग-अलग रह कर थे उतना नहीं रहते। दूसरा परिवर्तन होता है क्रिया अंश के स्वतन्त्र अस्तित्व में आने का जो पहले नहीं था याने महाभूतावस्था में क्रिया अंश एवं अधिष्ठान अंश दो होते हुए भी अलग अलग स्वतन्त्र अस्तित्व वाले नहीं रहते। महाभूतावस्था में इनकी क्रिया द्रव्य निर्माण की रहती है मगर द्रव्यावस्था में इसकी क्रिया केवल अधिष्ठान को धारण किये रहना एवं धारण किये हुए अधिष्ठान का पोषण एवं वृद्धि करना होता है।

जब पांचों महाभूत एक साथ मिश्रित होते हैं तो उनसे निराकार एवं साकार द्रव्यों का निर्माण होता है जिसके सम्बन्ध में ऊपर लिखा जा चुका है। पुनः साकार द्रव्यों में भी दो प्रकार के द्रव्य होते हैं एक जड़ दूसरा चेतन। जड़ द्रव्य वह है जिसमें क्रिया अंश की अपेक्षा माध्यम अंश अधिक होता है। इतना अधिक कि क्रिया अंश सिवाय उसे धारण किये रहने के अपने अन्य किसी भी क्रिया में समर्थ नहीं होता और चेतन द्रव्य में दोनों बराबर हुआ करते हैं। अतः चेतन द्रव्य में क्रिया अंश उसे धारण किये रहने के अतिरिक्त अपनी अन्य क्रियाओं को भी स्वतः करते रहते हैं जैसे उसका पोषण एवं वृद्धि। ऐसे द्रव्यों का निर्माण जिसमें ये दोनों बराबर हों केवल महाभूतों के संयोग से नहीं हो पाते। महाभूतों के संयोग से जिन शुद्ध द्रव्यों का निर्माण होता है उसमें या तो क्रिया अंश ही अधिक होते या अधिष्ठान अंश ही अधिक होते हैं। इसे बराबर में लाने के लिए महाभूतों के साथ साथ कुछ शुद्ध द्रव्य (दोनों प्रकार के) भी संयुक्त होते हैं याने चेतन द्रव्य मिश्रित द्रव्य होते हैं। शुद्ध द्रव्यों के साथ होने से यह संतुलित हो जाता है। अतः पंच महाभूतों के मिश्रण से निम्नलिखित निर्माण बनते हैं—

१-इन्द्रिय अगोचर द्रव्य—

इसमें पांच महाभूतों में से चार से अधिक का मिश्रण नहीं होता है और इनका अनुभव हम अपनी इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय द्वारा नहीं कर सकते।

२-इन्द्रियगोचर द्रव्य—

इसमें पांचों के पांचों महाभूत संयुक्त होते हैं और इन्हें हम अपनी इन्द्रियों में से किसी एक इन्द्री या समग्र इन्द्रियों द्वारा जान सकते हैं।

३-दोष, धातु या मल—

पंच महाभूतों के मिश्रण से उनके क्रिया अंश मिश्रित हो अलग होते हैं और उसी क्रिया अंश का सामूहिक नाम दोष-धातु या मल है। ये क्रिया रूप हैं।

४-अधिष्ठान अंश—

पंचमहाभूतों के मिश्रण से उनके अधिष्ठान अंश क्रिया अंश से अलग हो जाते हैं। ये केवल अधिष्ठान मात्र है, जड़ है।

५-निराकार द्रव्य—

पंच महाभूतों के ऐसे मिश्रण जिसमें माध्यम अंश की अपेक्षा क्रिया अंश अधिक होता है। यह अतः क्रियाशील रहते हैं। यह इन्द्रियगोचर द्रव्य का ही एक भेद है।

६-साकार द्रव्य—

यह भी इन्द्रियगोचर द्रव्य का ही एक भेद है। इसमें तीनों क्रिया अंश (धातु) परस्पर बराबर होते हैं और इन तीनों का योग माध्यम अंश की अपेक्षा न्यून होते हैं।

७-शुद्ध द्रव्य—

वह है जो केवल महाभूतों के मिश्रण से बनता है। यह साकार भी हो सकता है निराकार भी हो सकता है। इसे ही तत्व भी कहते हैं। यह अणु के रूप में होता है।

८-मिश्रित द्रव्य—

जिसमें पांचों महाभूतों के अतिरिक्त उसके साथ साथ शुद्ध द्रव्य भी मिश्रित हो।

९-जड़ द्रव्य—

यह इन्द्रियगोचर द्रव्य का ही एक भेद है। जिसमें क्रिया अंश की अपेक्षा माध्यम अंश का आधिक्य होवे। यह शुद्ध द्रव्य भी हो सकता है एवं मिश्रित द्रव्य भी हो सकता है।

१०-चेतन द्रव्य—

यह साकार मिश्रित द्रव्य का ही एक भेद है। जिसमें क्रिया अंश एवं माध्यम अंश दोनों ही बराबर हों एवं तीनों क्रिया अंश भी बराबर हों।

क्रिया प्रधान क्रिया या इन्द्रिय तथा अधिष्ठान प्रधान क्रिया या तन्मात्राओं का निर्माण—

यह पहले लिखा जा चुका है कि सत्व, रज एवं तम इन तीनों के क्रियाशक्ति-विहीनावस्था का नाम मूल प्रकृति है, परम चेतन के सान्निद्ध से यह क्रिया शक्ति सम्पन्न हो सक्रिय होता है और इसकी इस सक्रिय अवस्था का नाम महतत्व है।

प्रकाश (सत्व) क्रियाशक्ति सम्पन्न हो गतिवान होता है, संघर्ष (रज) स्पर्शवान एवं आवरण (तम) अवलम्बवान। क्रियाकाल में सत्व एवं तम का संघर्ष होता है। दोनों में संवर्ष का भाव आता है; दोनों के साथ संघर्ष का संयोग होता है, संघर्ष [रज क्रियाशील] अपनी क्रिया दोनों ही के साथ करता है।

सत्व एवं रज के संयोग से याने गतिवान प्रकाश एवं स्पर्शवान संघर्ष के योग का परिणाम ग्यारह इन्द्रिय एवं तम तथा रज के संयोग से याने अवलम्बमय आवरण तथा स्पर्शवान संघर्ष के योग से पांच तन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं।

यद्यपि कि गति प्रकाश की ही क्रिया है तथापि यह अपना अस्तित्व भिन्न रखती है। उसी प्रकार स्पर्श संघर्ष की क्रिया होते हुए भी अपना भिन्न अस्तित्व रखता है. मगर अवलम्ब आवरण की क्रिया होते हुए भी अपना भिन्न अस्तित्व नहीं रखता। कारण आवरण का ही दूसरा रूप अवलम्ब होता है अतः यह दो होते हुए भी एक ही रहता है, एक

का दूसरा प्रवृद्ध रूप होता है।

जब सत्व एवं रज का संयोग होता है याने गतिवान प्रकाश एवं स्पर्शवान संघर्ष एक साथ क्रियाशील होते हैं तब तीन प्रकार के योगों का निर्माण होता है। १-पांच प्रकाश एवं संघर्ष या तेज प्रधान २-पांच गति एवं स्पर्श प्रधान ३-एक प्रकाश, गति, तेज स्पर्श सभी प्रधान याने उभय प्रधान।

जब रज एवं तम याने स्पर्शमय संघर्ष एवं अवलम्बमय आवरण का संयोग होता है तब पांच प्रकार के अधिष्ठान क्रियायों का निर्माण होता है।

सत्व एवं रज के संयोग से पांच संघर्ष एवं प्रकाश प्रधान:—

सत्व (प्रकाश गति) × रज (संघर्ष स्पर्श)

१-संघर्ष या तेजोमय प्रकाश (प्रकाश प्रधान तेज या संघर्ष)
२--प्रकाश प्रधान गतिमय संघर्ष या तेज (प्रकाश प्रधान तेजोमयगति)
३—प्रकाश प्रधान स्पर्शमय गति (प्रकाश प्रधान गतिमय स्पर्श)
४—प्रकाश प्रधान तेजोमय या स्पर्शमय तेज
५--प्रकाश प्रधान स्पर्श।

सत्व एवं रज के संयोग से पांच गति एवं स्पर्श प्रधान—
१-गतिमय स्पर्श (गति प्रधान स्पर्श)
२-गतिमय संघर्ष या तेज (गतिप्रधान संघर्ष या तेज)
३-गति प्रधान तेजोमय प्रकाश
४-गति प्रधान स्पर्शमय प्रकाश
५-गति प्रधान स्पर्शमय तेज

उभय प्रधान याने सत्व एवं रज दोनों प्रधान—(प्रकाश एवं गतियुक्त तेजोमय स्पर्श रज एवं तम के संयोग से पांच अधिष्ठान क्रिया)—
१-आवरणमय तेज या तेजोमय आवरण
२-आवरणमय स्पर्श या स्पर्शमय आवरण
३-अवलम्ब मय तेज या तेजोमय अवलम्ब
४-अवलम्ब मय स्पर्श या स्पर्श मय आवरण
५-आवरण या अवलम्ब मय तेज स्पर्श।

सत्व एवं रज के संयोग से उत्पन्न होने वाले का नाम क्रिया प्रधान क्रिया इकाई है एवं तम एवं रज के संयोग से उत्पन्न होने वाले का नाम अधिष्ठान प्रधान क्रिया इकाई है। यद्यपि कि ये दोनों ही क्रिया हैं और अधिष्ठान युक्त भी हैं तथापि दोनों में कुछ अन्तर रहता है। क्रिया प्रधान क्रिया ईकाई को अधिष्ठान उतना ही भर है, जितने में उसे माध्यम बना वह अपना अस्तित्व कायम रखे। इनका सम्बन्ध याने क्रिया एवं अधिष्ठान का अभिन्न है एक को दूसरे से पृथक् करना सम्भव नहीं है। यद्यपि कि यह क्रिया रूप है और ऐसी क्रिया रूप जिनसे समस्त क्रियाओं की उत्पत्ति है तथापि यह अधिष्ठान निर्माण की क्रिया को नहीं कर सकता है। इसके साथ जो अधिष्ठान है वह सिर्फ इसे अवलम्ब देने भर है। अधिष्ठान प्रधान क्रिया भी यद्यपि कि क्रिया रूप है मगर सिवाय अधिष्ठान निर्माण के किसी अन्य क्रिया को यह नहीं कर सकता।

क्रिया प्रधान क्रिया ग्यारह हैं। जिसमें पांच प्रकाश एवं तेज प्रधान, पांच गति एवं स्पर्श प्रधान और एक प्रकाश, गति, तेज, स्पर्श सभी प्रधान होते हैं। इसमें प्रथम को प्रकाशेन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय, द्वितीय को कर्मेन्द्रिय या गति इन्द्रिय तथा तृतीय को उभय प्रधानेन्द्रिय या मनेन्द्रिय कहते हैं जैसा कि कहा है—

उभयात्मकं मनः ।।२६।। —शा० द० द्वितीय अ०

इस तरह सत्व एवं रज के संयोग से तो ग्यारह प्रकार की क्रिया प्रधान क्रियायें उत्पन्न होती हैं मगर तम एवं रज के संयोग से पांच ही होती हैं। इसका कारण यह है कि तम की जो आवरण एवं अवलम्ब क्रियाऐं हैं उनमें से अवलम्ब आवरण का ही प्रगाढ़ तम रूपान्तर है अतः आवरण एवं अवलम्ब के एक साथ होने पर अवलम्ब ही शेष रहता है इसीलिये तम (आवरण, अवलम्ब) × रज (तेज, स्पर्श) का परिणाम पांच ही होता है जिसके सम्बन्ध में पहिले लिखा जा चुका है। प्रकाश एवं गति तथा संघर्ष एवं स्पर्श में ऐसी बात नहीं है। यद्यपि की गति प्रकाश की ही क्रिया है एवं स्पर्श संघर्ष का तथापि प्रकाश से गति एवं संघर्ष से स्पर्श अपना-अपना भिन्न अस्तित्व रहता है अतः इन चार क्रियाओं के संयोग से ग्यारह क्रियायें उत्पन्न होती हैं।

बिजली की मशीन

(Medico-Magnatic Machine)

बैटरी से चलने वाली
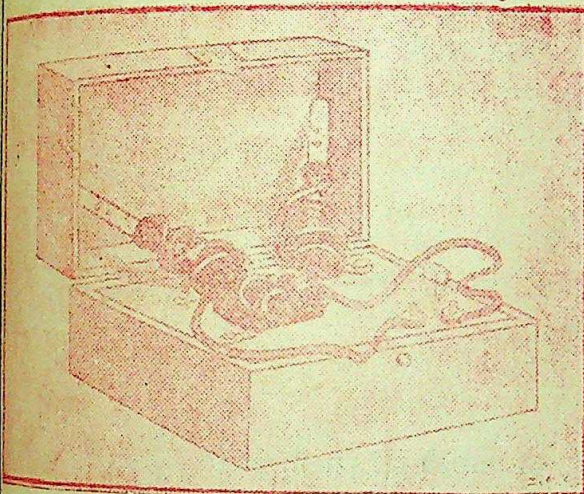
इस मशीन द्वारा प्रायः सभी रोग आराम हो जाते हैं, हजारों की तादात में बिक चुकी हैं तथा जिसने खरीदी सभी ने प्रशंसा की है। हम स्वयं अपने चिकित्सालय में इसका सफलापूर्वक अनेक रोगियों पर नित्य-प्रति व्यवहार करते हैं। साधारण टोर्च की २ सैल इसमें लगाई जाती हैं जो महीनों काम देती हैं। ये सैल छोटे-छोटे गांवों में भी मिल जाती हैं अतः बदलने में कोई परेशानी नहीं है। यह मशीन आपके चिकित्सालय की शोभा बढ़ाने वाली और रोगियों को आकर्षित करने वाली प्रमाणित होगी। विस्तृत व्यवहार-विधि पुस्तक मशीन के साथ फ्री भेजी जायगी। मूल्य—२ सैल के सहित २५) पोस्ट व्यय पृथक् होगा।

नोट—आर्डर के साथ ५) एडवांस अवश्य भेजें।

प्राप्ति स्थान—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए

रोगी रजिस्टर—

चिकित्सार्थ आने वाले रोगियों का विवरण लिखने के लिए सभी आवश्यक कालमयुक्त, चिकने ग्लेज कागज पर छपा २०० पृष्ठ का रजिस्टर मूल्य ३)

रोगी प्रमाणपत्र—

अवकाश प्राप्ति के लिए दिया जाने वाला प्रमाणपत्र, दुरंगे सुन्दर छपे हुए, ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका हिन्दी में मू. १), बड़े साइज में अंग्रेजी में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)

स्वस्थ प्रमाणपत्र—

अवकाश के पश्चात् कार्य पर जाने के पूर्व स्वस्थ होने का प्रमाणपत्र देना होता है, उसी प्रमाणपत्र की ५० प्रति की पुस्तिका हिन्दी में मू. १) बड़े साइज में अंग्रेजी में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)

रोगी व्यवस्थापत्र—

रोगियों को दिये जाने वाले दैनिक पर्चे, १० हिदायतें छपी हुई हैं। मू० ।=) प्रति सैकड़ा।

आघात प्रमाणपत्र—

चोट लग जाने पर दिए जाने वाले फुलस्केप साइज में छपे २५ प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १)

तापमान चार्ट—

रोगी का तापमान प्रतिदिन ४ समय का १५ दिन तक अङ्कित करने के उपयोगी फार्म। २५ फार्मों का मूल्य १)

सभी चिकित्सकों के लिए इन चीजों को मंगाकर अवश्य रखना चाहिए।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

शारीरिक-चित्र

ये चित्र अनेक रङ्गों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये गये हैं। इन सभी चित्रों का साइज एक समान २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है, ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढ़े हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी अवयवों का विवरण हिन्दी में लिखा गया है।

नं० १-अस्थि पञ्जर—

इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढंग से दर्शाया गया है। हाथ की अंगुलियों की, पैर की, रीढ़ की, छाती की, सभी अस्थियां स्पष्ट समझ में आ सकती हैं। मूल्य ५)

नं० २-रक्त परिभ्रमण—

इस चित्र में शुद्ध-अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिराएँ अपने प्राकृतिक रङ्गों में दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्त-भ्रमण का पृथक् चित्र है। हृदय एवं सम्बन्धित शिरा-धमनी का पृथक् चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर में सम्पूर्ण धमनी तथा दूसरे हाथ और दूसरे पैर में शिराएँ दर्शाई हैं। मूल्य ५)

नं ३-वातनाड़ी संस्थान—

इस चित्र में सम्पूर्ण वात-नाड़ी मण्डल (Nervous System) का सुन्दर व स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वग-वात नाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क का सम्बन्ध का चित्रण पृथक् किया गया है। चित्र अपने ढङ्ग का निराला है। मूल्य ५)

नं ४ नेत्र रचना एवं दृष्टि-विकृति—

इस चित्र में पृथक्-पृथक् ६ चित्र। हैं१—दक्षिण चक्षु-इसमें चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाए हैं। २—पटलों और कोष्ठ को दिखाने के लिए चक्षु का क्षितिजकाट। ३—चक्षु से सम्बन्धित नाड़ी। ४—दृष्टि-भेद (दर्शन सामर्थ्य)। ६—साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ में आयेगा। मूल्य ५)

चारों चित्र एक साथ मंगाने पर मूल्य केवल १६)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

इस अङ्क में पढ़िये

भाग ३२ अगस्त वार्षिक मूल्य ५॥)
अङ्क ८ १६५८ एक अङ्क ॥)

सफल शास्त्रीय औषधियां

सिद्ध मकरध्वज नं० १—आयुर्वेद शास्त्र की सर्वोत्तम प्रशंसित औषधि रत्न। अपने ६० वर्षीय अनुभव के आधार पर निर्मित अष्ट-संस्कारित पारद द्वारा, अन्तर्धूम विशाचित तथा स्वर्णघटित मकरध्वज का व्यवहार करने के लिए आग्रह पूर्ण निवेदन करते हैं। इसके चमत्कारिक गुणों से सभी परिचित हैं। मूल्य १ तोला ३६)

स्वर्ण बसन्त मालती नं० १—जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, शारीरिक क्षीणता आदि भयङ्कर एवं जीर्ण रोगों के लिये सफल प्रमाणित। सहस्त्रों चिकित्सकों ने इस मालती बसंत को व्यवहार करने के बाद स्वयं निर्माण करना बंद कर दिया है। इसकी सर्वत्र प्रशंसा एवं विपुल मांग है। इसके निर्माण में हम शु० हिंगुल के स्थान पर सिद्ध मकरध्वज नं. १ तथा स्वर्ण वर्क के स्थान पर स्वर्ण भस्म डालते हैं। आप एक बार परीक्षा अवश्य करें। मूल्य १ तोला २४)

बसंतकुसमाकर रस—सोना-मोती-अभ्रक-कस्तूरी आदि कीमती उपादानों से निर्मित अनेक कष्टसाध्य रोगों को दूर करता है। हृदय एवं मस्तिष्क सबल बनाता, वात विकार, मधुमेह, आदि के लिए उपयोगी है। जीर्ण-शीर्ण शरीर को नवीन शक्ति देता है। मूल्य १ तोला २२)

मकरध्वज वटी—अत्युत्तम आयुर्वेदीय टॉनिक। शरीर के लिये विशेष उपयोगी एवं पौष्टिक रसायन है। नया स्वास्थ्य और शक्ति देने वाली सर्वत्र प्रशंसित पेटेंट औषधि। मूल्य ४१ गोली की १ शीशी २॥=)। चिकित्सकों के लिये ५०० गोली २०)

कुमार कल्याण रस—स्वर्ण मोती-अभ्रक आदि द्रव्यों से प्रस्तुत यह औषधि बच्चों के सभी रोगों में अत्युपयोगी सिद्ध होती है। कास-श्वास-शारीरिक निर्बलता, सूखा रोग, वमन, पसलीचलना, चेचक, मोतीझरा आदि सभी रोगों के लिए सफल प्रमाणित हुई है। मूल्य १ तोला ३०)

जयमङ्गल रस—जीर्णज्वर एवं कठिन बुखारों की प्रसिद्ध महौषधि है। मूल्य १ तोला २७)

महालक्ष्मीविलास रस—फैफड़ों की दुर्बलता, बार-बार होने वाले जुकाम नजला में बहुत लाभकारी है। चिकित्सक इसे अनेक रोगों में व्यवहार करते हैं। मूल्य १ तोला ७)

योगेन्द्ररस—यह पुराने तथा जटिल वात विकारों की श्रेष्ठ दवा है। मूल्य १ तोला ३६)

वृ० वातचिन्तामणि रस—सम्पूर्ण वात रोगों के लिए सफलतापूर्वक व्यवहार की जाती है। हृदय और मस्तिष्क को परिपुष्ट रखती है। मूल्य १ तोला २४)

श्वास चिन्तामणि रस—पुराने और कठिन श्वास रोग की सफल औषधि। इञ्जैक्शन और नई दवाओं से हताश रोगी इससे लाभ प्राप्त करते हैं। मूल्य १ तोला १४)

प्रवाल पञ्चामृत रस—इससे उदर रोग, अम्लपित्त, गुल्म, यकृत-प्लीहा वृद्धि, मन्दाग्नि, मूत्रविकार, अश्मरी, अजीर्ण, श्वास आदि रोग दूर होते हैं। मूल्य १ तोला १०)

वृ० पूर्णचन्द्र रस—असंयम के कारण होने वाले रोगों में अन्य सभी औषधियां असफल होने पर इससे अवश्य लाभ होगा। पौष्टिक तथा बलदायक है। मूल्य १८)

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़।
प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० अ० १-४०

भाग ३२ अङ्क ८ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र | अगस्त १९५८

स्वस्थ वाणी

प्रकृति प्रगति वर दायनी पावत संयम शील।
सदाचरण में रत रहत सोइ स्वस्थ सुडील ॥१॥

यदि चाहो सुख स्वास्थ्य का अजर आयु का योग।
संयम नियम संभालिए कर संकल्प निरोग ॥२॥

बिन संयम औषधि करें कभी न फलप्रद होय।
जो सेवत वे व्यर्थ ही फिरें धर्म धन खोय ॥३॥

संयम शील गहे नहीं भिषक् वरों का साथ।
विचरे स्वस्थ स्वभाव से लेय न भैषज हाथ ॥४॥

रोम रोम में रुज बसे कहते गणक अनंत।
इक संयम औषध सुलभ करत सवन का अंत ॥५॥

—श्री० कपूरचंद विद्यार्थी, दमोह (म० प्र०)

वेदों में विष-चिकित्सा

लेखक—श्री. वैद्य अम्बालाल जोशी, जोधपुर।

सृष्टि के आदिकाल में जगंल में वास करने वाले मानवों को अधिक बार विषधर प्राणियों का सामना करना पड़ता था। इसी प्रकार अपने खान पान आदि में भी प्रज्ञापराध वश विषैले पदार्थों के खाने का अवसर भी अनजाने में तत्कालीन मानवों को मिल जाया करता था। अतः उनकी चिकित्सा व्यवस्था के लिये भी उन्हें अधिक प्रयत्नशील रहना पड़ता था। संभव है इन्हीं प्रयत्नों के आधार पर प्राप्त किये गए अनुभव ही वेदों में संकलित किए गये हैं।

प्रकृति द्वारा विष नाश—

प्राचीन चिकित्सकों ने सर्व प्रथम विष निवारण के लिये सूर्य, जल, पृथ्वी (मिट्टी) की रोग हर शक्ति की ओर दिग्पात किया और इस सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया, उसका अनुभव इस प्रकार है—

देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात्।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विष दूषणम्॥
(अथर्व अ० १००।१)

विद्वान् लोग विष को निवारण करने का उपाय एक चित्त होकर सबको प्रदान करते हैं। क्योंकि सूर्य अपना प्रकाश देता है और उससे विषैले जन्तु नष्ट होते हैं और उससे विष का भी नाश होता है। यह विशाल आकाश रात्रिकाल में ओस प्रदान करता है जो विषों का शमन करने में समर्थ है। पृथ्वी भी अपनी शक्ति देती है जिससे मिट्टी का लेप भी विष का नाश करता है। तीनों सरस्वतियां, तीनों वेद वाणियां भी समान रूप से विष-नाश का उपदेश देती हैं।

जन्तु द्वारा विष नाश—

सूर्य, वायु, मिट्टी तथा जल के विषहर प्रभाव से पूर्ण परिचय प्राप्त कर लेने के बाद उन्होंने जीवों की विषहर शक्ति का भी ज्ञान किया। एक प्रसङ्ग पर उन्होंने बतलाया है कि दीमक ये श्वेत चींटी जो मरुप्रदेश में जल उगलती है अत्यधिक उपयोगी है। उस ईश्वर प्रदत्त दिव्य जल से विष निवारण करो।
(अथर्व अ० १००।२)

"हे दीमको! तुमको देव ने निर्जल देश में भी जल दिया है, देवों द्वारा प्रदत्त अथवा उत्पादित उस जल से विष का निवारण करो।"

अथर्व वेद २।३।४ में भी इन दीमकों को बताया गया है कि वे जलोत्पादन सामर्थ्य से औषधि उत्पन्न करती है। वह अतिमूत्र और नाड़ीव्रण की उत्तम औषधि है।

सायण ने भी एक प्रसंग में दीमकों की निकाली हुई मिट्टी वल्मीक को उस रोग की औषधि कहा है। कौशिक सूत्र में भी—

"देवाः अदुरिति वल्मीकेन बन्धन
पायनाचमन प्रदेह न मुदकेन।"
(कौ० ४।७)

इस सूक्त में वल्मीक मृत्तिका को जल से बांधने पिलाने, आचमन करने और लेप करने का विधान किया है। इससे स्थावर और जङ्गम विषों का प्रतिकार होता है।

अत्यन्त शुष्क स्थान में भी दीमक लग जाती है और वहां पर भी वे अपने मुख में जल कहां से लाती हैं? यह एक आश्चर्यजनक बात है। इसलिये वेद में उस जल को देव प्रसूत जल कहते हैं। डा० लिविंग स्टोन का मत है कि 'संभव है कि वे अपने वनस्पतिक भोजन में विद्यमान ओपजन तथा उद्जन को मिलाकर जल बना लेती हैं।' इस जल

बनाने की अद्भुत शक्ति का हमारे प्राचीन आचार्यों ने अनुभव किया था। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है–

"आपो वै सर्वमन्नं। ताभिर्हि इदमभिन्नकूय मिवादन्ति (वम्रयः) श. १४।१।१४

यह सब अन्न स्वयं जल है। अन्न में विद्यमान जलीयांश से ही ये दीमकें उसको गीला करके खाती हैं। इसीलिये इस जल को देवप्रसूत जल माना है। देव का तात्पर्य वह मूल शक्ति है जिससे स्वयं जल बना है।

औषधियों द्वारा विष नाश—

औषधियों द्वारा भी शरीर को निर्विष करने की क्रिया उस समय उपलब्ध थी। कई विषहर औषधियों के नाम इस प्रसंग में देखे जाते हैं जिनमें से आज कई ज्ञात हैं तथा कुछ अज्ञात भी। हम नीचे कुछ औषधियों का नामोल्लेख प्रसङ्ग सहित करेंगे।

(१) ब्राह्मण–यह औषधि सर्वश्रेष्ठ विषहर मानी गई है जो दस प्रकार के रोगों का नाश करने वाला, दश अंगों की पीड़ा को बाहर निकाल फैंक देने वाला है क्योंकि वह सर्वश्रेष्ठ होने के कारण अमृत की (सोम रस की) रक्षा करता है। वह विष को भी अरस (वीर्यं हीन) करता है। कुछ लोग ब्राह्मण कन्द 'गृष्ठि' नामक औषधि को कहते हैं जिसके गुण राज निघन्टु में इस प्रकार लिखे हैं—

वाराही तिक्त वटुका विष पित्त कफापहा।
कुष्ठमेह कृमिहरा वृष्या बल्या रसायनी॥

इसके पर्याय–विश्वक सेना, वाराही, कौमारी, ब्रह्मपत्री, त्रिनेत्रा, अमृत आदि हैं।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम्॥
(अथर्व ६. १.)

(२) सोमवल्ली–यह वह प्रसिद्ध गुण-प्रद औषधि है जिसके गुणों का विवरण वेदों में स्थान-स्थान पर मिलता है।

(३) बाकुची–जग प्रसिद्ध बावची जो विषहर मानी गई है। कुष्ठरोगहर औषधि है। अधिकतर त्वग्दोष में उपयोगी है।

(४) क्रमुक–लोध्र की ही जाति की एक वनस्पति। यह वनस्पति भी विषमय शल्य को निकालती है तथा शरीर को निर्विष बनाती है।

(५) अपस्कम्भ–(अथर्व सू० ६।४)––विषमय शल्य अपहरण करने में विशेष उपयोगी है। इसके लिए—'चाजुष्यांविषद्दत' लिखा है।

(६) ब्राह्मी–सर्वज्ञात ब्राह्मी–मस्तिष्क में प्रवेश पाये गये विषदोषों का शमन करती है।

(७) वरणा––(अथर्व सू० ७।१) धन्वन्तरि राजनिघण्टु के अनुसार वरा* औषधि है–वाली, पाठा, बन्ध्या, कर्कोटकी, विडंग, हरिद्रा, काकमाची (काकजंघा) और चूड़ामणि ये औषधियां वरा कहलाती हैं। ये सभी औषधियां विषनाशक कही गई हैं।

(८) गुडूची–यह अमृता नामक औषधि विष का नाश करती है। सभी व्यक्ति परिचित हैं।

(९) श्रंग—'अज श्रंगी नामक औषधि से मैं विष को दूर करता हूँ।' यह औषधि भी विषहर मानी गई है। (अथर्व सू० ६।५)

(१०) रीठा–(अथर्व ७।६) ये औषधियां रीठा करंज तथा गुच्छकरंज आदि प्रकी औषधि भेद से हैं। यह सभी अधिकतर त्वग् दोष में उपयोगी हैं।

(११) करंज—प्रकी औषधियों को धन्वन्तरि राजनिघण्टु में 'प्रकीर्य' कहा गया है। करंज, उदकीर्य, अंगारवल्ली, गुच्छकरंज, रीठाकरंज ये पांच भेद हैं।

(१२) सौम्या––इस औषधि को भी विषहर कहा गया है, औषधि सन्दिग्ध है।

(१३) शठी–कचूर भी विषहर माना गया है।

---

*मतान्तर से वरा पृथ्वी को भी कहा गया है जो विषनाशक है।

(१४) भार्गी–सर्व परिचित औषधि यह विष का नाश करती है। भारंगी नाम बोल–चाल की भाषा का है।

(१५) लोध्र–'विष विध्वंसनः' (ध० रा०) लिखा है। इसके भिल्लतरु शम्बर आदि नाम हैं।

(१६) कुल्मल–'कुल्मल नामक पद्म औषधि से मैं विष को दूर करता हूँ' (अथर्व सू. ६. ५.)

यन्त्र-शस्त्रों द्वारा विषनाश––

उपरोक्त औषधियों के सिवाय शल्य-चिकित्सा द्वारा विषोपहरण के प्रयत्न भी तत्कालीन चिकित्सक जानते थे। इसी लिए तो कहा है कि—

शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम्॥

"मैं शल्य (चाकू) से, टूटे हुए शृंग (सींगी) से, सरकण्डे से, लेप से विष को दूर करता हूँ।" इस प्रकार यन्त्रों के तथा शस्त्रों के द्वारा भी प्राचीन वैद्य विषहरण करते थे।

मन्त्रों द्वारा विषनाश—

मन्त्रों के द्वारा विषहरण करने के प्रसंग तो वेदों में स्थान-स्थान पर मिलते हैं। मन्त्रपूत जल, मन्त्रपूत वायु तथा यों ही मन्त्रोच्चारण द्वारा विष का नाश किया जाता था।

यावती द्यावा पृथिवी वरिम्णा
याबत् सप्त सिंधवो वितष्ठिरे।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम्॥
प्रथमार्धः यजु० ३८। २६। प्र. द्वि.

वाणी द्वारा विष के प्रभाव को दूर करने के लिए–'आकाश और पृथ्वी अपने विस्तार से जितनी बड़ी है और सातों समुद्र जितनी दूर तक फैले हैं, उतने विस्तार तक विष के विनाश करने वाली, प्रबल उस वाणी को मैं मुख से बोलूं।'

अन्न द्वारा विषनाश—

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीवस्पाकमुदारथिम्।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्स न रूरुपः॥
—अथर्व० ७।३

हे बुरी तरह से शरीर में फैलने वाले या शरीर को दुख देने वाले विष! यदि मेद तक को पका डालने वाले और शरीर को सुजा डालने वाले या बहुत अधिक पीड़ा के जनक तुझ विष का कोई पुरुष क्षुधा से प्रेरित होकर पेट भर कर भी खा जाय तो भी धान या चावलों का मिश्रण करके खाले तो वह मूर्च्छित न हो। "करम्भ औषधे भव" इति ऋग्वेदे।

विष प्रूफ—

तत्कालीन वैद्यों को यह ज्ञात था कि जो व्यक्ति विष खाने में अभ्यस्त हो जाता है उस पर विष अपना प्रभाव नहीं जमा सकता।

सुपर्णस्त्वा गुरुत्मान् विषं प्रथममावयत्।
ना भी मदो नरूरुप उतस्मा अभवः पितुः॥
—अथर्व० ६-३।

हे विष! गरुड़ तुझको सबसे पूर्व खा लेता है फिर भी तू उसको नशा और मूर्च्छा उत्पन्न नहीं कर सकता, न उसकी चेतना को ही लोप करता है, बल्कि उसके लिए तू अन्न (आहार) ही हो जाता है। इसी प्रकार जो पुरुष प्रथम से ही विष को अपने खाद्य का भाग बना लेता है उस पर बाद में विष का असर नहीं होता, परन्तु विष ही उसका पोषक हो जाता है।

पृथ्वी द्वारा विष चिकित्सा—

परिग्राममिवाचितम् वचसां स्थापयामसि।
तिष्ठा वृक्ष इवस्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः॥
—अथर्व० ७-५

गांव भर में फैली हुई अराजकता को जिस प्रकार राजा अपनी आज्ञा से एक बार में रोक देता है उसी प्रकार हम विष वैद्य, तुझे (विष को) अपनी प्रभाव जनक वाणी से स्थिर कर दें अर्थात् फैले हुए विष को घातक प्रभाव करने से रोकें। हे पुरुष तू कुदाली से खोदे हुए गड्ढे में वृक्ष के समान गड़ कर मत

हो जा इससे तू मूर्च्छित न होगा। श्रीजुष्ट का मत है कि गड्ढा खोदकर उसमें पुरुष को गाड़ देने से पृथ्वी विष को चूस लेती है और मनुष्य निर्विष हो जाता है। इधर मरु में भी ऐसा रिवाज है कि सर्प दंशित व्यक्ति को दाग न देकर (अग्निकर्म न कर) भूमिस्थ कर दिया जाता है। विष युक्त व्यक्ति को आज कल कानून के भय से कई स्थानों पर दाह संस्कार कर दिया जाता है अन्यथा पुराना रिवाज तो उपरोक्त ही है।

राजकीय नियंत्रण—

प्राचीन काल में विषों के प्रयोग पर, विष वैद्यों पर, विषोत्पादन पर, तथा विष वितरण पर राजकीय अंकुश भी था। सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को इसका पालन करना पड़ता था।

> अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
> वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे॥
>
> —अथर्व ५-६-२

हे मनुष्यो! जो तुम लोगों में से अनाप्त हैं अर्थात् आप्त (विद्या पारंगत) नहीं हैं वे या जो प्राथमिक कार्य (First aid) करते हैं वे इस चिकित्सा कार्य में या राज्य में हमारे वीरों को कष्ट न पहुंचावें। अर्थात् वे अनधिकृत चिकित्सक चिकित्सा कार्य न करें।

हे बाण! तेरा फल विष रहित हो और तेरा विष भी विष रहित रहे और हे निर्विष पदार्थ! निर्विष वृक्ष का तेरा धनुष भी निर्विष होना उचित है। अर्थात् मनुष्यों को चाहिये कि वे अपने बाणों के फले और धनुष को निर्विष पदार्थों का बनावें।

> ये अपीषन् ये अदिहन्ये आस्यन् ये अवासृजन।
> सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विष गिरिः कृतः॥
>
> —अथर्व० ६-७

जो विष को पीसे, जो उसका प्रलेप करे, जो विष-पदार्थों को फेंके, जो विषैले पदार्थों को उत्पन्न करें वे सब राज्य शासन द्वारा दण्डित होने योग्य हैं और विष की खानें, संखिया आदि की खानें भी राज्य शासन में जमा की जांय। इन सब प्रबंधों को राजा अपने प्रबंध में रखे और स्वतंत्र किसी को न रखने दे।

इसी प्रकार—

> वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे।
> वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम्॥
>
> (अथर्व० ६-८)

राजाज्ञा के बिना विषैले पदार्थों को खोदने वाला पुरुष भी दण्ड योग्य हो, और हे विष की औषधियों! तुम बन्द सुरक्षित स्थान पर रहो। वह पहाड़ का भाग जिससे यह विष उत्पन्न होता है वह भी राज्य की कड़ी निगरानी में रहे।

इस प्रकार हमारे प्राचीन ऋषियों को विष का पूर्ण ज्ञान था। उसकी चिकित्सा वे सम्यग् प्रकार से करते थे। अज्ञानी या अल्प ज्ञानी वैद्यों को विष चिकित्सा करने का अधिकार नहीं था। विष के उत्पादन वितरण तथा प्रयोग पर पूर्णतया कठोर राजकीय नियंत्रण था। आज के समान उस समय भी इससे सम्बन्धित कुछ नियम थे उनका यथावत् पालन किया जाता था।

युनानी चिकित्सा के गगन का जगमगाता नक्षत्र—'अरस्तु'

लेखक - कविराज हरिकृष्ण सहगल, बागीची अलाउद्दीन, दिल्ली ।

यूनान की चिकित्सा यूनानी, चौदहवीं शताब्दी तक यूरोप की राष्ट्र चिकित्सा रही है। यूनानी चिकित्सा में सुक्रात, बुक्रात, अफलातून और अरस्तु को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह चारों यूनानी चिकित्सा गगन पर जगमगाते नक्षत्र हैं। यूनानी चिकित्सा ग्रन्थों में इनकी रचनाओं को माननीय स्थान प्राप्त है।

यूरोप में जब यह महारथी यूनानी चिकित्सा की वाटिका में सुन्दर-सुन्दर पुष्पों वाले पौदों का आरोपन कर रहे थे और उन्हें अपने ज्ञान विज्ञान से सींच रहे थे, उस समय एशिया में आयुर्वेद का सूर्य अपने पूर्ण तेज के साथ संसार के गगन पर जगमगा रहा था।

तक्षशिला, नालन्दा और काशी के विश्वविद्यालय आयुर्वेद के प्रकाश को सर्व दिशाओं में विक्षिप्त कर रहे थे। संसार के सर्व देशों से छात्र कठिन यात्रायें करके, भारत के इन विश्वविद्यालयों में ज्ञान उपार्जन के लिए आरहे थे। भारत संसार का गुरु था।

आयुर्वेदिक मतानुसार सर्व प्रथम ब्रह्मा जी ने ब्राह्म-संहिता की रचना की थी, उसमें १००० अध्याय और एक लाख श्लोक थे, इसमें आयुर्वेद के काय चिकित्सा, शल्य तंत्र, कौमार भृत्य आदि आठ अङ्गों का विस्तृत वर्णन किया गया था। इसके बाद प्रजापति, अश्विनीकुमारों तथा इन्द्र आदि ने संहिताओं को लिखा।

परन्तु यूनानी चिकित्सक देवी एथन्स को चिकित्सा का प्रवर्तक मानते हैं। यूनान के नगर ऐथन्ज़ में यूनानी चिकित्सा की एकेडेमी के आंगन में देवी ऐथन्स की एक संगमरमर की प्रतिमा थी।

ईसा से ३८५ वर्ष पूर्व, यूनान के केन्द्र ऐथन्ज़ के उत्तर दिशा में २०० मील दूर सतागरह नाम के स्थान पर, यूनानी चिकित्सा के संसार विख्यात गुरु अरस्तु का जन्म हुआ था। शायद उस समय उत्तरीय भारत में नन्द वंश का राज्य था। अरस्तु के पिता मकदूनियां के बादशाह, सिकंदर के पिता के मित्र थे। अरस्तु ३० वर्ष की आयु में ऐथन्ज़ में पहुंचा और आरम्भ में उसे फौज में नौकरी करनी पड़ी।

अरस्तु अफलातून के शिष्य थे, वे अठारह वर्ष की आयु में अफलातून के शिष्य हुए। इस समय अफलातून की आयु अड़सठ वर्ष की हो चुकी थी। अफलातून यूनानी चिकित्सा ऐकेडेमी के आचार्य थे, उन्होंने अनेक विषयों पर अपने जीवन काल में ग्रंथों को लिखा, और ग्रंथ लिखने की रुचि अरस्तु में भी थी, कहा जाता है उसने अपने जीवन में अनेक विषयों पर १००० ग्रन्थों को लिखा।

ईसा से ३४५ वर्ष पूर्व मकदनिया के बादशाह ने अरस्तु को, अपने पुत्र सिकन्दर का शिक्षक नियुक्त किया। सिकन्दर की आयु इस समय १३ वर्ष की थी और उसमें दो दुर्व्यसन एक सुरा सेवन और दूसरे जंगली घोड़ों की सवारी के थे। सिकन्दर ने अपने जीवन में जो कुछ किया, यहां तक कि विश्वविजय की योजना, इस सब में अरस्तु का हाथ था।

सिकन्दर अगर विश्वविजेता कहला कर अपने नाम को अमर करना चाहता था तो अरस्तु की भी इच्छा थी कि संसार उसे ज्ञान-विज्ञान का देवता मान कर उसकी पूजा करे।

कहा जाता है कि ब्रह्मा जब प्रकट हुए तो सर्व ज्ञान विज्ञान के भण्डार वेद उनके हाथ में थे। अरस्तु सर्व विषयों पर १००० ग्रन्थ लिखकर भी यही प्रमाणित करना चाहता था कि संसार में भगवान ने उसे ही सर्व ज्ञान विज्ञान देकर भेजा है।

उसकी इस इच्छा की पूर्ति के मार्ग में सुक्रात व अफलातून आदि के लिखे हुए ग्रन्थ रुकावट थे।

अस्तु, अरस्तु ने अपने पूर्व लेखकोंके लिखे ग्रन्थों को भ्रम उत्पादक और असत्य ठहराया और अपने लिखे ग्रंथों को सत्य और वास्तविक ज्ञान कहा। उसमें एक गुण था कि वह किसी विषय को लिखने से पूर्व इस विषय पर उपलब्ध सभी ग्रन्थों को पढ़ लेता था। अरस्तु की टीका टिप्पणी से उसके गुरु अफलातून भी न बच सके।

अरस्तु विदेश यात्रा से वापस अपनी जन्म भूमि में ईसा से ३३४ वर्ष पूर्व पहुँचा। यहां उसके गुरु अफलातून की यूनानी चिकित्सा की ऐकेडेमी थी। अगर अरस्तु अफलातून की एकेडेमी का विरोध नहीं करता तो देवता नहीं बनता और विरोध करता है तो गुरु के विरुद्ध जाना पड़ता है, यह दो विचार अरस्तु के सामने थे। अरस्तु ने देवता की पदवी की ओर बढ़ने का निश्चय किया। एथेन्स में अपनी एक अलग ऐकेडेमी बनाई, उसका अलग विधान बनाया और उसे अपने शिष्य सिकन्दर का समर्थन प्राप्त रहा। सिकंदर का कथन था कि अफलातून कोई विद्वान नहीं, उसके ग्रन्थ कोरी कल्पनाओं और मिथ्या भाषणों का पिटारा है। और अफलातून ने केवल अपनी विद्वता का लोहा मनवाने के लिये इन्हें लिखा है।

अरस्तु अगरचे चतुर, राजनीतिज्ञ और विद्वान था परन्तु सर्व विषय पर उसका अधिकार न था। विशेषतया चिकित्सा क्षेत्र में इसका प्रत्यक्ष ज्ञान बहुत ही अधूरा था। वह मांस पेशियों के ज्ञान से अनभिज्ञ था। उसे रक्त वाहिनी और आंत्र के भेद का ज्ञान न था, अगरचे किसी भी मैडिकल कालेज का प्रथम वर्ष का विद्यार्थी भी जानता है कि रक्त वाहिनियों का काम रक्त वहन करना और अन्त्रों का काम मल को आगे ले जाना है। अरस्तु यह न जानता था कि मस्तिष्क सर्व वात-संस्थान का केन्द्र है, शरीर नियंत्रण इसके द्वारा होता है, वह समझता था कि मस्तिष्क को भगवान् ने शरीर के रक्त को ठण्डा करने के लिये बनाया है।

अरस्तु को जीवन भर स्त्रियों से घृणा रही और सम्भवतः यही कारण था कि अरस्तु ने लिखा 'पुरुषों की खोपड़ी में स्त्रियों से अधिक जोड़ होते हैं।' वह प्रमाणित करना चाहता था कि भगवान ने पुरुषों को स्त्री से अधिक महत्व प्रदान किया है। अगरचे यह असत्य है। पुरुषों और स्त्रियों की खोपड़ियों में जोड़ एक समान हैं।

अरस्तु सिकन्दर की विश्व विजय यात्रा में उसके साथ रहा और उसके लिये अवसर था कि वह किसी भी मृत सिपाही की पर्शुकाओं की गणना कर लेता, परन्तु संसार के सबसे बड़े दार्शनिक होने के दावेदार ने ऐसा न किया और अपने ग्रन्थ में लिखा, कि पुरुषों के १६ पार्शुकायें होती हैं। शायद अरस्तु ने अपनी छाती की उभरी पर्शुकाओं की ही गणना की हो। यह पर्शुकायें मानव शरीर में २२ होती हैं और पुरुष स्त्रियों में इनकी गणना एक समान होती है।

अरस्तु का कथन था कि पुरुषों के दांत संख्या में स्त्रियों से अधिक होते हैं। जब भारत में वैद्य चिकित्सक शङ्ख, हाथी दांत और स्वर्ण के कृत्रिम दांत बना कर लगा रहे थे, उस समय में यूनान का यह धन्वन्तरि दांतों की गणना करने में भी असमर्थ था।

सुश्रुत, अग्निवेश संहिता (चरक) भेलसंहिता और काश्यप संहिता में उनके शरीर स्थान में, शारीर (Anatomy) का पूर्ण वर्णन है, आत्मा और परमात्मा और मनुष्य सम्बन्धी सब उत्तम गुणों तथा भावों से सम्पूर्ण शरीर का विचार किया गया है। भारत की तक्षशिला नालन्दा आदि युनिवर्सिटियों में उस काल में इसे पढ़ाया जारहा था।

विश्वविजय यात्रा के पश्चात्, सिकन्दर के हृदय में देवता बनकर पूजा जाने की भावना उत्पन्न हुई परन्तु कुछ चापलूसों को छोड़ कर जनता ने उसकी इस इच्छा का स्वागत न किया।

प्रथम तो अरस्तु भी समर्थकों से अलग रहा परन्तु बाद में अरस्तु सिकन्दर की प्रशंसा करने वालों में सम्मिलित हो गया।

सिकन्दर को देवता मानने से, उसके भतीजे कैलथनीज ने इनकार कर दिया था। सिकन्दर ने उसका सिर कटवा दिया। एवं अरस्तु ने भी अपनी रक्षा उसके समर्थन में समझी। परन्तु जनता अब अरस्तु के विरुद्ध हो गई।

इधर सिकन्दर ने एक प्रतिमा अरस्तु की बनवा कर स्थापित कर दी। यूनानियों ने इसे यूनान की चिकित्सा देवी ऐथन्स के प्रति चेलैंज समझा। यूनानी, अरस्तु को देवी ऐथन्स के स्थान पर चिकित्सा का देवता मानने को उद्यत न हुए। अरस्तु के प्रति यूनानियों में घृणा और विद्रोह उत्पन्न हो गया। उन्होंने सिकन्दर से मांग की, कि अरस्तु को मिथ्या प्रचार, धर्म विद्रोह का पापी मानकर, मृत्यु दंड दिया जाये अथवा देश से निकाल दिया जाये।

अभी यह झगड़ा चल ही रहा था कि सिकन्दर की मृत्यु हो गई। अरस्तु का महान रक्षक चल बसा एवं नया राजा राजसिंहासन पर बैठा। एक पादरी ने अरस्तु पर आरोप लगाया कि वह राजा को गद्दी से उतारना चाहता है। जब यह बात राजा को मालूम हुई तो अरस्तु ने नगर को छोड़ दिया, वह सुक्रात के समान मरना नहीं चाहता था।

परन्तु भावी होकर रहती था। मार्ग में अरस्तु रुग्ण हो गया। जनता उसकी सहायता न करना चाहती थी और जब जीवन बहुत कष्टमय हो गया तो उसने स्वयं ही सुक्रात का अनुकरण किया अर्थात् विष पीकर आत्महत्या करली।

अरस्तु, देवी ऐथन्स के स्थान पर चिकित्सा का देवता न बन सका। उसकी इच्छाएँ महान् थीं परन्तु वह उन्हें प्राप्त न कर सका। अगर सिकन्दर के मृत्यु काल में दोनों हाथ कफन से बाहिर थे, तो अरस्तु के लिए कफन भी न था। इस पर भी हम मानते हैं कि अरस्तु यूनानी चिकित्सा के गगन का एक जगमगाता नक्षत्र था।
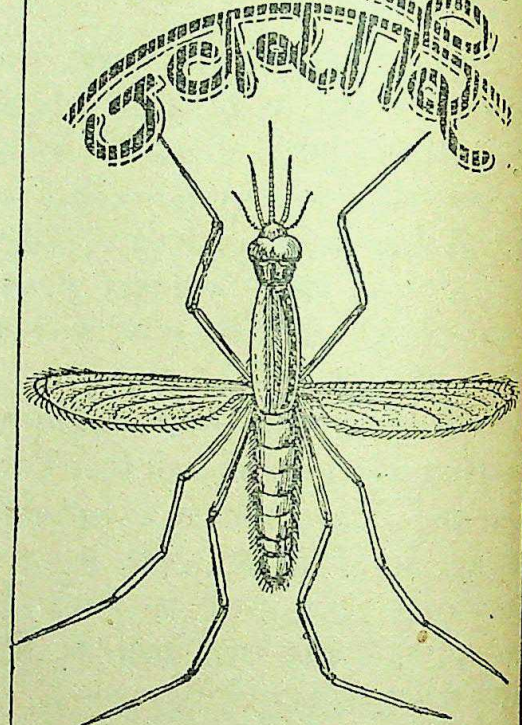
कुंकुम ज्वर (लाल बुखार)

डा० पं. राम शरण त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य, जनपद आयुर्वेदिक औषधालय, गोंड़गिरी।

कुंकुम ज्वर अधिकांश रूप से पर्वतीय प्रदेशों में होता है, जो कई दिनों तक स्नान नहीं करते एवं जहां स्वच्छता की न्यूनता रहती है वहां ही इसका आक्रमण होता है। सफाई के अभाव से मकान नालियां और आस-पास हमेशा गन्दगी रहती है। स्नान न करने के कारण प्रायः यूका (जूं) शरीर पर भरे रहते हैं और इन्हें हमेशा मारते रहते हैं इससे नाखूनों में यूकारक्त-मल भरे रहने से खान-पान वस्तुओं द्वारा मानवोदर में कीटाणु प्रवेश कर जाता है। क्योंकि अनुसंधान तथा सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रों द्वारा पूर्णतः अवगत होता है कि इसके कीटाणु जूं के अन्दर वैसे ही रहते हैं जैसे विषमज्वर कीटाणु मच्छर के अन्दर, किन्तु मच्छर काटने की तरह जूं के काटने मात्र से ही कीटाणु शरीर में प्रवेश नहीं कर पाते वरन् मल त्याग के साथ कीटाणु जूं से बाहर आते हैं और काटे हुए स्थल के चर्म रंध्र द्वारा आभ्यन्तर प्रविष्ट कर लसीकावाहिनी पथ से रक्तगत हो रक्ताश्रित श्वेत कणिकाओं में चिपक जाते हैं तथा अन्दर भी प्रविष्ट होकर उन्हें खाते, अपने वंश की वृद्धि करते रहते हैं। इन कीटाणुओं का रक्तगत श्वेताणु केन्द्री भूत बन जाता है इसी तरह शीघ्र ही कीटाणु बढ़कर सारे शरीर में व्याप्त हो जाते हैं।

वृद्धिकाल

पांच से सात दिन के अन्दर, इस अवधि में ज्वर के प्रमुख कारण बन जाते हैं। इसके अत्यधिक बढ़ने से शरीर में एक प्रकार की विषाक्तता सी छा जाती है और पूर्णरूपेण रोग प्रस्फुट हो जाता है।

लक्षण

विषमज्वर की तरह ठंड लगकर ज्वर का प्रकोप होना, शिरःशूल, कटिशूल, वमि, मदकता आदि।

इस ज्वर के वमन में विषमज्वर के समान पित्त प्रादुर्भाव नहीं होता, कभी किसी को असह्य सर्वाङ्ग वेदना तथा प्रलाप देखे जाते हैं ज्वरातिरेक से चेहरा तमतमा जाता है तथा तन्द्राधिक्य भी पाया जाता है। आरम्भतः ज्वर क्रमोत्तरोत्तर वृद्धिगत हो प्रथम १०१ से १०२, १०३, १०४ और छः सात तक पहुँच जाता है एवं छठे सातवें दिन एकसौ आठ अंश प्रमाण असह्य ज्वर वेग से रोगी प्राण त्याग देता है। यदि रोग साध्य है तो प्रायः दस बारह दिन के भीतर प्रबल प्रस्वेद हो ज्वर मुक्त हो जाता है। आरम्भकाल से ही जिह्वा मालिन्य, सर्वांगशूल आकुलता, निद्राह्रास, तृषातिरेक प्रलापाधिक्य आदि लक्षण प्रस्फुटित रहते हैं। ज्वरांश से ही नाड़ीगति तीव्रतर रहती है, नेत्रों की पुतलियां सिकुड़ी हुई तथा शरीर में से मृत चूहे के समान एक विशेष प्रकार की गन्ध निकलती है।

वाह्य लक्षण (चिन्ह) —

ज्वरारंभ से पंचम षष्ठ दिवस कुछ मलिन रक्त वर्ण के अरहर की दाल के समान पिड़कायें निकलती हैं जो वक्षगत उभय पक्ष में तथा प्रकोष्ठ में बृहत्ताम विन्द्वाकार पिडिका आरंभ हो सर्वांग में शीघ्र व्याप्त होजाती हैं। जो अंगुल में दबाते ही दब कर अंगुल उठने के साथ उभड़ जाते हैं। रोगी की मृत्यु के बाद भी बिन्दु बने रहते हैं। अनन्तः ये लाल मिर्च के समान रक्त वर्ण हो गुच्छे के रूप में दीखने लगते हैं। रोग अवधि कालीन साध्य न हो तो सान्निपातिक स्थिति में पहुँच ज्वर तीव्र हो हृदयावसाद होकर रोगी की शीघ्र ही मृत्यु होजाती है।

इस ज्वर में कभी किसी को अतिसार होजाता है और साधारणतः प्लीहा यकृत बढ़कर लसीका वाहिनी में शोथ होजाता है और रक्त में मूत्रल

मात्राधिक्य होने से मूत्रेन बहुमात्रा में निकलते हैं अतएव इसमें मूत्र गाढ़ा हो कभी मूत्रावरोध होकर हाथ पांव में शोथ उत्पन्न कर देता है।

आयुर्वेद में यह ज्वर रक्तष्ठीवी सन्निपात नाम से प्रसिद्ध है कि—

रक्तष्ठीवी ज्वर वमितृषा मोहशूलातिसारः,
हिक्काऽध्मान भ्रमण दवथुश्वास संज्ञा प्रणाशः।
श्यामा रक्ताऽऽधिकतर तनुर्मण्डलोश्लिष्ट देहः
रक्तष्ठीवी निगदित इह प्राणहर्त्ता प्रसिद्धः ॥१॥
अतीसारो श्रमो मूर्च्छा मुख पाकस्तथैव च ॥
गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाहोऽतीव प्रजायते ॥२॥
पित्तोल्वण लिंगानि सन्निपातस्य लक्षयेत।
भिषग्भिः सन्निपातोऽयम् आशुकारी प्रकीर्तित ॥३॥

इस तरह प्राच्य मतानुकूल कुंकुम ज्वर एक प्रवल रोग होते हुए भी आरम्भ में विषमज्वर के समानात्मक रूप होता है किन्तु विषम एवं कुंकुम ज्वरों में बहुतायत अन्तर लक्षित होते हैं। विज्ञ वैद्यों को विवेचनात्मक निदान स्तर में पहुंच चिकित्सा करनी चाहिये क्योंकि विषमज्वर ताप स्थिर नहीं होते और इसका ताप स्थिर रहकर दिनों दिन प्रत्येक अंश बढ़ता जाता है। विषमज्वर में अस्थिर ताप के कारण मस्तिष्कावरण प्रदाह होकर कभी कभी मूर्च्छा भी होजाती है पर इस ज्वर में ताप तीव्रता के कारण मस्तिष्कावरण प्रदाह नहीं होता। तथा नेत्र पुतली सिकुड़ी हुई रहती है, विषमज्वर में फैली सी दीखती है, पांचवें छठे दिन रक्तपिड़िकाओं का प्रादुर्भाव होते ही विषमज्वर का भ्रम दूर हो मन्थर ज्वर की आशंका होने लगती है किन्तु इन दोनों (कुंकुम-मंथर) ज्वरों में भी अत्यधिक विषमता है।

कुंकुम ज्वर -

प्रायः २५ से ३५ वर्ष के पूर्ण वयस्कों पर आक्रमित हो प्रति दिन थोड़ा-थोड़ा बढ़ता है, प्रातः काल में भी कम नहीं होता, सतत रूप से एकसा बना रहता है। नाभी के आप-पास दबाने पर कठोर कब्ज प्रतीत होता है और नेत्र पुतली सिकुड़ी सी भासती हैं। सर्वांग में दाह, आरम्भ काल से ही होता है। पांचवें दिन रक्त बिन्दु का प्रादुर्भाव होकर ये बिन्दु मिटते नहीं हैं तथा स्वस्थ्य होने के समय अत्यन्त स्वेद होकर ज्वर शान्त हो जाता है।

मन्थर ज्वर—

यह प्रायः २५ वर्ष की अवस्था के अन्दर आक्रमित होता है और नित्य प्रातः ज्वर कुछ कम पड़ जाता है तथा सायं एक दो अंश में बढ़ जाता है। नाभि के आस-पास दबाने पर आंत्र शूल होता है और इस ज्वर में अतीसार भी देखा गया है। इसमें नेत्र पुतली फैली रहती हैं इसके सर्षप प्रमाण से छोटा भी स्फोट प्रथम सप्ताहान्त एवं द्वितीय सप्ताह के आरम्भ में गले पर दीखते हैं (ग्रीवायां परिदृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः) और लुप्त हो जाते हैं। द्वितीय सप्ताहान्त पुनः निकलते हैं इस तरह दो तीन बार दाने निकलते और लुप्त होते हैं। इस ज्वर के अन्त तक स्वेद प्रादुर्भाव नहीं होता न इसमें शारीरिक दाह होता है। ज्वर तीव्र होते ही मस्तिष्कावरण प्रदाह हो कभी किसी को मूर्च्छावस्था में लेजाता है। इस तरह इन कुंकुम मंथर ज्वरों में अधिक अन्तर है। कुशल चिकित्सक इन चिन्हों पर अपना ध्यान बनाये रखें तो रोग ज्ञान के बाद चिकित्सा में शीघ्रतः क्षमता लाभ कर सकेंगे। ❖

:: पृष्ठ ७६६ का शेषांश ::

सदैव हेय समझा जाता रहा है। परन्तु आज का युग उन्हीं को मान्यता दे रहा है। चिल्ले में लिपटी हुई गोलियों के सामने रस भस्मों का तथा सल्फा-श्रेणी की औषधियों के सामने रस भस्मों का क्या महत्व है? मंथर ज्वर को माइसीन भले ही डाउन कर दे परन्तु रोग को समूल नष्ट करने की शक्ति मुक्ताशुक्ति, मुक्ता, गुडूची में ही है। परन्तु कैपशूल के सामने मुक्ता और गुडूची का क्या महत्व ? अपने देश की औषधियां ही लाभदायक होती हैं यह ऋषि का उपदेश है। जहां आप रहते हैं उसी जगह की औषधियां आप प्रयोग में लाइये क्यों विदेशी औषधियों की ओर ताक रहे हैं द्रव्यों के रस वीर्य विपाक को समझ कर अपने रोगोंको शांत कीजिये उक्त। कफकेतु रस का विवेचन दिग्दर्शनमात्र ही है अन्य रसों का फिर कभी करेंगे।

तत्व-रोगविज्ञान (चिकित्सा)

(भारतीय गायत्री मुद्राओं द्वारा समस्त रोग चिकित्सा)

ज्वर-प्रकरण

लेखक—श्री शंकरलाल वर्मा एम. ए. मौलासर (राजस्थान)

[अङ्क ५ से आगे]

विषम ज्वर---

ऊपर जितने ज्वरों का वर्णन किया गया है वे सब केवल सन्निपात और वातश्लेष्म ज्वर को छोड़ कर असम ज्वर है, विषम ज्वर त्रिदोषों की पूर्व स्थिति है। जब दोष विषम होते हैं तब त्रिदोषों का प्रारम्भ होता है और ज्योंही दो दोष विषम होते हैं त्रिदोष बन जाते हैं। विषम ज्वर कोई भी हो सकता है किन्तु यहां केवल वातश्लेष्मक ज्वर जब विषम होता है उसका विवरण देंगे। वात जब विषम गति से श्लेष्मा में आश्रय लेकर श्लेष्मा के श्रोतों को अवरुद्ध करती है तब वातश्लेष्मक विषम ज्वर होता है। श्लेष्मा (रस, रक्त, मांस, मज्जा, धातु) के किसी भी अंश का आश्रय लेकर ऐसा ज्वर होजाता है। विषम ज्वरों में त्रिदोष विलोम गति में प्रताडित होकर विषमता ग्रहण कर लेते हैं। विषम ज्वर में त्रिदोष अधोगत होते हैं। हमें सम, असम, विलोम, व्यतिक्रम, अतिक्रम आदि दोषों की प्रतिक्रियाओं को समझाना आवश्यक है।

सम--

जब कोई दोष अपनी सामान्य प्रकृति में स्थित रहता है पर अन्य दोष प्रताडित होजाते हैं तब उस दोष को सम कहते हैं।

असम---

जब कोई दोष प्रताडित हो ऊर्द्धगामी और वृद्धि को प्राप्त होता है तब यह असम कहलाता है।

विलोम---

जब कोई दोष प्रताडित हो वृद्धि को प्राप्त करने एवं अपने लक्षण प्रगट करने लग जाय। ऐसा दोष जब बार-बार अधोगत होने का प्रयत्न करता, अन्य दोषों को प्रताडित करने को उन्मुख होता है तब वह विलोम कहलाता है।

विषम--

दोष विकार जब प्रारम्भ से ही अधोगत हैं, अन्य दोषों को अपने साथ लेकर समस्त त्रिदोषों को सृजनकारी कार्य से विलग कर क्षीणता की ओर अग्रसर होने को होता है एवं अधोगति को प्राप्त होता है तब दोषों की विषम गति होती है।

व्यतिक्रम---

किसी वृद्धि प्राप्त दोष का भेदन करता हुआ अन्य दोष दूषित होकर इसकी गति का बाधक होता एवं उसे न्यून करता स्वयं भी क्षीणता की ओर बार-बार उन्मुख होता है तब दोष का व्यति क्रमहोता है।

अतिक्रम---

जब किसी दोष की प्रधानता में अन्य दोष प्रधान दोष की सीमाओं का उलंघन करता, वृद्धि को प्राप्त होता है तब दोष का अतिक्रम होता है। कभी अधोगत प्रधान दोष को ऊर्द्धगामी करने हेतु कोई दोष वृद्धि को प्राप्त कर अधोगत दोष की ऊर्द्ध सीमा का उलंघन करने लगे तो उसे दोष का अतिक्रम कहते हैं।

वातश्लेष्मक ज्वर में टायफाइड का विवरण प्रस्तुत किया है वह भी विषम ज्वर में आती है। यह विषम ज्वर एक विशेष प्रकार का होता है। जिसमें ज्वर बराबर बना रहता है यानी किसी

अवधि तक निरन्तर रहता है। इसे निरन्तर रहने वाला ज्वर अथवा सतत ज्वर भी कह सकते हैं। जब कोई वातश्लेष्मक विषम ज्वर सतत न रह कर आवृत्ति करता रहता है तब आवृत्ति भेद से निम्न प्रकार का होता है।

किसी भी विषम ज्वर में सर्वप्रथम ग्रंथितम मुद्रा करना वांछनीय है। ऐसा करने से दोष विषम न रहकर असम होजाते हैं तब कुपित दोषों का पता लगाकर उन्हें शमन करते हैं। ग्रंथितम मुद्रा की आकृति नीचे दी जाती है।

चित्र संख्या ९३ ग्रंथितम मुद्रा

दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर इस प्रकार बांधना चाहिये कि बांये अंगुष्ठ को दाहिना अंगुष्ठ दबाता रहे।

ग्रंथितम् मुद्रा के द्वारा सभी दोष शिथिल पड़ेंगे और अपनी सीमा पर आकर अपना पूर्वरूप प्रदर्शित करेंगे। किन्तु (Blood pressure) रक्त दबाव में इस मुद्रा को न करना चाहिये। रक्त दबाव की स्थिति में विषम श्लेष्मा को प्रकीर्ण करने के लिए आकाश की प्रत्यावर्तन मुद्रा करना चाहिए इससे दोषों को विछिन्न होने में स्वच्छन्द गति मिल जाती है। तदनन्तर कोई भी मुद्रा करानी चाहिए। 'वात श्लेष्मक ज्वर को विषम ज्वर मानकर सदैव विषम ज्वरों की भांति टायफाइड में ग्रन्थितम् मुद्रा नहीं करानी चाहिए। टायफाइड में ग्रंथितम् मुद्रा से व्यान अवशिष्ठता ग्रहण कर अवरुद्ध होजायगी एवं रक्त में विष दोषण होकर रोगी मृत्यु को प्राप्त हो जायगा। यही कारण है कि Typhoid को हमने विषम ज्वर के क्षेत्र से बाहर वर्णित कर दिया है तथापि इसके विषम ज्वर के होने का भी संकेत दे दिया है।

तो विषम ज्वर में तापमान अथवा उसके वेग की आकृति भेद से यह (१) एकतरा, (२) तिजारी और चौथय्या है। इनमें वात प्रधान होती है एवं श्लेष्मा आश्रय स्थान। हम इन ज्वरों में वात पित्त कफ का अनुपात इस प्रकार बताते हैं।

नाम ज्वर	दोष प्रधान	दोषों का अनुपात
एकतरा	वात कफ	वात ४ पित्त १ कफ ३
तिजारी	वात-श्लेष्मक	वात ३ पित्त २ कफ ४
चौथय्या	पित्तश्लेष्मा	वात २ पित्त ३ कफ ५

यह अनुपात तालिका समझने के लिए काल्पनिक है। किन्तु इसी अनुपात से विभिन्न विषम ज्वरों में दोषों की स्थिति होती है। कफ जब तक प्रधान दोष के अनुपात से न्यून रहता है यह विकृत नहीं होता किन्तु ज्यों ही श्लेष्मा अतिक्रम करता है यही विषम ज्वर त्रिदोष का रूप धारण कर लेता है।

कफ का अनुपात वायु से कम रहने के कारण वात का आश्रय रक्त तक ही सीमित रहेगा एवं रक्त के श्रोतों को अवरुद्ध करता हुआ शरीर के तापमान को कुपित करता रहेगा। क्योंकि रक्त को दूपित करने में वात को प्रबल शक्ति व्यय नहीं करनी पड़ती, अतः शीघ्र से शीघ्र श्रोतस्विनी नाड़ियों को कुपित कर एकतरा लाती है।

कफ का अनुपात वायु से अधिक रहने के कारण श्लेष्मा के आश्रय (रस, रक्त) को पार कर वात मांस में आश्रय लेती है। क्योंकि श्लेष्मा की शक्ति अधिक है वायु, मांस के श्रोतों को अवरुद्ध करने में पूरी शक्ति खर्च कर स्वयं अवरुद्ध होजाती है तब उसके जाग्रत होने में विलम्ब होता है अतः वायु के जाग्रत होने की शक्ति की अवधि तिजारी ज्वर में प्रकट होती है।

किन्तु कफ जब वायु के अनुपात के दुगने से अधिक होता है तब वायु श्लेष्मा के मेद आश्रय को ग्रहण कर मेद के श्रोतों को अवरुद्ध कर अपेक्षाकृत अधिक अवधि तक मूर्छित पड़ी रहती है तब अ...

शोधन की आवृति अपेक्षाकृत अधिक लम्बी होती है इसे चौथैया बुखार में प्रकट की जाती है। इन सब ज्वरों में ग्रंथितम मुद्रा कराकर श्लेष्मा घटन क्रिया करानी चाहिये। इससे वात साम्य होकर ज्वर शान्त होंगे। एकान्तरा श्लेष्मा क्रिया की तीन आवृति से, तिजारा सात आवृत्ति से और चौथैया इक्कीस आवृति से समाप्त होगा।

जीर्ण ज्वर---

कभी-कभी ज्वर अधिक समय तक रोगी के शरीर में किन्हीं कारणों से जज्ब (Resrve) होजाता है तब जीर्ण ज्वर (पुराना) पड़ जाता है। जीर्ण ज्वर में साधारणतया तात्विक चिकित्सा निरन्तर दोषों को सम करते रहने की है।

रोगी, मसूरिका चेचक (Small Pox)ज्वर—

यह भी वातश्लेष्मक ज्वर ही है। यहां व्यान के संसर्ग से तप्त हुआ उष्ण रक्त नाभि में रक्त दूषण के रूप में द्रव्य हो कब्ज होता है एवं व्यान उसे नियंत्रित कर लेती है। व्यान के आघात से होने वाले समस्त ज्वर या रोग कष्टसाध्य एवं नियंत्रण परिहार्य हैं। इन्हें शिथिल कर दिया जा सकता है।

यह उष्णरक्त बच्चे के जन्मने के साथ ही व्यान के आघात से जज्ब होता है। उधर माता के उदर की भीषण उष्णता गर्भ में बालक के प्राणों को अन्तर्मुखी रखकर सुषुम्ना की गति बनाये रखती है तथा जन्म के समय उदर से बहिर्मुख होते ही प्राण विस्फोटित होते हैं, तब प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान का एक साथ विस्फोट होकर बालक के शरीर में बाह्य क्रियाऐं स्फुरित होती है। ऐसी स्थिति में असावधानी से नाल विच्छेदन के समय माता के उदर की ऊष्णता को वहन करता बालक का रक्त व्यान के असाधारण आघात से मूर्छित हो निकटस्थ स्थान नाभि में जज्ब होता है। यह उष्ण रक्त द्रव्य माता के उदर की उष्णता को वहन करते हुए नाभि में जज्ब रहकर काल पाकर व्यान से पककर माता की उष्णता को प्रकीर्ण करता विस्फोटों के रूप में शरीर में उत्पात मचाता बाहर निकल कर निःशेष होना चाहता है। अतः माता के उदर की उष्णता एवं उसके दूषित रक्त के परिपाक से निर्मित शिशु की भौतिक देह को वहन करने वाला यह रक्त दूषण बाहर आने के कारण इसे माता की ही संज्ञा दी गई है। नाभि मंडल में स्थान भेद से यह रक्त जहां कहीं भी जज्ब होता है वैसे-वैसे ही इस माता के विभेद हैं।

जब वही रक्त का दूषित द्रव्य नाभि मंडल में व्यान की अनजान ठोकर खा खा कर पकता हुआ विकीर्ण होने को होता है; तब भीषण रूप को धारण करता है। तब एक ठोकर खाकर ही यह बिखर कर रक्त मंडल में प्रकीर्ण हो उठता है। व्यान भी इसके साथ स्फुलिंगों के रूप में प्रकीर्ण होजाती है। एक दाने के साथ एक-एक रक्त का परमाणु आदि एक-एक स्फुलिंग होता है अतः रक्त दूषण के असंख्य परमाणु एवं व्यान के असंख्य स्फुलिंग शरीर भर के रक्त में व्याप्त हो उठते हैं। तदनन्तर प्रत्येक स्फुलिंग प्राण, दूषित परमाणु पर ठोकर मारता उसे और विकलित करता है। ऐसी अवस्था में रोगी रोग के लक्षण प्रकट होने से पूर्व व्यान के स्फुलिंग आदि रक्त के दूषित परमाणुओं की ठोकर से चौंकता, कांपता, सिहरता है। जब व्यान स्फुलिंगों के भीषण दुर्धषण से परमाणु पककर विस्फोट करते हैं या उनका विस्फोट होता है तब शरीर भीषण ताप से उतप्त हो उठता है एवं विस्फोट कारी परमाणु शरीर में दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यहां पर यदि किसी कारणवश व्यान (वात) को प्रभावित करने के लिए कोई उपचार कर दिया जाय तो व्यान शिथिल होजाती है एवं यह विस्फोटक-उसकी गति न पाकर अर्द्ध पक्वावस्था में स्तब्ध होजाते हैं। वे धीरे-धीरे रक्त में मिश्रित होने के लिए उन्मुख होने लगते हैं। एक बार वात को स्तम्भित करने के बाद विश्व की कोई भी औषधि विस्फोटकों के भीषण आवेग का सामना कर व्यान को उन्मुख नहीं कर सकती। हस्ति नाड़ी में जब यही व्यान जाकर अपनी शक्ति की अठखेलियां करती है तब महान हस्ति के सदृश व्यक्ति में शक्ति का अभ्युदय

कर बैठती है जिसका सामना पन्द्रह बीस आदमी अपनी साधारण शक्ति से नहीं कर सकते। विस्फोटक जब रक्त में मिश्रित होते हैं तब ये असंख्य विष ग्रंथियों का काम करते हैं। स्तम्भित व्यान का घर्षण अतिरिक्त प्रवाह का वेग पाकर ये ग्रंथियां फूटने लगती हैं। विश्व सृजनकारी एक स्फुलिंग और एक परमाणु असंख्य विश्व ब्रह्माण्डों को सृजन करने की शक्ति के आविष्ट होने पर भी अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर तत्काल रोगी की प्रकृति का नाश कर प्राणमुक्त कर एक्य में विलीन होजाते हैं। समस्त रक्त विषमय होने पर रोगी मर जाता है।

अतः व्यान को स्तम्भित करना अनिष्टकारी एवं वर्जनीय है। पित्त से व्यान उन्मुख हो बल पाती है। यहां व्यान को बल प्रदान कर रक्त दूषण की शक्ति (परमाणुओं) को कमजोर कर सरलतापूर्वक रोगी इस विभत्स आपत्ति से मुक्त किया जा सकता है। कभी-कभी देखा जाता है कि किसी रोग में किसी कारण से व्यान स्तम्भित होती है तो रक्त दूषण से विमुख हो द्रुतगति से चालित हो प्राण से विच्छेद कर, गमनकर धावित हो जाती है एवं व्यान क्षीण होकर रोगी को लकवा हो जाता है। मस्तिष्क में सिकुड़कर जब्ब हो जाती है तब रोगी पागल हो जाता है। जब यही व्यान दुधर्षण करती हाथ पैरों की ओर उन्मुख होकर हाथ पैरों को बेकार कर देती है; जब यही प्राण में आविष्ट हो सिमिट जाती है तब रोगी के अङ्ग प्रत्यङ्ग व्यान का प्रवाह न पाकर सूखने लगते हैं। धनुर्वात भी इसी से होता है।

अतः इस दैवी रोग की चिकित्सा केवल पित्त को सम करते रहने की है। यहां सम का मतलब कम कर देने का नहीं है इस ज्वर में कृत्रिम तत्व का सृजन व्यान के द्वारा होता है। विस्फोटकों को आवेग प्रदान कर पीड़ित करने से शरीर का तापमान बढ़ता है और मूल पित्त क्षीणता की ओर अग्रसर हो जाता है। यहां यदि पित्त की वृद्धि की जायगी तो कृत्रिम पित्त शिथिल और सुस्त बन जायेगा। मूल ताप अधिक नहीं बढ़ने देना चाहिए नहीं तो कृत्रिम ताप शून्य होकर मूल पित्त बढ़कर भीषण ताप लाकर रोगी की मृत्यु का कारण हो जाता है। अतः पित्त की वृद्धि की मुद्रा अधिक से अधिक पन्द्रह मिनट करानी चाहिए और वह भी केवल दो बार प्रातः और सायंकाल एवं स्थिति के औचित्य के अनुसार।

वैसे ज्वरों के अनेक भेद विभेद हैं यथा अस्थि ज्वर, आंत्र ज्वर, ग्रंथि ज्वर, शुक्र ज्वर, रक्त ज्वर, लंगड़ा ज्वर, गर्दन तोड़ आदि।

अपेंडिसाइटिस (Appendicitis) भी एक ज्वर ही है। इसमें त्रिदोषों का प्रभाव शरीर में स्थित किसी नाड़ी पर होता है। परिणाम स्वरूप यह नाड़ी (नस) गलित होने लगती है। इसमें रक्त धमनियों का रक्त प्रभाव अवरुद्ध हो कर सड़कर पीव पैदा करता है। आधुनिक युग में इसकी सफल चिकित्सा आपरेशन मानी जाती है। इस आपरेशन प्रणाली से भी कई रोगी ठीक न होकर जन्मभर तक नवीन रोगों के शिकार हो जाते हैं। अपेन्डिसाइटिस पर हमारा अभी तक कोई प्रयोग या उपचार नहीं है। इसके लिए पाठकों से हम क्षमा मांगते हैं और प्रयत्न एवं प्रयोग करने का विश्वास दिलाते हैं। साथ साथ हम यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि अपेन्डिसाइटिस पर सफल प्रयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक यन्त्रों द्वारा अपेन्डिसाइटिस नाम की नस पर मुद्राओं के प्रभाव की निरन्तर जांच और उसका परीक्षण न कर लिया जाय।

निमोनियां—

यद्यपि प्रस्तुत ज्वर श्लेष्मा के अतिरेक से होता है। हम इसे वातश्लेष्मक ज्वर में सन्निहित करते हैं। इसमें वात विकृत होकर रक्त में आश्रय प्राप्त करती है। जहां तक वायु रक्त में आश्रय पाकर वर्त्तमान रहती है तब तक तो तात्वीय दृष्टि से ये वात श्लेष्मा ही बनी रहती हैं। रक्त में आ

...र वायु का आघात जब फेंफड़ों पर होता है ...र रक्त प्रवाह की गति का सामना करती ...यु रक्त का आश्रय लेती हैं तब श्वास नली और ...त आश्रय फेंफड़ों को आघात का स्थान बनाती ...। यहाँ इस परिस्थिति में वात की दो प्रतिक्रियायें ...ती हैं।

(१) जब वात पित्त का विशाल संगम प्राप्त ...र परितप्त होती हैं तो उष्णता को बहन कर ...त को तीक्ष्ण एवं तीव्र कर देती है एवं श्लेष्मा ...ो पृष्ठभूमि में फेंक देती है। परिणामस्वरूप ...शोधक फेंफड़ों के कोष्ठक रक्त के तीक्ष्ण ...आघात एवं उष्णता को बहन करने में असमर्थ ...हो विदीर्ण होने लगते हैं। जब श्लेष्मा इस परि-...स्थिति में पृष्ठभूमि में चला जाता है तब वात ...त्त का विशाल संगम पाती है और पित्त विलोम ...हो वात का भीषण संसर्ग करता है। जिससे प्राण ...ऊर्ध्वगामी होते हैं। परिणाम स्वरूप पित्त के विलोम ...म को जब वात ग्रहण करती है क्योंकि वात ने ...त को आश्रय बनाया है शरीर भर के रक्त में ...आन्दोलन होने लगता है। यही रक्त का आन्दोलन ...फुफ्फुस कोष्ठों को आघात पहुँचाता हुआ पित्त ...के भीषण वेग से शुष्क हो ठोकर खाकर नाभि ...मण्डल पर गिरता है और क्योंकि पित्त के विशाल ...संगम से प्राण उर्ध्वगामी हो जाते हैं नाभि मण्डल ...व्याप्त रक्त तीव्रता से उलटी द्वारा बाहिरमुखी ...हो शरीर को निष्प्रभ करता है। यही वात के ...आश्रय में पित्त रक्त का आश्रय पाकर रक्तपित्त ...ता है।

(२) परन्तु पूर्व कथित स्थिति में जब वात रक्त ...आश्रय में पित्त को पृष्ठ भूमि में फेंकने की ...प्रक्रिया करती है तब हठात् श्लेष्मा के अन्तर्मुखी ...होने से वात अवरुद्ध होकर पित्त का आश्रय लेती ...है अथ रक्त का आश्रय स्थान वात से छूट जाता ...है और उस आश्रय स्थान को पित्त ग्रहण करता ...है तब विषम रक्तपित्त हो शरीर में व्याप्त हो ...जाता है एवं रोगी को विषमय बना देता है। किंतु पित्त जब रक्त का आश्रय पाते ही बाह्य शीतलता प्राप्त कर मूर्छित होता है तब उसका आश्रय स्थान रक्त न रहकर श्वास नली हो जाती है और वात के अवरोध से रक्त द्रव्य रूप में फुफ्फुस यन्त्र पर आघात कर जब्ब हो जाता है; रक्त द्रव्य श्लेष्मा का रूप धारण कर अवरुद्ध वात को उद्वेलित करता है अतः वात अपने आघात से रक्त द्रव्य के शीतल वेग को झटका देती, तीक्ष्ण कर पीड़ायुक्त करती है तब इस भीषण पीड़ा से पृष्ठभूमि में प्रच्छन्न पित्त श्वास नली का आश्रय लेकर शरीर भर का तापक्रम आलोडित करता है तब रोगी को ज्वर हो आता है। यही निमोनिया है। इसे हम त्रिदोष की संज्ञा देते हैं। हठात् अङ्गों में शीतलता व्याप्त हो जाना इस ज्वर में आश्चर्य की बात नहीं है। ज्योंहीं इनमें त्रिदोष क्षीणता की ओर बढ़ते हैं सन्निपात में परिवर्तित हो जाता है। यहां सम्पूर्ण फुफ्फु यन्त्र प्रभावित हो पित्त क्षीण होने लगता है। वात श्लेष्मा के संघर्ष ने पित्त को उद्वेलित कर वात श्लेष्मा को मूर्छित अवस्था प्राप्त करा देती है। यहां पर उनका मूर्छित होना ही पित्त के विषम वेग को क्षीण कर शीतलता लाते हैं। यह स्थिति यद्यपि भीषण एवं भयानक है तथापि पित्त को रक्त का आश्रय स्थान देने के लिए पित्त के साथ तत्वों की संचालन क्रिया (चित्र संख्या १६) करानी चाहिए। इससे पित्त की अभिवृद्धि अन्य तत्वों के अनुपात से ही होती है अतः वात, पित्त का संगम पाकर श्लेष्मा को प्रकीर्ण करती अपने को अनाहत चक्र में समेटने को बाध्य हो जायगी और पित्त की विशाल उष्णता पाकर रक्त शीघ्र शोषित हो अधोगामी हो जायेगा। इस अधोगामी रक्त को अनाहत में लौटती हुई वायु अपनी समगति पाकर उसे क्रम प्रदान करती शरीर में तत्वों का सन्तुलन लाने में सहायक हो जायगी। अतः निमो-नियां जैसे भीषण ज्वर में पित्त के साथ तत्वों की संचलन क्रिया (सुमुखंमुद्रा) कराकर पित्त के संगम

—शेषांश पृष्ठ ७६६ पर।

कफकेतु रस

लेखक—वैद्य इन्द्रदेव आयुर्वेद रत्न, विद्यावाचस्पति।

कफ का जो राजा हो उसे कफकेतु कहते हैं। शास्त्रों में कफकेतु छः प्रकार का मिलता है जिनमें पांच में वत्सनाभ का प्रयोग है।

१ अर्धांश कफकेतु

दग्ध शंखं त्रिकटुकं टंकणं समभागिकम्।
'विषं' च पञ्चभिस्तुल्यमार्द्रतोयेन मर्दयेत् ॥
वार त्रयं रक्तिकाञ्च वटीं कुर्याद्विचक्षणः।
प्रातः सायञ्च वटिका द्वयमार्द्रक वारिणा ॥
कफकेतुः कण्ठरोगं शिरोरोगं च नाशयेत।
पीनसं कफ संघातं सन्निपातं सुदारुणम् ॥
भैषज्यरत्नावली—ज्वराधिकारे।

२ चतुर्थांश कफकेतु

कंकणं मागधी शंखं 'वत्सनाभं' समंसमम्।
आर्द्रकस्य रसेनापि भावयेद्दिवस त्रयम् ॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यार्द्रकस्य रसेन वै।
पीनसं श्वास कासं च गलरोगं गलग्रहम् ॥
दन्तरोगं कर्णरोगं नेत्ररोगं सुदारुणम्।
सन्निपातं निहन्त्याशु कफकेतु रसोत्तमः ॥
रसेन्द्रसार संग्रह—कफरोगे।

३ पञ्चमांश कफकेतु

आकल्लकं च 'सविषं' समुद्रफल संयुतम्।
प्रत्येकं समभागं च द्विगुणं मरिचं ततः ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव मर्दयित्वा प्रयत्नतः।
गुञ्जा मात्रामिमां चैव वटीं कुर्याद्विचक्षणः ॥
भुक्त्येयं नाशयत्याशु कफरोगं न संशयः ॥
रसराज सुन्दर—कासे

४ षष्ठांश कफकेतु

भर्जितं टंकणं क्षारं पिप्पली मरिचं तथा।
आकल्लकं 'विषं' शुद्धं वराटी भस्म एव च ॥
सर्वाणि समभागानि सूक्ष्मचूर्णं विधाय च।
द्विगुञ्जा मात्रकं दद्यात् कफकेतुरयं रसः ॥
कासश्वासौ शीतवातं नाशयेन्नात्र संशयः।
रसराज सुन्दर—कासे

५ षष्ठांश कफकेतु

व्योषमिज्जल बीजं च शंखभस्म विषान्वितम्।
मरिच सदृशं खादेत् कफकेतु महारसम् ॥
रसराज सुन्दर—कर्णरोगे

इन पांच प्रकार के कफकेतु रसों में टंकण और कालीमिर्च का योग वत्सनाभ के विषभाग को दूर करके उसके गुणों को बढ़ाने के लिये है।

:: पृष्ठ ७६५ का शेषांश ::

को सहायता प्रदान की जाती है। इससे शरीर का तापमान बढ़कर केवल ज्वर ही शेष रह जायगा। इस ज्वर को किसी भी क्रिया को करवाकर हठात् शिथिल नहीं करना चाहिए। निमोनियां के रोगी में यह ज्वर कम से कम तीन दिन और अधिक से अधिक पांच दिन तक रहना चाहिए। इससे रक्त में वात द्वारा प्रकीर्ण दोष दग्ध हो शरीर निर्विकार होगा।

यद्यपि प्लेग अथवा ग्रंथि ज्वर, ज्वरों के क्षेत्र में आता है और यह अंधा ज्वर शीघ्र अन्ध सन्निपात को ग्रहण कर शरीर के तत्वों के सन्तुलन को डगमगाता है किन्तु इस ज्वर पर हमारा परीक्षण एवं प्रयोग न होने से हम इसमें चुप हैं एवं तात्वीय चिकित्सा का कोई विधान नहीं बता सकते। पाठक क्षमा प्रदान करें। हम स्पष्ट कहते हैं जिस चीज को हम नहीं जानते अथवा जिसका हमने प्रयोग नहीं किया है उसे बताना हमारे क्षेत्र के बाहर की वस्तु है। इससे हम अवश्य स्वीकार करते हैं कि हमारे लेखों का क्रम बिगड़ेगा पर हमारे पास अन्य उपाय नहीं है।

१ वत्सनाभ

वत्सनाभोऽतिमधुरः सोष्णो वातकफापहः ।
कण्ठरुक् सन्निपातघ्नः पित्तसन्तापकारकः ॥
—योगवाहि रसायनम् राजनिघण्टु ।

२—टंकण

सुश्वेतं टंकणं स्निग्धं कटूष्णं कफवातनुत् ।।
आम क्षयापहृच्छ्वास विष कास मलापहम् ॥
—राजनिघण्टु ।

३—मरिच

कटूष्णं श्वेत मरिचं विषघ्नं भूतनाशनम् ।
वृष्यं दृष्टिरोगघ्नं युक्तं चैव रसायनम् ॥
कफवातजित् ।

वत्सनाभ भी कफवात नाशक है तथा टंकण और मरिच भी। अतः तीनों ने मिलकर कफ वात का नाश किया परन्तु पित्त को बढ़ाया, अतः पित्त को शांत करने के लिये शंख मिलाया गया कि कहीं ये द्रव्य मिलकर अत्यन्त उष्ण होकर पित्त को न भड़का दें।

४—शंख

शंखो नेत्र्यो हिमः शीतो लघुः पित्तकफास्रजित् ।
शंखः कटुः सरः शीतः पुष्टि वीर्य बलप्रदः ॥
गुल्म शूलहरः श्वास नासनो विष दोषनुत् ।

शंख शीत होने के कारण वत्सनाभ, टंकण, कालीमिर्च की उष्णता को अतिक्रमण नहीं होने देता तथा विष दोष का नाशक भी है अतः वत्सनाभ के साथ जहां टंकण, कालीमिर्च, शंख का योग है वह तो युक्ति युक्त सिद्ध होता ही है और जहां शंख नहीं डाला गया, उसके स्थान पर समुद्रफल से काम लिया गया है।

५—समुद्रफल

जलवेतस वद्धेद्यो हिज्जलोऽयं विषापहः ।
वेतसस्य द्वयं शीतं रूक्षं च व्रणशोधनम् ॥
रक्तपित्त हरं तिक्तं सकषायं कफापहम् ।
—धन्वन्तरि निघण्टु ।

समुद्रफल जहां पित्तनाशक है वहां विष दोष का निवारण करने वाला भी है। जिस कफकेतु में न शंख है न समुद्रफल वहां पित्त दोष की शांति के लिए कौड़ी की भस्म का प्रयोग किया गया है।

६—कपर्दिका

कपर्दिका हिमा नेत्रहिता स्फोट क्षयापहा ।
कर्णस्रावाग्निमान्द्यघ्नी पित्तास्र कफनाशिनी ।।

पित्तनाशक गुण सफेद व लाल कौड़ी में है पीली कौड़ी तीक्ष्ण होती है उसका प्रयोग कफकेतु में नहीं होना चाहिये।

किसी कफकेतु में केवल टंकण है, किसी में टंकण मिर्च दोनों हैं, किसी में टंकण मिर्च पीपल तीनों हैं तथा किसी में टंकण, मिर्च, पीपल, सोंठ चारों हैं। टंकण और मिर्च के गुण ऊपर वर्णन किये जा चुके हैं इन दोनों में से केवल एक अथवा दोनों का प्रयोग कर देने से वत्सनाभ के गुणों को बढ़ाता ही है तथा मिर्च और पीपल सोंठ के गुण एक से हैं अतः चारों के योग से भी कफकेतु में कोई हानि नहीं आती है। अत्यन्त कफनाशक हो जाता है। अतः ऊर्ध्वांग के रोगों का नाश करता है। सन्निपात में कफ नाशक क्रिया प्रधान की जाती है, वत्सनाभ सन्निपात का नाशक तो है ही, साथ में उपरोक्त योगों से अत्यन्त सन्निपातघ्न हो जाता है, कफकेतु के ये ही दो गुण हैं।

१—ऊर्ध्वांग के रोग समूह का नाश करना।

२—सन्निपातघ्न।

प्रतिश्याय भी उर्ध्वांग का रोग है, कफकेतु रस जुकाम, नजला, तथा इन्फ्लुएञ्जा की मुख्य औषधि है। यदि किसी को खुश्की हो तो मलाई या शहद के साथ खावे और खुश्की न हो तो पान या अदरक के रस के साथ भक्षण करे।

७—अकरकरा

किसी कफकेतु में अकरकरा का प्रयोग है किसी

में नहीं। जिस कफकेतु में अकरकरा का प्रयोग किया जाता है उसमें कफनाशक शक्ति अति प्रवल हो जाती है।

अक्कलकरोष्णो वातकृत्कटुको मतः।
प्रतिश्यायं शोथं च वातञ्चैव विनाशयेत्॥

८—अदरक

अदरक के रस की भावना देने से कफ नष्ट करने की शक्ति तीव्र हो जाती है जिस कफकेतु में अदरक रस की भावना नहीं लिखी है उसमें भी अदरक रस की भावना दे देने से कोई हानि नहीं।

आर्द्रिका भेदिनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता।
कटुका मधुरा पाके रूक्षा वात कफापहा॥

९—सोंठ

नगरं कफवातघ्नं विपाके मधुरं कटु।
वृष्योष्णं रोचनं हृद्यं सस्नेहं लघुदीपनम्॥

१०—पीपल

पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी।
अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्म हरी लघु॥
—भावप्रकाश।

कालीमिर्च अवृष्य है अतः अवृष्य दोष के निवारण के लिये सोंठ पीपल कफकेतु में लाभदायक है। क्योंकि पीपल व सोंठ दोनों वृष्य हैं जिस कफकेतु में त्रिकुटा अथवा कालीमिर्च पीपल संयुक्त हैं वह कृश गात्र कफ रोगियों को अत्यधिक लाभदायक है।

इस प्रकार पांचों कफकेतु उपरोक्त १० द्रव्यों से निर्मित होते हैं। उपरोक्त विवेचन के अनुसार यथावश्यक द्रव्यों से कफकेतु रस निर्माण करें।

प्रत्येक कफकेतु का सन्निपात में प्रयोग करने से कोई हानि नहीं हो सकती, तो भी चतुर्थांश कफकेतु सन्निपात में अधिक उपयोगी है तथा दारुण सन्निपात में अर्धांश कफकेतु का प्रयोग करे। क्योंकि वत्सनाभ सन्निपात का नाश करने वाला है। षष्ठांश और पंचमांश कफकेतु से चतुर्थांश कफकेतु में वत्सनाभ अधिक है और अर्धांश में सबसे अधिक है अतः अर्धांश कफकेतु दारुण सन्निपात का नाशक है।

यह अर्धांश कफकेतु सर्वश्रेष्ठ है इसमें अवृष्य तथा पित्तनाशक औषधियां सम्मिलित हैं। वत्सनाभ योगवाहि होने के कारण उनके गुणों को धारण कर लेता है। अतः इसका उपयोग ऊर्ध्वांग, प्रतिश्याय व फलगु (इन्फ्लुएञ्जा) में पित्त वर्धक नहीं हो सकता है।

यदि किसी को वत्सनाभ उपलब्ध न हो अथवा विष प्रयोग न करना चाहता हो तो कफनाशक एक छठे प्रकार के कफकेतु का निर्माण करे। इसमें १४ द्रव्य प्रयोग किये जाते हैं।

६ अविषांश कफकेतु

रसबलिरवि तालान् पौष्करं हिंगु सिन्धूद्भवम्।
कटुकीरजस्तत् सर्वमेकत्र पिष्टम्॥
घनरवसुरदाली तिक्तकोशातकीभिः।
तदनु च ननु भाव्या कृष्णा निर्गुण्डिनीरैः।
कफगदकुलकेतुः स्याद्रसो माष मात्रः॥
समधुरिति निहन्ति प्रोत्कटं श्लेष्म रोगम्।
अनुभवति कषायो निम्बुजः पेयमस्मिन्॥
पवनशमनमात्रं पथ्यमुष्णाम्बु सेव्यम्॥
रसराज सुन्दर—कासे

अविषांश कफकेतु में प्रयुक्त द्रव्यों का गुणदोष यथाक्रम वर्णन किया जाता है—

१ पारद

पारदः षड्रसः स्निग्ध स्त्रिदोषघ्नो रसायनः।
योगवाही महावृष्यः सदादृष्टि बलप्रदः॥
सर्वामय हरः प्रोक्तो विशेषात् सर्वकुष्ठनुत्।
असाध्यो यो भवेद्रोगो यस्यनास्ति चिकित्सितम्।
रसेन्द्रो हंति तद्रोगं नरकुञ्जर वाजिनाम्॥

२ गन्धक

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः।
पित्तलः कटुकापाके कण्डू वीसर्प जन्तुजित्॥
हंति कुष्ठ क्षयप्लीह कफवातान्रसायनः।

३ ताम्र

ताम्रं सुपक्वं मधुरं तिक्तं
विपाके कटुशीतलं च।

कफापहं पित्तहरं विबन्ध
शूलघ्न पाण्डूदर गुल्मनाशि ॥

४ हरिताल

हरितालं कटुस्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् ।
कण्डु कुष्ठास्य रोगास्त्र कफपित्तकचव्रणान् ॥

५. पोहकरमूल

पुष्करं कटुतिक्तोष्णं कफवात ज्वरापहम् ।
श्वासारोचक पाण्डु शोफघ्नं पाण्डुनाशनम् ॥

६. हिंगु

हिंगूष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासहृत् ।
शूलगुल्मोदरानाह कृमिघ्नं पित्तवर्द्धनम् ॥

७. सैंधव

सैंधवं लवणं स्वादु दीपनं पाचनं लघु ।
स्निग्धं रुच्यं हियं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत् ॥

८. कुटकी

कटी तु कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघु ।
भेदनी दीपनी हृद्या कफ पित्त ज्वरापहा ॥
प्रमेह श्वास कासास्रदाह कुष्ठ क्रिमि प्रणुत् ।

पारद व सैंधव त्रिदोष नाशक हैं गंधक, पोहकरमूल, हिंगु वात कफ नाशक हैं तथा पित्तकारक हैं परन्तु इस पित्तदोष को ताम्र, हरिताल, कुटकी हरण कर लेती हैं। इन तीनों से केवल वात बढ़ता है परन्तु वात की नाशक गंधकादि औषधियां तीनों पहले कही गई हैं। आगे की औषधियां मिलकर कफ नाशक हैं पित्त और वात को समान अवस्था में रखने वाली हैं। नीचे लिखी चार औषधियों से भावना दी जाती हैं।

१. चौलाई

तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पितकफास्रजित् ।
सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनी विषहारकः ॥

२. देवदाली

वामनी हन्ति गुदज कफ शोफाम कामलाः ।
ज्वर कासा रुचि श्वास हिध्मा पाण्डु क्षय क्रिमीन् ॥

३. कड़वी तोरी

तिक्त कोशातकी तिक्तं वातलं कफपित्तजित् ।
अवृष्यं कटुकं पाके सारकं वान्तिकारकम् ॥

४. सम्हालू

कटूष्णा नील निर्गुण्डी तिक्ता रूक्षा च कासजित् ।
श्लेष्म शोफ समीरार्ति प्रदराध्मान हारिणी ॥

नीम के क्वाथ से यह रस सेवन किया जाता है।

निम्ब काथ

प्रभद्रकः प्रभवति शीततिक्तकः
कफव्रणक्रिमि वमि शोफ शान्तये ।
बलासभिद् बहुविध पित्त दोषजि
द्विशेषतो हृदयविदाह शांतिकृत् ॥

मधु का अनुपान

मधु शीतलं लघु स्वादु रूक्षं स्वर्य्यं च ग्राहकम् ।
चक्षुष्यं लेखनं चाग्नि दीपकं व्रण शोधकम् ॥
दाहं क्षतं क्षयं मेदक्षयं हिक्कां त्रिदोषकम् ।

भावना वाली औषधियों में देवदाली व संभालू पित्तकारक हैं उनको चौलाई व कड़वी तोरई पित्त नाशक हैं तथा चौलाई व कड़वी तोरई वातकारक हैं देवदाली व संभालू वातनाशक हैं। नीम का क्वाथ वातकारक है परन्तु मधु त्रिदोष नाशक है।

इस कफकेतु में कोई औषधि कफवर्धक नहीं है। अतः इस योग का नाम कफकेतु उपयुक्त ही है।

हमारे नित्य उपयोग में आने वाले जो आहार द्रव्य हैं उनका भी प्रयोग बड़े सोच समझकर वेद सम्मत है। किसी देश में किसी द्रव्य विशेष का अधिक प्रयोग वहां की जलवायु की स्थिति के अनुसार है। आजकल चकाचौंध का युग पुरानी सब बातों को झूठी करना चाहता है। परन्तु वे पुरानी बातें बड़े काल तक परीक्षण करके प्रयोग में लाई गई हैं। अण्डा, मांस, मद्य का प्रयोग

—शेषांश पृष्ठ ७६० पर।

निर्मुख जारणा

लेखक—श्री रामेश वेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

पारद अनुसन्धानशाला, कनखल में रस शास्त्र के अनेक पहलुओं पर परीक्षण किए गए हैं। इन महत्वपूर्ण परीक्षणों के संचालक श्री नारायण स्वामी जी ने जो अनुभव प्राप्त किए हैं उन्हें वैद्य जगत के लाभ के लिए हम प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं। प्रति मास हम कुछ अनुभव इन पृष्ठों द्वारा पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करना चाहते हैं। आशा है कि ये लेख-क्रम रस शास्त्र के जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी सिद्ध होंगे। इस विषय में पाठक अपने विचारों से हमें सूचित करेंगे। —लेखक।

पारद अनुसन्धान के कार्यक्रम में हठरस बनाने के अनेक अनुभव स्वामी जी को प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक निर्मुख जारणा है। इस विषय में स्वामी जी के अनुभवों को हम यहां रस शास्त्र के प्रेमियों के लिये प्रस्तुत कर रहे हैं।

रस शास्त्र में निर्मुख जारण का लक्षण इस प्रकार दिया है:—

> निर्मुखा जारणा प्रोक्ता बीजाबाने न मागत:।

शास्त्र प्रतिपादित दीर्घ-क्रम के बिना जब बीज का जारण किया जाता है तो उस जारण को निर्मुख जारण कहते हैं। शास्त्र में ये तीन प्रकार की जारणा बताई गई हैं—१. निर्मुख, २. समुख और ३. वासनामुख।

रस शास्त्र में इन-इन धातुओं के जारण का अलग-अलग फल बताया गया है।

> कुटिले बलमत्यधिकं रागस्तीक्ष्णे च पन्नगे स्नेहः।
> राग स्नेह बलानि कमले नित्यं प्रशंसति ॥
> बलमास्तेभ्रकसत्वे जारणरागा प्रतिष्ठितेस्तीक्ष्णे।
> बन्धश्च सारलौहे क्रामणम नाग वंमकम् ॥

इसका अर्थ यह है। पारद में कुटिल (एक-धातु) के जारण करने पर पारद में बल (वेध शक्ति) की वृद्धि होती है। कान्तलौह के जारण करने पर राग (रङ्ग) और पन्नग (सीसे) के जारण से स्नेह (अग्निस्थायित्व) पैदा होता है। कमल (ताम्बे) जारण करने पर राग (रंजन), स्नेह (अग्निस्थायित्व) और बल (वेध शक्ति) इन तीनों गुणों की निश्चि[त] रूप से अभिवृद्धि होती है। अभ्रकसत्व के जार[ण] से बल (वेध शक्ति) और तीक्ष्ण (लौह विशेष) [के] जारण से क्रामण (पारद को धातु में प्रवेश करा[ने] वाली सहायक द्रव्य) का गुण आता है।

सभी लोहों (धातुओं) के जारण से पारद ब[द्ध] (अग्निस्थायी) बनता है।

> सर्वैर्भिर्लोहमाक्षिकमृवितंद्रु तैस्तपा गमे।
> विडयोगेन च जीर्णो रसराजो बन्धमुपयाति ॥

ऊपर लिखित शास्त्रीय वचनों के आधार प[र] अनुसंधानशाला में कुछ वर्ष पूर्व नागताम्र के संयु[क्त] बीज से पारद का बन्धन किया गया था। इस परी-क्षण में नागताम्र का संयुक्त बीज बनाने की प्रक्रि[या] को हम संक्षेप से यहां देते हैं। सबसे पहले ना[ग] (सीसे) को आग पर गलाकर तैल, तक्र, कांजी, गौमूत्र और कुलथी के क्वाथ में अलग-अलग स[ात-]सात बार बुझाया गया। इस प्रकार सीसे का शोधन कर लिया गया। इसी विधि से ताम्र को शुद्ध कि[या] गया। उसके पश्चात् दोनों धातुओं को अलग-अल[ग] तीव्राग्नि पर द्रव करके इक्कीस-इक्कीस बार बी[ज] रंजक तैल में बुझाया गया।

बीज रंजक तैल बनाने की विधि इस प्रकार है—

मंजिष्ठा ब्रह्मपुष्पं च पुष्पं च करवीरकम् ।
सर्वासां वृक्षजातीनां रक्तपुष्पाणि चाहरेत् ॥
खदिरं देवदारुं च द्विनिशा रक्तचन्दनम् ।
सर्वलाक्षारसैः पिष्ट्वा क्षिप्त्वा तैलं चतुर्गुणम् ॥
पक्त्वे-तैलावशेषं तु तस्मिंस्तैले निषेचयेत् ।
त्रिसप्तधा पक्वबीज रंजते जायते शुभम् ॥

मंजीठ, ढाक और लाल कनेर के फूल, इनके अतिरिक्त लाल रंग के जो-जो फूल मिलें उन्हें भी ले लें। लाल कत्था, देवदारु, दारुहल्दी और आमाहल्दी, लाल चन्दन—इन सबको ढाक की लाख के काढ़े में पीसकर पीठी सी बना लें। पीठी के चार गुणा मालकंगनी का तैल और तैल से चार गुणा पलाश की लाख का काढ़ा लेकर सबको मृदु अग्नि पर विधिवत् पकाकर तैल सिद्ध कर लें। स्वामी जी ने अपने परीक्षणों में इस रंजक तैल में सीसे और ताम्र को जो २१-२१ बार बुझाया था उससे इन धातुओं की लोह संक्रान्ति (तपाने पर धातु का काला पड़ना) नष्ट हो गई, ये रक्तपीत वर्ण में रंजित हो गई और इनमें एक चमक आ गई थी।

इन प्रक्रियाओं में से इन धातुओं के गुजरने के बाद भी जो थोड़ी बहुत अशुद्धियां रह गई थीं उन्हें पुनः शोधन करना पड़ा। इसके लिए शास्त्र ने यह बताया है—

प्रथान्यस्य च ताम्रस्य नागशुद्धस्य कारयेत् ।
निर्गुण्डिका रसेनैव पंचाशद् वार ढालनम् ॥
कुष्माण्डस्य रसेनैव सप्तवारं तु ढालनम् ।
निशा युक्तेन तक्रेण सप्तवारंतु ढालनम् ॥
एवं ताम्रं द्रुतं ढाल्यं कालिका रहितं भवेत् ।

पूर्व प्रक्रियाओं द्वारा शोधित तथा रंजित सीसे और ताम्र को क्रमशः दो भाग और एक भाग लेकर कुसिबल में गलाया गया। इस सम्मिश्रण द्रुति को सम्हालू के स्वरस में पचास बार, पेठे के स्वरस में सात बार और हल्दी युक्त तक्र में सात बार बुझाया गया। खेत की कच्ची हल्दी को षोडशांश लेकर सिलबट्टे पर रगड़ कर लस्सी में घोल लेने से निशा-युक्त तक्र बनाई गई थी। इन द्रव्यों में बुझाने से ये धातुएँ और अधिक शुभ्र हो गई। प्राप्त मिश्रधातु को स्वर्णमाक्षिक के संयोग से भस्म किया गया। इस परीक्षण में जो स्वर्णमाक्षिक लिया गया था उसमें तीस प्रतिशत ताम्र था। स्वर्णमाक्षिक के संयोग से बनाई गई नागताम्र की इस भस्म को ही नागताम्र बीज कहते हैं। तप्तखल्व में शुद्ध पारद एक भाग, नागताम्र बीज $\frac{1}{8}$ भाग और धातु जारण बीज $\frac{1}{16}$ भाग मिलाकर निम्बू स्वरस से मर्दन किया गया। अम्ल वर्ग में निम्बू जाति के सभी फलों का समावेश है इस लिये अपने परीक्षणों में स्वामी जी किसी भी खट्टे निम्बू का रस ले लेते हैं। तीन दिन तक बालुकापन्न पर तप्तखल्व में घोटने के बाद यह एक रूप होकर गाढ़ा काले रंग का अर्ध ठोस पदार्थ प्राप्त हुआ। इस जारण प्रक्रिया में पारद मूर्च्छित होगया। प्राप्त अर्द्ध ठोस को चीनी की प्लेट में फैला कर धूप में पूर्णतया सुखा लिया। यहां पर यह ध्यान रखना चाहिये कि इसमें यदि नमी का अंश रह जाय तो ऊर्ध्वपातन के समय जलीयांश के वाष्प बनकर डमरू यन्त्र की ऊपर की हांडी उड़ सकती है और सन्धिबन्धन खुल सकते हैं। धूप में सुखाने की प्रक्रिया को रसशास्त्र में चारण संस्कार कहते हैं। चारित द्रव्य का तीव्राग्नि पर अड़तालीस मिनट तक ऊर्ध्वपातन करने से डमरू यन्त्र में ऊपर नीचे जो पारद प्राप्त हुआ उसे दस सेर पानी में आधा सेर सैन्धव नमक डालकर बनाये घोल में ढाई घण्टे तक स्वेदन किया गया। बाद में पुनः उपर्युक्त प्रकार से बीज जारण किया गया। इस प्रकार चार बार जारण, चारण, ऊर्ध्वपातन तथा स्वेदन करने से पारद में बीज का समजीर्ण जारण होगा। अर्थात् उस पारद में समान भाग बीज का जारण हो चुका होगा। इसी समजीर्ण पारद में बद्धतार (अग्निस्थापिता) तथा राग इन दोनों गुणों की अभिवृद्ध होगी। पारद में जितना अधिक बीज का जारण होगा उतनी ही पारद की वेधशक्ति बढ़ेगी। इस विधि से बनाया

—शेषांश पृष्ठ ८०४ पर।

दधि सेवन ऐसा ही क्यों ?

लेखक - वैद्य दत्तात्रेयशास्त्री जलूकर ।

आज कल ही क्या प्रायशः बहुतांश ऐसा ही देखा जाता है कि विद्यालयों में आचार्य पढ़ाते हैं और छात्र गण पढ़ते हैं। प्रसंगवश आचार्य पूछ भी लेते हैं 'समझ में आया न ?' उत्तर में 'हां' नहीं मिले ऐसा शायद ही हो सकता है किन्तु यह 'हां' उत्तर कहां तक सच्चा होता है जिसका अनुभव परीक्षा के समय आता है। दैववश परीक्षा से भी छुटकारा पा लिया तो व्यवसाय कार्य में तो अवश्य ही आता है। उदाहरण के लिए 'दधि सेवन' का प्रश्न आज इस लेख द्वारा वाचकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। चरक संहिता सूत्रस्थान ८ वें अध्याय में दधि-सेवन विधि का पाठ हम पढ़ चुके हैं उसमें बताया है कि—

"न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्य घृत शर्करम् ।
नामुद्गसूपं ना क्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ॥
ज्वरासृक् पित्तवीसर्प कुष्ठपाण्ड्वामयभ्रमान् ।
प्राप्नुयात् कामलांचोग्रां विधिहित्वा दधिप्रियः ॥"

अर्थात् दधिसेवन रात्रि को नहीं करना चाहिए। वैसे ही घी, शक्कर, मुद्गयूष, शहद, आंवले इन द्रव्यों में से किसी द्रव्य का बिना मिश्रण किये दही का सेवन नहीं करना चाहिये। दधि उष्ण करके नहीं खाना चाहिये और यदि इस सूचना का अनुसरण हम नहीं करेंगे तो ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पांडु भ्रम, और महाभयङ्कर कामला रोग होने का भय समझना चाहिये।

आचार्य श्री के पढ़ाने पर चाणाक्ष एवं जिज्ञासु छात्र आचार्य से अवश्य पूछ सकता है कि—१—जिस पदार्थ का सेवन दिन में करना निषिद्ध नहीं हो सकता उसी पदार्थ का सेवन रात्रि में करने का निषेध क्यों दर्शाया गया है? २—उक्त द्रव्यों के मिश्रण करने से यह असेव्य दधि सेव्य कैसे हो सकता है ? ३—तीसरा प्रश्न यह पूछा जा सकता है कि उक्त विधि से दही सेवन न होने पर ज्वरादि कामलान्त विकार ही क्यों होने की आशंका रहती है ? इन रोगों के अतिरिक्त अन्य रोग नहीं होंगे ?

दधि गुण

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए दधि के गुणों का हमें अवश्य विचार करना पड़ेगा। चरकाचार्य सूत्र स्थान अ. २७ में दधि गुणों का वर्णन करते हैं।

"रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्द्धनम् ।
"पाकेऽम्लं उष्णं वातघ्नं मंगलं बृंहणं दधि ॥

इसी तरह अष्टांगहृदयकार श्रीमद्वाग्भट्टाचार्य भी दधि के गुणों का वर्णन करते हैं—

अम्लपाकरसं ग्राहिगुरूष्णं दधिवातजित् ।
मेदः शुक्रबलश्लेष्म पित्त रक्ताऽग्नि शोफ कृत् ॥
अ० हृ० सू० ॥

देखिये व्यावहारिक कल्पना के कितना विरुद्ध गुण यहां दर्शाया है ? किसी को भी पूछने पर दधि के ऊष्ण होने का उत्तर नहीं मिलेगा। दधि ठंडा होने से वह कफ और शैत्य बढ़ाता है यही एकमेव कल्पना जनसाधारण की है। किन्तु उक्त दोनों आचार्य दधि को उष्ण बताते हैं और इसीलिए वह दधि वातदोष को नष्ट करता है यह बात सुसंगत ही है। किन्तु उष्ण होकर भी दधि कफ को कैसे बढ़ा सकता है यह एक आशंका होती है। इस आशंका का उत्तर दधि के ग्राही और गुरु ये दो गुण दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त शार्ङ्गधर संहिता में अभिष्यन्दी द्रव्य की व्याख्या करते समय इसी दधि का उदाहरण दिया है। अभिष्यन्दी द्रव्य "पैच्छिल्यात् गौरवात् द्रव्यं रुध्व रसवहाः सिराः। धत्ते गौरवम् ।" इन गुणों से अर्थात् बिलबिला, गुरु होने से रसवाहि सिराओं को अवरोध करने वाला यह द्रव्य होता है। अर्थात्

दधि अभिष्यन्द होने से वह रसवहसिराओं का रोध करने वाला द्रव्य है और इसीलिए यह कफ को बढ़ावे तो क्या आश्चर्य ?

दधि सेवन रात्रि में क्यों नहीं ?

अब देखिए दधि के अन्य गुणों पर दृष्टिक्षेप करें। दधि का रस अम्ल है और उसका विपाक भी अम्ल होता है। अम्ल रस यद्यपि स्पर्श में शीत है फिर भी वीर्य उसका उष्ण होता है। (उष्णवीर्यो हिमस्पर्शः अम्लोरसः) और रोचन, दीपन, पित्त, अग्नि इन शरीर क्रियाओं का बढ़ाना यह है उष्णवीर्य का कार्य। क्योंकि 'पित्तं वन्हिः' अर्थात् हमारी जठराग्नि 'पित्त' ही है। उष्णता विषयक सम्पूर्ण क्रियायें इस पित्त से अर्थात् अग्नि से ही शरीर में होती रहती हैं।

अब हमें थोड़ा सा दोष दृष्टि से विचार करना पड़ेगा। स्वस्थावस्था में यद्यपि तीनों दोष वात-पित्त कफ समावस्था में होते हैं फिर भी "वयोऽहोरात्रि-भुक्तानां तेंऽतमध्यादिगाः क्रमात्" केवल रात्रि की दृष्टि से देखने पर इन तीनों दोषों में से कफ दोष का प्राबल्य शरीर में रात्रि के प्रथम प्रहर में होता है; जबकि हमारा भोजन समय होता है। अर्थात् इस कफ काल में गुरु, पिच्छिल, स्रोतोरोधकर, स्निग्ध एवं अभिष्यन्दि गुणवाला-दधि सेवन कफ के गुणों को ही बढ़ाएगा और कफ गुणों का आधिक्य शरीर में होने से कफजन्य, अग्निमांद्य, श्वास कासादि विकार स्रोतसों का रोध होने से पित्त और रक्त का भी सम्पूर्ण शरीर में यथावत् संचालन नहीं हो सकेगा, परिणामतः अन्नरस में पित्त के पाचकांशों का सम्यक् मिश्रण होने की नैसर्गिक क्रिया के अभाव से रुद्धपथ कामला अर्थात् जिस पीलिया रोग में तिल्ली के देप जैसा रङ्गहीन और खरदरा शौच होता है उसकी सम्भावना होगी तथा रक्ताभिसरण की दृष्टि से होने वाले अल्प विसर्प, कुष्ठ, पांडु रक्तपित्त इन्हीं विकारों की सम्भावना हो सकती है। अन्य वात-विकारों की नहीं। शोफ अर्थात् सूजन उत्पन्न करने में भी दधि सेवन ही अनेक कारणों की अपेक्षा प्रमुख कारण शास्त्रकारों ने बताया है सो इसी हेतु से है। अब रहा उत्तर एक ही प्रश्न का कि यह इस प्रकार असेव्य माना गया दधि सेवन कुछ पदार्थों के मिश्रण करने से सेव्य कैसे हो सकता है ? देखिये—

अभिष्यंदि द्रव्य के स्निग्धादि गुणों को कम करने के लिए रूक्ष द्रव्य का ही मिश्रण होना परमावश्यक है और जब इस रात्रि के प्रथम प्रहर में भोजन के साथ दही खाना चाहेंगे तो रूक्ष और कषाय द्रव्य की ही योजना होनी चाहिए किन्तु वह द्रव्य भी ऐसा हो कि रूक्ष तथा कषाय होने पर भी वात को न बढ़ावे। इस दृष्टि से मुद्गयूष की योजना की गई तो अपेक्षित कार्य क्यों नहीं होगा। यद्यपि संपूर्ण द्विदलधान्य वातकर हैं फिर भी मुद्ग अपवाद माना गया है। 'वरोऽन्नमुद्गः अल्पचलः' यह है इसका प्रमाण? और फिर यूष बनाने में उस धान्य का केवल उबाला हुआ पानी ही लिया जाता है और उस पानी को भी मिर्च, जीरा, हींग, लवण तथा घी की बघार देकर संस्कृत किया जाता है। इस संस्कार-द्वारा उस यूष में दीपक पाचक गुणों का आविर्भाव होता है। अम्ल पदार्थ लवण रसयुक्त करने से मधुरता को प्राप्त होता है। अर्थात् दही के जो उक्त पित्तवर्धनादि गुण हैं उनका भी शमन इस यूष के अन्तर्गत लवण होने से वर्धन होने नहीं पाता।

बिना मधु (शहद) मिलाये भी दधिसेवन वर्ज्य बताया है, इसका भी कारण शहद कफ को हटाने-वाला और योगवाही अर्थात् जिस द्रव्यके साथ मिश्रण हो वैसा कार्य करनेवाला होने से किन्तु स्वयं उष्ण वीर्य होनेसे अभिष्यंदी गुण का प्रतिरोध कर सकता है एवं दधिसेवन रात्रौ करने में संभाव्य दुष्परिणामों को दूर करता है।

आमलक चूर्ण भी दधि के साथ मिश्र करने का हेतु अम्ल रसयुक्त होते हुवे भी आमलक अर्थात आंवला विशेषकर रक्तपित्तनाशक है। और रात्रौ दधिसेवन रक्तपित्तको बढाता है। इसी लिए आमलक चूर्ण दधिसेवन करते समय मिश्र होना चाहिये।

रक्त और पित्त बढानेका प्रायः जो दुर्गुण दधिसेवन में है उसके शमनार्थ घी तथा शक्कर का भी सहयोग

दधिसेवन के समय लेने का आदेश दिया गया है। घी पित्तशामक होकर भी अग्निप्रदीपक है यह है उसकी विशेषता और शकर भी शीतवीर्य से दधि का नैसर्गिक अम्लरस तथा उष्णवीर्य का प्रतियोगी है। इसीलिये इन द्रव्यों का मिश्रण दधिसेवन विधि में अत्यावश्यक है।

अब अन्त में एक बात बताकर इस लेख को समाप्त करना है। मिश्र करने के जो भी द्रव्य बताये गये हैं क्या वे एक ही समय एकत्रित किये जाने चाहिये अथवा उसके लिये कुछ पर्याय हो सकते हैं यह प्रश्न उठ सकता है और उसका समाधान किये बिना लेख पूर्ण हो नहीं हो सकता।

यहां दोषों का ही विचार करना चाहिये। ऊपर कहा गया है कि दिन, रात तथा भोजन काल के प्रथमावस्था में कफ, मध्यमावस्था में पित्त और अंत्यावस्था में वात का नैसर्गिक आधिक्य होता है इस लिये जब कभी—

(१) सुबह ही सुबह अथवा भोजन करने के प्रथम अथवा रात्रि के प्रथम प्रहर में दधिसेवन करने का प्रसंग हो तब कफनाशक मधु मिलाकर अथवा मुद्गयूप मिलाकर सेवन करना चाहिये।

(२) जब दिन के मध्य में अथवा, मध्यरात्रि के समय अथवा भोजन के मध्यावसर पर दधि सेवन करना हो तब पित्त एवं रक्तशामक घी तथा शकर को मिला लेना चाहिये।

(३) और दिन का अंत अर्थात् सूर्यास्त के कुछ पूर्व, तथा अंतिम रात्रि को अर्थात् उषःकाल के पूर्व और भोजन के अंत में अर्थात् संपूर्ण भोजन होने पर दधि सेवन करना हो तब भी मुद्गयूष अथवा आमलक एवं आंवले का चूर्ण मिला कर ही सेवन करना चाहिये। लवण एवं शर्करा भी मिश्रण करना अच्छा है। ऐसा करने से वातवृद्धि एवं तज्जन्य विकारों का डर नहीं रहेगा।

आयुर्वेदशास्त्र आहार्य द्रव्यों के सेवन के विषय में बडी सावधानी रखने की सूचना देता रहा है। दधि, के जैसे अन्य पदार्थों के विषय में भी वर्णन मिलते हैं।

—चिकित्सक, भुसावल से साभार।

:: पृष्ठ ८०१ का शेषांश ::

गया नागताम्र जारित पारद केवल धातुवाद में उपयोगी है, औषधि प्रयोग में काम नहीं आता। इस प्रक्रिया में जो नागताम्र जारित पारद प्राप्त होगा वह हठरस कहलाता है। इस धातु बीज के अधिकाधिक जारण से पारद में किस प्रकार वेधक शक्ति की अभिवृद्धि होगी इस का स्पष्ट निरूपण गोरस संहिता में किया गया है।

इस लेख के अन्दर हमने स्वर्णमाक्षिक के संयोग से नागताम्र की भस्म बनाने की बात लिखी थी उसकी विस्तृत विधि हम अगले अंक में दे रहे हैं।

अर्श पर आयुर्वेद विज्ञान परिषद् वार्ता

लेखक—वैद्य वेदप्रकाश शर्मा आयुर्वेदालंकार, इन्दौर ।

स्थानीय वैद्य समाज की ओर से हो रहे आयुर्वेद विज्ञान परिषद के कार्यों में, सब वैद्यों के सहयोग से विज्ञान परिषद के कार्यों में प्रमुख कार्य प्रतिमास प्रथम दिवस को सायंकाल ८ बजे होने वाली व्याख्यान माला है जिसके अन्तर्गत श्रेष्ठतम आचार्य अपने अपने विषयों पर प्रभाव डालते हैं, यह भी कहा जासकता है कि इस समय वे अपनी ज्ञान परीक्षित अन्वेषित क्रियाऐं वैद्य समाज को अर्पित करते हैं। अब तक ६ माह के क्रिया-काल में मलेरिया (विषम-ज्वर), टाइफाइड (आन्त्रिक-ज्वर), शिवा गुटिका (चक्रदत्त रसायनाधिकार), पंचकर्म, शल्य, आदि गहन विषयों पर प्रकाश डाला जा चुका है। इस श्रृंखला के अन्तर्गत गत १ जौलाई को सर्व वैद्य महानुभावों की मिश्रित वार्ता एक ही विषय पर हुई जिसका विषय 'रक्तार्श' रखा गया। धन्वन्तरि के पाठकों के लिए वार्तालाप के आधार पर कुछ चमत्कारिक सफल योग प्रेषित करता हूँ। आशा है पाठक गण अपने अपने नगरों में इस प्रकार की वैद्यों की विज्ञान परिषद् बनाकर अपने अपने विषयों पर उनसे चर्चायें कराके आयुर्वेद ज्ञान का विस्तार करेंगे एवं अप्रकाशित अनुभूत योगों की सफलता पर जन साधारण में विश्वास पैदा करेंगे।

'आयुर्वेद विज्ञान परिषद् वार्ता के अन्तर्गत सिद्ध अनुभूत योग'—

लाजवन्ती क्षीरपाक

(१) लाजवन्ती मात्रा २ माशा से १ तोला, दूध ऽ॥ द्विगुण पानी डालकर समान भाग दुग्धांश प्रमाण रहने पर्यन्त पाक करें। प्रातः सायं सेवन करते रहने पर रक्तस्राव तो तत्काल बंद होजाता है एवं लगातार कुछ दिन सेवन करते रहने पर रोग भी समूल नष्ट होजाता है। अनुभवी वैद्यराज घनश्यामदास जी व्यास ने ३ माशा की मात्रा से ही कई रक्तार्श के रोगी ठीक किए हैं।

(२) यहां के स्थानीय सुप्रसिद्ध वैद्यराज लखनवी जी का भी निम्न योग प्रभावशाली रहा। आपके कथनानुसार 'मकोय पत्थर' (जिसका परिचय पूंछने पर आपने मंगवाकर वैद्य समाज को देने का आश्वासन दिया) इस पत्थर को साफ कर घृतकुमारी के रस में घोटकर घृतकुमारी स्वरस की दो बार भावना दें एवं पुट पाक विधि से इसकी भस्म बनालें। इस भस्म के साथ तवे की राख (शास्त्रोक्त घर का धुंआ) समान मात्रा में मिलाकर रखलें। इस की १ रत्ती की मात्रा दूध की मलाई के साथ प्रातः सायं सेवन करते रहने पर कैसा ही भगन्दर, अर्श, रक्तार्श क्यों न हो अति शीघ्र ठीक होजाता है, परन्तु ध्यान रहे पथ्यापथ्य का १ वर्ष तक पालन करना चाहिये। विशेष रूप से इस योग के साथ मूंग की दाल (अन्य दाल नहीं) भयङ्कर विष उत्पादक है यहां तक कि इसके खाने पर मृत्यु तक देखी गई है अतः पूर्ण सावधानी रखें। इस अवस्था में यह योग अत्यन्त आशुकारी रोग शामक है।

(३) श्री वैद्यराज सीताराम जी अजमेरा ने कई अनुभवी वैद्यों के अनुभवों पर सिद्ध किया कि गेंदे की पत्ती का स्वरस १ तोला सायं प्रातः लगातार सेवन करते रहने पर २१ दिन में ही सम्पूर्ण भगंदर अर्श रक्तार्श आदि ठीक होते देखे गए हैं।

(४) कृष्णसर्पकंचुकि योग—यह योग भी वैद्यराज सीताराम जी अजमेरा द्वारा परीक्षित महत्वशाली रहा जिसके अन्तर्गत आपने बताया कि प्रथम कृष्ण सर्प कंचुकि को बारीक कतर लें एवं उसे शतधौत घृत के साथ मिलाकर लगातार

रगड़ें जब तक दूधिया मलहम न बन जाये। इस मलहम का प्रयोग प्रतिदिन मलहम के रूप में करें। यह प्रयोग रक्तार्श में स्रावित होने वाले रक्त को तो नष्ट करता ही है साथ ही अर्श के अंकुरों को समूल नष्ट करता है।

(५) श्री मथुरादास जी अधिकारी जो कि स्थानीय वैद्य हैं। आपने आपना एक सर्प कंचुकि भिन्न योग भी वैद्य समुदाय के सामने रखा जिसके अन्तर्गत आपने बताया कि काले बेंगन का डण्ठल, सर्पकंचुकि, गूगल तीनों को समान मात्रा में लेकर कूट लें एवं आंवले के समान गोलियां बनालें। रक्तार्श के रक्त प्रवाह और जलन दोनों पर ही योग धूम्रपान विधि से प्रयोग करने पर अकथनीय प्रभावशाली है।

वैद्यों की चर्चा के अन्तर्गत—

मैंने निम्न तीन प्रयोगों का वर्णन किया—

६—वानरी बिष्ठा प्रयोग–यह एक अत्यन्त ही सुगम प्रयोग है जिसको स्थान स्थान गोपनीय रूप में व्यवहार में लाते हैं। इस योग को यहां के स्थानीय प्रसिद्ध व्यापारी जन-साधारण के लिए कई वर्ष से प्रयोग कर रहे हैं हम लोगों के लिए विचारणीय है। इस योग के अन्तर्गत जङ्गलों में रहने वाले वानर की बिष्ठा मात्र व्यवहार में लाई जाती है। इस बिष्ठा से अर्श स्थान पर धूम्र विधि से धूम्र पहुंचायें एवं सोते समय इसको लेप के रूप में बांध लें, इस प्रकार कुछ रोज प्रयोग करने पर जलन, कण्डू, रक्तस्राव आदि सब प्रकार की शिकायतों का प्रतिकार हो जाता है। हमारे यहां के एक अन्य व्यापारी जो रतन निवास लॉज के मालिक हैं यह प्रयोग कई वर्षों से करते आ रहे हैं। इन्होंने इसको जांच के लिए कई रिसर्चशालाओं में भेजा एवं इस चमत्कार का कारण पूछा परन्तु निरुत्तर रहे। अतः वैद्य समाज के लिए यह एक अमूल्य निधि आयुर्वेद की महत्ता को बताने वाली है।

७—वानरी विष्ठा के प्रयोग के साथ साथ मैंने यह भी बताया कि यद्यपि यह योग अत्यन्त प्रभावशाली है परन्तु बाह्य प्रयोग मात्र पर ही वैद्यों को विश्वास न करके प्रधानतया अभ्यान्तर प्रयोग को महत्व देना चाहिए। इस प्रकार प्रयोगों में अजवायन (खुरासानी) मात्र का चूर्ण ३ माशा से ६ माशा प्रातः सायं सेवन करने पर आमाशय सम्बन्धी विकार दूर होकर कुछ दिनों में कैसा भी बवासीर हो नष्ट हो जाता है। कई बार तो बाह्य प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

८—वैद्यराज श्री गोवर्धन जी शर्मा छांगाणी द्वारा अनुभूत प्रयोग अन्तर्धूम विधि से रीठे की भस्म भी १ रत्ती की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने पर बवासीर का रक्त बहना रुक जाता है। मैंने सफल पाया है, अतः आवश्यकता पड़ने पर इसका प्रयोग कर सकते हैं।

९—महानिम्ब–निम्ब आदि के प्रयोग भी वैद्य महानुभावों की सम्मति से श्रेष्ठ समझे जाते हैं। इस वार्ता के अन्तर्गत श्री तारादेवी नलिनी द्वारा परीक्षित केवल शर्करा के साथ निबोली (निम्ब बीजगिरी) का प्रयोग सफल माना गया। उन्होंने स्वयं अपने रोगियों पर इसे बढ़ाते हुए निबोली की संख्या ३ माशा प्रति बार देते हुए सफलता प्राप्त की।
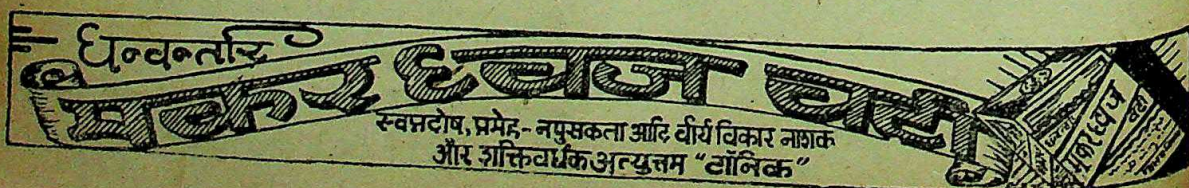
पुराणों में आयुर्वेद-[३]

मत्स्यपुराण अध्याय २१६

—साहित्याचार्य जनार्दन शास्त्री पाण्डेय।

प्रसङ्ग—

राजा को अपनी सुरक्षा के लिये सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण किस प्रकार करना चाहिए यह बताने के अनन्तर भगवान् मत्स्य ने मनु को बताया कि दुर्ग के अन्दर विविध प्रकार के अन्न, आयुध, आदि आवश्यक उपकरणों का भंडार सुरक्षित रखना चाहिये। इसी प्रसङ्ग में निम्नोक्त औषधियों की भी गणना है जिनका राजा को सर्वदा दुर्ग में संग्रह करना चाहिये।

भगवान् मत्स्य ने कहा-अपनी एवं जनता की हित कामना से राजा अपने दुर्ग में निम्नांकित औषधियों का संग्रह एवं उनकी सुरक्षा की व्यवस्था करावे जीवक, ऋषभ, काकोल, आमलकी, आटरूषक, शालपर्णी, पृष्ठिपर्णी, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, सारिवा (श्वेत, कृष्ण दोनों), बला (तीन प्रकार की), वारा, श्वसन्ती, वृष्या, बृहती, कण्टकारी, शृङ्गी, शृङ्गाटकी, द्रोणी, वर्षाभू, दर्भरेणुका, मधुपर्णी, विदारी (दोनों), महाक्षीरा, महातपा, धन्वन, सहदेवा, कटुक, एरण्डक, विष, पर्णी, शताह्वा, मृद्वीका, फल्गु, खर्जूर यष्टि, शुक्र, अतिशुक, काश्मर्य, छत्र, अतिछत्र, वीरण, इक्षु, सभी प्रकार के इक्षुविकार फाणित आदि, सिंही, सहदेवी, विश्वेदेवा, अश्वरोधक, मधुक, पुष्पहंसा, शतपुष्पा, मधूलिका, शतावरी, मधूक, पिप्पल, ताल, आत्मगुप्ता, कटफल, दार्वी, राजशीर्षकी, राजसर्षप, धान्याक, ऋष्यप्रोक्ता, उत्कटा कालशाक, पद्मबीज, गोवल्ली, मधुवल्ली, शीतपाकी, कुबेराक्षी, काकजिह्वा, उरुपुष्पी, शिलाजतु, गुञ्जातक, पुनर्नवा, कसेरू, कारु, काश्मीरी, बल्या, शालूक, केसर, सब प्रकार के तुषधान्य, शमी धान्य, दूध, मधु, तक्र, तैल, मज्जा, वसा, घृत, नीप, अरिष्टक, अक्षोट वाताम, सोमबाण ये वस्तुयें मधुरगण की कही गई हैं जिनका संग्रह राजा को करना चाहिये।

दाडिम, आम्रातक, तिन्तिड़ीक, अम्लवेतस, भव्य, कर्कन्धू, लकुच, करमर्द, करूषक, बीजपूर, कण्डूर, मालती, राजबन्धूक, कोलकपत्र (दोनों) आम्नातपत्र (दोनों), पारावत, नागरक, प्राचीनामलक, कपित्थ, आमलक, चुक्रफल, दन्तशठ, जम्बू, जाम्बव, नवनीत, सौवीरक, तुषोदक, सुरा, आसव, मद्य, मण्ड, तक्र, दधि ये सब वस्तुएें अम्लगण की हैं जिनका राजा संग्रह करे।

सैन्धव, औद्भिद, पाठेय, पाक्य, सामुद्र, लोमक, कुप्य, सौवर्चल, बिड, बालकेय, यव, और्व, क्षार, कालभस्म यह लवणगण कहा है जिसका राजा संग्रह करे।

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, नागर, कुबेरक, मरिच, शिग्रु, भल्लातक, सर्षप, कुष्ठ, अजमोद, किणिही, हिङ्गु, मूलक, धान्यक, कारवी, कुञ्चिका, याज्या, सुमुखा, कालमालिका, फणिज्जक, लशुन, भूस्तृण, सुरस, हरीतकी, बिभीतक, हरताल मनःशिला, अमृता, रुदन्ती, रोहिष, कुंकुम, जया, एरण्डक, काण्डीर, सल्लकी, हञ्जिका, सब प्रकार के पित्त और मूत्र, प्रायः हरेफल, छोटी इलायची, हिङ्गुपत्री इत्यादि कटुकगण की वस्तुयें हैं जिनका राजा संग्रह करे।

मुस्ता, चन्दन, ह्रीबेर, कृतमाल, दारु, हरिद्रा, नलद, उशीर, नक्तमाल, कदम्ब, दूर्वा, पटोल, कटुका दीर्घत्वक्, पत्रक, वचा, किरात, तिक्त भूतम्बी, विषा, अतिविषा, तालीसपत्र, तगर, सप्तपर्ण, विकङ्कत, काकोदुम्बरिका, दिव्या, सुरोद्भवा, षड्ग्रन्था, रोहिणी, मांसी, पर्पट, दन्ती, रसाञ्जन, भृङ्गराज, पतङ्गी, परिपेलव, दुःस्पर्शा, गुरुणी, कामा, श्यामाक गन्धनाकुली, रूपपर्णी, व्याघ्रनखी, मञ्जिष्ठा, चतुरंगुली, रम्भा, अङ्कोटास्फोता, तालास्फोता, हरेणुका,

वेत्राग्र, वेतस, तुम्बी, विषाणी, लोध्रपुष्पिणी, मालती, करकृष्णा, वृश्चिका, जीविता, पर्णिका, गुडूची, यह सब तिक्तगण कहा जाता है जिसका राजा प्रयत्नपूर्वक दुर्ग में संग्रह करे।

इन गणोक्त औषधियों के अतिरिक्त राजा कुछ विशेष वस्तुओं का विशेष रूप से संग्रह करे—जैसे हरीतकी, आमलक, बिभीतक, प्रियङ्गु, धातकी पुष्प, मोचा, अर्जुन, असन, अनन्ता, तुवरिका, स्योनाक, कटफल, भूर्जपत्र, शिलापत्र पाटलापत्र, लोमक, समङ्गा, त्रिवृतामूल, कार्पास, गैरिकाञ्जन, विद्रुम, मधूच्छिष्ट, कुम्भिका, कुमुद उत्पल, न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ किंशुक, शिंशपा, शमी, प्रियाल, पीलु कासारि, शिरीष, पद्मक, बिल्व, अग्निमन्थ, प्लक्ष, श्यामाक, बक, घन, राजादन, करीर, धान्यक, प्रियक, कङ्कोल, अशोक, बदर, कदम्ब, खदिर (दोनों) इन सबके पत्र सार, मूल, पुष्प, आदि कषायगण की वस्तुयें कही जाती हैं जिनका राजा संग्रह करे।°

इनके अतिरिक्त ऐसे कीटाणु जो शत्रु की सेना को नष्ट करने में प्रयुक्त होते हों, मार्गदूषक वात धूम (आंसू गैस आदि) का भी उचित संग्रह करे। विभिन्न प्रकार के विषों का संग्रह करे और उनके शामक पदार्थों का भी। विचित्र प्रकार के विषापह अङ्गद आदि स्वयं धारण करे और एकत्र करके रक्खे, ऐसे कलाकारों को दुर्ग में प्रश्रय दे जो मंत्र-शक्ति द्वारा राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, सर्पादि, हिंस्र जन्तुओं से प्रजा की रक्षा कर सकें। कायर, उन्मत्त प्रमत्त, क्रोधी, अपमानित, पापी और कुत्सित व्यक्तियों को दुर्ग में स्थान न दे। इस प्रकार यन्त्र आयुध, अट्टालिकायें, सब प्रकार के धान्य, औषधियां, शल्योपचार के साधन और व्यापार के साधनों का संग्रह करके सुरक्षित होकर दुर्ग में वास करे।

मनु ने पूछा—राक्षसी बाधाओं और विषजनित विकारों के निवारण के लिए किन अंगदों को धारण करना चाहिए, कृपया यह भी वर्णन कीजिये।

भगवान् मत्स्य ने कहा—बिल्वाटकी, यवक्षार, पाटला, हींग, पीपली, मोथा, सल्लकी इनका क्वाथ सर्वोत्तम प्रोक्षण है। किसी भी सविष पदार्थ को इस क्वाथ से प्रोक्षण करने पर वह निर्विष हो जाता है।

यवक्षार और सैंधानमक के पानी से वस्त्र, शय्या, आसन, कवच, आभूषण, छत्र, चँवर और घर के धोने पर तत्रत्य विष नष्ट होता है।

शेलु (श्लेष्मातक), पाढर, अतीस, सहजन, मूर्वा, पुनर्नवा, खदिर, अडूसे की जड़, कैंत, वृष-शोणित और जम्बीर, इनका क्वाथ बनाकर प्रोक्षण करने से भी सब प्रकार के विष दूर हो जाते हैं।

लाक्षा, प्रियंगु, मंजीष्ठा, एला, हरेणुका, मधुयष्टी, इन सबको समभाग बभ्रु पित्त से भावना दें, फिर गाय के सींग में भरकर सात रात्रि तक भूमि में गाड़ दें। इसके बाद निकालकर सुवर्ण के यन्त्र में भरकर हाथ में पहिनें। इस हाथ से जिस सविष वस्तु को छुएगा वह तत्काल निर्विष हो जायगी।

मैनसिल, शमीपत्र, तुम्बिका, श्वेतसर्षप, कपित्थ, कुष्ट, मंजिष्ठा इन वस्तुओं को लेकर कुत्ते के पित्त में और कपिला गौ के पित्त में भावना दें। सात रात्रि शृङ्ग में भरकर भूमि में गाड़े, इसके बाद पूर्ववत् धारण करे। इससे छुआ हुआ भी सब निर्विष हो जाता है।

हरेणु, मांसी, मंजिष्ठा, रजनी (दोनों), मधुक, मधु, विभीतक की छाल, सुरस, लाक्षा और श्व-पित्त, इन सबको गो शृङ्ग में भरकर ७ रात्रि तक भूमि में गाड़े। इसके बाद निकाल लें। इस चूर्ण से बाजे, पताका आदि का लेप करने से उस लिप्त बाजे का शब्द सुनने और उस पताका को देखने से व सूंघने से भी विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

° सूचना इसी पुराण के ११७ वें अध्याय में हिमवद्वर्णन प्रसङ्ग में भी प्रायः कुछ हेर-फेर के साथ इन्हीं औषधियों के नाम आये हैं, वृक्षों के नाम विशेष हैं। जिज्ञासु पाठक देख लें।

त्र्यूषण (सोंठ, मरिच, पीपल), पंचलवण, मंजिष्ठा, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी इलायची, त्रिवृता (निशोथ) पत्र, विडंग, इन्द्रवारुणी, मधुक, वेतस, क्षौद्र, यह सब शृङ्ग में भरकर गाड़ दें, बाद में निकाकर उष्णोदक में मिलाकर पूर्व की तरह प्रयोग करें।

सफेद शाल की राल, सरसों, एलबालुक, सुवोगा, चोरपुष्पी, देवदारु, अर्जुन के फूल, इन पदार्थों को कूटकर बनाई हुई धूप से सब प्रकार के स्थावर जंगम विष दूर होते हैं। जिस घर में यह धूप की जाती है वहां छोटे छोटे कीड़े (मच्छर, खटमल आदि) सर्प और इस प्रकार के अन्य जन्तु नहीं रह पाते।

चन्दन, क्षीरीवृक्ष और पलाश की छाल, मूर्वा, एलावालुक, सरसा, नाकुली, तण्डुलीयक, इन द्रव्यों के क्वाथ में काकमाची का रस मिलाकर उत्तम विषापह प्रोक्षण बनता है।

रोचना, पत्र, नेपाली, कुंकुम इनको मिलाकर तिलक करने वाले व्यक्ति पर किसी प्रकार के विष का असर नहीं होता।

हरिद्रा, मंजिष्ठा, किणिही, कण और निम्ब का चूर्ण करके उससे लिप्त शरीर तत्काल निर्विष होजाता है।

शिरीष का फल, पत्र, पुष्प, त्वचा और मूल लेकर गोमूत्र में घोटे। इसका लेप भी सब प्रकार के विष और रोगों का निवारक है।

और भी ऐसी विषापह औषधियां हैं जिनके नाम तुम्हें गिनाता हूँ ध्यान से सुनो—

वन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुक्रान्ता, उत्कटा, शतमूली, सिता, आनन्दा, बला, मोचा, पटोलिका, सोमपिण्डा, निशा दग्धरुहा, स्थल और जलकमलिनी, अजापर्णी, विशाली, शङ्खमूली, चाण्डाली, हस्तिमगधा, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, बर्हिशिखा, कोशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी शिवगन्धा, श्यामला, वंशनालिका, जतुका, महाश्वेता, श्वेता, मधुयष्टी, वज्रक, पारिभद्र, सिन्धुवार, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नतनागर कण्टका नाल, जाली, जाती, वटपत्री, स्वर्ण, महानीला, कुन्दुरु, हंसपादी, मण्डूकपर्णी, वाराही (दोनों), तण्डुलीय, सर्पाक्षी, लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा ये सब औषधियाँ सुख देने वाली रोग की निवारक, शरीर की वृद्धि करने वाली घाव को रोहण-रोपण करने वाली, पीड़ा को शान्त करने वाली होती हैं।

रक्तमाला, महौषधि, आमलक, वन्दाक, श्यामा, चित्रफला, काकोली, क्षीरकाकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिककाली, महानागा, शतावरी, गरुडी, वेगा, जल कुमुदिनी, स्थलोत्पालिनी, महाभूमिलता, उन्मादिनी सोमराजी, सबप्रकार के रत्न विशेष करके मरकत, आदि कीटपक्ष, सर्पादि, जीवों में उत्पन्न होने वाली मणियां, इन सब को भी धारण करना चाहिये, अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार ये सब राक्षस, विष, कृत्या, वेताल आदि की नाशक होती हैं। विशेषत: नर, नाग, गौ, खर, उष्ट्र, सर्प, तित्तिर, गोमायु, वस्त्रक, मण्डक जन्य विष और सिंह, व्याघ्र, भल्लूक, मार्जार, द्वीपी, वानर, कपिञ्जल, हस्ती, घोड़ा, महिष और मृगों से होने वाले विष इनके प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार इन पदार्थों को राजा प्रयत्नपूर्वक अपने दुर्ग में धारण करे।

दांत की स्वास्थ्य नीति

लेखक—श्री डा० कुलरंजन मुखर्जी ।

मनुष्य के दांत की मुक्ता के साथ तुलना की जाती है। किन्तु वे केवल देह की सौंदर्य वृद्धि करते हैं, यही नहीं देह के लिये उनकी उपयोगिता असीम है। दांत का प्रथम प्रयोजन यही है कि वे खाद्य को पीस-कर परिपाक करने के उपयुक्त बनाते हैं। वाक्यों का प्रकाश और शब्द गठन में भी उनकी सहायता का विशेष रूप से प्रयोजन है। जब दांत और मसूड़ा पीड़ित होते हैं तब देह के भीतर हमेशा विभिन्न विष और जीवाणु प्रवेश करते हैं; इसलिए दांत का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहने से देह का स्वास्थ्य कभी भी अच्छा नहीं रहता।

दांत का स्वास्थ्य अच्छा रखने का प्रधान उपाय है दांत को साफ रखना। इसलिए विभिन्न मंजन व्यव-हार किये जाते हैं। किन्तु दन्त-मंजन व्यवहार से केवल मुंह साफ होता है यही नहीं, उनके द्वारा दंत और मसूड़ों की क्षति भी होती है। कई दंत मंजन के भीतर ऐसे पदार्थ रहते हैं जो दांत के एनामेल को उठा देते हैं। इसके अतिरिक्त बार-बार उत्तेजना की प्रतिक्रिया में दंत मंजन के व्यवहार से मसूड़ा दुर्बल हो जाता है। किन्तु सब प्रकार के दंत मंजन के बदले हमेशा बालुकण पूर्ण साफ ताजा कीचड़ मिट्टी निःसंकोच व्यव-हार की जा सकती है। मिट्टी द्वारा नियमित रूप से दंत मंजन करने से और साथ-साथ कूची (ब्रुस) व्यवहार करने से दंतशूल इत्यादि दांत की कोई बीमारी रहना ही कठिन होती है क्योंकि जिस दूषित अवस्था के ऊपर विभिन्न रोग प्रकाशित होते हैं बालुकण उसे दांत से झाड़कर बाहर निकाल देते हैं। इसके अतिरिक्त वह दांत पर कोई रासायनिक प्रभाव विस्तार नहीं करता।

मिट्टी द्वारा भी ब्रुश व्यवहार किया जा सकता है। साधारणतः ब्रुश द्वारा आड़ी तरह से दांत के ऊपर इस बाजू से उस बाजू तक मला जाता है। किन्तु दांत ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की तरफ मलना उचित है। इस समय ब्रुश को जोर से दांत के ऊपर दबाकर वृत्ताकार गति से उसको संचालन करना कर्त्तव्य है। इस तरह दिन में कम से कम दो बार ब्रुश व्यव-हार करना उचित है। एक बार सबेरे नींद से उठने के बाद और दूसरी बार रात्रि को सोने के पहले। किन्तु ब्रुश को बीच बीच में साबुन से धोना उचित है क्योंकि गंदा ब्रुश और मेहतर की झाड़ू में बहुत कम अन्तर है।

दांत का स्वास्थ्य कायम रखने के लिए दांतों को साफ रखना जैसा प्रयोजन है उसी तरह दातों का व्यायाम ग्रहण करना भी कर्त्तव्य है। बीच बीच में ठोस खाद्य चबाकर खाना ही दांत का स्वाभाविक व्यायाम है। हमारे तन्त्रशास्त्र ने दांतों का एक विशेष व्यायाम ग्रहण करने का उपदेश दिया है। यह अत्यन्त सहज किन्तु विशेष तरह से लाभदायक है। मलमूत्र त्याग करने के समय जोर से दांत के ऊपर दांत दबाकर रखने से ही इस व्यायाम का ग्रहण करना हो जाता है। इससे दांत और मसूड़े मजबूत होते हैं और दांतों के विभिन्न रोगों का निवारण होता है।

इसके अतिरिक्त दांतों के लिए कुछ निर्दिष्ट व्यायाम ग्रहण करना आवश्यक है। सबसे पहले एक माह साफ तौलिया मोड़कर ऊपर और नीचे के दांतों के द्वारा उसे दबाकर जितने जोर से दबाने से तकलीफ नहीं हो उतने जोर से तौलिया को सामने की तरफ दबाना कर्त्तव्य है। यही दांत का प्रथम व्यायाम है। जब दांत इस तरह के व्यायाम से अभ्यस्त हो जाते हैं तब क्रमशः विभिन्न तरफ से तौलिया को दबाना पड़ता है। तब ऊपर की तरफ, नीचे की तरफ और दाहिनी तरफ और बांयी तरफ दबाया जा सकता है। व्यायाम करने के साथ साथ दांत क्रमशः सबल हो उठते हैं। तब क्रमशः अधिक जोर से और बीच बीच में झटका देकर दबाना पड़ता है।

...न्त में कुछ दिन व्यायाम चालू रखने के बाद दांत इस तरह सबल हो उठते हैं कि एक आदमी तौलिये को या किसी में बांधकर अपने देह का पूरा वजन और समय पर उससे भी बहुत अधिक वजन दांत के ऊपर ...कर लटक सकता है। किंतु इन व्यायामों की तीव्रता ...ा ही अत्यन्त धीरे-धीरे वृद्धि करना आवश्यक है और इस तरह ग्रहण करना चाहिए कि जिसमें दांत को किसी प्रकार की चोट न लगे।

दांतों का स्वास्थ्य अच्छा रखने का अन्यतम प्रधान उपाय है गरम ठण्डा कुल्ली ग्रहण। प्रथम एक से दो मिनट तक गरम पानी से कुल्ली करके उसके तुरन्त बाद ही एक से दो मिनट ठंडे पानी से कुल्ली करना आवश्यक है और एक साथ इस तरह तीन बार करना कर्त्तव्य है। इससे मसूड़े सबल होते हैं, दांत मजबूत होते हैं, मसूड़े के ... आरोग्य लाभ करते हैं, पीप बाहर निकल जाता है और दांत का दर्द अच्छा होजाता है। दांत में कभी ... या मसूड़ें में जलन पैदा होते ही गरम ठण्डा कुल्ली करना उचित है। कई अवस्थाओं में इस तरह गरम ...ा लेकर ही खाद्य ग्रहण किया जासकता है यह ...ा गरम से आरम्भ करके ठंडे में शेष करना कर्त्तव्य है।

इसी के साथ रोगी के पथ्य के प्रति ध्यान रखना भी आवश्यक है। एक बार कुछ गेनी पिग (खरगोश) और ...रों को धातव लवण शून्य खाद्य खिलाकर रखे गये। ... दिन बाद देखा गया कि उनके दांतों की जड़ें नरम हो गईं और किन्हीं किन्हीं जन्तुओं के दांतों के भीतर ... हो गए और किसी किसी के दांत की जड़ में पीप ... गया। रोगी के लिए विटामिन सी और डी विशेष ... से आवश्यक हैं क्योंकि वे दांतों की वृद्धि में सहायता ...ते हैं और जब खाद्य में ये दो विटामिन नहीं रहते हैं ... दांतों का क्षय होता है, दांत की जड़ हिल जाती हैं। ... दांत में यथेष्ट रूप से कैलसियम और फासफोरस ... नहीं हो सकना।

इसलिये दन्त रोग में नींबू, पक्के केले, आंवला, ...ा, विभिन्न तरह के शाक सब्जी, अंकुरित मूंग, ..., दही, पिष्ट तिल, सोयाबिन ग्रहण करना कर्तव्य है।

इस रोग में चीनी और अन्यान्य परिशोधित खाद्य सम्पूर्ण रूप से त्याग करना कर्तव्य है। चीनी प्रस्तुत करने के समय ईख के रस में जितने विटामिन और धातव लवण रहते हैं वे सब बाहर होजाते हैं। इसलिए अधिक चीनी खाने से दांत और हड्डी के विभिन्न रोग उपस्थित होते हैं।

उपयोगी टमाटर

लेखक—कविराज लालबहादुर सिंह चौहन, दिल्ली।

यों तो सभी सब्जियां एक दूसरे से गुणों में बढ़-चढ़कर हैं, और भिन्न-भिन्न उपयोग व अपना अपना विशिष्ट प्रभाव रखती हैं। परन्तु टमाटर का उनमें अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। वैसे इस ऋतु में आलू, गोभी, मूली, गाजर और बैंगन आदि अनेक सब्जियों की बहार है, लोग अपनी-अपनी रुचि से अपनी पसन्द की सब्जी का प्रयोग करते हैं। तो भी टमाटर एक ऐसी सब्जी है जो सर्व प्रिय है। क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या धनी, क्या निर्धन सभी इसे खाना पसंद करते हैं। इसकी सर्व प्रियता का कारण यह है कि यह सर्व सुलभ और अल्प मूल्य वाली सब्जी है जो स्वास्थ्य प्रदायक एवं स्वास्थ्य संरक्षक गुणों में औरों से बढ़-चढ़कर भी है। आम जनता में इसका सर्वाधिक प्रयोग इसके गुण वैशिष्ट्य के कारण ही होता है।

आज से १०० वर्ष पूर्व हमारे देश में टमाटर नहीं होता था। इसी कारण भारतीय चिकित्सा-विज्ञान आयुर्वेद में इसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में अप्राप्य है। सन् १६९८ ई० में सर वाल्टर रैले को अमेरिका के एक 'रेलो' नामक द्वीप में टमाटर का पौधा प्राप्त हुआ था। इसका यह बड़ा मनोरंजक इतिहास है। अमेरिका वाले उस काल में टमाटर को विषैला पदार्थ समझते थे और इस कारण वे इसे खाने-पीने में न बरतते थे, बल्कि इसके पौधे को बड़ी घृणा और भय की दृष्टि से देखते थे। कुछ वर्ष पश्चात् यूरोप वालों ने इसे अपनाया और वे लोग इसे योरुप ले गए। योरुप वालों ने टमाटरों को उद्यानों की शोभा वर्द्धन हेतु अपने यहां उगाया और इसे वे लोग 'लव एपिल (Love apple) के नाम से पुकारने लगे। इस भांति बहुत वर्षों तक यही क्रम चलता रहा और योरुप निवासी टमाटर के पौधों को उगाकर अपने बागों की शोभा में अभिवृद्धि करते रहे। गमलों में भी इसे सजाते रहे, परन्तु इसका अन्य उपयोग करने से वंचित रहे।

मुद्दत तक योरुप की जनता में यह अपवाद फैला रहा कि टमाटर का प्रयोग उपदंश (Syphilis) और कैंसर आदि अनेक भयंकर व्याधियां (Diseases) उत्पन्न करता है, परन्तु धीरे-धीरे वहां के कतिपय लोगों ने उक्त विषय पर अन्वेषण किया और इस नतीजे पर पहुंचे कि टमाटर कोई हानि नहीं करता, बल्कि मानव-शरीर के लिये लाभप्रद है और तब से योरुप, अमेरिका और हिन्दुस्तान में टमाटर का प्रयोग काफी होने लगा है।

किसान लोग टमाटर को विलायती बैंगन के नाम से पुकारते हैं। ये है भी बैंगन परिवार की सब्जी

परन्तु नस्ल बदलते-बदलते कुछ रंग-रूप में भिन्न हो गई है। किसान खेत की क्यारियों में टमाटर, बैंगन, गाजर और मूली आदि सब्जियां अपने घर खर्च के लिए जरूर उगा लेते हैं। सुबह लाल रंग के पके टमाटर को काटकर ये लोग नमक के साथ खाते हैं। यही कारण है कि इनमें शारीरिक बल का नित्य प्रति पर्याप्त प्रादुर्भाव होता रहता है और खेतों में दिन भर कठिन परिश्रम करने पर भी इनका अंग श्रम की बहुलता से विचलित नहीं होता। टमाटर के प्रयोग से ग्रामीण बच्चों में वह रोग-क्षमता उत्पन्न हो जाती है कि बिना ऊनी वस्त्र धारण किए भी ये कड़ी ठंड में निमोनियां के प्रकोप से सुरक्षित रह सकते हैं और न उनके ऊपर ग्रीष्म की कठिन धूप ही दुष्प्रभाव कर पाती है।

टमाटर बालू वाली मिट्टी में अच्छा उगता है और उस मिट्टी के मुलायम होने के कारण खूब फलता-फूलता भी है।

टमाटर की दो जातियां होती हैं—एक बड़ी जाति और दूसरी छोटी जाति। बड़ी जाति वाला टमाटर सुडौल तथा आकार में बड़ा होता है परन्तु छोटी जाति का टमाटर गोल एवं नाप में छोटा होता है। टमाटर का कच्चा फल खट्टापन लिए कड़वा होता है। पहले यह हरे रंग का होता है परन्तु पककर लाल रंग ग्रहण कर लेता है। सब्जी बनाने के काम में कच्चे व पक्के दोनों ही तरह के टमाटर लिए जाते हैं, परन्तु कच्चे की अपेक्षा पक्के टमाटर की सब्जी अधिक सुस्वादु होती है।

टमाटर में एक अद्भुत् गुण है कि इसके बिटामिन्स अन्य सब्जियों की भांति आग पर पकाए जाने से सहसा नष्ट नहीं होते। एक और भी विशेषता देखी गई है कि टमाटर का मुरब्बा और अचार प्रयत्न से रखने पर महीनों तक विटामिनों से युक्त पूर्ववत् रह सकता है। होटलों, रैस्टोरांओं और घरों में प्रयुक्त होने वाली टमाटर की मजेदार खट्टी-मीठी चटनी जिसे 'सौस' कहते हैं, भी पोषक तत्वों और विटामिनों से परिपूर्ण होती है। मट्ठी, छोले, पकौड़े और समोसा आदि के साथ उक्त चटनी को लेने का अधिक प्रचलन है। यह रुचिकारक और क्षुधावर्द्धक है।

टमाटर में ए, बी, सी, तीन विटामिन्स पाये जाते हैं। मनुष्य शरीर निर्माण, शिशुओं की शारीरिक वृद्धि और जीर्णोद्धार के लिये विटामिन 'ए' की आवश्यकता होती है। उधर विटामिन 'ए' चमड़ी (Skin) और श्लैष्मिक कला को स्वस्थ, स्वच्छ और आर्द्र रखता है। साथ ही बलशाली भी बनाता है जिससे रोगाणु मनुष्य-शरीर में प्रवेश न पा सकें। 'ए' विटामिन की कमी को टमाटर का सेवन पूर्ण करता है। 'बी' विटामिन हृदय, यकृत, वृक्क एवं पाचन संस्थान को दृढ़ रखता है। और विटामिन 'सी' रक्त की शुद्धि तथा आंतों को स्वस्थ रखता है, इसके अतिरिक्त अस्थियों और दांतों के निर्माण में सहायता करता है। इस प्रकार तीनों विटामिन्स की प्रचुर मात्रा टमाटर में विद्यमान रहने के कारण मनुष्य के लिए बहुत ही लाभकारी है। स्वस्थ अवस्था में टमाटर खाने से रोगों के आक्रमण का कुप्रभाव प्रायः मनुष्य को नहीं सता पाता।

टमाटर का प्रयोग रोगों में भी करते हैं। ज्वर में टमाटर की तरी बहुत फायदा देती है। बनाने की विधि इस प्रकार है टमाटर लेकर इन्हें उबाल लिया जाता है और फिर कपड़छन करके तरी के रूप में 'द्रव पदार्थ' बना लेते हैं। उस द्रव पदार्थ में लहसुन जीरा आदि का छौंक दे देते हैं और उचित मात्रा में नमक मिलाकर इसे ज्वर के रोगी को प्रयोग कराते हैं। यह भोजन की अरुचि को नष्ट करता है और भूख की वृद्धि कर शरीर संताप को शान्त करता है, साथ ही शरीर में पोषण क्रिया भी करता है।

टमाटर का प्रयोग उदर रोग आंत्रपुच्छ शोथ (Appendicitis) और अतिसार आदि बीमारियों में लाभ करता है। मनुष्य जीवन की रक्षा के लिए

—शेषांश पृष्ठ ८१५ पर।

स्वास्थ्योपयोगी शाक—

गोभी

लेखक—श्री० जयकुमार जैन "जलज"।

गोभी की तरकारी भारतवर्ष में सर्वत्र खाई जाती है। यह शीत काल में ज्यादा उत्पन्न होती है। इसके ३ भेद होते हैं। १ फूलगोभी २ गांठगोभी ३ पातगोभी।

फूलगोभी—इसका पेड़ एक या डेढ़ बेतिया का होता है। इसके चारों ओर चौड़े मोटे और खड़े २ पत्ते होते हैं। पत्तों के बीच में बहुत छोटे २ मुंह बधे फूलों का जुथा हुआ समूह होता है। खिले फूलों की गोभी खराब समझी जाती है। इसके फूल और पत्ते का शाक अलग २ और सम्मिलित भी बनाया जाता है।

आयुर्वेद मतानुसार यह वनस्पति तीखी, कड़वी, शीतल, व्रण रोपण तथा सर्व प्रकार का विष नाशक है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह सिद्धकर दिया है कि फूल गोभी में पोषक तत्व २'२ भाग चिकनाई ४ कार्बोज ४'६ भाग खानिज पदार्थ '८ भाग और जल ६०'७ भाग होता है। इसमें विटामिन ए' थोड़ी मात्रा में और विटामिन बी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

गांठ गोभी—इसका पेड़ फूल गोभी की भांति होता है, अन्तर इतना है कि उसमें पत्ते के बीच फूल होता है इसमें फूल नहीं होता है। पेड़ के नीचे से ४-५ अंगुल पर गूदेदार गांठ होती है। इसकी भी तरकारी बनती है।

आयुर्वेद मतानुसार यह मधुर कड़वी शीतल भेदक ग्राहक रुचिकारक और भारी तथा पित्त वात कफ नाशक है। इसमें विटामिन थोड़ी मात्रा में होते हैं। प्रोटीन '४ भाग, चिकनाई .६ भाग और कार्बो-हाइड्रेट .५३ भाग होता है।

पात गोभी—इसका पेड़ भी गोभी की भांति होता है। इसमें फूल नहीं होता है। केवल पत्ते ही पत्ते होते है। पत्तों का समूह एक पर एक बांधकर गोल रूप धारण कर लेता है। यह भी ज्यादातर शीत काल में उत्पन्न होती है।

चैत्र मास में इसके पत्ते कड़वे हो जाते हैं और मुँह खुल जाता है। इसके बीच में एक डंठल निकलता है जिसमें सरसों की भांति फूल और पत्तियां निकलती हैं। फूलों के भीतर से राई के सदृश दाने (कण) निकलते हैं।

यह मधुर वृष्य पाक तीखी कड़वी ग्राहक शीतल पाचक वातकारक होती है। कफ पित्तज्वर, प्रमेह, कुष्ठ खांसी रक्तदोष तथा पित्त नाशक है। इसमें विटामिन कुछ मात्रा में पाये जाते है। जल अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है।

गोभी के चमत्कार—

नेत्र—आजकल देखा जाता है कि प्रायः सभी आदमियों की आंखों में दर्द होता है ऐसे समय में गोभी का रस डालना चाहिए।

प्रमेह—जब किसी मनुष्य को प्रमेह होजावे उस समय उसके लिए गोभी के रस में शहद और हल्दी चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

चर्म रोग—जब मनुष्य को रक्त विकार होता है उस समय कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं जैसे खाज (खुजली) फोड़ा फुन्सी दाद आदि रोग होजाते हैं। उस समय रक्त साफ स्वच्छ करने के लिए गोभी के रस में चीनी मिलाकर पिलाना चाहिए।

ज्वर—जब मनुष्य को ज्वर आजाता हो उस समय रोगी को गोभी की जड़ का क्वाथ पिलाना चाहिए।

बवासीर—मनुष्य को जल्दी टट्टी न उतरती होया उतारने में काफी जोर लगाना पड़े उस समय में गोभी के पत्तों का शाक खिलाना चाहिए।

आमाशय की सूजन पर—आजकल प्रायः आमाशय में सूजन जल्दी आती है उसको दूर करने के लिए गोभी के पत्तों को कूट कर चावलों के साथ औटा छानकर पिलाना चाहिए।

मूत्रकृच्छ—मूत्रकृच्छ्र में इसके पत्तों के क्वाथ को छान कर मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए।

पारा विष—यदि किसी ने किसी कारण वश पारा खा लिया हो तो उस समय गोभी की जड़ का रस पिलाना चाहिए तथा शरीर में मलना चाहिए और साग बनाकर खिलाना चाहिए।

सर्प विष—आजकल देखा जाता है कि अनेक मनुष्यों की मृत्यु सर्प के काटने से होती है इस लिए जिस किसी महाशय को सर्प ने काटा हो उसके लिए गोभी की जड़ पीस कर पिलाने से सर्पविष नष्ट होजाता है।

कुत्ताविष-प्रायः देखने में आया है कि कई आदमी कुत्ते के काटने से पागल होजाते हैं इस लिये जिस मनुष्य को कुत्ता ने काटा हो उसके लिए गोभी के क्वाथ में घी मिलाकर पिलाना चाहिए। ●

:: पृष्ठ ८१३ का शेषांश ::

जिन-जिन तत्वों की आवश्यकता है, वे सब टमाटर में उपस्थित रहते हैं। इसमें लोहा और चूना Calcium काफी मात्रा में विद्यमान हैं, इसलिए यह शक्तिवर्द्धन एवं हड्डियों को दृढ़ करने की क्षमता रखता है। टमाटर में प्रोटीन, पोटाशियम, फास्फोरस गन्धक और क्लोरिन आदि द्रव्य भी अन्य तरकारियों की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं।

जिन लोगों की दृष्टि कमजोर हो, आंखों के सामने अंधेरा छाजाता हो, उन्हें टमाटर का नियमित प्रयोग लाभप्रद है। पाण्डु रोगी को यदि लाल टमाटर का रस दें तो उसकी भूख बढ़ जाती है और धीरे-धीरे उसका पाण्डु रोग विनष्ट होजाता है। टमाटर की सब्जी दस्त साफ लाती है और कब्ज नहीं होने देती। बताते हैं कि टमाटर के नियमित सेवन से स्थूल शरीर वाले व्यक्तियों की स्थूलता नष्ट होजाती है। गठिया और एक्जीमा के रोगियों के लिए भी टमाटर का प्रयोग लाभप्रद है।

राजयक्ष्मा चिकित्सा – ले० राजवैद्य डा० प्रभाकर चट्टोपाध्याय आयु० बृहस्पति। प्रकाशक–आयुर्वेद मार्त्तण्ड श्री अमलकुमार चट्टोपाध्याय इन्सस्टीट्यू-शन आफ हिन्दू कैमिस्ट्री एण्ड आयुर्वेद रिसर्च ६१।१ मूर एवेन्यू (रिजेन्ट पार्क) कलकत्ता ४० साइज २०×३०=१६ पेजी पृष्ठ संख्या ५२३ मूल्य १०)।

यक्ष्मा जैसे प्राण घातक रोग के विषय में आज भारत जैसा राष्ट्र ही नहीं वरन् सारा जगत ही चिन्तित है तथापि हमारी दरिद्रावस्था के कारण हमें ही इसका वरदान प्राप्त है ऐसा कहना प्रयुक्त नहीं है। प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति इसके शिकार होते हैं वे सभी प्रारम्भ में कुछ न कुछ चिकित्सा करते ही हैं और चिकित्सकों के पास त्राणार्थ जाते हैं। परन्तु वैद्यों को भी यह रोग एक समस्या बना हुआ है। आधुनिक इसको जीवाणुजन्य व्याधि मानते हैं परन्तु आयुर्वेद जीवाणुवाद को न मानकर मानव देह क्षेत्र को ही प्रधान मानता है और उसी सिद्धान्त पर आयुर्वेद में इसकी चिकित्सा का विधान हैं। लेखक ने राज्यक्ष्मा पर इस ग्रन्थ की रचना करके इससे सम्बन्धित सभी विषयों पर समुचित महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। श्री चट्टोपाध्याय महोदय द्वारा लिखी हुई मूल बङ्गला पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। हमारे आयुर्वेद जगत के कई माने हुये विद्वानों के आग्रह पर लेखक ने हिन्दी जगत के लिये यह रूपान्तर स्वयं प्रस्तुत किया है। इससे इसमें मूल-पुस्तक स्वरूप ही भाव व्यञ्जना व्यक्त हुई है। यक्ष्मा पर लिखी हुई हिन्दी में यह उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है।

लेखक ने प्राक्कथन के रूप में ४४ पृष्ठों में इतिहास पर अपने मौलिक विचारों का दिग्दर्शन कराया है जो विषय से संगति करता है। सम्पूर्ण पुस्तक १८ अध्यायों में विभक्त है इस दृष्टि से गीता के १८ अध्यायों का भान होता है। इन अध्यायों ने विषय को अत्यन्त सरलतम बना दिया है।

प्रथम अध्याय में यक्ष्मा प्रकार, प्रथम अवस्था भेद, स्वरूपों पर विशद वर्णन है। इसी क्रमानुसार द्वितीय अध्याय में यक्ष्मा की द्वितीयावस्था के लक्षण अलग अलग दिये हैं। तीसरे में तृतीयावस्था बताकर चौथे में नाड़ी विज्ञान दिया है। यक्ष्मा की किस अवस्था में नाड़ी की क्या गति होती है, दर्शाया है। यह चिकित्सक के अनुभव का सार है। पांचवें अध्याय में सभी ग्रन्थों का एक ही स्थान पर शास्त्रीय निदान है। इस ग्रन्थ में चिकित्सा ही प्रधान है अतः छठे व सातवें में लेखक द्वारा स्वानुभव के आधार पर यक्ष्मा की प्रत्येक दशा में प्रयोगों की भिन्न-भिन्न कल्पनायें दी गई हैं। यही प्रकरण उनके अमोघ चिकित्सा ज्ञान का परिचायक है। ग्रन्थों में यक्ष्मा पर करीब पांच सहस्र प्रयोग हैं पर इस पुस्तक में वे ही प्रयोग लिए हैं जिनको उन्होंने अपनी चिकित्सा में प्रयोग कर अनुभूत किया है। यक्ष्मा की प्रत्येक दशा तथा उपसर्गों की चिकित्सा बड़ी खूबी से दर्शाई है। आगे एकादश अध्याय में पथ्यापथ्य का सुन्दर विवेचन, द्वादश में यक्ष्मा के फैलने के साधनों का दिग्दर्शन, जिसे जान कर इस रोग के प्रसार को रोका जा सकता है, दिया है। अन्त में यक्ष्मा रोग निवारण के उपाय, यक्ष्मा रोगी की परिचर्या, यक्ष्मा रोग का पुनराक्रमण और उसका प्रतीकार, यक्ष्मा रोगी के

लिये भिन्न-भिन्न स्वास्थप्रद जलवायु स्थान, यक्ष्मा रोग चिकित्सक का कर्त्तव्य और दायित्व बताकर राजयक्ष्मा से आरोग्य लाभ करने के बाद रोगी को किस प्रकार रहना चाहिये बताया है।

पुस्तक सर्वांगीण सुन्दर है इसकी वर्णन शैली अत्यन्त सरल है। सारे ग्रन्थावलोकन से लेखक की प्रतिभा तथा चिकित्सा क्षेत्र में उनकी महत्ता प्रकट होती है। विषय को स्पष्ट करने के लिए स्थान विशेष पर पिछले आवश्यक वर्णन दे-दे कर पाठक को अन्यत्र भटकने से बचाता है जिसे पुनरावृत्ति दोष नहीं कहा जा सकता। इसे चिकित्सक समाज के लिए लेखक की विशेष देन ही समझनी चाहिये। पुस्तक पाठ्यक्रम में निर्धारित करने एवं चिकित्सा आतुरालयों में चिकित्सकों को मार्ग दर्शन के योग्य है।

एक श्रेष्ठ रचना दृष्टि से इसकी छपाई में कागज की श्रेष्ठता पर उपयुक्त ध्यान नहीं दिया गया है। तथा सूची प्रकाशन में विषयानुरूप पृष्ठ संख्या देनी चाहिये थी। अध्याय क्रम ठीक से नहीं जंचता-अध्याय देकर विषयवार चयन होना चाहिये। सभी विवरण रनिंग शैली में देने से विषय पर दृष्टि देर से जाती है। आशा है आगे के संस्करण में प्रकाशक महोदय अवश्य इस कमी को दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

प्रकृति चिकित्सा—

लेखक व प्रकाशक–डा० सरदार जसवन्तसिंह प्रकृति चिकित्सा-मन्दिर, ५२ गुइनरोड, लखनऊ पृष्ठ संख्या ३०६ मूल्य रु० ५-६५।

देश में अन्य चिकित्सा पद्धतियों के साथ-साथ प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का भी शनैः शनैः प्रचार हो रहा है और इसे महात्मा गांधी की विशेष प्रेरणा मिली है। यह पद्धति भारत के लिये यद्यपि नई नहीं है और वह आयुर्वेद के अन्तर्गत है पर विदेशी इसे विशेष महत्व देते हैं। इस चिकित्सा पद्धति में प्रकृति के मूल साधन, वायु, जल, मिट्टी एवं सूर्य ताप की शरीर पर सीधी प्रति क्रियाओं द्वारा लाभ पहुँचाते हैं और भोजन वस्त्र निवास स्थान की विशेष व्यवस्था कर अनुकूल परिस्थिति में रोगों को दूर किया जाता है।

इस विषय में हिन्दी में अबतक जो ग्रन्थ प्रकाशित हुये हैं वे या तो इतने प्रारम्भिक हैं कि उनसे पर्याप्त प्रेरणा नहीं मिलती या कुछ विदेशी ग्रन्थों के अनुवाद हैं जिनके योरोपीय वातावरण का ही उदाहरण या रहन सहन का निरूपण है। प्रकृति चिकित्सा में लेखक ने इस विषय को प्रारम्भ से लेकर शनैः २ उन जटिल रोगों की चिकित्सा की ओर वर्णन किया है जिसको अध्ययन कर एक मतिमान जिज्ञासु के लिये मार्ग प्रशस्त होता है। भारतीय जलवायु, रहन-सहन, फल, भोजन खाद्य आदि का पूर्ण निरूपण किया है। चित्रों का सुन्दर संकलन है। पुस्तक के उत्तरार्ध के १३० पृष्ठों में अकारान्त क्रमानुसार रोग की स्वयं उपचार तालिका दी गई है, जिसमें उस रोग से सम्बन्धित सभी चिकित्सा आदेश और उपायों का वर्णन है। अन्त में केवल अंगरेजी व हिन्दी नामानुसार रोग सूची है। जिससे आप ग्रन्थ में से पृष्ठानुसार इच्छित रोग का विवरण ज्ञात कर सकें। पुस्तक प्रत्येक दृष्टि से सुन्दर और उपादेय है।

महाशक्ति समाचार (मासिक पत्र) —

प्रकाशक-हकीम यमुनाप्रसाद गुप्त आनन्द प्रेस भागलपुर। वार्षिक शुल्क २) एक प्रति =)।

यह स्वास्थ्य सम्बन्धी मासिक पत्र हमारे पास समालोचनार्थ वर्ष २ अंक ३-४ नवम्बर दिसम्बर का सम्मिलित ही केवल १५ पेजी आया है। २-१ लेख उपयोगी हैं।

आयुर्वेदीय पारिवारिक चिकित्सा —

लेखक–विद्यानारायण शास्त्री, प्रकाशक-कविराज नवीनचन्दसिंह, अनन्त आयुर्वेद भवन पथरगामा (सन्थाल परगना) पृष्ठ संख्या १८७, मूल्य २॥)

यह पुस्तक लेखक ने इस दृष्टि से लिखी है जिसके सहारे एक साधारण व्यक्ति भी लक्षणानुसार आयुर्वेदीय औषधियों द्वारा सामान्य रोगों की

चिकित्सा कर सकें, कुल रोगों को ३६ अध्यायों में विभक्त किया है। उन रोगों की विशेष अवस्थाओं में कौन औषधि कितनी मात्रा में दी जाय, लिखा गया है। यह एक प्रकार से साधारण गाइड का काम दे सकती है जो केवल लेखक के अनुभव के आधार पर संग्रहीत है।

जटिल रोगों की सफल चिकित्सा—

लेखक व प्रकाशक—वैद्य एस. वासुदेव, आरोग्य वाटिका जम्मू (काश्मीर) साधारण पुस्तक साइज, पृष्ठ संख्या ११८ मूल्य २)

वैसे आयुर्वेदिक चिकित्सकों के छोटे-छोटे अनेक चिकित्सा प्रकाशन हुये हैं पर यह पुस्तिका अपने विशेष ढंग की है। इसमें २५ ऐसे जटिल रोगों का संक्षिप्त विवरण है जो लेखक ने स्वानुभव से लिखा गया है। एलोपैथी के छोड़े हुए कई रोगी कैसे स्वस्थ हुये? तथा वे असाध्य रोगी लेखक द्वारा कैसे ठीक हुये, बस उन्हीं उलझनपूर्ण रोगियों का वर्णन है। प्रमाण स्वरूप उन्होंने उन रोगियों का पूर्ण पता चिकित्सा अवधि, आदि बातें लिखी गई हैं जिससे कोई लेखक की केवल हवाई उड़ान या कोरी कल्पना न समझे। चिकित्सा पूर्ण आयुर्वेदिक है इसमें आए समस्त आयुर्वेदिक योगों की पीछे सारणी दी गई है। पुस्तक वैद्यों में एक आत्म विश्वास की भावना पैदा करती है। चिकित्सा ग्रन्थों के लेखकों को यह एक मार्गदर्शक है।

नीम के उपयोग—लेखक केदारनाथ पाठक रासायनिक, प्रकाशक—श्यामसुन्दर रसायनशाला गायघाट, वाराणसी। ८४ पृष्ठ मूल्य १)

भारतीय वनस्पतियों में निम्ब कितना उपयोगी है इसे भारतीय जानते हैं। इस वृक्ष के विषय में अनेक महत्वपूर्ण प्रयोग व गुणावगुण विवेचना ही इस पुस्तक का विषय है। सभी रोगों में इस वृक्ष के भिन्न-भिन्न अंगों का प्रयोग बड़ी खूबी से लिखा है। छपाई सफाई की दृष्टि से भी पुस्तक सुन्दर बन गई है। आयुर्वेदीय ग्रंथों के प्रायः सभी उद्धरण इसमें दृष्टिगोचर होते हैं।

आहार सूत्रावली—लेखक पं० केदारनाथ पाठक, प्रकाशक—श्यामसुन्दर रसायनशाला गायघाट वाराणसी, पृष्ठ संख्या ४०, मू० ५० नया पैसा।

आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार आहार सम्बन्धी सूत्र सरल हिन्दी भाषा में लिखे हुए हैं। भोजन कब कैसे, कहां, क्या लेना चाहिए, आदि का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है।

टोटका विज्ञान—यह भी श्यामसुन्दर ग्रन्थमाला का ८ वां पुष्प है। लेखक केदारनाथ पाठक, ३२ पेजी मूल्य ३७ नया पैसा। आयुर्वेद में टोटकाओं का प्राचीन महत्व है। इसमें अवैज्ञानिक टोटकाओं को छोड़कर उन्हीं उपयोगी टोटकाओं का भिन्न-भिन्न रोगों में प्रयोग दिया है जो लेखक को कार्यकर जान पड़े हैं।

ग्राम्य चिकित्सा—लेखक केदारनाथ पाठक, श्यामसुन्दरमाला का ७ वां पुष्प ६४ पृष्ठ मूल्य, ६२ नया पैसा।

इसमें उन द्रव्यों का साधारण वर्णन है जो एक देहाती किसान के घर पास पड़ोस तथा खेत में हर समय सुलभता से प्राप्त होते हैं। उनका चिकित्सा में किस रोग में क्या उपयोग है, यही लेखक ने सुन्दर संग्रह किया है, पुस्तक साधारणतः उपयोगी है।

ऋतु और स्वास्थ्य—प्रकाशक—श्यामसुन्दर माला, ले० गौरीशंकर गुप्त, ४२ पृष्ठ मूल्य ५० नया पैसा। किस ऋतु में कैसा भोजन तथा कैसे रहन सहन से स्वास्थ्य-लाभ होता है। ऋतु में दोष संचय कोपानुसार विशेष होने वाले रोगों के प्रतीकार हेतु, किन औषधि द्रव्यों का सेवन करने से रोग नहीं होने पाते तथा उनका दोषों पर कैसे क्या प्रभाव पड़ता है दर्शाया है।

प्रारम्भिक स्वास्थ्य—गौरीशंकर गुप्त लिखित, इसी माला की ११ वीं कृति, २५ पृष्ठ, मू. ३७ नया पैसा। स्वास्थ्य सम्बन्धी दैनिक नित्य कर्मों तथा शरीर के अवयवों की स्वच्छता सम्बन्धी आदेशों का संकलन है।

परीक्षित प्रयोग

अतिसारे—

बहेड़ा के फल को जलाकर	१ तोला
सैंधव नमक	३ माशा

—इन दोनों को मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करके इसकी ४ पुड़िया बनावें। इसकी प्रत्येक मात्रा ४-४ घण्टा के अन्तर से दाड़िम स्वरस, तक्र अथवा शीतल जल एवं बिल्व शर्बत से देने से अव्यर्थ फल प्राप्त होता है।

विभीतकफलं दग्धं हन्याल्लवण संयुतम्।
महान्तमप्यतीसारं चक्रपाणि रिवा सुरान्॥
(वंगसेन)

प्रवाहिकायाम्—

—अत्यन्त सूक्ष्म काली मिर्च चूर्ण १॥ माशा को कुटजारिष्ट, तक्र, शीतल जल, शतपुष्पार्क में से किसी एक के साथ कुछ समय सेवन करने से अत्यन्त पुरातन प्रवाहिका में उत्तम फलप्रद है। दिन में २ बार।

पिबतः सूक्ष्मं रजो मरिच जन्यंवा।
चिरकालानु सक्तापि नश्यत्याशु प्रवाहिका॥
—वा. चि ५ अ.।

दुष्ट व्रणों के धोने के लिए—

—आमलतास (आरग्वध), जाती (चमेली) इन दोनों के पत्तों के क्वाथ से व्रणों को धोकर इनके पत्ते ही ऊपर रखकर बांधदें। यह प्रयोग वैद्यराजों को व्यवहार में लेकर देखना चाहिए।

पत्राणि जात्यारग्वधयोस्तथा प्रक्षालने प्रयोज्यानि···।
—सु० चि० ११ अ०

नोट—इनके पत्तों का लेप दूध में (अजा या गौ के) पीसकर लगाने से सद्योव्रण, किक्किस, तथा उपदंश व्रणों पर मूल का लेप जल में पीस कर परम फल देता है। खुजली (रक्तविकृतियों) में इसके पत्तों के क्वाथ से स्नान एवं क्वथित जल के पीने से अव्यर्थ शान्ति मिलती है। यह प्रायः कोष्ठ शुद्धि-कारक तथा पैत्तिक व्याधि-हर्त्ता है।

"आरग्वध वृक्षकयोः कषायः स्नाने पानेच मतः।
(च० चि० अ० ७)।

आकिञ्चनाना मार्द्येस्य यत्रं स्तन्येन सम्पेष्य समर्पयेद् द्राक्। सद्योव्रणो रोपण माशु वाञ्छन् कल्कं च दद्या दथ किक्किसस्य। (वैद्यमनोरमा)

शम्याकानां पृथक् पृथक् मूलेन परिपिष्टेन वारिणा।
असाध्याऽपि व्रजत्यस्तं लिङ्गोत्था रुक् प्रलेपनात्॥
(सोढल)

शीत पित्ते—

—अग्निमन्थ (अरणी) के मूल का सूक्ष्म चूर्ण ३ माशा, मक्खन २ तोला मिलाकर चाटने से उत्तम लाभ होता है। यथाशक्य यह दवा दिन में दो तीन बार देनी चाहिए।

अग्निमन्थ भवं मूलं पिष्टं पीतञ्च सर्पिषा।
शीत पित्तो दुदर्द कोठान् सप्ताहादेव नाशयेत्॥
(चक्रदत्त)

प्रार्थना—इन प्रयोगों का देश, काल पथ्यापथ्यानुसार अवश्य प्रयोग करें।

—डा. शंकरलाल भेड़ा आयुर्वेदाचार्य
M. B. B. S.;, बम्बई।

रसकपूर का दर्पनाशक द्रव्य—

इन्द्रायन फल मज्जा

श्रीमान् अम्बालाल पुरुषोत्तम जी वैद्य, मांडवीनी पोलमां लाला भाई नी पोल-देरा वालो खांचो, अहमदाबाद से २५ मई १९५८ को माउन्ट आबू में भेंट हुई, उन सज्जन का कहना था कि रस कपूर को रक्त शोधन में, सड़े-गले घावों को दुरस्त करने तथा फिरङ्ग, उपदंशादि रोगों में मैं इसका पुष्कल प्रयोग करता हूँ और किसी प्रकार का कोई विकार पैदा नहीं होता।

उनका योग निम्न है—

रस कपूर	१ तोला
लौंग	१० तोला

—को तसतूंबा याने इंद्रवारुणि फल मज्जा के ३० तोला रस में खरल करें।

विधि इस प्रकार है—प्रथम रस कपूर को खरल में मर्दन कर मुलायम बनालें। दूसरी ओर लौंग का इमामदस्ते में कूटकर वस्त्रपूत चूर्ण करलें, फिर रस कपूर के साथ मिला खरल करें और इंद्रायण फलों का स्वरस देते जावें। खरल तब तक करें जब तक कि ३० तोला स्वरस समाप्त नहीं हो जाय। फिर सुखाकर कांच कूपिका (स्टापर्ड बौटल) में रख लें।

मात्रा—२½ रत्ती या २॥ रत्ती की गोलियां बनालें। गोली १ बार दिन में पानी से देवें। आवश्यकतानुसार तीसरे या चौथे दिन रोग दूर हो तब तक देते रहें। उक्त योग उनका सैंकड़ों रोगियों पर काम किया हुआ है और इस प्रकार की बनावट से रस कपूर से होने वाली तकलीफ मुंह आना आदि नहीं होती।

इसी प्रक्रिया के समर्थन में धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क (चतुर्थ भाग) के पृष्ठ ३२ पर रस कपूर वटी राजवैद्य पं० रामगोपाल जी पुरोहित, प्र. चि. कृष्णगोपाल आयुर्वेद धर्मार्थ औषधालय कालेड़ा-बोगला (अजमेर) की प्रकाशित है।

आपने भी लिखा है कि इस वटी का प्रयोग मैं १० वर्ष से कर रहा हूँ, हजारों रोगियों को दे चुका हूँ। इन गोलियों में बाजार का रस कपूर होने पर भी हानि का भय नहीं है। यह पूर्ण निर्णय हो चुका है, अति निर्भीक और श्रेष्ठ सफल औषधि है। छोटे बालक नाजुक प्रकृति की स्त्रियां, वयोवृद्ध इन सबको दी जाती है। जीर्ण रोगों में इसका प्रयोग १-२ मास या अधिक समय तक करना पड़ता है और नया रोग शीघ्र शमन हो जाता है।

उक्त सब करामात याने रस कपूर का विकार नाश कर उसको उपादेय बनाने में इन्द्रवारुणि फल के स्वरस का ही प्रभाव है।

वैद्य बन्धुओं को उपरोक्त योग तथा धन्वन्तरि में प्रकाशित रस कपूर वटी का प्रयोग भगन्दर, नाड़ीव्रण, विस्फोट, गृध्रसी, उदरकृमि, जीर्णमलावरोध और ऊपर लिखे रोगों में कर जितने प्रतिशत सफलता हो, यह परिणाम तथा इस बारे में जिन-जिन बन्धुओं का विशेषानुभव हो वे कृपया आयुर्वेद पत्रों द्वारा वैद्य जगत के समक्ष रखें।

इसी के साथ भल्लातक, कुचैला पर भी विद्वान् बन्धु प्रकाश डालें कि भल्लातक तथा कुचले का प्रयोग इस प्रकार की प्रक्रिया से बनाकर देने पर किसी भी प्रकृति के व्यक्ति को विष प्रभाव नहीं बतायेगा।

(२) श्रीमान् अम्बालाल जी पुरुषोत्तम जी वैद्य अहमदाबाद भिलावे का प्रयोग इस प्रकार करते हैं—

भल्लातक	१ तोला
पांचों अजवायन चूर्ण	१० तोला

—प्रथम अजवायन का चूर्ण कर फिर भल्लातक कूटकर डालें। मोटी चलनी में छान लें और भल्लातक खोपड़ों को फेंकदें। बाद में अच्छी घुटाई खरल में कर लें।

मात्रा—१ माशा।

विधि—प्रथम कुछ घी खिलाकर या दूध में मिलित १ तोला घी पिलाकर औषधि सेवन करादें। केवल १ वक्त। फिर ऊपर से भी घी मिला दूध जो मिश्री युक्त हो पिलादें।

परहेज—नमक, अग्नि, धूप से बचें। विकार नहीं करेगा।

भल्लातक घृत—

गाय का घी	१० तोला
भल्लातक	१ तोला

—मंद आंच से घी तैयार करें। तैयार करते समय धुआं शरीर को नहीं लगने दें।

मात्रा—६ माशा।

सेवन विधि—केवल प्रातः, दूध में डालकर सेवन करें या दूनी मिश्री चूर्ण के साथ।

—वैद्याचार्य उदयलाल महात्मा, उदयपुर।

× × ×

अर्शापर—

(रक्तस्राव बन्द करने के लिये)

(१) नीम के तेल को कैपसूल में भर के प्रातः सांय लेने से रक्त बन्द होजाता है। रक्त बन्द होने के पश्चात् भी दो दिन तक लेते रहें, ऐसा करने से स्राव बिलकुल बन्द हो जाता है।

(२) दूब घास का स्वरस निकाल कर उसका शर्बत बना लेना चाहिये। यह शर्बत पानी के साथ लेने से रक्तस्राव बन्द होजाता है। सैकड़ों रोगियों का रक्त इस प्रयोग से बन्द हो गया है।

(३) हींग असली, रसवन्ती, भृङ्गराज, एलुवा, निम्ब बीज गिरी, गुगुल, सोंठ, इन सब समान द्रव्यों की चना प्रमाण गोली पानी से घोट कर बनालें।

मात्रा—सांयकाल को चार गोली पानी के साथ लेने से रक्तस्राव बन्द हो जायगा। इस प्रयोग से खूनी और बादी दोनों प्रकार का अर्श मिट जाता है।

—वैद्य भईशंकर पीताम्बर व्यास
श्रीरणछोड़ जी सार्वजनिक औषधालय,
घी कांटा रोड, राजकोट (काठियावाड़)।

सर्पदंशहर पेय—

सांप के काटे हुए मनुष्य को एक पोथी रसोन गाय के दूध में पीस तुरन्त पिलादें। ३० मिनट में लाभ होगा।

आम की गुठली में से मगज निकालकर, पानी में पीसकर पिलावें। इसके पीने के पश्चात तत्काल मल त्याग की इच्छा होगी। यही क्रिया ३-४ बार करने के लाभ होगा। सर्पविष के पूर्ण-तया नष्ट होने पर यह पेय मीठा लगेगा जब तक विष रहेगा इसका स्वाद कटु होगा।

विशूचिका हर वटी—

हींग	३ माशा
कालीमिर्च	१ माशा
अफीम	४ रत्ती
कपूर	४ रत्ती

विधि—चारों द्रव्यों को कपड़छान चूर्ण बनालें। फिर खरल में डालकर उसमें इतना पानी डालें कि चूर्ण अच्छी तरह भीग जाय। फिर अच्छी तरह मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

सेवन विधि—२-२ घण्टे के अन्तर से पानी के साथ एक गोली।

त्वग्ग योग—

कुकुटाण्डत्वक् भस्म	२ रत्ती
सेलखड़ी	२ रत्ती

—इन दोनों की एक मात्रा लेकर शीतल जल के साथ प्रातः दें।

गुण—आर्त्तव विकृति, श्वेतप्रदर तथा आर्त्तव का अनियमित कष्ट के साथ आना, गर्भाशय विकृति में आशुफलप्रद है। शुक्रमेह में भी यह उत्तम है।

—वैद्य नन्दलाल शर्मा आयुर्वेदरत्न, प्रभाकर
सरहन्दी गेट, पटियाला।

समाचार एवं सूचनाऐं

आयुर्वेदिक कालेज के छात्र द्वारा अनशन—

लखनऊ स्टेट आयुर्वेदिक कालेज लखनऊ के छात्रों ने उत्तर प्रदेश सरकार के सामने अपनी मांग उपस्थित की कि उन्हें एम० बी० बी० एस के स्नातकों के समान वेतन ग्रेड दिया जाय तथा उनकी नियुक्ति की आवश्यक गारण्टी दी जावे। उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री का कहना है कि इनको वेतन ग्रेड एलोपैथ डाक्टर के समान नहीं दिया जा सकता है। इसी बात को लेकर उक्त कालेज के बी० एम० बी० एस० द्वितीय वर्ष के छात्र श्री वीरेन्द्रमोहन गर्ग ने लखनऊ विश्वविद्यालय यूनियन हाल में २३ जौलाई से आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। विश्वविद्यालय यूनियन ने इन आयुर्वेदिक कालेज के छात्रों की हड़ताल का पूर्णतः समर्थन करते हुए पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया। बाद में एक छात्र रामनिवास ने भी भूख हड़ताल करदी। इस हड़ताल स्वरूप जब ता० ३ शनिवार को विद्यार्थियों का जलूस लखनऊ में कान्यकुब्ज कालेज को जारहा था पुलिस और विद्यार्थियों के बीच झगड़ा होगया जिसमें दोनों ही ओर से अनेक घायल हुए और मृत्यु की एक घटना तक घटित हुई।

विद्यार्थी संघर्ष समिति ने जो राजकीय आयुर्वेदिक कालेज के विद्यार्थियों की मांगों का समर्थन कर रही थी इस आन्दोलन को समाप्त कर दिया, जिससे मामले पर समझौते का वातावरण तैयार हो सके। राजकीय आयुर्वेदिक कालेज के भूख हड़ताल करने वाले दोनों छात्रों ने अपनी भूख हड़ताल ता० ५ अगस्त की शाम को समाप्त करदी। इनमें एक का १४ वां तथा दूसरे का ११ वां दिन था। दोनों छात्रों ने मुसम्मी का रस लेकर हड़ताल तोड़ी, उन्हें यूनियन भवन से अस्पताल ले जाया गया।

विद्यार्थी संघर्ष समति ने एक प्रस्ताव में जिसमें भूख हड़ताल की समाप्ति तथा आन्दोलन के स्थगन की घोषणा की गई थी कहा कि "विद्यार्थी भूख हड़ताल इसलिये छोड़ रहे हैं क्योंकि सरकार राजकीय आयुर्वेदिक कालेज के तृतीय वर्ष के विद्यार्थियों को एम० बी० बी० एस० पाठ्य-क्रम के प्रथम वर्ष में दाखिल करने को सहमत होगई है तथा दो वर्ष तक शुल्क की छूट देने को सहमत होगई है। क्योंकि यह शुल्क पहिले ही दे चुके हैं।"

सरकारी विज्ञप्ति—

उत्तर प्रदेश सरकार की एक विज्ञप्ति में बताया गया है कि सरकार विद्यार्थी आंदोलन की समाप्ति से बहुत प्रसन्न है तथा उन लोगों के प्रति कृतज्ञ है जिन्होंने आन्दोलन समाप्त करा कर शहर में तनाव को कम करने में योग दिया है। श्री त्रिलोकीसिंह तथा विरोधी दलों के नेताओं ने राज्य सरकार के समक्ष यह सुझाव रखा है कि बी. एस. बी. एस. के तृतीय वर्ष के विद्यार्थियों को प्री-मेडिकल परीक्षा बिना लखनऊ विश्वविद्यालय की एम. बी. बी. एस. के प्रथम वर्ष में दाखिल कर लिया जाय तथा उनकी फीस माफ कर दी जाय क्योंकि वे बी. एम. बी. एस. पाठक्रम के विद्यार्थी होने के

...ते ३ वर्ष तक फीस दे चुके हैं। राज्य सरकार ने इन नेताओं तथा उनके द्वारा विद्यार्थियों से स्पष्ट कह दिया है कि एस. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों का दाखिला पूर्णतः विश्वविद्यालय के आधीन है तथा वह इस दशा में कुछ नहीं कर सकती। हां, यह प्रश्न विश्वविद्यालय को भेज दिया गया है तथा वर्तमान नियमों के अन्तर्गत जो कुछ भी हो सकेगा वह करेगा। यदि विश्वविद्यालय किसी कठिनाई के कारण उन्हें दाखिल नहीं करता है तो वे विद्यार्थियों को बी. एम. बी. एस. का पाठ्यक्रम किसी आन्दोलन का श्री गणेश किए बिना चालू रखना पड़ेगा। यदि विद्यार्थियों को एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष में दाखिल कर लिया गया तो, सरकार यह आश्वासन देती है कि उनकी फीस माफ कर दी जाएगी।

आशा है कि नागरिक जीवन जो दुर्भाग्य से अस्त व्यस्त होगया था, अब सामान्य हो जायगा।

मुख्य मंत्री ने श्री शुक्र के आश्रितों को २०० रुपये दिये हैं। श्री शुक्र २ अगस्त को पुलिस गोली कांड के शिकार होगए थे।

इन छात्रों की विज्ञप्ति के विरोध में लखनऊ मैडीकल कालेज के १००० छात्रों ने बुधवार ता० ७ को हड़ताल करके इस बात का विरोध किया कि स्थानीय आयुर्वेदिक कालेज के बी. एम. बी. एस. कोर्स के तृतीय वर्ष के छात्र मैडीकल कालेज के एम. बी. बी एस. कोर्स के प्रथम वर्ष में भर्ती कर लिये जांय। उन छात्रों का कहना है कि इससे मैडीकल कालेज की शिक्षा का स्तर गिर जायगा।

\+ \+ \+

आगामी विशेषांक—

धन्वन्तरि का आगामी विशेषांक काय-चिकित्सांक श्री रघुवीर प्रसाद जी त्रिवेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित होगा, यह सूचना गत जून माह के अङ्क में दी जा चुकी है। इस विशेषांक के लिए साहित्य एवं चित्रादि संग्रह का कार्य श्री त्रिवेदी जी ने लगन के साथ प्रारम्भ कर दिया है। आयुर्वेद जगत के विद्वान लेखकों से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे श्री त्रिवेदी जी को इस कार्य में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करें। आप क्या सहयोग देंगे तथा त्रिवेदी जी आप से क्या सहयोग लेना चाहेंगे इस विषय में पत्र-व्यवहार सीधा त्रिवेदी जी से निम्न पते पर कीजियेगा।

श्री पं० रघुवीरदप्रसाद जी त्रिवेदी बी. ए., ए. एम. एस., प्राध्यापक—क्रिया शारीर।
श्री गुलाब कुंवरबा आयुर्वेद सोसाइटी
आयुर्वेद महाविद्यालय, जामनगर (सौराष्ट्र)

समय थोड़ा है, कार्य विशाल है अतएव व्यक्तिगत पत्र (जो शीघ्र ही भेजे जांयगे) की प्रतीक्षा किये बिना अपना सहयोगपूर्ण हाथ बढ़ावें। आपके सहयोग से निश्चय ही त्रिवेदी जी धन्वन्तरि के इस विशेषांक को एक महान् उपयोगी ग्रंथ का रूप दे सकेंगे।

निवेदक—वैद्य देवीशरण गर्ग।

× × ×

सरगुजा जिला वैद्य सम्मेलन

कार्यसमिति की बैठक

सरगुजा (म० प्र०)—जिला वैद्य सम्मेलन की कार्य समिति की अत्यावश्यक बैठक श्री जगदीशप्रसाद मिश्र (अध्यक्ष) की अध्यक्षता में १५। ६। ५८ को (अपराह्न में) श्री वजरंग आयुर्वेदिक औषधालय अंबिकापुर में हुई। सचिव श्री जगदीशदत्त शर्मा द्वारा गत बैठक की कार्यवाही को पढ़ा गया जो सर्व सम्मति से स्वीकृत किया गया। उपाध्यक्ष श्री धीरेन्द्र मोहन भट्ट के सुझाव के अनुसार कार्यालय उपसचिव के रूप में वैद्य श्री रामेश्वरदत्त शर्मा चुन लिये गये। जिला वैद्य सम्मेलन के संगठन को आगे बढ़ाने के लिए अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गये।

—धी० मो० भट्ट
उपाध्यक्ष—सरगुजा जिला वैद्य, सम्मेलन।

रायपुर में—

शासकीय वैद्य सम्मेलन सम्पन्न

दिनाङ्क १-८-५८ को मध्यप्रदेश में स्थित शासकीय औषधालयों तथा शासन सहायित औषधालयों के वैद्यों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें उन्होंने डाइरेक्टर तथा स्वास्थ्य मन्त्राणी को भी बुलाने का आयोजन किया था। सम्मेलन ठीक तरह से एवं सुचारु रूप से सम्पन्न हुआ। डाइरेक्टर तो नहीं आये थे परन्तु स्वास्थ्य मन्त्राणी श्री पद्मावती का पत्र आया था जिसमें उन्होंने वैद्य सम्मेलन की सफलता के लिए शुभ कामनाऐं भेजी थीं। वैद्य सम्मेलन में श्री यज्ञनारायण जी सोनी वैद्य मोहभरी (बालाघाट) को अध्यक्ष बनाया गया। कमेटी ने औषधालयों में होने वाली कठिनाइयों को सुलझाने के लिए सरकार से कुछ मांगे की हैं जैसे— औषधालय में स्वीपर (मेहतर), कम्पाउण्डर एवं एक वाटरमेन आदि का होना साथ ही शल्य सम्बन्धी सुविधाऐं भी मांगी, वेतन एवं पद वृद्धि की मांग की, इत्यादि। इस तरह सुन्दर एवं सुव्यवस्थित रूप से वैद्य सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

\+ \+ \+

श्री केदारनाथ धर्मार्थ औषधालय, गुप्तकाशी

मुख्यमन्त्री जी द्वारा निरीक्षण

श्री बदरीनाथ केदारनाथ मन्दिर कमेटी द्वारा संचालित श्री केदारनाथ धर्मार्थ औषधालय इसी इलाके का नहीं वरन् गढ़वाल का एक अति प्राचीन तथा बड़ा विस्तृत साधन सम्पन्न औषधालय है। इस वर्ष ता० १ जनवरी ५८ से अबतक ३६३१ विभिन्न प्रकार के रोगियों की औषधालय द्वारा निःशुल्क चिकित्सा की गई। औषधालय के सुयोग्य विद्वान चिकित्सक श्री राधाकृष्ण किमोठी आयुर्वेदाचार्य की अनुभवशीलता एवं लगन से रुग्णव्यक्ति लाभान्वित होते रहते हैं।

गुप्तकाशी केन्द्र स्थान पर होने से अनेक उच्च-कोटि के शिक्षाशास्त्री, वैज्ञानिक, धनाढ्य, अध्यात्मवादी, शासक, सार्वजनिक कार्यकर्त्ता निरन्तर आते ही रहते हैं और औषधालय की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

दिनांक ६ जून को हमारे प्रदेश के मुख्यमन्त्री एवं प्रकाण्ड विद्वान् डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी ने भी उक्त औषधालय का निरीक्षण किया और कार्यविधि पर सन्तोष प्रकट किया।

सरकार से ऐसे सुन्दर औषधालय के लिए अधिक से अधिक अनुदान देने की प्रार्थना है। मन्दिर कमेटी के ऐसे प्रशंसनीय कार्य की जनता हार्दिक स्वागत करती है।

—श्री दीर्घायुप्रसाद बगवाड़ी, पत्रकार।

× × ×

आयुर्वेद मण्डल सुनाम—

तिथि १४.७.५८ को शिव मन्दिर सुनाम में तहसील आयुर्वेद मण्डल सुनाम का चुनाव निम्न प्रकार से हुआ।

प्रधान—श्री वैद्य हरीराम जी
उप प्रधान—श्री वैद्य मित्तसिंह जी
प्रधान मत्री—श्री वैद्य रोशनलाल जी
उप मन्त्री—श्री वैद्य नन्दकिशोर जी
कोषाध्यक्ष—श्री वैद्य इन्द्रसैन जी
उप कोषाध्यक्ष—श्री रोशनलाल जी
आडीटर—श्री वैद्य चाननराम जी

—श्री वैद्य हुकमचन्द जी तहसील आयुर्वेद मंडल के सलाहकार चुने गये हैं। चुनाव सर्वसम्मति से हुआ।

इसके पश्चात् चार प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रथम प्रस्ताव में पेप्सू के आयुर्वेद के रजिष्टर्ड चिकित्सकों पर लगे अन्य पैथी की औषधियां व्यवहार न करने के प्रतिबंध को तुरन्त दूर करने की मांग की गई।

द्वितीय में—वार्षिक रिन्यूवल फीस अनुचित है तथा इसे नष्ट कर केवल एक बार उचित फीस लेने

का अनुरोध किया गया।

तीसरे में—जो वैद्य किसी कारण अभी तक रजिस्ट्री नहीं करा सके उनको पुनः समय देने की मांग की गई, तथा—

चतुर्थ में आसवारिष्टों पर लगे प्रतिबंध को अनुचित एवं अन्यायपूर्ण बताते हुए इसे शीघ्र हटाने का आग्रह किया गया।

—प्रधान मंत्री, तहसील आयुर्वेद मण्डल, सुनाम।

× × ×

ब्रह्मर्षि पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल का अभिनन्दन

कलकत्ता, २५ जुलाई। विगत भृगुबार दिनांक १८ जुलाई को कलकत्ता के जैनभवन में स्थानीय वैद्यसमुदाय की ओर से आयुर्वेद के सुविख्यात ब्रह्मर्षि आयुर्वेद पंचानन पंडित जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल, प्रयाग का सार्वजनिक रूप में भव्य अभिनन्दन किया गया। यह आयोजन श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल अभिनन्दन समिति कलकत्ता के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता प्रसिद्ध हिन्दीप्रेमी श्रीयुत सीताराम जी सेकसरिया ने की और मुख्य अतिथि दैनिक लोकमान्य के संचालक यशस्वी पं० रामशङ्कर जी त्रिपाठी थे। समारोह में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बम्बई, राजस्थान, बिहार, दिल्ली आदि प्रदेशों के वैद्यों के अतिरिक्त पर्याप्त संख्या में स्थानीय वैद्य, पत्रकार एवं प्रमुख नागरिकगण सम्मिलित हुए। इस अवसर पर अभिनन्दन समिति की ओर से श्रद्धेय शुक्ल जी के जीवन परिचय की एक पुस्तक भी प्रकाशित की गयी और वितरित की गयी।

श्री शुक्ल अभिनंदन समिति की ओर से मासिक सुधानिधि की सहायतार्थ श्रद्धेय शुक्ल जी को २१००) रु० की थैली समारोह के अध्यक्ष श्री सीताराम जी सेकसरिया द्वारा भेंट की गयी। यह धन श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, डाबर डा० एस० के० वर्मन, श्री विश्वनाथ आयुर्वेद भवन और स्थानीय कविराजों से एकत्र किया गया था।

× × ×

अफीमचियों के लिए अस्पताल—

कानपुर में अफीमचियों के लिए अस्पताल खुलेगा। आवश्यकता इसलिए पड़ी कि अगले वर्ष एक अप्रेल से इस राज्य में अफीम का बिकना बिलकुल बन्द हो जायगा।

इस अस्पताल में अफीमचियों का इलाज किया जायगा और उनकी अफीम की लत छुड़ाने का प्रयत्न किया जायगा। केवल उन्हीं लोगों को प्रतिमास पांच तोला अफीम का परमिट दिया जायगा। जिनका अफीम के बिना काम न चल सकेगा।

तीस शैयाओं वाले इस अस्पताल के लिए राज्य सरकार ने सवा तीन लाख रु० व्यय की स्वीकृति दी है। उसका आवर्तक व्यय ६५,००० रुपया वार्षिक होगा। —आयुर्वेद सन्देश।

+ + +

श्री धुलेकर जी विधान परिषद् के अध्यक्ष—

लखनऊ। उ० प्र० विधान परिषद के अध्यक्ष पद पर झांसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय के संस्थापक उ० प्र० इण्डियन मेडिसिन बोर्ड के भू० पू० अध्यक्ष श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर एम० ए० एल० एल० बी० एडवोकेट एम. एल. सी. झांसी निवासी सर्व सम्मति से चुने गये हैं।

आपके इस पद पर प्रतिष्ठित होने से वैद्य समाज को अधिक प्रसन्नता हुई है। हम आपको इस पद पर पदासीन होने के कारण धन्वन्तरि परिवार की ओर से हार्दिक बधाई देते हैं और ईश्वर से चिरायु होने की कामना करते हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि आप जिस किसी पद पर निर्वाचित् होंगे वहां आयुर्वेद का हित करना आपका मुख्य

लक्ष्य रहेगा।

बाल सन्निपात ज्वर

छूत की बीमारी घोषित

उ० प्र० सरकार ने एक विज्ञप्ति जारी करके बाल सन्निपात ज्वर (वाइरस इन्सिफलाइटिस) को विगत १२ जुलाई से तीन माह के लिये छूत की बीमारी घोषित कर दिया है।

विज्ञप्ति के अनुसार राज्य के सभी प्राइवेट डाक्टरों एवं सरकारी और गैरसरकारी अस्पतालों तथा चिकित्सालयों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे अपने चिकित्सा के लिए आने वाले सभी रोगियों के सम्बन्ध में राज्य सरकार के चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा संचालक कार्यालय को रिपोर्ट दें।

\+ \+ \+

आयुर्वेद और यूनानी को प्रोत्साहन

लखनऊ २४ जुलाई। उ० प्र० के स्वास्थ्य मंत्री ठा० हुकुमसिंह जी ने विधान परिषद में राज्यपाल के भाषण के लिए धन्यवाद प्रस्ताव पर त्रिदिवसीय बहस का उत्तर देते हुए कहा कि आयुर्वेद तथा यूनानी पद्धतियों के समापन में नेतृत्व करने के लिए में तैयार नहीं हूँ।

आगे आपने कहा कि सरकार आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा-पद्धतियों को प्रोत्साहन देने के लिये कृत संकल्प है, क्योंकि उनमें उनकी निजी विशेषतायें हैं। इन पद्धतियों की उपयोगिता ने ही ब्रिटिश शासनकाल में भी इन्हें जीवित रखा है।

× × ×

लखीमपुर खीरी जिला वैद्य सम्मेलन

सानन्द सम्पन्न

१६ जून १६५८। सम्मेलनाधिवेशन के मनोनीत सभापति श्री रामगोपाल जी शास्त्री सदस्य इण्डियन मैडीसन बोर्ड तथा उपसभापति उ. प्र. वैद्य सम्मेलन के अस्वस्थ होने का समाचार तार द्वारा प्राप्त होने पर श्री ज्वालाप्रसाद जी शास्त्री हाथरस स्थानापन्न सभापति की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। आयुर्वेदाचार्य श्री सुरेन्द्रनाथ जी दीक्षित ने सम्मेलन का उद्घाटन किया।

स्वागताध्यक्ष श्री पं० अनन्तदेव जी दीक्षित शास्त्री के स्वागत भाषण के पश्चात् सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम जिला वैद्य सभा का निर्वाचन निम्न प्रकार से हुआ—

अध्यक्ष - पं० अनन्तदेव जी दीक्षित
उपाध्यक्ष—पं० रामस्वरूप जी दीक्षित
प्रधानमन्त्री—पं० बालादीन जी बाजपेयी
उप मन्त्री —पं० शिवगोविन्द जी त्रिपाठी
पं० भगवतीप्रसाद जी पाण्डेय
पं० चन्द्रकुमार जी बाजपेयी
कोषाध्यक्ष—पं० लालताप्रसाद जी त्रिपाठी
सदस्य २१ सदस्य बनाए गए

इस प्रकार २७ सदस्यों की जिला सम्मेलन की कार्यकारणी बनाई गई है।

आचार्य बच्चूलाल जी एम. ए. साहित्याचार्य, पं० वेदव्रत जी दीक्षित वैद्य आदि का सारगर्भित भाषण हुआ। आयुर्वेदाचार्य श्री सुरेन्द्रनाथ जी दीक्षित से इण्डियन मेडीसिन बोर्ड, सरकार, तथा आयुर्वेद विद्यालयों तथा वैद्य संगठनों पर सुन्दर प्रकाश डाला। अन्त में १२ प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों को स्थानाभाव के कारण प्रकाशित नहीं किया जासका। —प्रधान मन्त्री।

नोट—एक प्रस्ताव से विदित होता है कि लखीमपुर खीरी जिले में एक और जिला सम्मेलन है जिसे उक्त प्रस्ताव में अवैध बताते हुए उत्तर प्रदेशीय सम्मेलनाधिकारियों से निवेदन किया गया है कि वैधानिक रूप से संगठित इसी सम्मेलन को मान्यता दें। हम नहीं कह सकते कि कौन सा जिला सम्मेलन वैध है और कौन सा अवैध। —सम्पादक।

नगर वैद्य परिषद् इन्दौर—

प्रतिमाह के समान १ अगस्त को नगर वैद्य परिषद् की सभा में श्री वैद्यराज गणपतलाल जी दवे का "नाड़ी विज्ञान" तथा कविराज सीताराम जी अजमेरा प्रिंसीपल एवं प्रधान चिकित्सक आर. एस. आयु० कालेज तथा यशवंतराव हास्पीटल इन्दौर के 'शुक्राणु का पुनर्जीवन' पर गवेषणा पूर्ण भाषण हुए। कविराज राधाकृष्ण जी पाराशर ने आगामी १ सितम्बर की गोष्ठी में 'रत्नों का आयुर्वेद में महत्व' विषय पर भाषण देना स्वीकार किया।

कविराज राधाकृष्ण पाराशर

ने प्रिंसीपल पद सम्भाला

१ अगस्त को नव-नियुक्त आयुर्वेदाचार्य राधाकृष्ण पाराशर ने राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर का प्रिंसीपल पद सम्भाल लिया है। इससे पूर्व आप झांसी में आयुर्वेद जगत की सेवा करते रहे हैं। सम्प्रति आप वहां आयुर्वेद कालेज के वाइस प्रिंसपल भी थे। आपका सहयोग यहां के आयुर्वेद जगत पर प्रभावशाली रहेगा। ऐसी आशा है।

—वैद्य वेदप्रकाश शर्मा आयुर्वेदालङ्कार।

× × ×

नवभारत (इन्दौर) का स्वास्थ्य-स्तम्भ—

इन्दौर-उज्जैन से प्रकाशित नवभारत के स्वास्थ्य स्तम्भ के सम्पादन का भार वैद्य वेदप्रकाश जी शर्मा आयुर्वेदालङ्कार ने स्वीकार कर लिया है तथा आप इस स्तम्भ से जनता को अनेक उपयोगी बातें बताते हुए जनता में आयुर्वेद के प्रति जागरण उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हम आपके प्रयत्न की सफलता की कामना करते हैं।

आयुर्वेद साहित्य समिति, पिलानी का वार्षिकोत्सव

जड़ी बूटियों की खोज का निश्चय

पिलानी (डाक से) स्थानीय आयुर्वेद साहित्य समिति का चतुर्थ वार्षिकोत्सव बिरला आयुर्वेद संग्रहालय में श्री रामनिवास जी शाह की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

श्री अनन्तदेव जी त्रिपाठी प्रिंसिपल ने भगवान् धन्वन्तरि को पुष्पांजलि समर्पण द्वारा वार्षिकोत्सव का उद्घाटन करते हुये बताया कि आयुर्वेद का क्षेत्र धन-लोलुप व्यक्तियों के लिए नहीं है। इस चिकित्सा प्रणाली का उद्देश्य "नार्थार्थं नापि कामार्थमद भूत दयां प्रति" ही सदा रहा है। अतः प्रत्येक आयुर्वेद सेवी को निःस्वार्थ सेवा ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेना चाहिए। डा० श्री एच० एल० शर्मा पी० एच० डी० ने आयुर्वेदज्ञों को उद्बोधन करते हुए कहा था कि आयुर्वेद में जो नव्य विज्ञान की बातें आयें, वे पाश्चात्य चिकित्सा की अन्धानुकरण मात्र न हों। आयुर्वेद में अनेक प्रयोग रत्न पड़े हैं, यदि उनका परिष्कार कर उन्हें नवीन पद्धति से प्रचारित किया जाये तो आयुर्वेद की उन्नति निश्चित है।

अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री शाह ने कहा कि जड़ी बूटियों में अद्भुत शक्ति है। जड़ी बूटियों के अन्वेषण के लिए हमें सदा सचेष्ट रहना चाहिये। जड़ी बूटियों के जानकारों की कमी नहीं है किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के विशेषज्ञों से इस ज्ञान को प्राप्त किया जाये और उन जड़ी बूटियों के गुणों की खोज वैज्ञानिक ढंग से की जाये ताकि वे गुण पाश्चात्य चिकित्सकों की कसौटी पर भी खरे उतरें।

ज्ञात हुआ है कि समिति के ६ सदस्य आचार्य नित्यानन्द जी के नेतृत्व में बिहार की बनस्पतियों की जानकारी के लिये रांची के जंगलों में शीघ्र ही

जायेगा, और १५ सदस्यों का एक दल प्रो० के० एम० शर्मा के नेतृत्व में लोहार्गल क्षेत्र की जड़ी बूटियों का सर्वे करेगा। इस अवसर पर समिति ने बनस्पति प्रदर्शिनी का आयोजन किया था, जिसमें मालाकन्द, लांगली कन्द, विष कन्द और बाराही कन्द आदि की हरी बेल आदि भी प्रदर्शित की गई थीं। अन्त में प्रीति भोज और "जय जय आयुर्वेद महान" के गायन के साथ कार्य-क्रम समाप्त हुआ।

—श्री कैलाशचन्द्र जो, मंत्री।

× × ×

आयुर्वेद की पोस्ट ग्रेजुएट परीक्षा में—

राजस्थानीय प्रतिनिधि का सर्वप्रथम स्थान

जामनगर में विगत दो वर्ष से भारत सरकार द्वारा आयुर्वेद का एक मात्र स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र चालू है। यहां भारत के सभी प्रान्तों से आयुर्वेद के सर्वोच्चपरीक्षोत्तीर्ण प्रतिनिधि राज्यसरकारों की ओर से भेजे जाते हैं। वैद्य श्री हरिशङ्कर शर्मा प्रथम बैच में राजस्थान सरकार का प्रतिनिधित्व प्राप्त कर दो वर्ष के इस कोर्स में सर्वप्रथम उत्तीर्ण घोषित किये गये हैं। आपने भारत के सुप्रसिद्ध रसायनाचार्य पं० वासुदेवभाई मूलशङ्कर जी द्विवेदी की अध्यक्षता में जो ताम्रविषयक शुल्वशास्त्र (थीसिस) लिखा है, उसकी आयुर्वेद के सभी धुरन्धरों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, तथा वह भी सर्वप्रथम घोषित हुआ है।

आप गवर्नमैन्ट आयुर्वेदिक कालेज जयपुर के स्नातक हैं तथा राजस्थान की 'भिषग्वर' परीक्षा (चतुर्वर्षीय ग्रेजुएट कोर्स) में भी सर्वप्रथम उत्तीर्ण होकर वहीं की 'भिषगाचार्य' परीक्षा (द्विवर्षीय पोस्टग्रेजुएट कोर्स) में भी सर्वप्रथम रहे थे।

वैद्य श्री हरिशङ्कर शर्मा

आपका संस्कृत, हिन्दी, इङ्गलिश और ज्योतिष पर पूर्ण अधिकार है। साथ ही अच्छे वक्ता और कवि भी हैं। इस उदीयमान प्रतिभाशाली नवयुवक से आयुर्वेद जगत बहुत आशाएं रखता है।

इस प्रथम बैच के पच्चीस में से पन्द्रह स्नातक उत्तीर्ण हुए। द्वितीयस्थान मद्रास के श्री के० सदाशिव शर्मा का रहा।

इस प्रकार सोलह प्रकार की क्रियाएं सत्व एवं तम के संघर्ष का परिणाम हैं। ये सोलह प्रकार की क्रियाएं निम्नलिखित क्रियाओं को करती हैं।

१. प्रकाश प्रधान तेजोमय गति (श्रोत्रेन्द्रिय या शब्देन्द्रिय)

यह गतिमय संघर्ष को प्रकाश में लाने की क्रिया को उत्पन्न करता है। गतिमय संघर्ष का प्रकाश 'शब्द' है होता है यानी गति युक्त संघर्ष का जो ज्ञान दे और वह ज्ञान जिस क्रिया द्वारा हो उसे श्रोत्रेन्द्रिय कहते हैं।

२. प्रकाश प्रधान स्पर्शमय गति (स्पर्शेन्द्रिय)

यह गतिमय स्पर्श को प्रकाश में लाने वाली क्रिया को उत्पन्न करता है। याने जो गतिमय स्पर्श का ज्ञान दे उस क्रिया को स्पर्शेन्द्रिय कहते हैं।

३. गतिप्रधान तेजोमय प्रकाश (रूपेन्द्रिय)

यह तेजोमय प्रकाश को गति देने वाली क्रिया को उत्पन्न करता है। तेजोमय प्रकाश को गति देने वाली क्रिया रूप है। इसके अस्तित्व को बताने वाली क्रिया का नाम रूपेन्द्रिय है।

४. गतिप्रधान स्पर्शमय प्रकाश (रसनेन्द्रिय)

यह स्पर्शमय प्रकाश याने ऐसे प्रकाश को जिसमें स्पर्श है उसे गति देने वाली क्रिया को उत्पन्न करता है। स्पर्शमय प्रकाश याने ऐसा प्रकाश जिसे स्पर्श है वह 'रस' द्वारा सिद्ध होता है इस के अस्तित्व को बताने वाली क्रिया गतियुक्त होती है, अतः ऐसी क्रिया जो स्पर्शमय प्रकाश को गति दे वह रसनेन्द्रिय कही जाती है।

५. प्रकाश प्रधान तेज स्पर्शमय गति (घ्राणेन्द्रिय)

यह मति युक्त स्पर्शमय संघर्ष को प्रकाश में लाने वाली क्रिया को उत्पन्न करता है याने गतिमुक्त स्पर्शमय संघर्ष का जो ज्ञान दे उसे घ्राणेन्द्रिय कहते हैं।

६. तेजप्रधान प्रकाशमय स्पर्श (वाक्येन्द्रिय)

यह स्पर्शयुक्त प्रकाश को संघर्ष देने वाली क्रिया को उत्पन्न करता है। शब्द स्पर्शमय प्रकाश है और जो शब्द को संघर्ष दे और यह वाक्योच्चारण द्वारा होता है अतः इसे वाक्येन्द्रिय कहते हैं।

७. तेजप्रधान गतिमय स्पर्श पाद इन्द्रिय–(पादेन्द्रिय)

यह गतिमय स्पर्श को संघर्ष देने वाली क्रिया को उत्पन्न करता है। गतिमय स्पर्श को संघर्ष देने वाली क्रिया पाद है। अतः इसे पाद इन्द्रिय कहते हैं।

८. स्पर्श प्रधान प्रकाशमय तेज (पाणि इन्द्रिय)

यह प्रकाशमय संघर्ष को स्पर्श देने वाली क्रिया का निर्माण करता है। प्रकाश मय संघर्ष को स्पर्श देने वाली क्रिया पाणि (Touch या स्पर्श) है अतः इसे पाणि इन्द्रिय कहते हैं।

९. स्पर्श प्रधान गतिमय तेज (त्यागेन्द्रिय)

यह एक ऐसी क्रिया को उत्पन्न करता है जो गति मय संघर्ष को स्पर्श करे। यह त्याग क्रिया द्वारा होता है अतः इसे त्यागेन्द्रिय कहते हैं।

१०. तेजप्रधान स्पर्शमय गतियुक्त प्रकाश (हर्षेन्द्रिय)

यह एक ऐसी क्रिया को उत्पन्न करता है जो स्पर्श गतियुक्त प्रकाश को संघर्ष दे। यह हर्ष द्वारा होता है अतः इसे हर्षेन्द्रिय कहते हैं।

११. प्रकाश एवं गतियुक्त तेजोमय स्पर्श (मनेन्द्रिय)

यह एक ऐसी क्रिया को उत्पन्न करता है जो गतिवान भी है संघर्ष वान भी है स्पर्शवान भी है और प्रकाशवान् भी है याने जिसमें यह चारों क्रिया एक साथ एक समान रूप का हो। इसे मनेन्द्रिय कहते हैं।

रज एवं तम के योग से पांच क्रियायें उत्पन्न होती हैं जिनसे निम्नलिखित अधिष्ठानों का निर्माण होता है।

१. आवरण मय तेज (शब्द तन्मात्रा)

संघर्ष जब आवरण द्वारा आवृत होता है तब शब्द नामक वस्तु का निर्माण होता है। यह संघर्ष के अस्तित्व के धारण करने वाला है। इसे शब्द तन्मात्रा कहते हैं।

२. आवरणमय स्पर्श (स्पर्श तन्मात्रा)

स्पर्श जब आवरण द्वारा आवृत होता है तब एक ऐसी वस्तु का निर्माण होता है जो स्पर्श को धारण कर उसे एक अस्तित्व प्रदान करता है। इसे स्पर्शतन्मात्रा कहते हैं।

३. अवलम्बमय तेज (रूप तन्मात्रा)

जब संघर्ष प्रगाढ़ आवरण से आवृत होता है तो एक ऐसा अवलम्ब धारण कर लेता है कि एक रूप धारण कर लेता है यह संघर्ष रूप हो जाता है अतः इसे रूपतन्मात्रा कहते हैं।

४. अवलम्बमय स्पर्श (रस तन्मात्रा)

जब स्पर्श प्रगाढ़ आवरण द्वारा आवृत होता है तो यह एक अवलम्ब धारण कर लेता है और वह अवलम्ब स्पर्श मय हो उठता है, स्पर्श स्पर्शानुभूति से आगे बढ़ अवलम्बमय स्पर्श हो उठता है इसे रस तन्मात्रा कहते हैं।

५. अवलम्बमय तेजस्पर्श (गन्धतन्मात्रा)

संघर्ष युक्त स्पर्श जब प्रगाढ़ आवरण में आवृत होता है तब संघर्षयुक्त स्पर्श एक अवलम्ब धारण कर लेता है याने संघर्षयुक्त स्पर्श एक रूप धारण कर लेता है जो संघर्ष युक्त स्पर्श प्रदान करता है। इसे गन्ध तन्मात्रा कहते हैं।

अर्थात् जो संघर्ष के आवृत होने को बताये उसे शब्द तन्मात्रा, जो स्पर्श के अस्तित्व को बताये वह स्पर्श तन्मात्रा, जो संघर्ष के रूप को बताये वह रूप तन्मात्रा, जो स्पर्श के रूप को बताये वह रस तन्मात्रा एवं जो संघर्ष मय स्पर्श के अस्तित्व को बताये वह गंध तन्मात्र कहाता है।

इन्द्रिय एवं तन्मात्राओं का संयोग--

यह पहले लिखा जा चुका है कि सत्व एवं रज के संयोग से जिन क्रियायों का निर्माण होता है वे क्रिया प्रधान क्रिया होती हैं यानी इन क्रियायों का परिणाम भी क्रिया ही होता है। इसका कारण यह है कि सत्व एवं रज शुद्ध क्रिया ही हैं। मगर किसी भी क्रिया का सम्पादन तब तक सम्भव नहीं जब तक कि उसे अवलम्ब न मिल जाये। सत्व एवं रज को तो एक अवलम्ब प्राप्त था जिस के माध्यम से ग्यारह प्रकार की क्रियायों का निर्माण किया। मगर इन ग्यारह प्रकार की क्रियायों को भी एक माध्यम मिलना आवश्यक है अन्यथा इनकी क्रिया ही नहीं हो सकती। मगर इसके लिये माध्यम भी तदनुरूप ही होना आवश्यक है। चूंकि सत्व एवं तम अब अलग अलग अपना विस्तार करने लगते हैं वल्कि सत्व एवं तम में अहं भाव आया रहता है अतः सत्व के विस्तारों को अब स्वतः अधिष्ठान मिलता नहीं है रज चूंकि मध्यस्थ होता है और न इसे सत्व से, न तम से विरोधीभाव रहता है वल्कि दोनों ही के साथ सहयोगी भाव रहता है और दोनों ही से मिलता भी है अतः इसे कुछ विशेष अधिष्ठान मिलता भी है और इसी कारण जब सत्व एवं रज का संयोग होता है तब इन दोनों के संयोग से जो पांच सत्व प्रधान विस्तार होते हैं वे अधिक सूक्ष्म या माध्यम विहीन रहते हैं वनिस्वत कि रज प्रधान पांच विस्तारों के।

ग्यारह क्रिया प्रधान क्रियायों को ऐसा माध्यम चाहिये जो इससे संयुक्त भी हो सके एवं इसे माध्यम या अधिष्ठान भी दे सके। पहले यह भी लिखा जा चुका है कि तन्मात्राओं में दो वस्तु हैं एक वह जो केवल क्रिया रूप है दूसरा वह जो माध्यम रूप क्रिया है। इसका क्रिया अंश वह है जो माध्यम निर्माण क्रिया को करता है और माध्यम अंश वह है अधिष्ठान निर्माण का उपादान है। इसके क्रिया अंश को भी एक अवलम्ब प्राप्त है और माध्यय अंश को भी क्रिया गुण है। क्रिया अंश रज प्रधान है एवं अधिष्ठान अंश तम प्रधान। क्रिया अंश समस्त अधिष्ठानों के निर्माण में समर्थ है यदि उसे अधिष्ठान निर्माण के उपादान प्राप्त हों; अन्यथा सभी अधिष्ठानों के निर्माण की सामर्थ्य रखते हुये भी यह अधिष्ठानों का निर्माण नहीं कर सकता। माध्यम अंश उपादान कारण भी है और क्रिया मय भी है। यद्यपि कि क्रिया अंश अलग भी है तथापि माध्यम अंश के साथ भी है। अतः माध्यम अंश

अधिष्ठानों का निर्माण करता है। अधिष्ठान या माध्यम अंश तथा माध्यम या अधिष्ठान क्रिया अंश के विभेद के कारण इसका नाम तन्मात्रा है। याने तन्मात्रा अधिष्ठान प्रधान क्रिया है जिसमें अधिष्ठान क्रिया एवं अधिष्ठान दोनों का मिश्रण है दोनों एक दूसरे के साथ हैं एक हैं तथापि एक मात्रा में क्रिया अंश इससे विलग होता है और एक मात्रा में क्रिया अंश अधिष्ठान के साथ रहता है। यह क्रिया अंश ग्यारह क्रिया प्रधान क्रियायों के लिये उपयोगी सिद्ध होता है। क्रिया प्रधान क्रिया याने इन्द्रियों को इसके संयोग से अधिष्ठान प्राप्त होता है और माध्यम अंश से अधिष्ठान (महाभूत) का निर्माण होता है।

तन्मात्राओं के क्रिया अंश चूंकि क्रिया रूप हैं अतः क्रिया प्रधान क्रिया से मिलने में कोई बाधा नहीं होती। चूंकि यह अधिष्ठान क्रिया है अतः इसके साथ अधिष्ठान अंश भी कुछ विशेष रूप में रहते ही हैं अतः इन्द्रियों के लिए यह अधिष्ठान प्रदान करने वाला भी हो जाता है। अतः इन दोनों का संयोग स्वाभाविक होता है, एक के प्रति दूसरे का आकर्षण होता है। इन्द्रियों को अधिष्ठान चाहिए, तन्मात्राओं का क्रिया अंश उसे अधिष्ठान देता है, इन्द्रियां क्रिया रूप हैं, तन्मात्राओं के क्रिया अंशों को इसका सहवास स्वभाव विरुद्ध नहीं पड़ता है अतः दोनों संयुक्त हो जाते हैं।

ग्यारह क्रिया प्रधान क्रिया एवं पांच अधिष्ठान क्रिया इन सोलह क्रियाओं के योग का नाम सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर है। परम चेतन के सान्निद्ध से मूल प्रकृति से चली क्रिया शक्ति मूल प्रकृति की हर क्रिया में क्रियानुसार न्यूनाधिक्य रहती है। अतः इन्द्रियां एवं तन्मात्राओं के योग में सत्रह वस्तु का योग होता है, ग्यारह क्रिया प्रधान क्रिया, पांच अधिष्ठान प्रधान क्रिया एवं क्रिया शक्ति इस प्रकार सत्रह का योग यह होता है।

ग्यारह क्रिया प्रधान क्रियायें परस्पर विभिन्नता रखती-पांच अधिष्ठान क्रियायें भी अलग अलग ही हैं अतः इन सोलहों का स्थान तो अलग अलग रह जाता है। इनमें से कोई दो भी मिलकर एक नहीं होते। इन सोलहों के साथ अपनी अपनी क्रिया शक्ति भी रहती है और क्रिया शक्ति सभी एक ही रहती हैं इनमें कोई अन्तर सिवाय शक्ति के न्यूनाधिक्य के और दूसरा नहीं रहता है। मूल प्रकृति तो विस्तार पाती हुई अपना रूप परिवर्त्तित करती चली जाती है मगर उसके साथ की क्रिया शक्ति के रूप में कभी कोई परिवर्त्तन नहीं आता। यह दूसरी बात है कि क्रियानुसार उनकी मात्रा में न्यूनाधिक्य हो मगर रहेगा बराबर एक ही। उक्त सोलह क्रियाओं में न्यूनाधिक्य रूप से सोलह क्रियाशक्तियां हैं, सभी के साथ अलग अलम क्रिया शक्ति है मगर हैं सभी याने सोलहों एक ही, अतः ये सभी एक साथ संयुक्त हो उठती हैं और संयुक्त ही एक हो जाती हैं। इसी का नाम "आत्मा या पुरुष" है। क्रियाशक्ति का यही योग इन सोलह क्रियाओं को परस्पर आवद्ध रखता है, सोलह विभिन्न क्रियायें होते हुये भी ये सर्वदा एक ही में बंधी रहती हैं। अतः इन्द्रियों एवं तन्मात्राओं के इस योग में सोलह विभिन्न प्रकार की क्रियायें एवं एक क्रिया शक्ति का याने सत्रह वस्तुओं का योग रहता है। इन सत्रह के समुदाय का नाम "सूक्ष्म शरीर या राशि पुरुष" है जैसा कि कहा भी है—

सप्तदशैक लिंगम् ॥ सां० द० ३ अ० ६ श्लो० ॥

जब इन सोलहों क्रियाओं की क्रिया शक्ति मिलकर एक होती है तब क्रिया शक्ति को किसी ऐसी एक क्रिया के साथ केन्द्रित होना पड़ता है जहां से वह सभी क्रियाओं को शक्ति प्रदान कर सके। चूंकि सोलहों क्रियाओं को क्रिया शक्ति सम्पन्न रखना है ताकि वे क्रिया कर सकें। क्रिया शक्ति भी किसी क्रिया को ही आश्रित कर रह सकती है क्रिया से भिन्न वह रह नहीं सकती और ऐसी एक क्रिया उभय क्रिया प्रधान (मनेन्द्रिय) ही है जिसे आश्रित कर रहने से वह शेष पन्द्रहों क्रियाओं को शक्ति प्रदान कर सकती है। चूंकि मनेन्द्रियां उभय प्रधान क्रिया है याने यह ज्ञानेन्द्रियां भी हैं और कर्मेन्द्रियां भी हैं अतः

यह सभी के साथ संयुक्त हो सकती हैं याने पांच ज्ञानेन्द्रिय से और पांच कर्मेन्द्रिय से।

अधिष्ठान क्रिया जो तन्मात्राओं से संयुक्त है उसका काम है उन अधिष्ठानों का निर्माण करना जिसकी आवश्यकता इन्द्रियों को अपनी क्रिया के लिये है। अधिष्ठान क्रियायें हैं पांच ही, ग्यारह है नहीं, जो हर क्रिया प्रधान क्रिया के साथ संयुक्त हो हर-एक को इच्छित अधिष्ठान देती रहे। अतः ये भी किसी ऐसे एक के साथ केन्द्रित हो जाती हैं जहां से ये सभी इन्द्रियों को इच्छानुसार अधिष्ठान दे सकें। और इस योग्य मनेन्द्रिय ही है चूंकि उभय प्रधान है अतः यह भी मनेन्द्रिय के साथ केन्द्रित हो जाती है। इस प्रकार इनके एक साथ पर केन्द्रित होने से पांचों कर्मेन्द्रियों और पांचों ज्ञानेन्द्रियों को भी एक साथ मनेन्द्रिय में केन्द्रित होना पड़ता है। चूंकि क्रियाशक्ति भी उन्हें उसी स्थान से मिलने को और अधिष्ठान भी उन्हें उसी से मिलने को अतः मनेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच अधिष्ठान क्रियाओं तथा क्रियाशक्ति का केन्द्र हो जाता है और एक परम शक्तिशाली अत्यन्त प्रबल होता है।

यह पहले लिखा जा चुका है कि अधिष्ठान क्रिया अधिष्ठान का निर्माण तो कर सकता है मगर अधिष्ठान बीज इसके साथ नहीं है। अधिष्ठान का बीज इसे यदि प्राप्त हो तो उससे यह अधिष्ठान का निर्माण करता है। इन्द्रियों की क्रिया के लिये इसे अधिष्ठान देना है, क्रिया रूप होते भी बीज विहीन है। अतः बीज को ढूंढ़ निकालना एवं उससे संयुक्त होना और संयुक्त होकर उससे अधिष्ठान का निर्माण करना इसका काम है।

सत्व एवं रज तथा तम एवं रज के संयोग से इन्द्रियां एवं तन्मात्राओं के समूह का निर्माण निरन्तर होता रहता है, ऐसा नहीं है कि एक-एक समूह के निर्माण के बाद इनका अन्त हो जाये। इन्द्रिय तथा तन्मात्राओं के समूह का मिश्रण भी निरन्तर चलता ही रहता है अतः इन्द्रिय एवं तन्मात्राओं के समूह का योग एक नहीं अनेक होता है। जैसा कि कहा भी है।

"...एका तु प्रकृतिर चेतना, त्रिगुणा बीज धर्मिणी"...चेति।
वहवस्तु पुरुषाश्चेतनावन्तोऽगुणा"......चेति ॥११॥
सु० शा० १ अ०

चेतना युक्त प्रकृति यानी महत्तत्व तो एक ही है मगर उसके सत्व, रज, तम के क्रिया के परिणाम स्वरूप इन्द्रिय एवं तन्मात्राओं के योग से उत्पन्न पुरुष (क्रिया शक्ति का योग) अनेक हैं। और यह अगुण है चेतन है बीज धर्म रहित है प्रसव धर्म विहीन है। यह मध्यस्थ है यानी समस्त इन्द्रियों एवं अधिष्ठान क्रियाओं को बांध कर एक में रखने वाला है।

सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर यानी ग्यारह इन्द्रियां पांच अधिष्ठान क्रिया तथा क्रियाशक्ति के संयोग का योग एक नहीं अनेक हैं। चूंकि इन्द्रियां क्रिया रूप हैं और जितनी भी क्रियायें हैं सभी को ये करने में समर्थ हैं। और ऐसा कोई बंधन नहीं कि ये अमुक क्रिया ही को करें अमुक को नहीं सिवाय अधिष्ठान निर्माण क्रिया के, ये क्रिया करने में स्वतन्त्र एवं असीम हैं। क्रिया का काम ही कोई न कोई क्रिया को करना हैं यदि वह क्रिया शक्ति सम्पन्न हैं, वह निश्चेष्ट नहीं रह सकतीं। अतः इन्द्रियां क्रिया करती हैं। इनके साथ की अधिष्ठान क्रिया का काम है इन्द्रियों के क्रियानुकूल उन्हें एक अधिष्ठान प्रदान करना, यह चूंकि स्वयं अधिष्ठान बीजमय नहीं है अतः यह अनुकूल बीज के साथ सूक्ष्म शरीर का संयोग करा बीज के साथ स्वयं संयुक्त हो बड़ी शीघ्रता पूर्वक उससे इन्द्रियों को उनके इच्छित अधिष्ठानों को देता है। अधिष्ठान क्रिया जब एक बार किसी बीज (अधिष्ठान) से संयुक्त हो जाती है तो उसी बीज की क्रिया को बढ़ा देती है या उसे ही स्वयं ग्रहण कर क्रिया करने लगती है। यद्यपि कि अधिष्ठान क्रिया समस्त अधिष्ठानों के निर्माण की सामर्थ्य रखती है मगर जिस बीज के साथ संयुक्त होती है उसके अतिरिक्त अधिष्ठान का निर्माण यह

नहीं करती चूंकि यह स्वयं अबीज रहता है और जिस बीज को इसने धारण किया है वह दूसरे अधिष्ठान का बीज नहीं। अतः एक बार किसी बीज के साथ संयोग हो जाने के बाद इन्द्रियों पर एक विशेष दिशा में (बीजानुकूल) में ही क्रिया करते रहने का बन्धन पड़ जाता है। मगर क्रिया करने में इन्द्रियां हैं स्वतन्त्र, इस नियम का पालन वह करे ऐसा कोई आवश्यक नहीं है यद्यपि कि वह इसे पालन करने की चेष्टा करती हैं। जब तक उसकी बहुसंख्यक क्रियायें बीजानुकूल रहें तब तक तो वे एक साथ रहें यानी इन्द्रियां अधिष्ठान क्रिया एवं क्रिया शक्ति का समुदाय, सूक्ष्म शरीर एवं अधिष्ठान क्रिया द्वारा चुने गये बीज। मगर जैसे ही इन्द्रियों की बहुसंख्यक चेष्टायें ऐसी होने लगीं जो बीजानुकूल नहीं हैं वैसे ही अधिष्ठान क्रिया उस बीज को छोड़ इन्द्रियों के क्रियानुकूल किसी दूसरे बीज को धारण कर इन्द्रियों को उनके इच्छित अधिष्ठान देता है। अधिष्ठान क्रिया के इसी विशिष्ट क्रिया का नाम "जन्म एवं मृत्यु है"। एक बीज को ग्रहण करना जन्म एवं उसे छोड़ना मृत्यु। इसी को भारतीय दार्शनिकों ने कहा है कि कर्मानुसार शरीर धारण होता है।

इन्द्रिय अधिष्ठान क्रिया एवं क्रिया शक्ति के योग सूक्ष्म शरीर अनेक हैं बीज भी अनेक हैं इन्द्रियों के क्रियानुकूल बीजों को अधिष्ठान क्रिया धारण करता हुआ विभिन्न प्रकार के प्राणियों के शरीर का रूप लेता है। ऐसा नहीं है कि क्रम-क्रम से एक ही प्रकार का बीज विस्तार पाता हुआ अनेकों रूप में आता है। कर्मानुसार यह स्वतः ही बीजों को धारण करता है और छोड़ता है।

बीज निर्माण

यह पहले लिखा जा चुका है कि तन्मात्राओं से अधिष्ठान अंश अलग अपना विस्तार करने लगते हैं।

तन्मात्राओं का अधिष्ठान अंश भी क्रिया गुण युक्त है मगर इसकी क्रिया क्रम-क्रम से शृंखला बद्ध रूप से एक के बाद दूसरे का निर्माण करते जाना है; यह ऐसा नहीं कर सकता कि बीच के किसी अंश को छोड़ या उल्लंघन कर तीसरे चौथे या पांचवें क्रम का काम करने लगे। यह अत्यधिक नियमित रूप में क्रिया करती है चूंकि यह तम प्रधान है और नियम तम का स्वभाव है। इसी का क्रिया-अंश यानी अधिष्ठान क्रिया में यह बात नहीं होती वह जिस किसी भी बीज के साथ संयुक्त होजाता है वहां ही से वह अपना कार्य्य आरम्भ कर देता है और बीज का विस्तार क्रम-क्रम से करता है। वह ऐसा नहीं करता कि एक बीज के बाद ही दूसरे बीज से संयुक्त हो, वह कर्मानुसार एक ही प्रकार के बीज से बार-बार भी संयुक्त हो सकता है कर्मानुसार एक से दूसरे बीज से संयुक्त होता है इसमें कोई शृंखला नहीं रहती कि इस बीज के बाद इस बीज को और उसके बाद तीसरे बीज को ही ग्रहण करे।

पंच तन्मात्राओं के अधिष्ठान अंश जिनका नाम क्रमशः शब्द तन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा एवं गन्ध तन्मात्रा है वे परस्पर एक दूसरे से संयुक्त होते हैं। इसमें वे एक नियम का पालन करते हैं। वह नियम यह है कि जब कभी ये मिलते हैं तो इनकी मात्रा संख्या आदि एक ही होती है और जब कभी दो अधिष्ठान अंश परस्पर मिलेंगे तो अपने पूर्व के अधिष्ठान अंशों के साथ मिलेंगे जैसे स्पर्शतन्मात्रा गन्धतन्मात्रा से मिलेगी तो जितनी संख्या मात्रा आदि स्पर्शतन्मात्रा की होगी उतनी ही गन्धतन्मात्रा की होगी और स्पर्शतन्मात्रा अपने पूर्व की तन्मात्रा शब्द तन्मात्र के साथ होगी और गन्ध तन्मात्रा अपने पूर्व की तन्मात्रा रूपतन्मात्रा एवं रस तन्मात्रा के साथ होगी और इनकी भी संख्या वही होगी जो स्पर्शतन्मात्रा एवं गन्धतन्मात्रा की रहती है। यानी एक एक की संख्या में शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध पांचों तन्मात्राओं का संयोग कभी भी दो की संख्या में नहीं होता है।

तन्मात्राओं के अधिष्ठान अंश का नाम अधिष्ठान इकाई है। और ये जब परस्पर मिश्रित होंगे तो एक ही इकाई में होंगे। ऐसा नहीं होगा कि शब्द तन्मात्रा की दो इकाई स्पर्श तन्मात्रा की दो इकाई के

साथ एक साथ संयुक्त हों जब संयोग होगा तब एक इकाई शब्द तन्मात्रा का एवं एक इकाई स्पर्शतन्मात्रा का रहेगा। दो इकाई की संख्या में ये कभी भी संयुक्त नहीं होते।

यह पहले लिखा जा चुका है कि रज एवं तम के योग से पांच योग बनते हैं। १—आवरणमय-तेज, २-आवरणमय स्पर्श, ३-अवलम्बमय तेज, ४-अवलम्बमय स्पर्श, ५-अवलम्बमय तेज स्पर्श। जब तेज या संघर्ष आवृत होता है तो एक साथ दो वस्तुओं का निर्माण होता है एक तो इन दोनों के योग से एक प्रकार की क्रिया उत्पन्न होती है और दूसरा उस क्रिया को धारण किये रहने वाला अधिष्ठान। संघर्ष के आवृत होने पर शब्द नामक क्रिया उत्पन्न होती है और शब्द ही नामक अधिष्ठान भी। शब्द नामक अधिष्ठान आवरण एवं संघर्ष दो क्रियाओं का परिणाम है जो इन दोनों की सम्मिलित क्रिया को धारण कर यह बताता है कि ये दोनों क्रियायें हो रही हैं। इसी प्रकार आवरणमय स्पर्शादि के परिणाम स्वरूप स्पर्श, रूप, रस, गन्ध है। इनका वह अंश जो आवरण एवं संघर्ष क्रिया की सम्मिलित क्रिया है जिसे अधिष्ठान क्रिया कहा गया है वह तो तन्मात्राओं से संयुक्त होजाता है और वह अंश जो उस क्रिया को धारण कर आवरण एवं स्पर्श आदि की क्रिया के होने का सूचक होता है, वे परस्पर मिलते हैं।

जब संघर्ष आवरण द्वारा आवृत होता है तब शब्द उत्पन्न होता है और शब्द अपने रहने के लिए स्थान का निर्माण करता है। यह स्थान निर्माण क्रिया शब्द रूपी अधिष्ठान की अपनी क्रिया है। आवरण एवं संघर्ष के क्रियाशील होने से जो क्रिया उत्पन्न होती है यानी आवरण एवं संघर्ष की मिश्रित क्रिया उसका नहीं, वह तो इन्द्रियों से संयुक्त होजाती है। अतः शब्द का परिणाम स्थान या दिक् होता है जिसके समूह का नाम आकाश है।

इसी प्रकार जब स्पर्श आवरण मय होता है तो इन दोनों की मिश्रित क्रिया तो इन्द्रिय से मिल जाते हैं और उसका परिणाम स्पर्श [illegible]

है मगर स्पर्श बिना स्थान के रह नहीं सकता अतः यह स्थान या आकाश से संयुक्त होजाता है और ये दोनों मिलकर एक ऐसी वस्तु का निर्माण करते हैं जिसमें स्थान भी है और स्पर्श भी है और चूंकि स्थान फैलने वाला है यह निरन्तर बनता एवं फैलता रहता है अतः स्पर्श भी इसके साथ फैलता है इसी लिये इन दोनों के संयोग से एक ऐसी वस्तु का निर्माण होता है जिसमें स्थान है, स्पर्श है एवं गति है। इस वस्तु के समूह का नाम वायु है।

इसी प्रकार जब संघर्ष प्रगाढ़ आवरण में आता है तब संघर्ष एवं आवरण की क्रिया की सम्मलित क्रिया तो इन्द्रियों से सम्मलित होती है और उसका परिणाम रूप बचा रह जाता है। संघर्ष एक अवलम्ब प्राप्त कर रूप धारण तो कर लेता है मगर उसके रहने के लिये भी स्थान की आवश्यकता है अन्यथा अवलम्ब की स्थति रहेगी कहां। स्थान स्पर्श को साथ लिये है अतः इन तीनों का संयोग होता है। संघर्ष (अवलम्ब सह) को स्थान एवं स्पर्श मिलता है स्पर्श पाते ही एक दूसरी वस्तु ताप की उत्पत्ति होती है। अतः इन तीनों के सहयोग से एक ऐसी वस्तु की उत्पत्ति होती है। जिसमें ताप है स्पर्श है स्थान है संघर्ष है रूप है। इस वस्तु के समूह का नाम अग्नि है।

इसी प्रकार जब स्पर्श प्रगाढ़ आवरण में आता है तो स्पर्श एवं आवरण की क्रिया की सम्मलित क्रिया तो इन्द्रियों से मिल जाती है मगर इसका परिणाम अवलम्ब मय स्पर्श बचा रहजाता है। इस अवलम्बमय स्पर्श के लिये भी स्थान चाहिये और स्थान के साथ स्पर्श भी है रूप भी है। उसके साथ मिलकर इसका स्पर्श विगुणित हो उठता है। इसे रूप भी प्राप्त होता है अतः इसका रूप भी विगुणित हो उठाता है अतः इनके मिश्रण से एक ऐसी वस्तु का निर्माण होजाता है जिसे स्थान भी हो विगुणित रूप का स्पर्श हो विगुणित रूप का अवलम्ब हो। इसके समूह का नाम 'जल' है।

इसी प्रकार जब संघर्ष एवं स्पर्श दोनों ही अव- [illegible]

...ता तो इन्द्रियों से मिल जाती है और इसका परि-
...म अवलम्बमय संघर्ष स्पर्श बचा रह जाता है।
...भी स्थान की आवश्यकता है और स्थान स्पर्श
...और रस युक्त है। अतः एक ऐसी वस्तु का
...णि होता है जिसमें पर्य्याप्त रूप से स्थानादि सभी
...ह एक ठोस रूप धारण करता है। इनके
...ह का नाम पृथ्वी है।

इस प्रकार तन्मात्राओं के अधिष्ठान अंश से
...महाभूतों की उत्पत्ति है। महाभूतों का जो उक्त
...नाम करण प्रत्यक्ष की वस्तुओं पर किया गया
...ऐसा नहीं है कि वह वस्तु ही जैसे 'जल' ही महा-
...है। जल में जल महाभूत के गुण अधिकांश में
...और जल एक प्रत्यक्ष वस्तु है अतः इसका नाम
...सौकार्य्यार्थ जल महाभूत दिया गया है। अन्यथा
...महाभूत क्या शुद्ध द्रव्य भी नहीं है। महाभूतों
...परिचय निम्नलिखित है—

...—सुषिर एवं शब्द लक्षण जिसमें हो, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो वह आकाश महाभूत है।

आकाशं सुषिरं तस्मादुत्पन्नं शब्द लक्षणम्।

...—जिसमें स्थान शब्द एवं स्पर्श या गति एक साथ हों इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो उसे वायु कहते हैं।

...—जिसमें स्थान, शब्द, स्पर्श गति रूप एवं ताप एक साथ हो इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो उसे अग्नि कहते हैं।

...—जिसमें स्थान शब्द स्पर्श गति रूप ताप एवं रस एक साथ हो इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो उसे जल महाभूत कहते हैं।

...—जिसमें स्थान, शब्द, स्पर्श गति रूप ताप रस गन्ध एवं ठोसता एक साथ हो उसे पृथ्वी महाभूत कहते हैं।

महाभूत सभी इन्द्रिय अगोचर हैं—इनके परि-
...के द्वारा ही इनकी अनुभूति होती है। महा-
...के मिश्रण से शुद्ध द्रव्यों की जिसे तन्व
(...ments) कहते हैं निर्माण होता है और तन्वो सह महाभूतों के मिश्रण से मिश्रित द्रव्यों का निर्माण होता है। जिसके सम्बन्ध में पहिले लिखा जा चुका है।

जब महाभूतों के किसी योग में ऐसा होता है कि माध्यम या अधिष्ठान अंश तथा क्रिया अंश दोनों बराबर हों और क्रिया अंश भी परस्पर बराबर हों तो यह योग वह 'बीज अधिष्ठान' सिद्ध होता है जिसके साथ (इन्द्रियों के साथ युक्त हुई अधिष्ठान क्रिया) सूक्ष्म शरीर की अधिष्ठान क्रिया संयुक्त हो अधिष्ठान का निर्माण करती है।

धातु निर्माण एवं क्रिया—

यह पहिले लिखा जा चुका है कि मूलप्रकृति, क्रिया एवं माध्यम या अधिष्ठान का योग है। माध्यम या अधिष्ठान भी इसमें उतना ही सूक्ष्म है जितनी कि क्रिया स्वयं है। यद्यपि कि अहंकारावस्था से ये दोनों यानी क्रिया अंश एवं माध्यम अंश अपना अपना विस्तार अलग अलग करने लगते हैं तथापि दोनों एक दूसरे से सर्वथा भिन्न नहीं होते हैं, ऐसा नहीं होता कि क्रिया अंश अधिष्ठान विहीन है और अधिष्ठान अंश क्रिया विहीन है। इसके सम्बन्ध में पहिले लिखा जा चुका है। इस प्रकार दोनों बराबर एक दूसरे के साथ रहते हैं और यह बात इन्द्रिय अगोचर द्रव्यों तक रहती है। जैसे ही पांचों महाभूत एक साथ संयुक्त हुए कि यह बात जाती रहती है। अब क्रिया अंश एकदम अलग अधिष्ठान अंश एकदम अलग होजाता है। इसी क्रिया अंश यानी विलग हुये क्रिया अंश का नाम 'दोष-धातु या मल है।

द्रव्य सभी पंच भौतिक हैं जैसा कि पहिले लिख आए हैं। सभी द्रव्यों के साथ दोष-धातु या मल है चाहे वे निराकार हों चाहे साकार चाहे शुद्ध द्रव्य हों या मिश्रित द्रव्य हों सभी के साथ यह है। चूंकि यही उन्हें बन्दी बना धारण करने वाला है। महाभूतों की संख्या मतानुसार द्रव्यों में इसकी भी मात्रादि न्यूनाधिक्य होती है। यद्यपि कि यह सभी द्रव्यों में है तथापि महाभूतों के मात्रादि के अनुसार सभी में यह एक नहीं होते। यद्यपि कि द्रव्य सभी पंच भौतिक हैं तथापि महाभूतों के मात्रा विभेद के कारण सभी एक नहीं होते।

तन्मात्राओं में तीन प्रकार की क्रियायें क्रिया करती हैं बल्कि यह कहा जा सकता है कि तीन ही प्रकार की क्रियाओं के परिणाम तन्मात्रा हैं एक आवरण या अवलम्ब क्रिया, दूसरी संघर्ष क्रिया और तीसरी स्पर्श क्रिया। रज एवं तम की यही तीन क्रियायें मिल कर तन्मात्राओं को उत्पन्न करती हैं। अतः तन्मात्राओं के परिणाम महाभूतों में भी न्यूनाधिक्य रूप से इन्हीं तीन क्रियाओं की उपस्थिति रहती है। मात्रा एवं संयोग विभेद से यही तीन क्रियायें पांच क्रियाओं का रूप ले पांच महाभूतों में रहती हैं। जब पांचों महाभूत एक साथ संयुक्त होते हैं तो पांचों की क्रिया मिलकर पुनः तीन की तीन हो जाती हैं। अतः धातु तीन क्रियाओं का योग है एक अवलम्ब क्रिया दूसरी संघर्ष क्रिया तीसरी स्पर्श क्रिया। इन्हें क्रमशः कफ, पित्त वायु संज्ञा दी गई है। ये तीनों परस्पर मिलकर अधिष्ठान को अपने में बन्दी बना उसे धारण किये रहते हैं। अधिष्ठान का धारण एवं पोषण तथा वृद्धि यही इनकी क्रियायें हैं। इसमें धारण कफ की प्रमुख क्रिया है पोषण पित्त की एवं वृद्धि वायु की। यद्यपि ये तीनों परस्पर मिलकर ही इस क्रिया को करते हैं, धारण में कफ, पित्त, वायु पोषण में भी कफ, पित्त, वायु एवं वृद्धि में भी कफ पित्त वायु तीनों ही रहते हैं तथापि एक एक प्रमुख रूप से इन तीनों में से एक एक क्रिया को करते हैं। धारण पोषण एवं वृद्धि इन तीन क्रियाओं को धातु विभिन्न क्रियाओं द्वारा सम्पादित करता है—

अवलम्ब क्रिया—

१. अधिष्ठान अंशों को एक अवलम्ब देकर।

२. अधिष्ठान अंशों को एक साथ आवद्ध रख कर।

३. ग्रहण की हुई वस्तुओं को आलिंगन कोश में रहने योग्य बनाकर।

४. ग्रहण की हुई वस्तुओं को ऐसे बन्धन में रख कर कि उनका संवहन हो सके।

५. ग्रहण की हुईवस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने योग्य रहे उन्हें ऐसा बना कर।

इस प्रकार अवलम्ब क्रिया अपने अधिष्ठानों को उक्त पांच क्रियाओं के द्वारा अवलम्ब प्रदान करता है। क्रिया विशेष के कारण इनका विशिष्ट नाम दिया गया है और ये पांच अवलम्ब क्रिया के भेद कहे जाते हैं।

१—अवलम्ब देने के कारण अवलम्बक।

२—आवद्ध रखने के कारण श्लेष्मण (श्लिष् आलिंगने)।

३—बंधन में रखने योग्य बनाने के कारण क्लेदन।

४—उसका संवहन हो सके इस योग्य बनाये रखने के कारण रसन।

५—एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सके इस योग्य बनाये रखने के कारण स्नेहन।

इस प्रकार पांच विभिन्न नाम से अवलम्बन क्रिया अपना काम सम्पादित करती है।

संघर्ष क्रिया या पोषण क्रिया (पित्त)—

१–किसी भी वस्तु के अस्तित्व का ज्ञान करके।

२–उसके लिए संघर्ष करके।

३–अनुकूल प्रतिकूल या उपयोगी अनुपयोगी का विवेचन करके।

४–ग्रहण की हुई वस्तु को उसी रूप में लाकर जिस रूप में अधिष्ठान है।

५–संघर्ष के ताप को बनाये रखकर।

क्रियानुसार इनका नाम भी अलग-अलग है और ये पांच संघर्ष क्रिया के भेद कहे जाते हैं।

१—वस्तु के अस्तित्व का ज्ञान करने के कारण आलोचक।

२–उसके लिए संघर्ष करने के कारण पाचक।

३—अनुकूल प्रतिकूल उपयोगी अनुपयोगी आदि विभेदक ज्ञान के कारण साधक।

४–ग्रहण की हुई वस्तु को अपने अधिष्ठान के रूप में लाने के कारण रंजक।

५–संघर्ष के ताप को बनाये रखने के कारण भ्राजक।

इन पांच विभिन्न नाम से संघर्ष की उक्त पांचों क्रियाएें जानी जाती हैं।

वृद्धि क्रिया (वात)—

१—किसी भी अनुकूल वस्तु को ग्रहण करके।

२–उसे सर्वत्र पहुँचाकर या संवाहित करके।

सफल औषधियां

इन औषधियों का व्यवहार हजारों वैद्यों तथा डाक्टरों द्वारा अपने रोगियों पर सफलतापूर्वक किया जा रहा है। तथा अपने गुणों के कारण ये औषधियां सर्वत्र प्रचार पाती जा रही हैं। औषधि विक्रेताओं तथा चिकित्सकों को (जिन्होंने इनका उपयोग अभी तक नहीं किया है) इन औषधियों को मंगाकर व्यवहार कराना चाहिए। विश्वास रखें ये औषधियां पूर्ण परीक्षित हैं तथा विशुद्ध आयुर्वेदिक हैं।

मकरध्वज वटी—विशुद्ध आयुर्वेदिक टॉनिक है। सभी प्रकार की निर्बलता नष्ट करने के लिए अद्वितीय प्रमाणित है। मूल्य ४१ गोलियों की १ शीशी २॥)

कुमारकल्याण घुटी—बच्चों के सभी रोगों को शमन कर उनको मोटा, ताजा, सुडौल बनाने वाली सर्वोत्तम घुटी है। मूल्य १ शीशी ।=)

कासारि—सभी प्रकार की खांसी को नष्ट करने वाली अत्युत्तम एवं सस्ती दवा है। शर्वत रूप में है तथा अन्य औषधियों के अनुपान रूप में शहद के स्थान पर अनेक चिकित्सक प्रयोग कर रहे हैं। मूल्य ५ मात्रा की शीशी ।=), २० मात्रा की शीशी १)

ज्वरारि—ज्वर-जूड़ी-ताप को शीघ्र नष्ट करने वाली विशुद्ध आयुर्वेदिक महौषधि है। मलेरिया के उपद्रवों को भी शमन करती है। मूल्य १० मात्रा की शीशी १), २० मात्रा की १॥।)

खाजरिपु—गीली और सूखी खाज को शीघ्र नष्ट करने वाला तैल। सैकड़ों हजारों रोगियों पर सफल प्रमाणित। छोटी शीशी ॥=), बड़ी शीशी १)

कर्णामृत तैल—कान में सांय-सांय शब्द होना, दर्द होना, मवाद बहना आदि कर्ण रोगों के लिए सर्वोत्तम। मूल्य १ शीशी ॥=)

कामिनीगर्भ रक्षक—गर्भपात या गर्भस्राव होने से जिनके बच्चे न रहते हों उनको गर्भ रहने के बाद नियमित दीजियेगा, कोई कष्ट न होगा तथा बच्चा स्वस्थ पैदा होगा। मूल्य १ शीशी २)

श्वेतकुष्ठहर सैट—श्वित्ररोग (सफेद दाग की बीमारी) को नष्ट करने में सफल प्रमाणित सैकड़ों रोगी इन औषधियों को व्यवहार करने से इस दुष्ट रोग से छुटकारा प्राप्त कर चुके हैं। मू. १५ दिन सेवन योग्य ५)

वातरोगहर सैट—वातनाशक तैल, रस एवं अवलेह इनको व्यवहार कर सैकड़ों रोगी भीषण वात रोगों से छुटकारा पा चुके हैं। १५ दिन की तीनों दवा का १०)

मनोरम चूर्ण—स्वादिष्ट, पाचक एवं मन को प्रसन्न करने वाला अत्युत्तम चूर्ण। बड़ी शीशी ॥), छोटी शीशी ।=)

अग्निवल्लभ क्षार—उदर रोगों को नष्ट करने वाला। पेट में पैदा होने वाली वायु, अफरा, अजीर्ण, अरुचि को शीघ्र नष्ट करता है। मूल्य १ शीशी १)

नयनामृत सुरमा—ज्योतिवर्द्धक नित्य व्यवहार करने योग्य सुरमा। मूल्य ३ माशा की शीशी ॥)

वातारि वटी—वातरोगों के लिए सस्ती और सफल औषधि। ५० गोली की शीशी का मूल्य २)

करंजादि वटी—मलेरिया के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध 'करंज' गिरी के योग से बनी सफल चमत्कारिक औषधि। मूल्य ५० गोली की शीशी १)

अर्श रोगहर सैट—वटी, मलहम तथा चूर्ण तीन औषधियों के व्यवहार करने से अर्श रोग अवश्य नष्ट होता है। १५ दिन की तीनों दवाओं का मूल्य ३)

एजेंटों तथा थोक खरीदारों को कमीशन दिया जाता है। थोक भाव का सूचीपत्र पत्र डालकर मंगालें।

निर्माता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

शास्त्रीय पद्धति एवं उत्तम मूल-द्रव्यों द्वारा प्रस्तुत

धन्वन्तरि कार्यालय की

आयुर्वेदीय औषधियां

अपनी सर्वांगपूर्णता एवं सद्यः गुणकारिता के लिए विगत ६० वर्षों से सुप्रसिद्ध हैं। भारत भर के वैद्य-कविराज और आयुर्वेद प्रेमी जनता-चिकित्सा-कार्य में पूर्ण विश्वास के साथ इनको सदा व्यवहार करते तथा इनके उपयोग से लाभान्वित होते हैं। आप भी अपने शरीर को स्वस्थ, सबल और नीरोग रखने तथा अपने रोगी-चिकित्सा में शीघ्र सफलता हेतु हमेशा इनका व्यवहार कीजिये।

धन्वन्तरि कार्यालय द्वारा प्रस्तुत औषधियों का थोक भाव का सूचीपत्र गुप्तसिद्ध प्रयोगांक (चतुर्थ भाग) इस वर्ष के विशेषांक के अन्त में लगा है उसे देखें, अथवा पत्र डालकर सूचीपत्र मंगालें।

धन्वन्तरि कार्यालय

विजयगढ़ (अलीगढ़)

[आयुर्वेदीय औषधियों की विश्वस्त निर्माणशाला]

• इस अङ्क में पढ़िये •

दिसम्बर १६५८
भाग ३२ अंक १२

वार्षिक मूल्य
साढ़े पांच रुपया

[..]दक ० आयुर्वेदोपाध्याय देवीशरण गर्ग, ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B[..]

धन्वन्तरि के प्रेमी ग्राहकों की सेवा में

निवेदन

१—इस वर्ष का यह बारहवां (अन्तिम) अङ्क है। इसके पश्चात् ३२ वें वर्ष का प्रथम एवं द्वितीय अङ्क—काय-चिकित्सा—नामक विशेषांक प्रकाशित होगा। यह जनवरी फरवरी १९५९ का अङ्क होगा तथा मार्च के अन्तिम सप्ताह में भेजा जायगा। इस विशेषांक की छपाई शीघ्र प्रारम्भ हो रही है।

२—इस विशेषांक की उपयोगिता एवं विशालता के विषय में अधिक लिखना नहीं है, केवल इतना ही हम कहना चाहते हैं कि यह विशेषांक चिकित्सकों तथा पठित आयुर्वेद प्रेमी जनता के लिये अलभ्य साहित्य होगा। चिकित्सकों की सफलता में पूर्ण सहायक होगा। विद्यार्थियों को काय-चिकित्सा विषयक उपयोगी साहित्य होगा, शिक्षकों को उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में और समझाने में सहायक होगा। गृहस्थियों को जटिल रोगों के शमनार्थ चिकित्सा सूत्र प्रदान करेगा। यह विशेषांक पहले सभी विशेषांकों से अधिक उपयोगी एवं सुन्दर बनाने के लिये अनेक विद्वान सहयोग प्रदान कर रहे हैं। इसमें सैकड़ों ही उपयोगी चित्र दिये जा रहे हैं। यह विशेषांक हर दृष्टि से अति सुन्दर, अति उपयोगी होगा।

३—इसकी उपयोगिता को समझते हुये, आगामी [illegible] के लिये नवीन ग्राहक बड़ी संख्या में बन रहे हैं। अतएव सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे अपना वार्षिक मू० तुरंत भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करलें। रुपया भेजते समय ध्यान रखें—

अ—ग्राहक नम्बर अवश्य लिख दें।

आ—नाम, पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में मनिआर्डर के कूपन पर अवश्य लिखें।

इ—जो नये ग्राहक बन रहे हों वे कूपन में "नया ग्राहक" शब्द अवश्य लिखें।

ई—मनीआर्डर यथा सम्भव शीघ्र भेजदें।

४—इस अंक के साथ मनीआर्डर फार्म भेजा गया है जो ग्राहक राजसंस्करण मंगाना चाहें वे ६॥) मनीआर्डर से भेजें। मनीआर्डर पर रुपया स्वयं लि[illegible] दीजियेगा। सदैव की भांति ग्लेज कागज पर रा[illegible] संस्करण भी छापा जा रहा है।

६—जहां तक सम्भव हो नये ग्राहक बना-ब[illegible] उनके रुपये भिजवाने का प्रयत्न शीघ्र कीजिये, धन्व[illegible] का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही [illegible] उपयोगी साहित्य हम धन्वन्तरि द्वारा आपको [illegible] करने में समर्थ हो सकेंगे। इसलिये धन्वन्त[illegible] ग्राहक बनाना आपका कर्त्तव्य है।

७—जिन पुराने ग्राहकों को किसी कारण ग्राहक न रहना हो वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिख[illegible] सूचना अवश्य देदें। जिससे वी. पी. भेजकर व्य[illegible] डाक खर्च की हानि न उठानी पड़े। आपके ती[illegible] पैसे खर्च होंगे और हमारे ।|≡) की हानि बच जायगी। आशा है धन्वन्तरि से विदा लेने वाले सज्जन चलते-चलाते ।|≡) की हानि पहुंचाकर धन्वन्तरि की कमर में ठोकर मारने जैसा अनुचित व्यवहार न करेंगे और यदि ग्राहक नहीं रहना है तो तुरन्त सूचित कर देंगे।

८—इस वर्ष सभी अंक बड़ी सावधानी से ग्राहकों को भेजे गये हैं फिर भी कोई साधारण अंक न मिला हो तो सूचित करदें जिससे कि वह अंक भेज दें। चौथा, पांचवां अंक समाप्त होगए हैं।
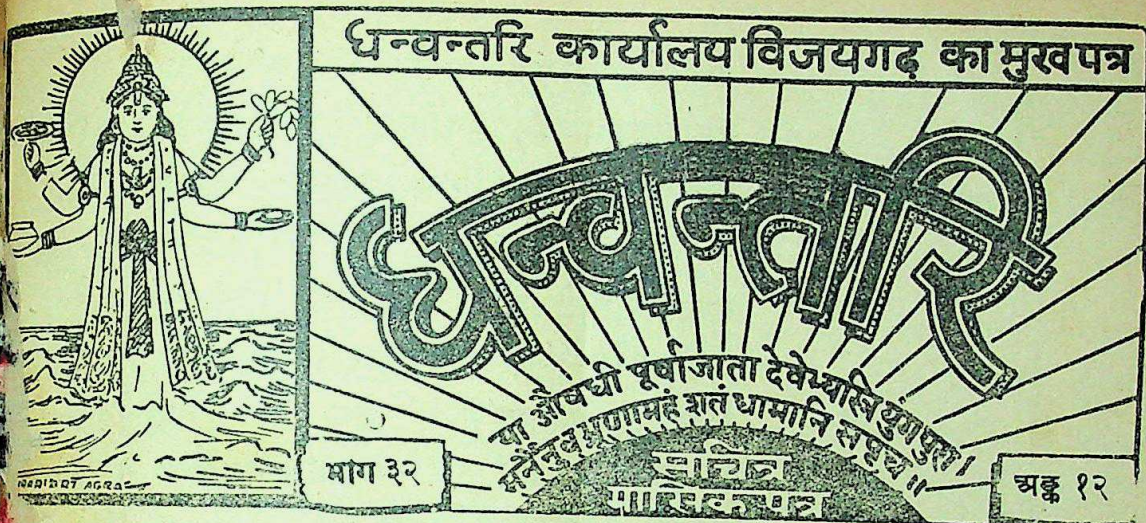
दो अक्षय वरदान

आयुर्वेद-प्रवर्तक-प्रभुवर, 'धन्वन्तरि' भगवान् !
रोग-मुक्ति का आज जगत को दो अक्षय-वरदान् ॥

ारिधि-सुत' यह धरा तुम्हारी क्यों है आज अधीर ?
र-घर आज रोग के मारे पड़े हुये क्यों वीर ?
ों बढ़ती जाती है जग में नित-नित नूतन पीर ?
ाज कहां वह गया स्वस्थ वह सुखप्रद-शांत समीर ?

आज लुप्त हो गई हमारे आर्यों की सब शान।
रोग-मुक्ति का आज जगत को दो अक्षय-वरदान् ॥

भारत-वासी आज विकल सब, पड़े रोग के मारे।
बने हुए हैं दास आज ये अल्प-आयु के सारे ॥
कान्ति, ओज, बल दूर भगे सब मुरझाये बेचारे।
आज तेज-हत हुये धरा के बाल-तरुण सब तारे ॥

इनके मिटने से मिट जायेगा प्रभु तेरा मान।
आयुर्वेद-प्रवर्तक-प्रभुवर, 'धन्वन्तरि' भगवान् ॥

प्रभु ! भूले भटके चरणों में हम फिर से हैं आये।
श्रद्धा-कुसुम, नीर-नयनों का यही चढ़ाने लाये ॥
जन्म-दिवस पर आज तुम्हारे सुख के बादल छाये।
आज अभय कर दो जन-जन को जग सुखमय हो जाये ॥

आज तुम्हारे हाथों में है धन जन का उत्थान।
आयुर्वेद-प्रवर्तक-प्रभुवर, 'धन्वन्तरि' भगवान् ॥

—कविराज लक्ष्मीनारायण गुप्त "आयुर्वेद रत्न"।

श्री धन्वन्तरि प्रार्थना

क्षीरार्णवसमुद्भूतं, पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।
पीयूषकुम्भधारकं, श्रीवत्साङ्कित वक्षसम् ॥ १ ॥
करधृतशङ्खचक्रं पथ्याविलसित हस्तम् ।
किरीटकुण्डलान्वितं, दीर्घपीवरदोर्दण्डम् ॥ २ ॥
कम्बुग्रीवाम्बुजेक्षणं, मणिमालाविराजितम् ।
सुचारुकपोलनासं, सुन्दरभ्रूलताञ्चितम् ॥ ३ ॥
दिव्याङ्गदलसद्बाहुं; केयूरपरिशोभितम् ।
विशालोरः पृथुश्रवं, निम्ननाभिस्थूलजंघम् ॥ ४ ॥
स्वङ्गुलितलशोभाढ्यं, गूढजत्रुं महाहनुम् ।
सुलक्षणपदाङ्गुष्ठं, सर्वसामुद्रिकान्वितम् ॥ ५ ॥
प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं, नवयौवन सम्पन्नम् ।
कोटिमन्मथसंकाशं, सर्वावयवसुन्दरम् ॥ ६ ॥
सुरासुराराधिताङ्घ्रिं, जगत्त्राणपरायणम् ।
अष्टैश्वर्यविभूषितं, भगवन्तं भक्तप्रियम् ॥ ७ ॥
जगदानन्ददायकम्, शरणांगतरक्षकम् ।
आयुर्वेदाधिदैवतं शल्यतन्त्रप्रवर्तकम् ॥ ८ ॥
द्वापर युगोत्पन्नञ्च सदाधर्मनियामकम् ।
धन्वपुत्रं काशिराजं देवस्तुत्या दिवोदासम् ॥ ९ ॥
त्रेतायुग समुत्पन्नं महर्षिगालवात्मजम् ।
धनगुप्तोद्धारकञ्च दयालुं दीनवत्सलम् ॥ १० ॥
ब्रह्माण्डनायकं विभुं जरारोगप्रणाशकम् ।
धीरोदात्तगुणोज्वलं दिव्यौषधप्रकाशकम् ॥ ११ ॥
सुश्रुतादि प्रशिक्षकं महर्षिवृन्दवन्दितम् ।
ध्यातृपापसंहारकं ध्यातृतापत्रयहरम् ॥ १२ ॥
धार्मिकजनंध्यातृकं धरणीभारध्वंसकम् ।
ध्यातृध्येय पदाम्बुजं धनधान्यप्रदायकम् ॥ १३ ॥
धैर्यवतांधैर्यप्रदं त्रिदोषदोषहारकम् ।
आदिदेवंमहाप्रभुं विष्णोरंशांशसंभवम् ॥ १४ ॥
नित्यञ्चापूर्वभिषजं प्राणाचार्यमहातीर्थम् ।
अथर्ववेदविज्ञानं वन्दे धन्वन्तरि देवम् ॥ १५ ॥

प्रार्थयिता

—श्री पं० बालकराम शुक्ल शास्त्री, आयुर्वेदशास्त्राचार्य ।

शुक-तुण्ड ताम्र

लेखक—श्री रामेश वेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

इस लेख में हम श्री नारायण स्वामी जी के कुछ अनुभव दे रहे हैं। पारद में बीज जारण के लिए ताम्र की जिस प्रकार विशेष शुद्धि की जाती है उसकी सरल तथा स्वामी जी द्वारा अनुभूत विधियां हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। इनमें से कुछ विधियों का शास्त्रों में अति सूक्ष्म रूप में उल्लेख मिलता है। कुछ विधियां साधु समाज में तथा फकीरों में प्रचलित हैं। पारद अनुसन्धानशाला के परीक्षणों में जिन विधियों की परीक्षा की गई है उन में से कुछ का विवरण हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

शुक तुण्ड ताम्र

इसे बनाने के लिए ताम्र की शुद्धि करनी चाहिए। शोधन के लिए अनेक विधान हैं। सरल, प्रभावपूर्ण और अनुभूत विधियां यहां लिखी जाती हैं।

शोधन की पहली विधि

रसरत्न समुच्चय के आधार पर इस विधि से शोधन किया गया है। बिजली की तारों का ताम्र इस परीक्षण में लिया गया। तिकौनी रेती से पहले ताम्र का बुरादा बना लिया गया। बारीक रेते हुए ताम्र को एक सेर लो इसके साथ सज्जी-क्षार, जवाक्षार और टंकण पुष्प मिलायें। तीनों द्रव्यों को समान भाग लेकर कुल एक सेर लें। न घिसने वाले पत्थर के खरल में इस मिश्रण को डाल कर निम्बू के स्वरस से घोटें। बाजार में दो प्रकार का सोहागा मिलता है—(१) डली का सुनारी सुहागा तथा (२) चौकिया सुहागा। इस परीक्षण में प्रथम प्रकार का सुहागा लिया गया था। चारों पदार्थों को निम्बू के स्वरस में एक दिन घोटने से मिश्रण का रङ्ग कुछ हरासा हो जाता है। स्वरस को इतनी मात्रा में ही डालना चाहिए जो एक दिन की घुटाई में सूख जाय। अब इस मिश्रण को पांच नम्बर के दो ढक्कनदार कुसिबलों (अन्धमूषाओं) में आधा-आधा डाल कर तीव्र अग्नि पर रखें। पिघल जाने पर दोनों मूषाओं में अलग-अलग आधी-आधी छटांक शुद्ध स्वर्ण गैरिक का चूर्ण डालें। ताम्र शलाका से जरा हिलाकर पिघले हुए ताम्र में मिलादें। पत्थर के खरल में गौदुग्ध की इक्कीस भावनाएें देने से स्वर्ण गैरिक को पहले ही शुद्ध कर लिया गया था। कुसिबल में गैरिक डालने पर पहले धूंआ उठता है फिर गैरिक का रङ्ग काला पड़ जाता है। तब ऊपर ढक्कन रख दें। पन्द्रह मिनट इसी तरह तीव्राग्नि पर रहने दें। ताम्र को पिघालने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ताप में जरा सी कमी होने से यह ठण्डा पड़ कर जम जायगा। दस नम्बर के कुसिबल में एक सेर भैंसा का गोबर और चार सेर भैंस का तक्र लेकर घोल बनालें। लोहे की सड़ांसी से अग्नितप्त कुसिबलों को उठाकर पिघले हुए ताम्र को गोबर और तक्र के मिश्रण में पलट दें। तल में से ताम्रपिण्ड निकाल कर छैनी से छोटे-छोटे टुकड़े करलें। पांच नम्बर के कुसिबल में रख कर तीव्र अग्नि पर पिघला लें। धातु गलाने के सांचे में सरसों का तेल लेप कर उसमें पिघले हुए ताम्र को डाल दें। यह लम्बी लकड़ी (रौड) बन जायगी। इसे फिर बारीक तिकौनी रेती से रगड़ कर सूक्ष्म कण बनालें। ऊपर लिखी विधि के अनुसार इसे पुनः नये सज्जीक्षार, जवाक्षार, टंकणपुष्प और निम्बू स्वरस में घोटें। मूषा में रखकर पिघालें। गैरिक की बुकनी दें, गोबर और तक्र के घोल में बुझाऐं, पुनः पिघालें, लगड़ी

बनाए। ये सब क्रम सात बार करें। प्रत्येक बार में जो भी द्रव काम में आयेगा वह सब नया लिया जाना चाहिए। गोबर और तक्र भी हर बार नया लिया जायगा। आरम्भ में जो ताम्बे की तारें ली गई थीं उन्हें भी कुसिबल में पिघालकर लगड़ी बना लेना चाहिये, इससे रेती से रेतने में सुगमता रहती है।

इस विधि में प्रतिपादित प्रक्रियाओं का ठीक परिपालन करके ताम्र का शोधन कर लिया जाय तो इस शुद्ध ताम्र की भस्म में वान्ति, भ्रान्ति आदि दोष नहीं आयेंगे। हमारे अनुभव में ताम्र के शोधन की यह सर्वोत्कृष्ट विधि है।

दूसरा प्रकार

शोधन की यह विधि भी रसरत्न समुच्चय के पाठ पर अवलम्बित है। इस विधि में ताम्र के कण्टक वेधी पत्र लिये जाते हैं। सुनारों के पास जो पतरे बनाने की मशीन होती है उस पर पतरे सुगमता से सस्ते और एक जैसे पतले बन जाते हैं। एक सेर ताम्बे की लकड़ी के कण्टकवेधी पत्र बनाने में लगभग चार रुपये मजदूरी देनी पड़ती है। परीक्षण में एक सेर कण्टकवेधी पत्र लिये गए। सेंधा नमक के एक सेर बारीक चूर्ण को जरा सा निम्बू का रस मिलाकर खरल करलें। इसका गाढ़ा लेप पतरों पर करदें। पतरे की मोटाई के बराबर ही लवण की तह पतरे के दोनों ओर चढ़ जायगी। चीनी की मिट्टी की प्लेट में रखने से यह तुरन्त सूख जायगी। लवण लिप्त पतरों की तीन-तीन इञ्च लम्बी इन कतरनों को पांच नम्बर के दो कुसिबलों में भर कर पिघाल लें। निस्तुष जौ की कांजी में बुझायें। तल में से डले को निकाल कर पहिले लिखे प्रकार से लगड़ी बनालें। इसके पतरे बना कर पुनः ऊपर वर्णित विधि से निस्तुष जौ की नयी कांजी में बुझायें। इस प्रकार सात बार बुझायें। बार बार पतरे बनाने की सुविधा जहां न हो वहां इस विधि में थोड़ा परिवर्तन करना होता है। लगड़ी को बारीक रेत कर लवण और निम्बु के साथ पहली विधि के अनुसार खरल कर लें और पहली विधि के अनुसार ही निस्तुष जौ की कांजी में सात बार बुझाकर शुद्धि करलें।

तीसरा प्रकार

कुसिबल में ताम्र को पिघला कर सेन्धालवण के सान्द्र घोल में अथवा बकरी के मूत्र में सात बार बुझायें। सान्द्र घोल बनाने की यह विधि है। कांच या पत्थर के पात्र (मर्तबान) में एक सेर पानी में एक पाव नमक के हिसाब से बारीक पीस कर सेन्धानमक डालें। पानी में नमक को घोलने की जितनी क्षमता है वह उतना घोल लेगा। शेष नमक तल में बना रहेगा। यह चालीस दिन तक पड़ा रहना चाहिए। दूसरे दिन कांच की छड़ से तल में बैठे नमक को हिला देना चाहिए। चालीस दिन के बाद ऊपर के सान्द्र घोल को नितार कर काम में लायें।

कुसिबल के बारे में सावधान

जिन कुसिबलों में धातु गलाई गई है एक घण्टे की तीव्र आंच के बाद यदि उन्हें ठण्डा कर लिया जाय और पुनः आंच पर रखा जाय तो इस प्रकार बीच-बीच में ठण्डा करके इस्तेमाल करने से श्रीकृष्ण कुसिबल वर्क्स, राजमहेन्द्री जिला गोदावरी का कुसिबल बत्तीस आंच सहन कर लेता है। इसके बाद यह काम का नहीं रहता। हमारी सम्मति में इससे इतना काम ले लेना चाहिए। यदि कभी यह फूट भी जाय तो मिट्टी के ठण्डा होने पर नीचे धातु प्राप्त हो जाती है।

दस नम्बर के जिस बड़े कुसिबल में धातु बुझाई जा रही है उसके बारे में विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है। तीन-चार बार बुझाने के बाद उसे फेंक देना चाहिए। इसके बाद भी यदि आप इसे प्रयोग में ला रहे हैं तो यह कभी भी खतरे का कारण बन सकती है। पिघली हुई धातु के पड़ने से यह ऐसी बुरी तरह फूटेगा कि धातु के कण बन्दूक के छर्रों के समान छितर कर शरीर पर पड़ जायेंगे।

तीसरी बात सबसे महत्वपूर्ण है। एक धातु को ने के लिए तथा बुझाने के लिए आप जिस बल को प्रयोग में ला रहे हैं वह कुसिबल किसी अन्य धातु के गलाने या बुझाने में काम नहीं ना चाहिये। धातु का जो थोड़ा बहुत अंश उसमें मान रहेगा उससे आपके परीक्षण दोषपूर्ण जायेंगे और आपको पारद सिद्धि में सफलता प्राप्त होगी।

चौथा प्रकार

घृतकुमारी के परिपक्व पत्तों को एक सिरे से प्रकार चीरें कि मोटाई के रुख में दो फाकें बन । गूदे के बीच में कण्टक वेधी पत्रों की कतरनें ग-अलग रखें। इन्हें दस नम्बर के कुसिबल में । ढक्कन रख सन्धि बन्धन करें। सात बार मिट्टी करें जंगली उपलों की आग में बारह दें। स्वांग शीत होने पर निकालें। एक ही पुट में ों का रङ्ग श्वेताभ हो जायगा। यदि कुछ कमी र आये तो बार-बार पुट देना चाहिए। यह विधि न्द्र चूड़ामणि के पाठ पर आधारित है।

शुक-तुण्ड ताम्र

ऊपर वर्णित विधियों द्वारा शोधित किसी भी कार के ताम्र के कण्टकवेधी पत्र बनालें। निम्बू रस में भावना दिये हुए शिंगरफ का इन पर ले रें। सुखा कर शराव में रखें और सम्पुट कर दें। राव के आकार प्रकार के अनुसार पतरों की कतरन ट लेनी चाहिये। एक सेर पतरे हों तो लेप के लिए आधा पाव शिंगरफ पर्याप्त रहता है। बीस सेर पलों के योग्य गढ्ढे में निर्वात स्थान में इसे पुट । यह अग्नि उतनी थोड़ी है कि इससे ताम्र की ची भस्म बनेगी। इस कच्ची भस्म को शास्त्रकारों सांरासख नाम दिया है। इस एक सेर सांरासख में एक सेर ही मित्रपंचक मिलाकर एक दिन खरल रें। अन्धमूषा (बन्द कुसिबल) में रखकर तीव्र अग्नि पर धोकनी से दो घण्टे आंच दें। इससे ताम्र छोटे-छोटे कणों के रूप में बन जायगा। बाजरे और ी के आकार की छोटी-छोटी गोलियां प्राप्त होती हैं। शास्त्र की परिभाषा में इसे जीवित ताम्र कहा जाता है। इसमें एक छटांक सोहागा मिलाकर पिघाल लें और लुगदी बना लें। इसके पतरे बनाकर या रेत कर शिंगरफ के साथ पुट दें, मित्रपंचक से जीवित करें। इन प्रक्रियाओं को तीन बार दुहरायें। फिर ताम्र को पिघाल कर लुगदी बनाकर उसकी परीक्षा करें। इसके लिये उसे तीव्र आंच पर गरम करना चाहिए। गरम होने पर यदि यह काला न पड़े, तोते की चोंच के समान लाल और पीताभ रहे तो समझना चाहिये कि शुकतुण्ड ताम्र ठीक बन गया है। हथौड़ी की चोट पर यह स्वर्ण जैसा मुलायम होगा और आपेक्षिक घनता में सोने की आपेक्षिक घनता के समीप होगा। यदि इन गुणों में कुछ कमी दृष्टिगोचर हो तो आवश्यकतानुसार पुनः-पुनः शिंगरफ के योग से सांरासख बनाएं तथा पुनः जीवित करें।

अन्य प्रकार

पहली प्रतिपादित विधियों द्वारा संशोधित ताम्र का कोई भी प्रकार लें। उसे गला कर अलसी या मालकंगनी के शुद्ध तेल में से किसी एक में सौ बार बुझावें। प्रत्येक बार नया तेल लेना चाहिये। एक सेर ताम्र के लिये हर बार आधा सेर तेल लेना चाहिये। इसे भी दस नम्बर के कुसिबल में बुझाना चाहिये। इस विधि से बना हुआ ताम्र पीताभ स्वर्ण सदृश रंग का प्राप्त होगा। अलसी और मालकंगनी का तेल बाजार से न लें। अपने सामने लकड़ी के देहाती कोल्हू से निकलवा कर प्रयोग करें। इस प्रयोग में प्राप्त ताम्र में लाली (शुकतुण्डता) कम होगी। रंग में यह सोने के रंग के अधिक समीप होगा।

गन्धक तेल से शुकतुण्ड ताम्र बनाना

शुद्ध गन्धक में एक चतुर्थांश फूला हुआ सुहागा मिलाकर निम्बू स्वरस में तीन दिन घोटें। धूप में सुखा लें। वृक्ष करंज के ताजे बीजों के तेल में इसे एक दिन घोटें। बाजारू तेल न लें। स्वयं तेल निकलवा लें। घोटने पर यह मक्खन जैसा मृदु तथा

चिपचिपा हो जायगा। बाद में इसे कांच या चीनी मिट्टी के पात्र में दस दिन पड़ा रहने दें। ढक्कन से यह बन्द होना चाहिये। दस दिन बाद इसे आकाश यन्त्र में रख कर तेल चुआ लें। प्राप्त तेल शहद जैसा गाढ़ा तथा रक्ताभ वर्ण का होगा। इसे गन्धक का तेल कहते हैं। शोधित ताम्र को इसमें इक्कीस बार बुझाने से शुकतुण्ड ताम्र प्राप्त होता है। प्रत्येक बार नया तेल लेना चाहिए। एक सेर ताम्बे के लिये हर बार एक पाव तेल लिया जाता है।

आकाश यन्त्र से तैल चुआने की विधि

बाजार से नई मार्कीन का कपड़ा लें। उसे धोकर माड़ी निकाल दें। सुखा कर ढेढ़ फीट लम्बे और छैः इन्च चौड़े टुकड़े काट लें। करंज तेल में घोटे हुये गन्धक सुहागे के दस दिन रखें हुये मिश्रण की इन पट्टियों पर एक सूत मोटी तह फैला दें। एक सिरे से लपेट कर इनकी बत्तियां बना लें। इनके ऊपर धागे या कपड़े की लीर को पास-पास मज़बूती से लपेटें। ये बत्तियां आदमी के पैर के अंगूठे जितनी मोटी बन जायगी। सख्त अकड़ी हुई रहेंगी। तामचीनी की चिलमची में वृक्ष करंज का तेल भर कर उसमें इन बत्तियों को चौबीस घण्टे भीगा रहने दें। फिर निकाल कर आकाश यन्त्र से तेल टपकाएं। यह विधि जरा पेचीदी है और अधिक सावधानी मांगती है। निस्तुष जौ की कांजी को तामचीनी की चिलमची में भर कर जमीन पर रख दें। इसके ऊपर बत्ती को संडासी से इस प्रकार पकड़ा जाता है कि बत्ती का निचला सिरा कांजी से दस बारह इन्च ऊपर रहे। निचले सिरे पर आग लगा देते हैं। कमरा बिलकुल बन्द रहे। हवा का आवागमन न हो। ज्वाला बड़ी स्थिरता से जलानी चाहिये। जलने से बत्ती के अन्दर लिपटी गन्धक पिघलती है और कांजी में उसकी बूदें टपकती हैं। इन बूंदों में करंज तेल भी मिला रहता है। दोनों तेलों में एक बड़ा अन्तर उनके भार का है। करंज तेल का आपेक्षिक गुरुत्व क्योंकि हलका है इस लिये वह कांजी के ऊपर के पृष्ठ पर तैरेगा। गन्धक का तेल भारी होने से वह कांजी के तेल में बैठ जायगा। ऊपर का तेल नितार कर अलग रखलें। इस क[illegible] तेल में गन्धक तेल का कुछ अंश मिला रह सक[illegible] है। यह तेल ताम्बे को बुझाने और शुकतुण्ड ता[illegible] बनाने में बरता जाता है। कांजी को धीरे-धी[illegible] नितार कर फेंक दें। नीचे सञ्चित गन्धक तेल [illegible] निकाल कर शीशियों में भरलें। बत्ती जलते-जल[illegible] जब तेल टपकना बन्द हो जाय तो बत्ती कड़ी प[illegible] जाती है। कैंची से काट कर तब इसका अगल[illegible] कड़ा कोयले सदृश भाग फेंक देना पड़त[illegible] है। धीरे-धीरे सारी बत्ती जलाली जाती है। पां[illegible] छैः सेर कांजी में दो बत्तियों का तेल चुआ लिय[illegible] जाता है। गरम तेल के टपकने से कांजी गरम हो[illegible] जाती है। जलती बत्ती में से जब तेल की बूं[illegible] नीचे गिरती हैं तो वस्तुतः वे बूंदें जलती हुई कांजी[illegible] के पृष्ठ पर गिरती हैं और वहाँ जाकर बुझ जाती[illegible] हैं। कई बार तो जलती हुई बूंदों के गिरने से कांजी[illegible] के पृष्ठ पर विद्यमान तेल में आग लग जाती है[illegible] चिमटे से हिलाकर तब इसे बुझाते जाते हैं। ज[illegible] कांजी गरम हो जाय तो बदल कर दूसरी कांजी [illegible] लेते हैं। एक बत्ती के आकाश पातन में प्रायः ए[illegible] घण्टा लग जाता है। स्वास्थ्य का ध्यान रखते हु[illegible] हमारी राय में दिन भर में चार-बत्तियों से अधि[illegible] का तेल नहीं चुआना चाहिये। प्रत्येक बत्ती [illegible] आकाश पातन के बाद दो घण्टे खुली वायु में रह[illegible] अच्छा होगा।

कांजी में से पृथक् किये गये तेल में कांजी का[illegible] कुछ अंश शेष रह जाता है। इनैमिल के उथले पात्र[illegible] में तेल को डालकर बालुका स्वेद पर हलकी आं[illegible] दें। जलीयांश उड़ा कर शीशियों में तेल भर लें।

नर केशों द्वारा शुकतुण्ड ताम्र बनाना

नाई की दुकान से एक कनस्तर बाल लें। कनस्तर ठसाठस भरा हुआ हो। स्त्री या पुरुष दोनों के ही बाल इसमें लिए जा सकते हैं। यह ध्यान र[illegible] कि बाल सफेद न हों। नाखून या कोई अन्य विजा[illegible] तीय द्रव्य हो तो उसे बीन कर अलग करदें। [illegible]

ी में इन्हें डालदें। एक कनस्तर पानी में आधी
सोडा डालकर अलग से पका लें। आग से
कर इसे बालों पर पलट दें। लकड़ी के मोटे
से इसे उथल पुथल करें जिससे सब बाल
के पानी के सम्पर्क में आ जायें। बहते हुए
में उन्हें सम्यक्तया धोकर सुखालें। बालों
रीक-बारीक काटें। दस नम्बर के कुसबिल में
एक इञ्च मोटी तह बिछा कर उसके ऊपर
रते हुए शोधित ताम्र को कागज जितनी
तह में बिछा दें। इसके ऊपर बालों की एक
मोटी तह बिछादें। इस क्रम से तह लगा कर
ल को भर दें। ऊपर आधा इंच खाली छोड़
दस नम्बर के कुसिबल में दो सेर ताम्बा आ
ा। ढक्कन से बन्द करदें। सन्धिबन्धन करके
बार कपड़ मिट्टी करें। सुखा कर गजपुट में
। स्वांगशीत होने पर जब खोलेंगे तो अन्दर
रङ्ग की भस्म बनेगी जिसमें बालों की भस्म
थ ताम्बे की कच्ची भस्म भी मिली हुई होगी।
े के बराबर या मूंग के बराबर ताम्बे की
यां भी मिलेंगी। बारीक छाननी से छानकर
यां अलग कर लें। भस्म में मित्रपंचक मिला
को जीवित करलें। यह जीवित ताम्र भी
कणों के रूप में होगा। सारे ताम्र कणों को
पहली बार की तरह बालों के साथ पुट दें।
बार ऐसा करने से ताम्र शुकतुण्ड हो जाता है।
ी या आग की कमी वेशी के कारण या किसी
त्रुटि वश कसर रह जाय तो नौ दस पुट दे
हैं।

श्री शंकरदा जी पदे ने अपनी पुस्तक में
विवरण दिया है। हमने इसको उपर्युक्त
ि से बनाया है।

ौसादर के तैल से शुकतुण्ड ताम्र बनाना

ऊपर लिखे गए तरीकों तथा अन्य तरीकों द्वारा
अनेक शुकतुण्ड ताम्र बनाने के बाद हमने इस
से हाल ही में शुकतुण्ड ताम्र बनाया है।
विधियों की तुलना में यह अति सरल विधि है।
पहिले नौसादर का तैल बनाना चाहिये।

नौसादर का तैल

एक सेर ठिकरी का नौसादर लें। चार सेर अनबुझा चूना लें। इसे पीस लें। लोहे की कड़ाही में एक इंच मोटी तह दबा-दबा कर भर दें। उसके ऊपर नौसादर की ठिकरियां पास-पास जमा दें। इसके ऊपर चूने की एक इंच मोटी तह बिछा दें। अच्छी तरह दबा दें। इस तरह दोनों पदार्थों को कड़ाही में भर दें। लकड़ी की तेज आंच बारह घंटे दें। चूने की ऊपर की तह को फोड़ कर यदि कहीं से नौसादर का धूंआ निकलता दिखाई दे तो कपड़े की पोटली से वहां चूने को सम्यक्तया दबा दें। बारह घण्टे की आंच के बाद शीतल होने दें। इसमें से नौसादर की ठिकरियों को बीन लें। इनमें लवणीय चमक की कमी हो जायगी। ये पहले से अधिक कठोर, सिकुड़ी हुई सी तथा मैली सी दिखाई देंगी। इनको अलग रखलें। चूने को पानी में घो लें। दो सेर चूना दस सेर वाली हांडी में समा जायगा। छत्तीस घंटे एकांत में पड़ा रहने देकर नितार लें। कड़ाही में नौसादर को डालकर सुधाजल के साथ पकाऐं। ज्यों ज्यों जलीयांस उड़ता जाय सुधाजल मिलाते जायें। नौसादर में जब भाग से उठने लगें, वह गाढ़ा हो जाय तो उतार लें। शीत होने पर वायु के सम्पर्क से यह द्रव बन जायगा। रस शास्त्रियों में इसी को नौसादर का तैल कहते हैं। शोधित ताम्र को गला-गला कर इसमें सात बार बुझाने से शुकतुण्ड ताम्र प्राप्त होगा।

धातुओं की शुद्धि

सभी धातुओं की सामान्य शुद्धि करने के लिए रसकामधेनु में बताया है—

तप्तानि सर्वलोहानि कदली मूल वारिणी।
सप्तधातुनिषिक्तानि शुद्धिमायान्त्यनुत्तमाम ॥
—रसकामधेनु, द्वितीय पाद प्रथमोधिकार १०

इसका सरलार्थ यह है कि सब प्रकार की धातुओं को तपाकर कदली मूल के स्वरस में सात बार बुझाने से उत्तम शुद्धि हो जाती है। अनुभव

—शेषांश पृष्ठ १०८५ पर।

पोथकी या रोहा (ट्रैकोमा)

डा० रघुवीर पाठक बी. आई. एम. एस. आयुर्वेदाचार्य, वाराणसी।

शालाक्य चिकित्सक की तो बात ही क्या सामान्य चिकित्सक के यहां भी इसके रोगी अधिक संख्या में दिखलाई पड़ते हैं। आप कहीं किसी स्थान या ग्राम या नगर में जांय तो आपको इसके रोगी अधिक संख्या में मिलेंगे। प्राचीन चिकित्सक आचार्य सुश्रुत या शालाक्य चिकित्सा के आद्य एवं प्रधान चिकित्सक महामान्य "निमि" के मतानुसार इस रोग का नाम 'पोथकी' पाश्चात्य चिकित्सा के अनुसार 'ट्रैकोमा' या 'ग्रैन्युलर कन्जंक्टीवाईटीज' उत्तर प्रदेश एवं विहार में 'निनांवा' तथा बच्चों में 'कुथुआ' कहा जाता है।

यह एक संक्रामक (छूत की) व्याधि है, अतः रोगी के प्रयुक्त तौलिया, बिछावन आदि वस्त्रों के प्रयोग करते समय आंख से सम्बन्ध होते ही, या परिवार में एक ही डब्बे के अञ्जन को सभी कुटुम्बियों में लगाने से भी इसका, एक की आंखों से दूसरों की आंखों में संक्रमण हो जाता है। स्कूलों अनाथालयों, वायु, धूलि, धूप, धूआं युक्त गन्दे वातावरण में काम करने वाले, ग्रामीण या फैक्टरियों मिल मजदूरों में भी यह अधिक पाया जाता है। यह संक्रामक रूप में ही अधिक पाया जाता है। इस रोगका कारण एक कीटाणु माना जाता है जिसकी खोज 'नगूची' नामक जापान के वैज्ञानिक ने की है। पर अभी तक सभी नेत्र चिकित्सक इस पर एक मत नहीं हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध जन्तुविज्ञ 'आचार्य प्रोवोमेक' ने एक गोलाकार कीटाणु का पता लगाया है, इसके लिए अणुवीक्षण यंत्र का उपयोग कर सर्व सम्मत मत बनाने की चेष्टा की थी, जिसका नाम 'प्रोवोमेक इन्क्लुजन पिण्ड' रखा है। इस रोग का लक्षण 'आचार्य निमि' के शब्दों में यह है—

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो: रक्तसर्षप सन्निभः।
पीड़काश्च रुजावत्यः पोथक्यः इति संज्ञिताः॥

इसकी व्याख्या की सुगमता के लिए चिकित्सकों ने अवस्था भेद से चार तथा सामान्य एवं तीव्र भेद से दो माना है।

प्रथमावस्था—

पहिले कुछ दिन तक रोगियों को इसके होने का पता ही नहीं चलता। उनकी शिकायत रहती है, कि पलकों में अधिक या कम खुजली होती है साथ-साथ आंखों से हमेशा पानी गिरता रहता है। आंख खोलने में कठिनाई, प्रकाश से नेत्र कष्ट, सुई चुभोने की भांति सदैव पीड़ा, प्रातः उठने पर पलकों का सट जाना और कठिनाई से छुटना, गाढ़ा तथा चिपचिपा स्राव, इस व्याधि का प्रधान लक्षण है। रोगी शंका की अवस्था में ही पड़ा रहता है, वह निश्चित नहीं कर पाता कि सचमुच उसकी आंखों में कोई रोग हुआ है या नहीं। यदि रोगी समीप में खड़ा हो तो, दोनों ऊपर और नीचे की पलक कुछ उभरी हुई, भीतरी भाग में सरसों के प्रकार के दाने अधिक या कुछ संख्या में हों, ऐसा ऊपर से ही प्रतीत होता है। ये दाने भीतर से पलक को उलट कर देखने पर, रक्त एवं श्वेत वर्ण के थोड़ी या अधिक संख्या में रहते हैं। संख्या की

—लेखक—

धिकता होने पर दाने, पलक सड़क पर जमाये रोट की तरह दिखलाई पड़ते हैं। ऐसी पलक को ते ही चिकित्सक का ध्यान हठात् इस रोग की र आकृष्ट हो जाता है।

यही अवस्था लगभग ४ से ६ महीने तक चलती यदि इसमें कोई उचित चिकित्सा न की गई तो दूसरी अवस्था में परिणत हो जाती है, तब ये ने पहले की अपेक्षा और अधिक बड़े भूरे एवं कुछ ले होते हैं। अब ये दाने आगे बढ़ना प्रारम्भ ते हैं और पलकों के, संधिस्थल जिसे वर्त्म सन्धि Fornix) कहा जाता है, वहां तक जाते हुए चारों र फैल जाते हैं। अब दानों की अधिकता के रण दूर से, यह रेखा की भांति दिखलाई पड़ता मालूम पड़ता है लाल लाल डोरे हों। ये लाल रे श्वेत मण्डल (sclera) से कृष्णमण्डल Cornea) की ओर गति करता हुआ प्रतीत ता है और कृष्णमण्डल पर पहुंच कर, एक व्रण ना डालता है, जिसे कृष्णमण्डल व्रण (Corneal lcer) या पोथकी व्रण (Trachomatous annus) कहा जाता है। इस व्रण के कारण आगे लकर कृष्णमण्डल में अपारदर्शकता उत्पन्न हो ाती है, जिसे पुष्प, फूल या कार्नियल ओपेसिटि (Coarneal opacity) कहा जाता है। इस वस्था में पुष्प कनीनिका (Pupil) तक आजाय ो, रोगी को स्वभावतः कम दिखलाई देने लगता ै। यदि इससे व्याधि का प्रकोप और बढ़ा तो ारामण्डल शोथ (Iritis) हो जाता है। इस समय दि उचित उपचार न हुआ तो, यह रोग तृतीया-स्था को प्राप्त हो जाता है।

तृतीयावस्था—

इस अवस्था के सम्पूर्ण लक्षण पूर्ववत् होते हैं, अर्थात् द्वितीयावस्था वाले ही, पर दोनों में यह अन्तर होता है, कि इस (तृतीय) अवस्था में धीरे धीरे दाने लुप्त हो जाते हैं। वर्त्म के समीपस्थ श्लेष्मावरण में महीन धारियां तथा घाव के चिन्ह (Scars) बन जाते हैं। इस प्रकार तृतीयावस्था के अन्तिम दिनों में यह पूरी सतह श्वेताभ पीले रङ्ग की धूसर एवं पिच्छल हो जाती है। पोथकी की तृतीयावस्था में बहुत दिन रहने पर धीरे-धीरे परिवर्तन हो चतुर्थावस्था आ जाती है।

चतुर्थावस्था—

यह अवस्था रोगों की कोई खास अवस्था नहीं अपितु, उनके उपद्रवों का इस अवस्था में वर्णन रहता है। कोणीय श्लेष्मावरण (Angular Conjuctiva) में व्रण वस्तु (Scar) के निर्माण के बाद उसमें खिचाव सा पड़ जाता है अतः पलक भीतर की ओर मुड़ जाती है। पलक को अन्दर की ओर मुड़ने पर अन्तरावर्तन (Entropeon) या बाहर की ओर मुड़ जाने पर उसे बाह्यावर्तन (Eotropeon) व्याधि कहा जाता है। ये दोनों व्याधियां यक्ष्मकोष से ही होती हैं। पलक के अन्तरावर्तन में यदि बालों की एक पंक्ति मुड़कर श्वेत मण्डल पर घर्षण करे तो उसे ट्रिकियेसीस (Trichiasis) और यदि दो पंक्तियां हों तो उसे डिसट्रिकियेसीस (Districhiasis) कहा जाता है। यही नहीं कृष्ण मण्डल में क्षत (Ulcer) होने से या अन्य कारणों से भी भीतरी भाग में रहने वाली मध्यपटल (Choroid) की धमनियों का कुछ अंश बाहर निकल आता है। उसकी आकृति ठीक बकरी की लेंडी (मींगी) की तरह होने के कारण उसे आचार्यों ने "अजकाजात" (Staphyloma) कहा है। नेत्र में जीवाणुओं की उपस्थिति से चिपचिपे स्राव की अधिकता के कारण नेत्र में सदैव कीचड़ भरा मल दिखलाई पड़ता है। अतः ऐसे वर्त्म को "कर्दमवर्त्म" और यदि वर्त्म सूज जाय तो "वर्त्म शोफ" और यदि "वर्त्म" उठ न पावे तो उसे वर्त्मबन्ध (Ptosis) संज्ञा दी जाती है। पलक के अधस्तल में तथा श्वेत (Sclera) या कृष्णमण्डल (Cornea) में क्षत होने से और दोनों पलकों के अधिक काल तक सटे रहने के कारण कभी कभी वे गोलक (Eye Ball) से जुड़ जाते हैं, तो ऐसी अवस्था में उन्हें 'पलक गोलक

संलग्नता' (Symble pharon) कहा जाता है। अधिक अश्रुस्राव के कारण कृष्णमण्डलीय स्नैहिक क्षीणता के परिणाम स्वरूप जब कृष्ण या शुक्ल मण्डल शुष्क होजाते हैं अतः वे सिकुड़े कागज की भांति या झाग जैसे तह या मोड़ सा भासित होने लगते हैं, इसे नेत्र श्लेष्मावरण शुष्कता (Xerosis) कहते हैं। यही नहीं इसकी एक कष्टप्रदावस्था तब आती है, जब जीवाणु नेत्र से अश्रवाशय (Lacrimal sac) में जाकर वहां प्रदाह उत्पन्न कर देते हैं इसे 'अश्रवाशय शोथ (Dachryocystitis) कहा जाता है।

चिकित्सा—

इसकी चिकित्सा भी सामान्यतया साधारण चिकित्सा की भांति दो विभागों में विभक्त की जा सकती है।

१. स्वस्थस्य स्वस्थवृत्ति (Prophelectic)

२. आतुरस्य रोग प्रशमनम् (Curative)

प्रथम स्वस्थ रहे, दूसरा रोग की चिकित्सा।

यह सर्वमान्य है कि यह व्याधि छूत द्वारा अधिक फैलती है, अतः रोगी का तौलिया, रूमाल तकिया, चादर, बिछावन, ओढ़ना आदि वस्त्रों को अन्यों के लिये, उपयोग करना निषेध कर दिया गया है। स्कूल या छात्रावास के विद्यार्थियों में यदि कोई रुग्ण हो तो उसे वहां से हटा देना आवश्यक समझा जाता है। यही नहीं बैंक तथा आफिसों में भी वह व्यक्ति रखने योग्य नहीं माना जाता, जब तक वह पूर्णतः रोग मुक्त नहीं हो जाय। यदि किसी व्यक्ति को हो तो उसके उपसर्ग से बचने के लिये, रजतक्षार (Silvernitrate) २% या आर्जिरोल १०% के घोल को नेत्र में छोड़ते रहने से इसके संक्रमण का कोई भय नहीं रह जाता।

द्वितीय चिकित्सा-(आतुरस्य रोग प्रशमन Curative)

इस रोग के लिये मुख्यतः ५ प्रकार की चिकित्सा व्यवस्था की गयी है, जो क्रमशः नीचे वर्णित हैं—

१—औषधि (चूर्ण, द्रव, मलहम आदि)

२—क्षार (एसिड) का प्रयोग

३—दहन

४—घर्षण

५—शल्यकर्म

औषधि चिकित्सा—

इस रोग की औषधि अभी कुछ दिनों से आने वाली सोडियम सल्फा सिटामाईड (sodium-sulpha Cetamide or locula) १० से ३० %. के घोल का उपयोग सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। कुछ चिकित्सक नि० वा० शल्क जिसका पूरा नाम 'नियोमाईसीन सल्फेट वैसिट्रसीन सल्फा सिटामाईड (Neomycine solphate bactricine sulphacetamide) है अधिकतर प्रयोग में आती है। इसी प्रकार 'सल्फाथियाजाल चूर्ण (नेत्र के लिये) का भी प्रयोग इस रोग पर मैंने बहुत दिन पूर्व किया था जिससे सफलता मिली थी। इस औषधि के लगाने की विधि यह है—

यह औषधि लगाने से पूर्व आर्जीरोल या मर्क्युरोक्रोम औषधि का २%. के घोल की २-२ बूंदें नेत्र में ३-४ बार छोड़ें। इसके बाद नेत्र को शुद्ध रूई से पोंछ डालें। अब नेत्र पलक को तर्जनी और अंगुष्ठ के सहारे उलट दें जिससे पलक की भीतरी तह दिखलाई पड़ जाय। अब उस पर उपरोक्त दोनों औषधि चूर्णों में से किसी एक को छिड़क दें पुनः सल्फोनोमाईड (sulphonomide) पेनिसिलिन या क्लोरोमाईसीटीन (Chloromycitine) ओरियोमाईसीन (Aureomycine) टेट्रामाईसीन (Tetramycine) में से किसी एक का उपयोग करें। यह उपचार "सव्रण शुक्र युत पोथकी" Trachoma with corneal opacity with üler) के लिये सर्वश्रेष्ठ है।

दूसरी चिकित्सा—रजतक्षार (Silvernitrate) द्वारा भी की जाती है। इसे लगाने से नेत्र में पीड़ा एवं जलन अधिक होती है, अतः इसका प्रयोग

"अव्रण पोथकी" (Nonulcerative trachoma) में करना चाहिए। इस औषधि के लगाने से पूर्व, पीड़ा की कुछ अंशों में कमी के लिये पहले संज्ञाहर (Anaesthatic) औषधि जैसे "एनिथीन" १% प्रतिशत के घोल की दो-दो बूंदें दो मिनट पर ४-५ बार छोड़ें। अब आंख को पोंछ कर, एक रुई के फोहे से जो १ %. के "रजतक्षार" के घोल में डुबोकर, हलके हाथ से झिटक कर, जिसका अधिक क्षार गिरा दिया गया हो, लें। फिर फोहे को उलटी हुई पलक के ऊपर घर्षित करें, और जल (अश्रु) स्राव होता जाय, उसे शुद्ध रुई से पोंछते जांय, और बाद में, जब स्राव कम हो जाय तो "आर्जीरोल या मक्युरोक्रोम" की कुछ बूंदें डालकर पुनः उपरोक्त मलहम लगादें। यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि 'आर्जीरोल' या प्रोटर्गल का रोहे पर तात्कालिक प्रभाव तो अच्छा पड़ता है, पर रोहे को जड़ से दूर नहीं कर पाता।

कुछ चिकित्सक तूतिया (Coper sulphate) का प्रतिसारण (घर्षण) अच्छा मानते हैं और इससे लाभ ही होता है, पर पीड़ा की अधिकता से, इसका उपयोग रोगी पसन्द नहीं करता। इसके प्रयोग के पूर्व, यदि "एनेथीन" आदि चेतनाहर, बूंदें डाल दी जांय तो अच्छा फल मिलेगा। यदि यह असह्य हो तो, फिटकिरी और तूतिया समभाग में मिलाकर बत्ती बनालें और उसका प्रयोग करें, इससे पीड़ा कम और अश्रुस्राव भी कम होगा।

रोहे को दवा देने की क्रिया
(Expresion fo trachoma)

जब रोहे के दाने बहुत बड़े और कठिन हो गये होते हैं तो यह क्रिया की जाती है। उसके लिये कोकेन या एनेथीन के घोल को प्रति २-२ मिनट पर लगभग ४-५ बार छोड़ें जब नेत्र चेतनाहीन हो जाय तब, पलक के ऊपर लोहे की शलाका दबाकर, उङ्गलियों द्वारा उलट देवें। अब पलक मुड़कर दोहरी होजायगी। अब पलक के मुड़े हुये भाग को चिमटे से, जो खासकर इसी काम के लिये आता है जिसका नाम नेप का रुलर संदंश (Knapp's rollar forceps) है, उससे भली प्रकार दबाते हुये, पलक के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ले जांय। जैसे सुनार सोना या चांदी के तार खींचने के लिये तार को, पेच में फंसाकर, ओष्ठों से दबे हुए तार को खींचकर बढ़ाता और पतला करता है उसी प्रकार करें। इस प्रकार ३-४ बार कर देने से पद्म के भीतरी भाग के दाने पिच जाते हैं और छोटे-छोटे स्निग्ध चूर्ण के रूप में पलक के बाहर निकल आते हैं। इसके बाद रजतक्षार, तुत्थवर्त्ती, शंखनाभी भस्म मधु के साथ। तथा अल्प ग्राही (Stringent) औषधियों का व्यवहार करें। "चन्द्रोदयवर्त्ती" जल में घिस पलक उलटकर भीतरी भाग पर मलने से, अधिक लाभ होता है। इस क्रिया से मेरे अनेकों रोगी, लाभ पा चुके हैं।

घर्षण (Rasping)—

जब उपरोक्त चिकित्सा से लाभ नहीं दीख पड़ता तब यह क्रिया अधिकतर प्रयोग में लाई जाती है। इस क्रिया में रोगी एक टेबुल पर लिटा दिया जाता है। १ %. के एनीथीन द्रव को २-२ मिनट पर ४-५ बार छोड़ते हैं और फिर पारद द्रव (H. P. Lotion) द्वारा प्रक्षालित करें। अब पलक को उलटें और घर्षण यन्त्र (Rasp) द्वारा जो लुहारों की रेती की तरह खुरदरा होता है, घर्षण करते हैं। भली प्रकार जब निश्चित् हो जाये कि दाने घर्षित हो बाहर आ गये, तो पुनः 'पारदद्रव' द्वारा प्रक्षालित करें। इसके बाद पहले 'सिल्वर आयोडाईड' की बूंदें छोड़ते थे, पर अब उसका त्याग हो गया है, अब केवल अलवुसीड (Albucide) छोड़ पट्टी बांध देते हैं।

दहन (Cautarisation of the Trachoma)

इस दहन कार्य के लिए एक विशेष यन्त्र होता है जिसे दाहक यन्त्र (Dithermy) कहा जाता है।

विधिः—

रोगी को टेबुल पर लिटाकर आंख में 'एनीथीन एवं एड्रीनललीन २ %. की मिश्रित बूंदें २-२ मिनट के बाद ४-५ बार छोड़ें, अब वह संज्ञाहीन हो जावेगी। तब फिर उसे 'पारद द्रव' द्वारा धो दें। पलक को उलटने वाली चीमटी (Leadeversion Forceps) से पलक को उलट दिया जाता है। फिर टंकण कवलिका (Boric Cotton Lint) से उसके अश्रु एवं जलीयांश को सुखा लिया जाता है इसके बाद 'दाहक यन्त्र' की सुई को पलक में प्रविष्ट कर विद्युत्प्रवाह चालू कर दें। कुछ ही देर बाद उसमें से भाप निकलना प्रारम्भ होगा और साथ-साथ चटचटाहट युक्त शब्द भी सुनाई पड़ेगा। इस प्रकार सम्पूर्ण रोहे के स्थानों को जलाया जाता है और जब कार्य समाप्त हो जाता है तब 'आर्जीराल' २ प्रतिशत की कुछ बूदें छोड़ दें। एक प्रहर के बाद नेत्र में सूजन आ जाती है, इसके लिए 'शीतल बोरिक जल' छोड़ने या उसी के 'लिण्ट' (फोहा) बनाकर नेत्र पर रखने से लाभ हो जाता है। यदि यह व्याधि अब भी ठीक नहीं होती तो पलक मुड़ जाते हैं, तब इस मुड़ी हुई पलक (Entopion or Eotropion) की एक मात्र विश्वस्त चिकित्सा, शस्त्र चिकित्सा ही शेष रह जाती है। इसका वर्णन न चाहते हुए भी यहां दे रहा हूं, जिससे जनता एवं सामान्य तरुण, जिज्ञासु चिकित्सकों को उसकी कम से कम जानकारी हो सके। यह चिकित्सा कर्म, आधुनिक जगत में सर्व प्रथम डा० कुन्त साहब (Dr. Kuhant) ने किया था अतः इस शल्य कर्म का नाम इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

शल्यकर्म का वर्णन—

सर्व प्रथम रोगी को टेबुल पर लिटा कर "एनीथीन" १%. तथा कोकेन ४%. के द्रवों को मिलाकर, उसमें २ बूंद एड्रिनलीन भी मिलालें। इस घोल को आंख में ५-६ बार छोड़ें फिर रसकपूर ५०००:१ शक्ति के घोल से धोकर साफ करलें। अब मोवोकेन द्रव में "एड्रिनलीन" मिलाकर श्वेतपटलगत सूचीवेध (sobcon junctival injection) दें और लगभग १०-१२ मिनट के बाद 'शल्यकर्म" प्रारम्भ करें। शल्यकर्म के पूर्व पुनः उबाले हुए विशुद्ध जल से धो, साफ करलें। पलक को उलटने वाली चीमटी द्वारा पलक को उलट दें और पलकवाल से, ३ मिलीमीटर दूरी पर छोटी छुरी द्वारा चीरा लगावें। इस चीरे को वाल के समीप से, भीतरी तह तक काटते हुये चले जाना चाहिये। पूरी कटाव इस तरह की हो कि नेत्रश्लेष्मावरण और उसकी तरुणास्थि (Cartilage) कट जाय। इस चीरे के द्वारा तरुणास्थियों को एक ओर पक्ष्मपेशियों से और दूसरी ओर श्लेष्मावरण से पृथक् करें। इस प्रकार जब तरुणास्थि (Tarsus) की उर्ध्वधारा तक चाकू का फलक पहुँच जाता है तो दोनों की धाराओं को पृथक करने के लिये उन्मिलीनी (Levator palpabrae) पेशी को सीधी रेखा में काटनी पड़ती है। उर्ध्वधारा के मुक्त होने पर तरुणास्थि अलग हो बाहर आजाती है। अब अवशिष्ट श्लेष्मावरण में जो चीरा दिया गया था, उसे पलक के किनारे में जो तरुणास्थि बाकी बची हो एक में मिलाकर सी देना चाहिये। बाद मर्क्युरोक्रोम २%. की २ बूंद छोड़ कर, रुई की प्लोत (Pad) रख पट्टी बांध दें। ४८ घंटे बाद पट्टी को खोलें। यदि किसी प्रकार का उपद्रव प्रारम्भ हो तो तत्क्षण पट्टी खोलकर, समुचित उपाय करना आवश्यक होता है। स्वस्थ नेत्र में पट्टी खोलकर बोरिक-लोशन से उसे धोवें। पुनः रुई से पोंछ कर २%. के मर्क्युरोक्रोम की दो बूंदें छोड़ कर पट्टी बांध देवें। इस प्रकार ५-७ दिन तक चलावें। पूर्णस्वस्थ देख टांका (suturing) काट दें। १%. का आर्जीरल, २-२ बंद प्रातः सायं १ मास तक नेत्र में डालते रहें। इस समय नेत्र अधिक प्रकाश सहन नहीं कर पाता अतः उसे काला चश्मा (Dark goggles) लगाने की सम्मति देनी चाहिये।

आधुनिक ब्लड-बैंक (रक्त-कोष)

लेखक—श्री पं० मदनमोहनलाल चरोरे, 'कविकान्त' आयुर्वेदाचार्य।

—गतांक से आगे—

रक्त दान के लिए रक्तदाता और उसके उत्तम गुण

रोगी को अति सुन्दर लाभ होने के लिए दाता का रक्त संघटन की दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ होना चाहिए। रक्त कणों की दृष्टि से किसी प्रकार असंयोज्य (Incompatible) न होना चाहिये। दाता को कोई औपसर्गिक या अनौपसर्गिक किसी प्रकार का रोग जो रोगी में संक्रांत हो सके न हो।

(१) इच्छा—रक्त देने के लिए वह व्यक्ति स्वयं उत्सुक होना चाहिए तथा रक्त देते समय वह शांत चित्त और भावावेश विरहित रहना चाहिये।

(२) वय और लिंग—दाता की अवस्था २१-३५ के बीच में हो तो अति उत्तम। यदि स्त्री दाता है तो मासिक धर्म के समय तथा तदुपरांत ५ दिन तक न लिया जाय।

(३) भार—पुरुष १४० पौंड तथा स्त्रियां १२० पौंड हों। अति भारी, स्थूल, सुस्त, ढीलमढाल व्यक्तियों का रक्त नहीं लेते हैं।

(४) हृदय और रक्त—दाता के रक्त में शोण-वर्तुलि १४ धान्य से अधिक होनी चाहिये। यदि दाता रक्त व्यवसायी (जो बार बार रक्त देता है) है तो रक्त देने के बीच ३ मास से कम काल न रहे और हर बार शोणवर्तुलि की मात्रा देखी जावे। विश्राम-कालीन नाड़ी की गति ७२-८० तक होनी चाहिए ब्लडप्रेशर Systolic ११०-१६० के बीच और Distolic ६० से १०० के बीच में होना चाहिए।

(५) समय—भोजन के दो घण्टे बाद रक्त लेना चाहिए। इससे अधिक काल के बाद लिया जाय तो और अच्छा। १०-१२ घण्टे के अनशन के बाद रक्त लेना श्रेष्ठ नहीं। इससे जी मचलाना, वमन इत्यादि उपद्रव हो सकते हैं।

(६) रोग—दाता विषमज्वर, फिरङ्ग, उपसर्गीय यकृच्छोथ, कामला, क्षय, अपस्मार, मधुमेह, परमातति (Hypertension), आमवात, सन्धिशोथ, अनूर्जता वृक्कशोथ रोगों से आक्रान्त न हो शरीर ताप स्वाभाविक से अधिक होने पर तथा मद्य पिये हुये व्यक्ति का रक्त नहीं लेते हैं।

(७) दाता और ग्रहीता दोनों एक गण के होने पर भी रक्त दान करने से पहले दोनों रक्तों का प्रत्यक्ष मेल करके देखना चाहिए और यदि विरोध न हो तो रक्त दान करें। रक्त दान के लिये रोगी और दाता एक गण के होना सर्वोत्तम पक्ष है यदि वह न मिले तो वैश्व दाता गण का रक्त उसे दे सकते हैं। परन्तु ये दोनों व्यवहार गौण पक्ष में ही होने चाहिये। यह ध्यान में रखते हैं।

(८) स्त्री को उसके पति का रक्त कदापि न दिया जाय क्योंकि इससे पत्नी में सामान्य तया असामान्य स्वरूप में असमूहन (Agglutinogen) उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। जिससे गर्भ में शोणांशिक होने की सम्भना रहती है।

रक्तदाता के रूप में मेरे अनुभव—

इस रक्तदान पद्धति से मैं पूर्ण परिचित था। इस रक्तदान के प्रति मेरे हृदय में घृणा का भाव था इन दाताओं को मैंने अनेक बार देखा था और मनन किया था। संसार में रक्त का नाता है और रक्त से ही शरीर का निर्माण होता है 'जैसा अन्न वैसा मन' वाली कहावत पर बहुत सोचा था। ये रक्त भी तदुपरूप ही है और इस रक्तानुरूप रक्त की शरीर पर भली या बुरी क्रिया अवश्य होती अस्तु इन हीन व्यक्तियों का रक्त मेरे बच्चे के पवित्र शरीर में प्रविष्ट होना यह बात ठीक नहीं।

परिणामतः मैंने अपना रक्त देना ही निश्चय किया। यद्यपि मैं उस समय कुछ अस्वस्थ था पर कर्त्तव्य-वश कहो या मोह वश मैं तैयार हुआ।

मेरे बच्चे का रक्त बैंक में परीक्षा के पश्चात् B कक्षा का परिणाम घोषित हुआ। मैंने स्वयं को प्रेषित किया और कहा 'क्योंन मेरे बच्चे के लिए मेरा ही रक्त ग्रहण कर लीजिये यदि वह उसके अनुरूप मिल जाय' मैंने बैंक में जाकर परीक्षा कराई। वह ठीक वही B गण का रक्त निकला जो बच्चे का था मेरे हर्ष का ठिकाना नहीं रहा कारण, मेरे विचारों की रक्षा हुई दूसरे सर्जन लोग भी रक्तदान में घर वालों के सहयोग से प्रसन्न होते हैं। मैं दाता के सर्वोत्तम गुणों से संयुक्त था। विधिवत् मेरा रक्त संग्रह कर लिया गया।

रक्त देते समय मेरे हृदय में किंचित भी भावावेश या घबराहट न थी। किसी प्रकार का कष्ट न हुआ। कभी कभी रक्त नलिका में रक्त शिरा से आता नहीं ऐसी दशा में ४-६ बार मुट्ठी बन्द कर खोलने की क्रिया करनी पड़ती है। रक्त निकलने के साथ किसी प्रकार का भी प्रभाव अनुभव न हुआ। केवल एक विचार दाता के हृदय में उस बैंक के वातावरण का आता है कि मेरे शरीर का रक्त लिया जा रहा है। यही विचार मुझे आरहा था। रक्त संग्रह पात्र आखों से दिखाई नहीं दे रहा था, कारण मैं खाट पर चित्त लेटा था और पात्र जमीन पर चारपाई के बगल में था मेरे बायें हाथ की शिरा से रक्त लिया गया था। उस समय मेरे हृदय में एक उत्साह और कर्त्तव्य दृष्टि से एक अपार आनन्द था कि मेरा रक्त मेरे बच्चे के जीवन दान के लिए लिया जारहा है और मैं सब से अधिक उसके लिए त्याग कर रहा हूँ।

एक थोड़े समय में ३०० सी. सी. रक्त दो पात्रों में १५० सी. सी. के हिसाब से ग्रहण कर लिया गया और विधिवत् उसे सुरक्षित कर दिया गया। रक्त देने के कोई १५ मिनट तक मैं शान्त से उस विस्तर पर पड़ा रहा तत्पश्चात् बैंक से साधारणतया चलकर वार्ड में आगया और कुछ देर विश्राम किया। अपने सब दैनिक कार्य किये। ये रक्त दान मैंने भोजन के २ घंटे बाद लगभग ११ बजे दिन को किया। उसके उपरान्त ४-६ दिन कुछ फल मलाई दूध आदि लेता रहा और रक्त दान का कोई प्रभाव नहीं हुआ, हां दो एक दिन कास अवश्य हुआ पर वह मेरे पूर्व अस्वस्थ रहने के कारण समझिये या इस कारण से।

रक्तदान करने में चिकित्सालय में रोगी के संरक्षक बहुत भयभीत होते हैं और जहां तक होता है २५ रु० देना ही ठीक समझते हैं, पर बेचारे वे यह नहीं जानते कि जो अपना रक्त हम अपने प्रियजन को प्रदान नहीं कर सकते उसे दूसरों से लेने का क्या अधिकार है? जो तुम्हारे लिये अपना जीवन वहता है। अतः प्रत्येक को इस रक्त में सहयोग देना चाहिये। इस लिखने में मेरा कोई निजी अहंकार या त्याग नहीं है वह तो मेरा एक निजी स्वार्थ था पर मेरा रक्त बच्चे के लिए जीवन वरदान बना। जब वह उसे दिया जारहा था अपार हर्ष हो रहा था। उन रक्त दानियों के प्रति मेरा घृणा का भाव न रह कर अत्यन्त श्रद्धा में परिणत हो गया क्यों कि वे कैसे ही सही मानव की सेवा में संलग्न हैं। वे बड़ा उपकार करते हैं।

रक्त-संक्रम की विधियां

रोगी में रक्त का प्रयोग करने की तीन मुख्य विधियां हैं १. रक्त संक्रम-इसमें दूसरे स्वस्थ व्यक्ति का रक्त लेकर रोगी के शरीर में शिरा द्वारा प्रविष्ट किया जाता है। यह पद्धति सबसे महत्वपूर्ण है।

२. शोणित चिकित्सा (Haemotherapy) इसमें दूसरे स्वस्थ व्यक्ति का रक्त लेकर रोगी के शरीर में पेशी द्वारा प्रवेश करते हैं।

३. आत्म शोणित चिकित्सा (Aaeto heomotherapy) इसमें रोगी का ही रक्त निकाल कर उसी के शरीर में पेशी द्वारा प्रविष्ट करते हैं।

इसी के दो वर्ग इस प्रकार हैं–प्रथम तो मनुष्य ताजा रक्त लेकर उसी रूप में पूरे रक्त को रोगी शरीर में भर देना, इसे Direct Transfusion ते हैं और दूसरा वह है जिसे आवश्यकता पड़ने बैंक से संग्रहीत रक्त का शरीर में प्रयोग ते हैं।

क्त संक्रम के उपयोग-

मनुष्य शरीर में रक्त संक्रम अनेक रोगों में आ जाता है आवश्यक तो रक्तक्षरण की पूर्ति ना ही है, फिर भी उसके अन्य उपयोग हैं।

१. विश्राम—मनुष्य शरीर में रक्त अनेक कार्य ता है। वे सब कार्य रोगी के शरीर में दिया रक्त करता है। इससे शरीर के प्रायः सभी गों को मुख्यतः रक्तोद्पादक अंगों को राम मिलता है।

२. रोग निवारण के लिए–किन्हीं रोगों में उसके वारण के लिये रक्तदान करते हैं। जैसे नवजात और कामला इसमें एकाध बार रक्त संक्रम करने रोग नष्ट होता है।

३. जीवदान–शस्त्र कर्म आघात, अभिघात, अर्श आदि से जब अत्यधिक रक्तस्राव होता है या विविध नीलोहताएं इनमें जब पराकोटि को पहुँच जाता है दग्ध जन्य स्तब्धता में रोगी के मरने का र रहता है उस अवस्था में रक्त प्रदान करने से ने का भय दूर हो जाता है।

४. शस्त्रकर्म पूर्व बलोत्पादन के लिए—कई बार क्षयी पर शस्त्रकर्म करने की आवश्यकता पड़ती परन्तु वह उस क्रिया के सहने में असमर्थ होता। उस दशा में रक्त संक्रम करने से वह शस्त्रकर्म य हो जाता है।

५. निदान—कई बार तीव्र वैनाशिक रक्त क्षय, तमयता, तीव्र शोणांशिक कामला, और लीडरर रक्तक्षय इनके निदान में कठिनाई होती है उस य रक्त संक्रम करने से निदान में सहायता

६. रक्तस्राव बन्द करना—रक्त में रक्त संघातक द्रव्यों की कमी होने से रक्तस्राव रोकने में कठिनता होती है। इन द्रव्यों की पूर्ति के लिए रक्त संक्रम किया जाता है।

रक्त संक्रम में कठिनाइयां

रक्तसंक्रम रक्तनाश और रक्तक्षय की चिकित्सा में आज अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्राणरक्षक उपचार है। परन्तु रक्त संक्रमण के पहले दाता और ग्रहीत की संयोज्यता का विचार न किया तो रक्तसंक्रम प्राणरक्षक के बजाय प्राणभक्षक बन जायगा। इसमें अनेक कठिनाइयां है।

(१) रक्त दाता—रक्त प्रदान करने की दृष्टि से शारीरिक योग्यता, निरोगता, तथा मानसिक इच्छा इन तीन गुणों से युक्त दाता का मिलना कठिन होता है। इसको ठीक करने के लिये व्यक्तगत परीक्षा के अतिरिक्त फिरंग, विषम ज्वर आदि के लिये रक्त की जांच करनी पड़ती है। रक्त देने से पहिले दाता कामला से पीड़ित तो नहीं था इसको देखना पड़ता है। यह सब कुछ होने पर भी कभी-कभी रोगी में ये रोग संक्रान्त होते हैं।

(२) गण—रोगी और दाता का समगणी होना आवश्यक होता है।

(३) रक्त मेलन—केवल गण से ही काम नहीं चलता, रक्त देने से पहिले दोनों का मेलन भी देखना चाहिये तभी संक्रम का उपयोग हो सकता है।

(४) शोणांशन—असंयोज्य या विरोधी गण का रक्त देने से शोणांशन होता है। यह कार्य रक्तदान के समय या कुछ घंटों के पश्चात होता है। इसके होने से शीत, पीठ व हृदय में पीड़ा, हृदयावसाद कामला,* शोण वर्तुलिमेह, शीतपित्त, अल्प मूत्रमेह

*शोणवर्तुलि—रुधिरकायाणुओं की सबसे महत्व की बात इनका रागक (Pigment) है इसको शोणवर्तुलि कहते हैं। सम्पूर्ण शरीर में ३० महापद्म लाल कण होते है प्रत्येक लाल कण में तिहाई रागक भरा रहता है तोल की दृष्टि से इसकी मात्रा बहुत ही कम होती है तथापि लाल कणों

इत्यादि लक्षण उत्पन्न होकर मृत्यु हो सकती है। इसका निवारण रोगी और दाता के गणों का परीक्षण करने से और दोनों के रक्त का ठीक मेल है या नहीं इसको देखने से हो सकता है। कभी कभी यह आपत्ति बैंक में दीर्घ काल तक या अनुचित ताप पर संग्रह किये गए रक्त के प्रयोग से उत्पन्न होती है।

(५) ज्वर—इसमें रोगी को संताप शीत कंपकंपी इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण प्रयोगों में लाए हुए जल, रसायन उपकरण आदि से होने वाले विजातीय द्रव्यों अतिकालिक (Overage) या असंयोज्य रक्त के प्रयोग से होते हैं।

(६) फुफ्फुस और हृदय सम्बन्धी प्रभाव—जब रोगी शरीर में रक्त को शिरा द्वारा प्रवेश करते हैं तो रक्त की राशि और प्रविष्ट करने की गति के अनुसार रोगी के रक्तवह संस्थान पर उस रक्त का बोझ पड़ता है। यह स्थान निर्बल होने से या रक्त राशि और उसकी गति अधिक होने से यह आपत्ति होसकती है।

(७) Air Embolism—यह आपत्ति मारक होती है और रक्त संक्रमण के काम आने वाले उपकरणों का ठीक प्रयोग न करने से उत्पन्न होती है।

रक्त की राशि और गति—रक्त रोगों की अनेक अवस्थाएँ हैं और उनके अनुसार ही रक्त की मात्रा निर्धारित होती है। साधारणतया यह राशि इस सूत्र पर आधारित है कि ५० तोला सम्पूर्ण रक्त लगभग १ धान्य (७%) शोणवर्तुलि* का बढ़ा सकता है, इसी दृष्टि से रक्त राशि निश्चित की जाती है।

अभिघातजन्य रक्तस्राव—इसमें जितना रक्त निकल गया हो उतना ही रक्त रोगी को देना उचित होता है। ऐसे अतिस्राव रोगी को कभी-कभी ५-६ पाइंट तक रक्त देने की आवश्यकता पड़ती है।

जीर्ण रक्त क्षय—यदि रोगी में शोणवर्तुलि बहुत कम रही तो उपर्युक्त सूत्र के अनुसार रोगी को इतना रक्त देना होगा कि शोणवर्तुलि धान्य प्रतिशत बढ़ जाय।

शस्त्रकर्म—यदि रक्तक्षयी पर शस्त्रकर्म उसकी शोणवर्तुलि ११ धान्य प्रतिशत तक बढ़ाने के लिए जितना रक्त चाहिए उपरोक्त नियमानुसार उतना ही देते हैं।

रक्त देने की गति प्रति घण्टा प्रति पौंड शरीर भार के पीछे १ घण्टा शि. मा. से अधिक न होनी चाहिए।

रक्त के लिए योग्य दाता मिलने पर भी रक्त प्रदान में रक्त मेलन देखना परमावश्यक है कारण यह है कि एक गण होने पर भी आहार विहार और मानसिक विकार के कारण अल्पकाल के लिए रक्त में विरोधी द्रव्य उपस्थित हो जाते हैं। इसलिए गण परीक्षण की अपेक्षा संक्रम पूर्व रक्त मेलन अधिक महत्वपूर्ण है।

रक्तमेलन विधि (Matching of Blood)—

रक्तों का मेलन देखने के लिए दाता और ग्रहीता दोनों का रक्त पिचकारी से निकालकर केन्द्रापसारित्र से लसिका अलग कर देते हैं वैसे ही उनके रक्त का एक विन्दु लेकर उसको दैहिक लवण जल बनाए हुए क्षारातु निम्ब वीप के १ प्र. श. घोल से २० गुना मिश्र करते हैं मिश्रण के लिए शोणित कायाणु मान (Haemo Cytometer) की श्वेत कणों के लिए प्रयुक्त नलिका का उपयोग करते हैं। फिर रोगी की लसिका को १ बूंद और दाता के रक्त के [illegible]

---

*इसकी यात्रा ५००-७०० धान्य और १०० घ० शि० में पुरुषों में १५.६ धान्य और स्त्रियों में १३.७ धान्य होती है और व्यवहार के लिए दोनों में इसकी मात्रा १४.८ धान्य मानी जाती है। शोणवर्तुलि की मात्रा प्रति घन सहस्रि भाग ५० लाख लाल कणों के अनुरूप होती है और दोनों अङ्क देशताओं (Indices) के गणन के लिए आधार भूत माने जाते हैं।

एक बूंद कांच पट्टी पर अच्छी तरह मिलाकर को गढ़ढेदार पटरी पर रख कर सूक्ष्मदर्शक यन्त्र देखते हैं। यह कार्य कुछ क्षणों के अन्तर से बरा- पटरी को हिलाकर कई बार करना चाहिए। वैसे रोगी के रक्त के मिश्रण की १ बूंद लेकर उसको ता की लसिका की २ बूंदों के साथ उपर्युक्त ति से अच्छी तरह मिलाकर देखते हैं। यदि दोनों मेल होता है तो लाल कण रक्त रस के मिश्रण अच्छी तरह फैले हुये दिखाई देंगे और यदि ल होगा तो लाल कण एक या अनेक पुंजों में मूहित दिखाई देंगे। रोगी के कण और दाता की सका दोनों में मेल होना सर्वोत्तम रक्त-मेलन है। रोगी की लसिका और दाता के कणों में होना और दाता की लसिका और रोगी के ों में बेमेल होना गौण पक्ष कहलाता है। परन्तु ों में बेमेल या रोगी की लसिका और दाता के ों में बेमेल होना विरुद्ध पक्ष समझना चाहिये े विरोधाभासी विरुद्ध पक्ष जानना चाहिये।

प्रत्यक्ष रक्त दान के समय इस मेलन क्रिया को देखते हैं कई बार असावधानी के कारण संक्षोभ उत्पन्न होता है और मूत्राघात से मृत्यु हो जाती है। उत्तम मेलन हो जाने पर रक्त प्रदान करते हैं। इस रक्त Transfusion की विधि नमक के घोल देने की विधि के अनुसार ही है जो कोहनी की शिरा के अलावा पैर की शिरा में भी दिया जा सकता है। देते समय इस विधि से रोगी के शरीर में प्रत्येक बूंद में जीवन प्रवाहित हो रहा होता है। रक्त जमने न पावे इसका प्रबन्ध भी वैज्ञानिक रीति से कर लिया गया है और जाड़ों में रक्त पात्र के साथ गर्म पानी की बोतल बांध देते हैं। हमारे वैद्यबन्धु एक चिकित्सक की कोटि में हैं, भले ही एक योग्य सर्जन न हों, पर चिकित्सा विज्ञान के एक अङ्ग हैं। यदि आपके सामने ऐसे अवसर आ उपस्थित हों या परामर्श देने का सुयोग प्राप्त हो तो आप उसमें सहायक हो सकें इस दृष्टि से इस जानकारी को देने के लिये ही उपरोक्त पंक्तियां दी गई हैं।

:: पृष्ठ १०७५ का शेषांष ::

ता है कि शास्त्र के इस बचन के अनुसार धातुओं शोधन करते हुए दो बातों का ध्यान रखना हिए। पहली बात यह है कि धातुओं को केवल ना पर्याप्त नहीं समझना चाहिए। जब तक वे ल न जांय तब तक तपाना चाहिये। पिघली हुई धातु ही स्वरस में बुझाना चाहिए। दूसरी बात केले सम्बन्ध रखती है। उद्यानों में लगाया हुआ धारण केला पूरा फल नहीं देता। इसके लिए जंगली केला ला करके उसके मूल का स्वरस निकाल ना चाहिए। अनेक पर्वतीय स्थानों में जङ्गली केले तः उगे हुए मिल जाते हैं। अपने परीक्षणों में मी जी ने नासिक के पास पम्पकेश्वर (नीलगिरी) पर्वतों पर स्वतः उगने वाले केले के कन्दों को लिया था। महाराष्ट्र में इसका नाम कौदरी है। बरसात में इसके फूल नासिक की सब्जी मण्डी में सब्जी बनाने के लिए बिकने आते हैं। पत्तलों के रूप में प्रयोग करने के लिए इसके पत्ते भी वहां उन दिनों बिकते हैं। कन्दों के छोटे टुकड़े काटकर पत्थर की दौरी में कूटकर स्वरस निकालना चाहिए। यदि १ सेर धातु का शोधन करना है तो प्रत्येक बार बुझाने के लिए चार सेर कदलीमूल स्वरस लेना चाहिए। पुनः बुझाने के लिए नया स्वरस लेना चाहिए। इस प्रकार सात बार बुझाने में कुल अट्ठाईस सेर स्वरस लग जायगा।

मलेरिया ज्वर की चिकित्सा

लेखक—डॉ० अर्जुनसिंह वर्मा, जेजूसर (राजस्थान)

ऐसा कोई भारतवासी नहीं है, जो इस रोग से परिचित न हो, उसे आयुर्वेद में विषमज्वर, एलोपैथिक में मलेरिया, यूनानी हिकमत में हमा हवाई तथा बोलचाल की भाषा में शीतज्वर, कम्पज्वर, जाड़ा-बुखार, अंतरिया बुखार, मौसमी बुखार, मियादी आदि नामों से पुकारते हैं।

प्राचीन तत्व वेत्ताओं ने इसका मूल कारण वर्षा द्वारा जल और वायु का दूषित हो जाना बताया है। किन्तु पाश्चात्य चिकित्सकों के अनुसंधान के अनुसार इसका कारण मच्छर का काटना है।

मलेरिया इटालियन भाषा के दो शब्दों से बना है। जिसका अर्थ खराब हवा होता है। मल का अर्थ खराब और एरिया का अर्थ हवा अर्थात खराब हवा है।

भारतवर्ष में इस रोग का ज्ञान बहुत प्राचीन समय से ही था। भालुकि तंत्र में लिखा है—

"वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः"

वेग के साथ समय पर जो ज्वर आता है उसे मलेरिया ज्वर कहते हैं। अष्टाङ्ग में लिखा है—
"विषमो विषम प्रारम्भ क्रियाकालोऽनुपंगवान"

जिस ज्वर का आरम्भ का काल विषम है उसे विषमज्वर कहते हैं। पाश्चात्य चिकित्सकगण इस ज्वर को और भी भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। जैसे इन्टरमिटेन्ट फीवर, पेलुडल फीवर, स्वाम्प फीवर, माई फीवर, अटमनल फीवर, मायसमेटीक फीवर, पीरीआडिकल फीवर, वालचेरिन फीवर, वटावियन फीवर, हंगेरीयन फीवर, पनामाफीवर, रेमीटेन्टफीवर कन्जेस्टिन फीवर, डम्ब आग, ब्लैक वाटर फीवर, ब्लैक जाण्डिस आदि आदि।

मलेरिया बुखार खास करके ५ किस्म का होता है—(१) सादा विरामज्वर, (२) स्वल्प विराम ज्वर (३) छिपा हुआ या वेश बदला हुआ मलेरिया, (४) मलेरिया के कारण धातु विकार, (५) सांघातिक मलेरिया।

मलेरिया बुखार जीवाणु के द्वारा होता है। एनीफेलीस नामक एक तरह के मच्छर जब किसी भले चंगे मनुष्य को काटता है तो मलेरिया का जीवाणु उस मनुष्य के रक्त के लाल कणों में घुस जाता है। और बहुत थोड़े दिनों में समूचा खून दूषित कर देता है। इस जीवाणु को प्लाज्मोडियम (Plasmodium) कहते हैं। जो तीन प्रकार के होते हैं—(१) चौथिया बुखार के जीवाणु, (२) तृतीयक ज्वर के जीवाणु (३) तृतीयक विपर्यय ज्वर के जीवाणु।

ये जीवाणु एक विशेष प्रकार के मच्छरों के माध्यम से एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुँचते हैं। कुछ ऐसे मच्छर होते हैं, जो एक रोगी को काटकर उसका खून चूसते हैं और फिर दूसरे व्यक्ति के शरीर तक उसे पहुँचा देते हैं। कुछ ऐसे मच्छर होते हैं जो मनुष्यों को छोड़कर चौपायों को काटते हैं। इन मच्छरों के रहने के स्थान गन्दी नालियां, कूड़े कर्कट के ढेर, कच्चे जलाशय, सीलभरे स्थान आदि होते हैं। जहां पर ये पनपते हैं और रहते हैं। मच्छर अण्डज जीव हैं। अण्डे से जब मच्छर बनते हैं, तो इनकी कई अवस्थायें होती हैं। इनकी परमायु ८, ९ मास मानी गई है, किन्तु साधारणतः ये ४-५ मास ही जीते हैं। ये मच्छर रोशनी में नहीं काटते वरन् अंधेरे में काटते हैं मादा एनीफेलिस मच्छर ही मनुष्य को काटता है। नर नहीं काटता। नर शाकाहारी होता है। ये जीवाणु आमाशय से अमा

की दीवारों में पहुंच जाते हैं और वहीं अपनी वृद्धि करते हैं। साधारणतया मलेरिया ज्वर के प्रकार माने जाते हैं।

१. सौम्य तृतीयक (Beningn Tertian) मारक तृतीयक (Malignant Tertion) तथा चतुर्थक (Quarton) सौम्य और मादक यह षण केवल रोग की अवस्था के निर्देशक हैं।

यह पहिले बताया गया है कि मलेरिया के कुछ ष प्रकार के कीटाणु हैं, जिन्हें प्लाज्मोडियम ते हैं। ये कीटाणु मच्छरों के शरीर में तथा य के रक्त में मिलते हैं। इसलिये मच्छरों की नी जानाना जरूरी है।

भारतवर्ष में पाये जाने वाले मच्छरों की दो यां है—(१) एनोफिलीज, (२) क्यूलेक्स। इन श्रेणियों में नर और मादा दोनों में भेद होते मलेरिया ज्वर के कीटाणुओं के वाहक मच्छर अतः मनुष्य में मलेरिया ज्वर का संक्रमण एनोफिलीज मच्छर के काटने से होता है। रोग मारक कम तथा कष्टदायक अधिक ता है।

रिया ज्वर के उपद्रव—

मलेरिया ज्वर के साथ साथ ज्वर उतर जाने के ठीक तौर से परहेज न करने से निम्नलिखित द्रव हो जाते हैं:—न्यूमोनिया तथा अन्त्र फुफ्फुस के , अतिसार, वमन, हृद्‌दौर्बल्य, शिरदर्द, प्लीहा वृद्धि, रक्तस्राव, मानसिक विकार में बुद्धिनाश, माद आदि—

रिया से बचने के उपाय—

यदि आपके निवास स्थान के पास किसी गड्ढे दि में पानी भरा हो तो उसे सुखाने का उपाय ना चाहिये। आस पास के घास, कूड़े-करकट नष्ट कर देना चाहिये। क्योंकि प्रायः यह रोग गी से ही उत्पन्न होता है।

प्रातःकाल के समय थोड़ी चाय इन दिनों अवश्य नी चाहिये। रात को सोते समय हाथ पैर तथा खुले अङ्ग पर शुद्ध सरसों का तैल लगाकर सोना चाहिये। मच्छरदानी का व्यवहार अवश्य करना चाहिये। पास में धूंआ करके सोना चाहिये। इससे मच्छर पास नहीं आते। तालाबों के किनारे किनारे पशु दौड़ा देने चाहिये जिससे मच्छर नष्ट होजाते हैं। जल में पेट्रोलियम या किरासीन तेल डाल देना चाहिये। ऐसा करने से जलस्थित मच्छर के अण्डे नष्ट होजांयगे। मलेरिया ज्वर के दिनों में कब्जियत भूलकर भी न होने देनी चाहिये। और अगर होजाये तो तुरन्त कोई औषधि सेवन करके उसे दूर करदें। मलेरिया के दिनों में कीनीन, पैल्युड्रीन, एटेब्रीन, मैपाक्रीन, कामोक्रीन आदि गोलियों का व्यवहार प्रतिषेध के रूप में करना चाहिये।

आयुर्वेदिक पद्धित से चिकित्सा—

महा ज्वरांकुश रस (वटी) (भावप्रकाश ज्वराधिकार) यह दवा इकतरा, तिजारी, चौथैया, सर्दी का बुखार आदि अनेक प्रकार के बुखारों में लाभदायक है। विशेषता यह है कि चढ़े बुखार में भी दी जा सकती है। मात्रा २-२ गोली पानी के साथ ज्वर चढ़ने के ३ घण्टे पहिले से १-१ घण्टे से नारायण ज्वरांकुश--ज्वर चढ़ने से पूर्व ३-४ बार २-२ गोली शहद में मिलाकर देनी चाहिये। सप्तपर्ण वटी २-२ गोली ३-४ बार ज्वर चढ़ने से पूर्व त्रिभुवन कीर्ति रस २-२ रत्ती ज्वर चढ़ने के ४-५ घण्टे पहिले से ४-५ मात्रा तुलसी के पत्तों के रस में देना चाहिये। ज्वर केशरी रस की २-२ गोली ज्वर उतर जाने पर या कम हो जाने पर देनी चाहिये। शीतज्वरारि रस की २-२ गोली ज्वर चढ़ने से पूर्व ४-५ खुराक दे देनी चाहिये। इसी प्रकार राजचण्डेश्वर रस, दुर्जल जेता रस, सूक्ष्म समीर पन्नग, पञ्चतिक्तकषाय, अमृतारिष्ट, महासुदर्शन चूर्ण आदि भी इसमें बहुत ही उपयोगी है।

सर्व साधारणोपयोगी नुस्खे—लाल भुनी फिटकरी ६ रत्ती। मिश्री १ माशा। ज्वर चढ़ने से पूर्व देने से ज्वर की बारी रुक जाती है।

फिटकड़ी १ तोला, सुहागा ६ माशा, कलमी शोरा ४ तोला, सबको लोहे के तवे पर गर्म करें और अजवायन देशी १ तोला व कालीमिर्च ३ माशा, पीसकर चूर्ण बना रक्खें व चुटकी देते जावें। जब दवाऐं जलकर धुआं उठना बन्द हो जाये तो पीसकर सुरक्षित रक्खें। ज्वर चढ़ने से पूर्व १ माशा से १ माशा तक पानी से दें। मलेरिया ज्वर के लिये रामबाण है।

तुलसी वटी—तुलसी के पत्ते ४ तोला, कालीमिर्च ४ तोला, नीम के पत्ते २ तोला, फिटकड़ी भुनी १ तोला सबको खरल में डाल चने के बराबर गोलियां बना लें व बुखार चढ़ने से पहिले २-२ गोली १-१ घण्टे के अन्तर से दें। ज्वर नहीं चढ़ेगा।

मलेरिया वटी—कुनैन १ तोला, वंशलोचन १ तोला, छोटी इलायची के बीज १ तोला, प्रवालभस्म १ तोला, गोदन्ती हरताल भस्म १ तोला, सतगिलोय १ तोला, जहरमोहरा खताई १ तोला, कपूर ६ माशा टार्टरिक एसिड १ तोला, गुलाबजल में खरल करें २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। मात्रा १ गोली ज्वर चढ़ने से ४-५ घण्टा पूर्व शुरू करदें।

मीठी कुनैन—अर्क दूध ½ पाव व चीनी १॥ सेर, दोनों को खूब खरल करके, मूंग के समान गोलियां बना लें। ज्वर चढ़ने से पूर्व ३-४ बार पानी से दें।

ज्वर प्रहार–मलेरिया, रोजाना, इकतरा, तिजारी, चौथीया, तथा हर प्रकार के बुखार की आजमूदा दवा। करंजुआ के बीज १ तोला, धतूरे के बीज १ तोला, सोंठ १ तोला, कीकर का गोंद १ तोला फिटकरी की भस्म १ तोला, गोदन्ती हरताल भस्म १ तोला, सत गिलोय १ तोला, रेवन्दचीनी १ तोला, कालीमिर्च १ तोला, पीपल १ तोला, तुलसी के पत्ते ४ तोले, सबको कूट पीस छान घोटकर गोलियां बनावें।

मात्रा—१-१ गोली बुखार चढ़ने के ३-४ घण्टा पहले से ३-४ बार पानी के साथ दें।

मलेरिया संहार—करंजुआ की गिरी १५ तोला शुद्ध तबकीया हरताल २ तोला, ... कज्जली २ तोला, कुनैन सल्फ ६ तोला, सबको तुलसी के रसमें घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। ज्वर से पूर्व ३-४ बार २-२ गोली देदें।

ज्वर पछाड़ वटी—पीपल, कलौंजी, चिरायता, १-१ तोला, करंजुआ की गिरी २ तोला, पीपल २ तोला, फिटकड़ी भुनी २ तोला, सबको धतूरे के पत्तों के रस में खरल करके चने के समान गोलियां बना लें।

मात्रा—१ गोली दिन में ३ बार पानी से दें।

ज्वर मार वटी—कलीका चूना, सुहागा, सफेद फिटकड़ी, कौड़ी, कलमीशोरा, सोमल १-१ तोला लें बारीक पीस नीबू के रस में घोटकर गोला सा बना सुखाकर १ हांडी में रक्खें और उसको कपड़मिट्टी कर सुखाकर १० सेर उपलों में गजपुट में फूंक दें। शीतल होजाने पर निकाल सब दवा के बराबर अतीस और चौथाई नौसादर मिलालें। ३-३ रत्ती की मात्रा ६ माशा शहद में मिलाकर चाटे ऊपर से २-३ घूंट गरम पानी पीवें। ज्वर पास नहीं फटकेगा।

कुनैन की जगह—करंजुआ की गिरी २ तोला, पीपल २ तोला, जीरा सफेद १ तोला, बबूल की पत्ती १ तोला, तुलसी के पत्ते १ तोला, सबको पीसकर चने के समान गोलियां बनावें। मात्रा—२-२ गोली सुबह, सायं, दोपहर को पानी के साथ दें।

धतूरे के फल कूंजे में बन्द करके मुंह पर कपड़ मिट्टी कर थोड़े उपलों में फूंक लें। सुबह निकाल पीस १-१ रत्ती भस्म १ रत्ती कपूर और १ माशा शहद में मिला कर ज्वर चढ़ने से पूर्व दें।

जाड़ा बुखार पर—करंजुये की गिरी ऽ॥, गोदन्ती भस्म ऽ॥ लाल फिटकड़ी की खील ऽ।, शुद्ध गंधक ऽ॥, सोडाबाई कार्ब १ पाव। कुनेन ऽ= सबको इन्द्रायण के काथ में रगड़ चार रत्ती की गोलियां बना ज्वर चढ़ने से पूर्व ३-४ बार पानी से दें।

शीत ज्वर पर—सफेद संखियां की भस्म १ तोला, शुद्ध सिंगरफ १ तोला, दोनों को पानी में रगड़े फिर तवे पर रख कर नीचे अग्नि दें। जब फल ...

उतार कर पीस लें। १ चावल बताशे में रख कर ज्वर चढ़ने से पूर्व लें, फिर आक के बीज और धत्तूरा के बीज दोनों को समभाग पीस पानी के साथ मूंग प्रमाण वटी बना लें, पारी से पहले १-१ गोली गरम पानी से दें। ज्वर नहीं चढ़ेगा।

ज्वर निग्रह— हरताल गोदन्ती भस्म ५ तोला, करंजुआ की गिरी ५ तोला, नीमके पत्ते १ तोला, चिरायता ४ तोला, पीपल छोटी २ तोला, हरड़ छोटी १ तोला, फिटकड़ी भुनी ५ तोला, जीरा सफेद ३ तोला, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, कुटकी १-१ तोला। इन सबका चूर्ण बनाकर तुलसी के स्वरस में गोलियां बनालें। मात्रा-१-१ गोली ज्वर चढ़ने से पूर्व ३-४ बार दें।

सर्व ज्वर नाशक—अजवायन देशी २॥ तोला मुण्डी बूटी २॥ तोला, चिरायता २॥ तोला, पित्तपापड़ा २॥ तोला, सारी औषधियां को दो सेर पानी में सारी रात कलई की हुई देगची में भिगो दें और प्रातःकाल आग पर रख कर पकाएं। जब पानी ३ पाव रह जावे तो उतार कर नौसादर १ तोला, बारीक करके मिला दें। घुलने पर कपड़े से छानकर शीशी में डालकर २५ बूंद गंधक का तेजाब मिलाकर रक्खें। चढ़े हुए ज्वर में ३-३ घण्टे के अन्तर से २-२ तोले पिलादें। एक ही दिन में ज्वर उतर जायेगा। विषमज्वर के कीटाणुओं को यह अर्क एक ही दिन में मार देता है।

हकीमों के प्रसिद्ध नुस्खे—

(१) नीलोफर १ तोला खूबकलां ६ माशे डेढपाव पानी में औटाकर काढ़ा बनाओ। जब आधा पाव पानी शेष रहे तब मसल छानकर और मिश्री मिलाकर रोगी को पिलावें। इस नुस्खे से मलेरिया ज्वर चला जाता है।

(२) गिलोय, नीम की छाल, धनियां, पद्माख, लालचन्दन, खसखस हरेक १-१ तोला लेकर १ सेर पानी में औटावें आध पाव पानी रहने पर छानकर पिलावें। ज्वर भाग जायेगा।

(३) जहरमोहरा, वंशलोचन, सत्तगिलोय १-१ माशा, और समुद्रफल आधा नग लेकर सबको कूटकर चूर्ण बनावें। यह एक मात्रा है। सर्दी का बुखार आने से पहिले पानी के साथ खिलावें। बारी के बुखारों के लिए लाभदायक है।

हब्बे लर्जा (शीतज्वरहर वटी) पलासपापड़ा और करंजुये की गिरी ६ माशे लेकर पीस-छानकर पानी से कालीमिर्च के समान गोलियां बनावें। मात्रा—ज्वर चढ़ने से पूर्व १-१ घण्टे के अन्तर से ३ बार सर्दी लगकर आने वाले बुखार के लिये अक्सीर है।

हब्बे तपे रूबा-(चातुर्थिकारी वटी) काले धतूरे के बीज, रेवन्दचीनी और सौंठ ३-३ माशे लेकर कूट-छान कर शहद के साथ कालीमिर्च के बराबर गोलियां बनावें। चौथिया बुखार को शर्तिया दूर करता है। मात्रा- ३ गोली सर्दी आने से १ घण्टा पहले पानी से दें। उस रोज ज्वर का समय बीतने से पहले खाना न खाना चाहिये।

हब्बे बुखार—कुनैन १ माशा, गिलोयसत्व २ माशा' गोंद कीकर १ माशा, वंशलोचन २ माशा, पानी में घोट कर चने समान गोलियां बनालें। गुण—मौसमी बुखार मलेरिया के लिये अत्यन्त ही लाभदायक है। जाड़े को बहुत जल्दी रोक देती है। मलेरिया के दिनों में तीसरे चौथे दिन सेवन करते रहने से मलेरिया का भय नहीं रहता।

एलोपैथी की चिकित्सा—

एलोपैथी में इस रोग की सर्वोत्तम औषधि एक मात्र कुनैन ही है। अतः कुनैन का हर प्रकार से प्रयोग करके लाभ उठाना चाहिये।

तथा—

ए० बी० एन. ६१ कामोकीन, पायरेक्स, क्विनारसाल, पैल्यूड्रीन, मेपेकीन, पामोकुईन, कुईनो हेमोजेन, एटेब्रीन, प्लाज्मोचीन, क्लोरोक्वीन, पेंटाक्वीन रिजोचीन, डैराप्रिम, -अलमेरिया, सिफारएटिन, एस्टोमाल्ट, फेब्रोलीन, हाईनूटन, क्विनोहेमीन, क्विनेग्लोबीन, क्विनोगुलुकोनेट, कम्पाउण्ट, मलेरिया मिक्चर आदि आदि पेटेण्ट दवाइयां शीघ्र ही

लाभ दिखाती हैं व मलेरिया को नष्ट करती हैं।

इन्जेक्शन—कुनाइन बाइ-हाइड्रो० इन सैक-रोज सोल्यूशन जब शरीर में ज्वर न हो तो इसका सूचीवेध करना चाहिए। यह किसी भी प्रकार के मलेरिया के लिए सर्वोत्तम है।

पैल्यूड्रीन—अगर ज्वर नया हो तो ४-४ घण्टे से १-१ सूचीवेध करने से ज्वर चला जाता है। पुराने मलेरिया में सुबह-सायं १-१ तीन रोज तक। पुराने मलेरिया ज्वर में कुनारसाल्फ के इन्जेक्शन १ सप्ताह तक रोज १-१ लगावें।

सोआमीन—इस दवा में मलेरिया के कीटाणु नष्ट करने की बड़ी जबरदस्त ताकत है। पुराने मलेरिया में कुनैन के साथ-साथ इसका भी प्रयोग करने से रोग जल्दी भागता है।

क्विनाइन-डाई-हाइड्रोब्रोमाइड—यह दवा अत्यंत ही लाभदायक है। मैफरसाइड इसके प्रयोग से भी मलेरिया भाग जाता है।

मेपाक्रीन मीथेनोसल्फ—मलेरिया की अचूक दवा है। सोडियम कैकोडाइलेट—यह भी कुनैन के साथ बीच में काम लेने से दूना फायदा होता है।

आइरन अर्सेनाइट—रोगी में खून की कमी रहने पर इस दवा को कुनैन के प्रयोग से पहिले काम में लेना चाहिए। पैल्यूड्रीन, निवाक्वीन, एटेब्रीन आदि दवा भी अत्यन्त ही लाभ दिखाती है। कुनैन को नार्मलसैलाईन या ग्लुकोजसोल्यूशन में मिलाकर शिरोगत सुई लगाना सबसे बढ़कर मलेरिया का इलाज है।

मलेरिया बुखार में अगर प्रलाप उपसर्ग हो तो कुनैन के साथ-साथ ही हायोसीन हायड्रोब्रोमाईड की सुई लगानी चाहिए।

शीताङ्ग हो गया हो, तो मस्करन आयल एड्रीनैलीन स्टिकनीन, डिजीटैलीन, कोरामीन, पिट्यूट्रीन आदि लगानी चाहिये।

अगर पसीना ज्यादा आता हो व पसीना आना रुकता ही नहीं हो तो एट्रोपीनसल्फ की सुई लगा देना चाहिये।

अगर पसीना नहीं आता हो तो पाइलोकार्पीन, नाइट्रेट, एकोनाइट्रेट, पिट्यूट्रिन लगाना चाहिए।

वमन किसी प्रकार नहीं रुकती हो तो एपोमार्फीन या मार्फिया एट्रोपीन लगाना चाहिये।

हिचकी बहुत ज्यादा आती हो व किसी भी हालत में न रुकती हो तो मार्फिया एट्रोपीन या पाइलो कार्पीन नाइट्रेट का इन्जेक्शन कुनैन के साथ साथ ही लगाना चाहिये।

दस्त शुरु हो जावे तो एमेटीन हाइड्रोक्लोराइड का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

अगर रक्तस्राव शुरू हो गया हो व रुकता न हो तो एर्गटीन साइट्रेट या एड्रीनैलीन का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

ग्लुकोज सोल्यूशन २५ सी. सी. का इन्जेक्शन शिरांतर्गत देने से भी ज्वर कम हो जाता है।

मलेरिया में जब ज्वर १०४ से अधिक हो जावे और रोगी प्रलाप करने लगे या मूर्छित हो जाये तो माथे पर यूडीकोलन की पट्टी या बरफ की थैली रखनी चाहिए।

मलेरिया में ज्वर उतर जाने पर कुनाइन सल्फ gr. v। एसिड सल्फ० डिल० m. x। स्प्रीट क्लोरोफार्म m, x.। सिरप औरेंज dr. 1। जल dr. 1 तीन या चार बार रोज देना चाहिये।

प्लीहा बढ़े हुये मलेरिया में सरकारी अस्पतालों में यह दवा दी जाती है। कुनाइन सल्फ० gr. v। एसिड सल्फ० m. x। फेरीसल्फ० gr. v। सिरप औरेंज dr. 1। जल dr. 1। तीन बार रोज।

कुनैन गर्भपात करने वाली दवा है। इसलिये गर्भावस्था में इसे सावधानी से बर्तना चाहिये।

कुनैन हाइड्रोक्लोर gr. iii। कैलसियम लेक्टेट gr. v। पोटास ब्रोमाइड gr. v। सोडाबाई कार्ब gr. x। ग्लुकोज dr. ३। तीन बार रोज। कुनाईन की मात्रा दूसरे रोज ४ ग्रेन कर सकते हैं।

मलेरिया मिक्चर—कुनैन सल्फ १६ ग्रेन। एसिड हाइड्रो ब्रोमिक० डिल० ½ ड्राम। लाइकर आर्सनिक हाइड्रो० ८ बूंद। टिंकचर क्लोरोफार्म ४० बूंद। टिंकचर नक्सवोमिका १ ड्राम। डिस्टिलवाटर ८ औंस। बुखार आने के पहले घण्टे-घण्टे पर १ औंस बार बार पिलाना। क्विनीन सल्फ ½ ड्राम। पौडर चिरायता २ ड्राम। आर्सेनिक एसिड २ ग्रेन। गोंद के पानी से ६० गोली बनावें। बुखार आने के करीब ३-४ घण्टे पहले से दवा देनी चाहिये।

होम्योपैथिक चिकित्सा—

इपिकाक ६, ३० मिचली और कै, जीभ पीली थोड़ी देर तक ठंड मालुम पड़ना, अधित देर तक उष्णावस्था, अंगड़ाई आदि लक्षणों में इसका प्रयोग करना चाहिये। अगर कुनैन का अप-व्यवहार हुआ हो तो इससे बहुत जल्द लाभ होता है। कंपकपी देकर आने वाले बुखार में इपीकाक ३० की १ मात्रा देने मात्र से बुखार फिर नहीं आयेगा। आर्सेनिक एल्बम ३०, २०० नये पुराने सभी मलेरिया की यह श्रेष्ठ दवा है। दिन में १२ से २ बजे तक रात्रि में १२ से २ बजे तक बुखार चढ़ना, कुनैन के अप-व्यवहार से उत्पन्न मलेरिया में विशेष लाभ करती है। यकृत् व प्लीहा बढ़ने पर अच्छा काम करती है। नागा देकर आने वाले बुखार में बहुत लाभ-दायक है।

किनिनमसल्फ० 8 x। ३० x। नये ज्वर में कंप-कपी, गर्मी और पसीना ये ३ अवस्थायें रोगी में नजर आयें तो बुखार न रहे तब ३ घण्टे का अन्तर देकर यह दवा देना।

चाइना ३०—रात्रि को छोड़कर और किसी भी समय बुखार का आना, हृदय में धड़कन, सिर दर्द, पारी से जाड़ा और गर्मी यकृत् व प्लीहा बढ़ना आदि लक्षणों में दे सकते हैं।

इनके अलावा, फेरममेट ६, विरेट्रमएल्बम ३ x ब्रायोनिया ६, सीना २००, इग्नेसिया १२, रसटक्स नक्सवोमीका ३०, एकोनाइट ३०, वेलाडोना ३०, एन्टिमटार्ट ३०, सलफर ३० आदि आदि एक से एक बढ़िया दवाइयां लक्षणानुसार देकर लाभ उठायें।

बायोकेमिक चिकित्सा—

नेट्रमम्यूर २०० यह जूड़ी बुखार की एक बढ़िया दवा है लेकिन इसका फल तुरन्त नहीं दिखाई पड़ता।

कालीफास—जब कमजोरी बहुत बढ़ गई हो अत्यधिक पसीना आता हो उस समय देना चाहिये।

मेगनीशिया फास 6 x। बहुत ज्यादा ऐंठन, पीठ में जाड़ा मालुम हो, ७ तथा ६ बजे रात्री एवं सुबह जाड़ा लगे तो यह दवा दें।

कालीम्यूर 6 x। जब जीभ पर गाढ़ा सफेद या भूरा सफेद मिला हुआ मोटा लेप चढ़ा हो उस समय इस दवा को देना चाहिये।

पथ्य-परहेज - मलेरिया ज्वर में देर से पचने वाला भोजन ठंडी चीजें, खटाई, गुड़, आलू, अरबी आदि हानिप्रद हैं। दूध का अत्यधिक सेवन करना चाहिए।

मूंग की दाल, रोटी, दूध, चावल, अदरख लहसुन, नींबू, पोदीने की चटनी, ज्वर उतर जाने पर देना चाहिये। ज्वर की हालत में दूध, साबूदाना बार्ली, हार्लिक्स, ग्लुकोज आदि देना चाहिये।

'रसायन' का अधिकारी कौन ?

लेखक—वैद्य श्री रामचन्द्र शाकल्य आयुर्वेदरत्न, इन्दौर।

"रसायनं हि तत्प्रोक्तं व्याधि नाशनम् ।"

रसायन भेषज से क्या नहीं हो सकता ?
उससे जरा का भी नाश हो सकता है।
उससे व्याधि का भी हरण हो सकता है।
उससे स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

× × ×

रसायन किसे कहते हैं ?

जो औषधियां जरा और व्याधि का विध्वंस कर शरीर हट्टा-कट्टा निरोगी रख सकती हैं वे ही रसायन कहलाती हैं।

रसायन भेषजों का प्रभाव तीव्र और चिरस्थायी होने के कारण रोगियों और चिकित्सकों की दृष्टि रसों पर विशेष आकृष्ट है।

"लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्।"
—च. चि. अ. १

चरकाचार्यानुसार रसायन भेषज रसासृगादि धातुओं में उचित परिणित (Metabolism) को रखने के लिये प्रयुक्त होती हैं।

+ × +

कौन जरा और मृत्यु को दूर कर सकता है ?

ब्रह्मचर्य्यादि और रसायन औषध

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्य:स्वराभरत ॥
—अ. ११ । ७ । १६

'ब्रह्मचर्य' शब्द के अनेक अर्थ हैं।

(१) ब्रह्म अर्थात् महान् होने के लिए योग्य आचरण करना।

(२) ईश्वर के साथ रहना, आस्तिक्य धारण करना।

(३) ज्ञान के अनुकूल व्यवहार करना।

(४) सत्य निष्ठ होना।

(५) आत्मा के साथ रहना।

(६) वीर्य रक्षण और सुनियमों के अनुकूल आचरण करना। इत्यादि नियमों के द्वारा देव अर्थात् ज्ञानी विद्वान् और इन्द्रियां मृत्यु को जीतती हैं। इस प्रकार के शुभ नियमों के अनुकूल जो अपना चालचलन रखता है वही निम्न बल प्राप्त कर सकता है—

'यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्यो-
रंतिकं नीतएव ।"
तमा हरामि निर्ऋते रूप स्यादस्पार्ष-
मेनं शत् शारदाय ॥
—अ. ३ । ११ । ८

अर्थात् "यद्यपि इसकी आयु क्षीण हुई हो, यदि यह मृत्यु के पास गया हो तो भी इसको उस विनाश के समीप से मैं वापिस लाता हूं और सौ वर्ष के जीवन के लिये (अस्पार्च) बलवान करता हूँ। कौन नहीं जानता ब्रह्मचर्य से होने वाले लाभों को ?

× × ×

रसायन तन्त्र का उपदेश किसे देना चाहिए ?

'तदे तन्न भवेद्वाच्यं सर्वमेव हतात्मने ।
अरुजेभ्यो द्वि जातिभ्य: शुश्रषायेषु नास्ति च ॥
—च. चि. अ. १

जो हतात्मा पुरुष हैं अर्थात् जिन्होंने मन आदि इन्द्रियों को विषय सेवा में रत हुये वे काम करते हैं जो आयु को क्षीण करने वाले हैं, शरीर दोषों को विकृत करके रोग पैदा करने वाले होते हैं, उन पुरुषों को रसायन तन्त्र का उपदेश नहीं करना चाहिये। और जिन्हें सुनने की आकांक्षा नहीं पैदा हुई उन्हें उपदेश नहीं करना चाहिये।

कहा है—

येहि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्त वन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥
[गीता ५।२२]

अर्थात् स्पर्श से विषयों से, इन्द्रियों के संयोग प्राप्त होने वाले भोग दुःख के हेतु हैं। आदि और अन्त वाले हैं, अनित्य हैं। बुद्धिमान पुरुष उनमें नहीं रमते।

रसायन किसे लाभदायक है?

प्रयास्थूल स निर्वाह्य दोषान् शारीर मानसान्।
रसायन गुणैर्जन्तुर्युज्यते न कदाचन॥
योगा ह्यायु प्रकर्षार्था जरा रोग निबर्हणाः।
मनु शरीर शुद्धानां सिद्धयन्ति प्रयतात्मनाम्॥'

अर्थात् जो रसायन औषधि आयुवर्द्धक हैं रोग भी नाशक हैं वे उन्हीं लोगों के लिये लाभकर होते हैं। जिन्होंने शरीर और मानस दोष दूर नहीं किये उन्हें रसायन से कोई फल नहीं मिलता।

कहते हैं कि स्वामी रामतीर्थ ध्यान करने बैठते तो उनके ध्यान में सेव आजाता।

बड़े हैरान! जब देखा तब सेव। एक दिन वे बाजार से ए० सेव ले आये और उसे रख दिया अपने सामने वाले ताख में।

शीघ्र बिगड़ने वाला फल धीरे-धीरे उसका रंग विकृत होने लगा।

कुछ दिनों (बाद) में वह सड़ गया। बदबू आने लगी उससे।

तब स्वामी राम ने उसे उठाकर फेंक दिया। फिर कभी सेव उनके ध्यान में नहीं आया।

आयुर्वेद के आचार्यों मुनियों ने रोगों के स्वाभाविक और नैमित्तिक भेद बतला कर जरा और मृत्यु को भी स्वाभाविक रोग माना है! 'स्वाभाविकाः (...नयः) क्षुत्पि या साजरा मृत्यु निद्रा प्रभृतयः'।
सु. सू. अ. १, ५५

और उनकी चिकित्सा के लिये विचित्र प्रयोगों का आविष्कार किया है। जरा और मृत्यु का सम्भव भी दोषों की विषमता के बिना नहीं है अतः रोग के लक्षणानुसार 'रोगस्तु दौषवैशम्यं दोष साम्य-मरोगता' जरा और मृत्यु की भी परिगणना की गई है।

किन गुणों युक्त मनुष्य को रसायन सेवन से लाभ होता है। हमारे आचार्य चरक मुनि ने इस प्रकार समझाया है—

सत्यवादिन म क्रोधं निवृत्तं मद्य मैथुनात्।
अहिंसक मनायां सम्प्रशांतं प्रियवादिनाम्॥
याज्य शौच परं धीरं दान नियं तपस्विनम्।
देव गो ब्राह्मणाचार्य गुरू वृद्धार्चनैरतम्॥
आनु शंस्य परन्नित्यं नित्यं करुणा वेदिनम्।
सम जागरणं स्वप्न नित्यं क्षीर घृताशिनाम्॥
देशकाल प्रमाणज्ञं युक्तिज्ञ मन हङ्कृतम्।
शस्ताचार म संकीर्ण मध्मात्य प्रवेणन्द्रियम्॥
उपासितारं वृद्धाना मास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्र हरं विद्यान्तरं नित्य रसायनम्॥
गुणैरतेः समुदितैः प्रयुङ्क्ते यो सारयनम्।
रसायन गुणान् सर्वान् यथोत्कान समश्नुते॥

आजकल संसार चक्र उलटा चल रहा है। जिस मनुष्य में ये उपर्युक्त गुण विद्यमान हैं उसे रसायन सेवन की आवश्यकता नहीं समझी जाती। यदि ऐसा मनुष्य रसायन सेवन करे तो लोक में निन्दित समझा जाता है। जो मनुष्य रसायन सेवन करने के सर्वथा अयोग्य हैं, पैर कब्र में लटक रहे हैं। शरीर जर्जर है, हाथ उठते नहीं, आंखों से सूझता नहीं, कानों से ठीक सुनाई नहीं पड़ता, सभी अङ्ग जबाव दे चुके हैं—ऐसे वृद्धों में भी विकार जाग्रत होते देखा गया है। जिन्दगी भर भोग भोग चुके हैं, फिर भी उनसे अरुचि का कोई नाम नहीं। सुलभ हो और मकरध्वज तथा तिलामस्ताना उनकी नसों में खानी ला सके तो वे उसका भी उपभोग करने से हीं चूकेंगे।

मुस्कराकर कह उठेंगे-'शरीर बूढ़ा हो गया तो क्या दिल भी बूढ़ा हो गया।'

एक वैद्य होने के कारण हमें तो अनेक ऐसे सज्जन पुरुष मिलते हैं, उनके पत्र आते हैं, जो ऐसी दवा (रसायन) की खोज में रहा करते हैं, जिससे ज्यादा से ज्यादा सम्भोग की शक्ति बढ़े। अब आप ही अपने विवेक से सोचें इससे बढ़कर मानव समाज का भयंकर अधःपतन और क्या हो सकता है? जो कामी क्रोधी, लोभी, मोही और व्यसनी हैं वे रसायनों के पीछे पड़े हुए अधिक अधिक संसार में अनाचार फैला रहे हैं। रसायन सेवन करके बूढ़े भी जवान बनने की कोशिश कर रहे हैं।

हमारे प्राचीन ऋषि मुनि-रसायन का सेवन करते थे। प्रश्न स्वाभाविक उठेगा कि किसलिये?

ऋषि दयानन्द यदि कभी रसायन तन्त्रोक्त भेषज का सेवन करते थे तो यह जानकर कामी जन हंसते हैं, ब्रह्मचारी दयानन्द को रसायन सेवन करने की क्या आवश्यकता थी।

चरकाचार्य जी ने उपर्युक्त उत्तम शब्दों में कितना सुन्दर विवेचन किया है और बताया है कि रसायन का अधिकार किसे है?

कामी को? भोगी को? व्यसनी को?

केवल एक ही उत्तर हैं- नहीं - नहीं - नहीं। अर्थात् नकारात्मक ही पायेगें?

आजकल रसायन का सेवन ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके नहीं अपितु अधिक-अधिक ब्रह्मचर्य व्रत का नाश करने के लिये किया जाता है? यह कितने आश्चर्य की बात है? बात असल यह है कि मनुष्य समाज में खान-पान, रहन-सहन, बातचीत, बनावट, श्रृंगार आदि अप्राकृतिक विषयों का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि वह स्वाभाविक अवस्था से बहुत गिर गया है?

रसायन का अधिकारी कौन?

मुनी चरकाचार्य जी ने स्पष्ट शब्दों में बतला दिया है, वह क्या? "रसायन का अधिकार ब्रह्मचारी के लिये है, कामी भोगी व्यसनी के लिए नहीं।"

केवल उत्तर है—"ब्रह्मचारी"?

शीत ऋतु में स्वास्थ्य के लिए

लेखक—श्री लक्ष्मीनारायण जी राठौर, शामगढ़ म० प्र०।

शीत ऋतु शरीर के स्वास्थ्य व सुन्दरता के लिए ृति की अनुपम देन है। शीत ऋतु की महत्ता तीय नहीं है। ग्रीष्म काल की प्रखर तेजी से, लू झोंकों से शरीर का तेज बल तथा सप्तधातुयें शः क्षीण होती जाती हैं। दुर्बल व्यक्ति के लिए, तिष्क तथा धातु विकारों से ग्रसित व्यक्तियों के ए, राजयक्ष्मा से पीड़ित मनुष्यों के लिए ग्रीष्म ल अभिशाप रूप ही है। इन रोगियों का स्वास्थ्य शीत ऋतु में सुधार की ओर आजाता है यदि युक्त चिकित्सा भी की जाय तो रोगी सुख ास्थ्य सदा के लिए प्राप्त कर लेता है। ग्रीष्म ऋतु ास्थ्य के लिए किसी भी प्रकार सुखद नहीं कही सकती। ग्रीष्म के पश्चात् वर्षा ऋतु का आगमन ता है। वर्षा हमारे लिए ग्रीष्म से तो कहीं अच्छी । इसकी उपयोगिता धन्य धान्य की उत्पत्ति होने कारण मानी जाती है परन्तु यह शरीर के स्वास्थ्य अनुकूल नहीं पड़ती। प्रथम वर्षा होती है उस मय संतप्त भूमि से वर्षा का संयोग होने पर वाता- रण ही दूषित सा प्रतीत होता है भूमि से अजीव ुर्गन्ध सी निकलती है। वर्षा का मध्यकाल पश्चात् ्तर काल भी शरीर के त्रिदोषों में विषमता ला देता है। दोषों की विषमता से ही जठराग्नि मंद हो ाती है, भूख की कमी आलस्य की वृद्धि उदासी- नता आ जाती है। वर्षा के अन्त काल में त्रिदोषों की विषमता से अन्य विकारों के साथ ज्वरों का प्रकोप भी हो जाता है। चाहे ज्वर का आगमन मच्छरों से होता हो फिर भी मच्छरों का कारण भी तो वर्षा ऋतु ही है। वर्षा ऋतु में बढ़ा हुआ पित्त शीत ऋतु से ही शान्त होता है अन्यथा पित्त का प्रकुपित होना, खांसते-खांसते जीवन दूभर बना देता है। हमारे ज्योतिषाचार्यों ने शीत ऋतु की उपयोगिता के कारण ही विवाह लग्नों की अधिकता इस ऋतु में रखी है। यह सत्य है कि विवाह का उपयुक्त अवसर शीतऋतु ही है। वर दुल्हन के सुहाग रात्रि के परस्पर मिलन की क्षति शीत ऋतु पौष्टिक भोजन से पूरी कर लेती है। ग्रीष्म तथा वर्षा में यह गुण नहीं पाया जाता। शीत ऋतु की सुमधुर समीर शरीर से स्पर्श होकर विशेष ही आनन्द उत्पन्न करती है।

प्रत्येक समझदार व्यक्ति शीत ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा करता है और इससे लाभ उठाना चाहता है। अस्तु। शीत ऋतु का पूर्ण समय प्रायः २० अक्टूबर से २० फरवरी तक होता है। इस समय के बीच शरीर के स्वास्थ्य के लिये जो भी उचित समझ कर लेना ठीक है। अतः हम शीत ऋतु में स्वास्थ्य के लिए संक्षिप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं। यह उन भाइयों को अधिक उपयोगी होगी जो कि शीत ऋतु की यथार्थ उपयोगिता से अपरिचित हैं। वैसे तो प्रत्येक पाठक के लिए अपने इस विषय के विचारों की पुष्टि के लिये प्रस्तुत पाठ्य सामिग्री तो है ही।

ग्रीष्म काल की प्रखर तेजी से तथा वर्षा से उत्पन्न हुए त्रिदोषों की विषमता से शरीर में दोषों की उत्पत्ति के साथ शक्ति का जो ह्रास होता है वह शीत ऋतु में पूरा हो जाता है। यदि कुछ ध्यान से काम लिया जाय तो आगामी ग्रीष्म में होने वाली कमी भी सुरक्षित की जा सकती है। शीत ऋतु में सप्तधातुओं की वृद्धि होती है तथा तेज बल धैर्य पौरुष की भी वृद्धि होती है। शीत ऋतु ही मनुष्य के सौभाग्य के लिये स्वास्थ्य सुन्दर संतान के लिए पत्नि को ऋतुदान देने का उपयुक्त अवसर है। शीत ऋतु ही पौष्टिक तेज युक्त औषधियों का सेवन करने का स्वर्ण अवसर है। हृदय सम्बन्धी रोगों का तथा मानसिक विकारों को दूर करने के लिए यज्ञ हवन की प्रक्रियाओं द्वारा उचित लाभ उठाने का

सुनहरी समय यही है।

भोजन, छादन, रहन-सहन विषयों की अधिकता आदि के सम्बन्ध में हुई वृहद् भूलें भी शीत ऋतु क्षमा कर देती है जो कि ग्रीष्म तथा वर्षा एक भी अधिकता का उचित बदला लेकर ही रहती है। शीत ऋतु हर एक व्यक्ति के लिए चाहे वह कृषक, व्यापारी, कर्मचारी, वृद्ध बालक ही क्यों न हो मानव को छोड़ पशु पक्षियों के लिए भी सर्व प्रकारेण अच्छी ऋतु है। अतः प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह शीत ऋतु की उपयोगिता का अवश्य लाभ उठावे।

स्वास्थ्य के लिए केवल भोजन ही पर्याप्त नहीं समझा जाता, अन्य आवश्यक कर्त्तव्य भी जैसे– शरीर पर तैल की मालिश करना, व्यायाम करना, खेलना, कूदना, मनोरञ्जन, रसरसायन का सेवन आदि भी शरीर के लिए आवश्यक हैं। अतः क्रम से १-१ पर प्रकाश डालते हैं।

स्वच्छ वायु—

स्वच्छ वायु से ही शरीर का स्वास्थ्य उत्तम रहता है। गंदी हवा से फैफड़ों में खराबी होकर हृदय तथा मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारियां हो जाती हैं। अतः प्रातः सायं गांव बाहर स्वच्छ वायु में टहलना चाहिए। दो व्यक्तियों का एक वस्त्र में सोना हानिप्रद है। परस्पर मुख से निकली नाइट्रोजन हवा स्वास्थ्य के लिए निषेध है। इतना ही नहीं अकेले मनुष्य को मुंह ढांककर नहीं सोना चाहिए। बहुधा देखा जाता है कि छत वाले कमरों में रात्रि के समय चारों ओर से खिड़कियां बन्द कर लेते हैं और फिर भी मुंह ढांक कर सोते हैं। यह बुरी प्रथा है। वायु से आदमी जीते हैं मरते नहीं अतः हवा से डरना ना-समझी है। स्वच्छ वायु के वातावरण में यदि उपलब्ध फूल-फलों से युक्त उद्यानों में लम्बी श्वास लेकर स्वच्छ वायु को फेंफड़ों में पहुँचाई जाय तो हृदय सम्बन्धी व्याधियों का खतरा नहीं रहता तथा रक्त में भी स्वच्छता का संचार होता है।

जल तथा भोजन—

जहां तक सम्भव हो तालाब, बावड़ी, पोखरों कुओं आदि दूषित स्थानों का पानी नहीं पीना चाहिए। जिस कूप में कोई स्नान न करता हो, कपड़े आदि न धोता हो, सिंचाई होती हो उस कुएँ का पानी खराब नहीं कहा जा सकता। शीत ऋतु में यद्यपि अधिक प्यास नहीं लगती किंतु शरीर को जल की आवश्यकता तो होती ही है। साधारण प्यास तो वैसे ही नहीं लगती, अतः पानी की कमी शरीर के स्वास्थ्य में खराबी कर सकती है। रक्त की स्वच्छता जल पर ही निर्भर है। प्यास को रोकना हानिप्रद है। शीत ऋतु में कुछ समय की देरी पर भूख का वेग तीव्र हो जाता है। भोजन का पाचन इस ऋतु में ठीक होता है इसलिए पौष्टिक भोजन की कुछ मात्रा नित्य सेवन करना लाभप्रद है।

दूध, घी, मक्खन, बादाम, पिस्ता, छुआरा, अखरोट, नारियल, किशमिश, मुनक्का आदि पदार्थ यथाशक्ति सेवन करने चाहिए। यदि इसकी मात्रा का प्रश्न उठाया जाय तो निम्नलिखित मात्रा एक युवा पुरुष के लिए ठीक है। आधा सेर या तीन पाव दूध एक छटांक मक्खन अथवा आधी छटांक घी, आधी छटांक बादाम, पिस्ता, अखरोट, नारियल तथा एक छटांक से १॥ छटांक तक किशमिश पर्याप्त है। हरे फूल, फल, शाकादि चार केले, पाव टमाटर, आधा पाव मूली, मैथी, पाव पालिक काफी है। इनकी अधिक मात्रा चाहे लाभप्रद हो, परन्तु एक चीज पर निर्भर रहना उपयुक्त नहीं।

तेल मालिश (अभ्यङ्ग)—

शीत ऋतु आगमन होते ही शरीर की चमड़ी खुश्क, रूखी हो जाती है और कुछ नरमी भी महसूस होने लगती है। कहा जाता है कि तैल मालिश करवाने के हेतु ही यह प्रकृति की मांग खुटकना के रूप में प्रगट होती है। इस समय मनुष्यों को अवश्य ही प्रातःकाल की सुनहरी धूप में शुद्ध घी अथवा सरसों, नारियल के तैल की मालिश करनी चाहिये। ऐसा करने से

का भय तो दूर होता ही है। शरीर में चिकनाई की वजह से स्निग्धता आ जाती है। तैल मालिश से शरीर की नन्हीं-नन्हीं रगें अपना कार्य प्राकृतिक रीति से करने लग जाती हैं। तैल मालिश से शरीर बलशाली दृढ़ हो जाता है, जैसे सतत् तैल की रगड़ से गाड़ी का धुरा मजबूत हो जाता है, जैसे मिट्टी का घड़ा तैल अथवा घी का पात्र होने से पत्थर के समान हो जाता है। धूप में मालिश करने से यह लाभ और रहता है कि तैल धूप की वजह से शीघ्र ही रोम छिद्रों में प्रवेश कर जाता है। अतः तैल मालिश करना वस्तुतः शीत ऋतु में शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जो सज्जन व महिलाऐं समयाभाव से तैल मालिश का समय भी न निकाल सकें, उन्हें चाहिए कि वह शरीर के लिए ऐसा न करें। यदि रोज-रोज न कर सकें तो दिन दो दिन छोड़ कर अथवा सप्ताह में १ दिन तो शरीर को तैल मालिश से अवश्य ही स्निग्ध कर देना चाहिए।

व्यायाम तथा उससे लाभ—

व्यायाम से ही हमारा शरीर सुडौल, सुन्दर, स्वास्थ्ययुक्त रह सकता है। व्यायाम शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है जैसे कि भोजन। भोजन करने वाला व्यक्ति वह आनन्द महसूस नहीं कर सकता जो कि व्यायाम से निवृत व्यक्ति करता है। भोजन के पश्चात् उदर तृप्ति भले ही प्रतीत होती हो परन्तु किंचित अधिकता से पेट भारी दिखाई देने लगता है और व्यायाम के पश्चात् प्रसन्नता की झलक दिखाई देती है। आलस्य दूर होकर स्फूर्ति बल का संचार होता है। व्यायाम से शरीर घटता नहीं अपितु बढ़ता है। परिश्रम न करने वाले व्यापारी सज्जन कई रोगों से ग्रसित देखे जाते हैं। व्यायाम की उपयोगिता को भूलना ठीक नहीं। शीत ऋतु में तो व्यायाम आवश्यक रूप से करना चाहिए। व्यायाम से शरीर यदि कष्ट-सहिष्णु होता है तो साथ में तेज व बल से युक्त होकर रोगाक्रमण को भी रोकता है। यदि १०-१५ खिलाड़ी सज्जन मिल सकें तो कोई खेल भी खेल सकते हैं। जैसे हाकी, फुटबाल, बालीबाल, क्रिकेट, कबड्डी, भागदौड़ आदि, परन्तु अकेला मनुष्य ऐसा करने में असमर्थ होता है। अतः वह व्यायाम की पूर्ति के लिए सूर्य नमस्कार, दंड-बैठक, शीर्षासन, पद्मासन आदि कर सकता है। यदि तैरना जानता है और गहरे जल का समुचित प्रबन्ध हो तो प्रातः १५-२० मिनट तैर लेना व्यायाम के साथ स्नान की पूर्ति भी कर देता है।

स्नान की उपयोगिता—

प्रायः देखा जाता है कि शीत ऋतु में कई सज्जन जाड़े के डर से स्नान नहीं करते परन्तु यह आदत बुरी है। स्नान के पश्चात् तो तुरन्त ही जाड़ा कम हो जाता है। अधिक दिनों तक न नहाने से शरीर के रोम छिद्र पसीने के मल से परिपूरित होकर पसीना रोकने लग जाते हैं जिसमें नई-नई व्याधियों का जन्म स्वभावतः ही होता है। नित्य स्नान करने से शरीर स्वस्थ रहने के साथ चर्मरोग भी नहीं होते हैं। स्नान केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही महत्व नहीं रखता यह शरीर की स्वच्छता के लिये भी आवश्यक है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति को नित्य स्नान करना चाहिए। परन्तु हम एक बात और बतला देना चाहते हैं यद्यपि आप जानते ही होंगे कि स्नान करते समय किसी भी प्रकार का साबुन प्रयोग करना हानिकारक है। साबुन की वैज्ञानिक व्याख्या न करते हुए इतना ही कह देना उचित समझते हैं कि साबुन में कास्टिक सोडा पड़ता है इसलिए साबुन चमड़ी पर खरोंच उत्पन्न करता है तथा चमड़ी की सूक्ष्म रंगों को क्रिया हीन करता है। अतः साबुन का प्रयोग सर्व प्रकारेण हानिप्रद ही है।

रस रसायन का महत्व—

वर्षा ऋतु में त्रिदोषों की विषमता में से शरीर को जो हानि उठानी पड़ती है वह हानि का परिणाम चाहे, रोग हो, क्षीण शक्ति हो, शारीरिक मानसिक शिथिलता हो, रस रसायन के सेवन करने से उचित

लाभ होता है। रस रसायन उन लोगों को अधिक आवश्यक हो जाता है जोकि अधिक परिश्रम से वंचित रहते हैं। पर्याप्त परिश्रम से दोषों की विषमता वैसे ही समता में आजाती है।

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मांस खून स्मृति मेधा धृति आदि की वृद्धि के लिए शीत काल में रस रसायन का सेवन करने का सुलभ अवसर है। जो औषधि ग्रीष्म काल व वर्षा काल में प्रतिकूल पड़ती है अथवा उचित लाभ न करती हो वह ही इस ऋतु में अधिक लाभ करती हैं। परिवार की अवस्था के अनुसार भिन्न-भिन्न अल्प मूल्य के तथा बहुमूल्य योग यहां लिख रहे हैं।

शीत ऋतु में सेवन करने योग्य रस रसायन टॉनिक आदि की इकाई नहीं है अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कई प्रकार की पौष्टिक औषधियां प्रति शीत ऋतु में सेवन की जाती हैं। आयुर्वेदोक्त जो रस रसायन भस्में इस ऋतु में सेवन करना चाहिए वह ही कुछ बतलाते हैं।

हृदय सम्बन्धी बीमारियों के लिए अभ्रक भस्म सहस्रपुटी, पन्ना भस्म, पीतल भस्म, मयूरचन्द्रिका भस्म, मोती भस्म, स्वर्ण भस्म, मकरध्वज, रससिंदूर, पूर्णचन्द्र रस, माणिक्य रस, त्रिलोक्य चिंतामणिरस, वसन्तमालती, लक्ष्मीविलास रस, च्यवनप्राश अवलेह मूसलीपाक आदि उपयोगी हैं। यह औषधियां हृदय विकारों के साथ मस्तिष्क विकारों व शरीर के विकारों को दूर कर शरीर को कान्तियुक्त बल धैर्य युक्त बनाती हैं। खून की वृद्धि के लिए यकृत प्लीहा सम्बन्धी उदर विकारों के लिये लोहभस्म शंखभस्म मण्डूरभस्म ताम्रभस्म के साथ कुमारी-आसव विडङ्गासव द्राक्षासव आदि सेवन करने चाहिये। वात विकारों के लिए योगराज गूगल ही सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। वात विकारों को दूर करने के लिए केवल खाने की औषधि से ही पूर्ण लाभ न होगा। वात स्थान पर नित्य धतूर तेल घर में बनाया हुआ अथवा नारायण तेल, गोपाल-तेल, विषगर्भ तेल की मालिश करनी चाहिए व कब्ज न होने देना चाहिए। किसी भी प्रकार की औषधि रस रसायन सेवन करते समय कब्ज न होने देने का ख्याल रखना चाहिए। ऐसी दशा में त्रिफला चूर्ण अन्य रोगोनिवृत्ति के साथ कब्ज को भी दूर करता है।

शारीरिक स्वास्थ्य के लिये शिलाजीत भी एक ऐसी औषधि है जो कि अल्प मूल्य होने पर भी महान् गुणकारी है। इसका सेवन हर ऋतु में समान उपयोगी है और कोई औषधि सेवन न करने वाले सज्जन दूध के साथ चार रत्ती शिलाजीत सुबह, तीन रत्ती रात को लिया करें। शिलाजीत को और भी उपयोगी करने के लिये हृदय सम्बन्धी विकारों में ५ तोला शिलाजीत १ तोला अभ्रक भस्म शतपुटी डालकर २-२ रत्ती की गोलियां तथा मस्तिष्क संबंधी विकारों में प्रवालपिष्टी ५ तोला शिलाजीत १॥ तोला डालकर त्रिफला के संयोग से गोलियां तैयार कर लेनी चाहिये। खून की वृद्धि के लिये लोहभस्म शतपुटी, उदर विकारों में शंख भस्म कौड़ी भस्म का प्रयोग करना चाहिये।

यदि स्वयं पौष्टिक औषधि बनाना चाहें, १० तोला सफेद मूसली, ५ तोला तालमखाना, ५ तोला बीदाना, ५ तोला शिवलिंगी बीज, ५ तोला गोंद बढ़िया, छोटी हरी इलायची १ तोला, मिश्री १० तोला सबका पृथक्-पृथक् चूर्ण कर मिश्रण कर लेवें। यह औषधि धातु विकारों के लिये प्रसिद्ध है, साथ ही शरीर को पुष्ट करने में भी। इसके सेवन से कब्ज भी नहीं होता। इसके साथ गौ का ही दूध होना चाहिये। आधा सेर दूध के साथ १ तोला १॥ तोला नित्य प्रातः सेवन करना चाहिये।

४ तोला तिल में १ तोला गुड़ अथवा शक्कर डालकर सेवन करना भी रक्त की वृद्धि तथा मांस की वृद्धि करता है। है भी तो अत्यन्त अल्प मूल्य का योग। अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को शरीर के स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त औषधि चुन लेनी चाहिये।

अंगूर (द्राक्षा)

लेखक-विद्यार्थी श्री रामेश्वर पारीक, श्री हनुमान आयुर्वेदिक कालेज, रतनगढ़।

परिचय—इसकी गणना उत्तम कोटि के फलों में की जाती है। अफगानिस्तान में यह बहुतायत से पैदा होता है तथा वहाँ के अंगूर दुनियां के अन्य देशों की अपेक्षा उत्तम होते हैं। अंगूर की लताएँ होती हैं, जिसके पत्ते गोलाकार होते हैं। फूल सुगन्धित व हरे रंग के होते हैं, मचानों के उपर इसकी लताएँ खूब छा जाती हैं। प्रायः यह सभी देशों में होता है। हिन्दुस्तान से अफगानिस्तान व फारस देश के अंगूर ज्यादा अच्छे होते हैं। अंगूर की अनेक जातियां होती हैं जिनमें पांच जातियां विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनमें से दो काले रंग की और तीन हरे रंग की होती हैं। काले रंग की जाति को हब्जी अंगूर कहते हैं। यह जामुन के समान गहरे बैंगनी रंग का व चमकदार होता है। खाने में बहुत मीठा होता है। दूसरी प्रकार का काला अंगूर बैंगनी रंग का होता है, तथा हब्जी अंगूर से कम मीठा होता है। पक्के अंगूरों को उनकी लताओं पर ही सुखाकर दाख या मुनक्का बना लेते हैं। काले अंगूर या काला मुनक्का पिटारी के अंगूर का लाल मुनक्का, बेदाना अंगूर का किसमिस बनता है।

द्राक्षा स्वादुफला प्रोक्ता तथा मधुरसापि च।
मृद्वीका हारहूरा च गोस्तनी चापि कीर्तिता ॥ १ ॥

(निघण्टुः)

पर्याय—द्राक्षा, स्वादुफला, मधुरसा, मृद्वीका, हारहूरा गोस्तनी, ये द्राक्षा के संस्कृत नाम हैं।

भाषा भेद से नाम—हि० अंगूर दाख। बं० मनेका, बेदाना। म० काली द्राक्षे। गु० द्राक्ष। क० वेडगणद्राक्षे। तै० द्राक्षा। ता० कोडि मड्डि। फा० अंगूर, मुनक्का। अ० एनब जबीब, हबुस जबीब। इं० ग्रेप रेजिन्स Grape raisins। लै० वाईटिन्स, विनिफेरा, Witins Venifera।

गुण—

द्राक्षा पक्वा सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः।
स्वादुपाकरसा स्वर्या तुवरा सृष्टमूत्रविट्।
कोष्ठ मारुतहृद् वृष्या कफपुष्टिरुचिप्रदा ॥ १ ॥
हन्ति तृष्णाज्वरश्वास वातवातास्त्र कामला।
कृच्छ्रास्त्रपित्तसम्मोह दाहशोषमदात्ययान् ॥ २ ॥
आमा स्वल्पगुणगुर्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत्।
वृष्या स्याद् गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफपित्तनुत् ॥ ३ ॥
अबीज्याऽन्या स्वल्पतरा गोस्तनी सदृशी गुणैः।
द्राक्षा पर्वतजा लघ्वी साम्ला श्लेष्माम्लपित्तकृत् ॥ ४ ॥
द्राक्षा पर्वतजा यादृक् तादृशी करमर्दिका ॥ ५ ॥

भावार्थ—पक्का अंगूर दस्तावर, शीतल, नेत्रों के लिए हितकारक, पुष्टिकारक, भारी, पाक व रस में मधुर, स्वर को उत्तम करने वाला, कसैला, मल, तथा मूत्र की प्रवृत्ति कराने वाला, कोठे में वात-वर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, कफ पुष्टि तथा रुचिकारक है। तृषा, ज्वर, श्वास, कास, वात, वातरक्त, कामला, रक्तपित्त, मेह, दाह, शोष तथा मदात्यय आदि व्याधियों को नष्ट करता है। कच्चा अंगूर ऊपर के गुणों से हीन गुणवाला व भारी है।

खट्टा अंगूर—वही यदि खट्टा हो तो रक्तपित्त को करता है।

पर्वतीय द्राक्षा—हल्की, अम्ल, तथा कफ व अम्लपित्त को करने वाली है।

करमर्दिका—पर्वतीय दाख की तरह गुण वाली है।

गुण—प्रयोग से पूर्व दाख के बीज व छिलके दूर कर देना चाहिए। मुनक्का श्रमहर, शीत, स्निग्ध व मृदुरेचक है। यह औषधियों को मीठा करने के लिए प्रयुक्त होता है। यह ज्वर की प्यास, प्रदाह मूलक पीड़ा व कोष्ठबद्धता में लाभकारी है।

पत्र—कषाय होने से अतिसार में लाभकारी है।

लता भस्म—अश्मरी की पूर्वावस्था में मूत्र में तलछांट (यूरिक एसिड) अधिक आने पर सेवन करने से इन्हें नष्ट करता है।

पुष्पकाल—वर्षा प्रारम्भ।

फलकाल—शिशिर। पुष्प लगने के बाद गुच्छों में अंगूर लगते हैं। कच्चे रहने पर हरे, पकने पर श्वेत हरित, पीत होजाते हैं। सूखने पर यही मुनक्का हो जाता है, छोटे किस्म का अंगूर सूखकर किसमिस हो जाता है।

भूमि—लवणाम्ल, चूर्ण मिश्रित।

व्यवहारांश—क्षार, फल।

गुण दोष—

आयुर्वेद मतानुसार वीर्यवर्द्धक, तृषा, ज्वर, श्वास, वात रक्त, रक्तपित्त, मेह, दाह, शोष को दूर करने वाला है। अंगूर के ताजे फल रुधिर को पतला करने वाले, छाती के रोगों में लाभकारी, बहुत जल्दी पचने वाले, रक्तशोधक तथा खून बढ़ाने वाले होते हैं।

यूनानी मत

यूनानी मतानुसार इसके पत्ते बवासीर में उपयोगी हैं। इसके रस से शिरदर्द, उपदंश आदि अनेक व्याधियां नष्ट होती हैं। इसकी डाली मूत्राशय, अण्डकोष के सूजन में फायदा करती है। इसका फल श्लेष्मा को ढीला कर निकलने वाला, स्त्रियों के मासिक धर्म को नियमित करने वाला, पौष्टिक और कब्जियत दूर करने वाला है। इसके बीज शीतल व कामोत्तेजना को बढ़ाने वाले हैं। इसकी लकड़ी की राख बवासीर की सूजन को नाश करने वाली तथा अश्मरी में अच्छा फायदा करती है। फलों में अंगूर सर्वश्रेष्ठ व निर्दोष फल है। पथ्य में भी यह बहुत अधिक काम में लाया जाता है। स्वस्थ मनुष्य के लिए यह उत्तम पौष्टिक खाद्य है। आतुर के लिए अत्यन्त बलवर्द्धक पथ्य है, जिन बड़े-बड़े रोगों में रोगी को खाने के लिए कोई पदार्थ नहीं दिया जाता, उनमें भी अंगूर या दाख दी जाती है।

उपयोग—

(१) तृषा—पित्तज्वर और उसकी तृषा को मिटाने के लिए अंगूर का शर्बत पिलाना चाहिए।

(२) मूत्रकृच्छ्—मुनक्का का बासी जल में चटनी की तरह पीसकर जल के साथ देना चाहिए।

(३) अण्डवृद्धि—इसके पत्ते पर घी चुपड़ कर और आग पर गरम करके वृषणों पर बांधने से सूजन मिटती है।

(४) चर्मरोग—अंगूर की डालों को काटने से एक प्रकार का मद निकलता है उसको त्वचा पर लगाने से त्वचा के रोग मिटते हैं।

बनावटें—

द्राक्षारिष्ट

मुनक्का		२॥ सेर
गुड़		५ सेर
दालचीनी	इलायची	तेजपत्र
नागकेशर	प्रियङ्गु	कालीमिर्च
पीपल	विडङ्ग	—४-४ तोला

निर्माण विधि—पहले मुनक्का ३५ सेर जल में डालकर क्वाथ करलें, जब १२ सेर जल अवशेष रह जाय तब उसे उतार कर मुनक्का को मसल कर क्वाथ का पानी छान लो, अब उस में गुड़ डाल दो, जब गुड़ पानी में भली प्रकार लीन हो जाय, तब उसमें नागकेशर, दालचीनी आदि का प्रक्षेप डालकर उसे घड़े में डाल दो और सन्धिबन्धन करके धूप में रख दो। २०-२५ दिन तक उसे धूप में रहने दो, इस विधि से द्राक्षारिष्ट तैयार किया जाता है।

—शारंगधर मध्यम खण्ड।

प्रयोग—उरःक्षत, यक्ष्मा, रक्ताल्पता आदि में दिया जाता है।

अंगूर का शर्बत

अंगूर का स्वरस	१ सेर
	१॥ सेर
शुद्ध चीनी	२ सेर

निर्माण विधि—पहले जल में चीनी डालकर आग पर चढ़ावें। जब उबाल आने लगे तब अंगूर का रस उसमें डाल दें, उसके पश्चात् चाशनी १ तार या १॥ तार आने पर उतार लें।

इस विधि से अंगूर का शर्बत अच्छा बनता है।

प्रयोग—यह शर्बत तृषा, शरीर की ऊष्मा, यक्ष्मा आदि रोगों में अत्यन्त लाभदायक है।

अनुभूत-भस्मक-योग

लेखक—स्वामी कृष्णानन्द शास्त्री, सिद्धाश्रम-मालिन खोह, चन्देरी (मध्य प्रदेश)

नीत-वचन —

प्रिय सज्जनो ! मैंने उस निःक्षेप शक्तिमान प्रभु रचे हुये, इस विचित्र क्रीड़ा स्थल, जगत् में आकर री पथ में परोपकार करना ही परम-धर्म मझा है। एवं मैंने आज तक गुरुओं के अनु- से जो कुछ भी प्राप्त किया है, उसे देश सेवा अवश्य दे जाऊंगा।

स्मरण रहना चाहिये, प्रथम प्रकाशित विशेषाङ्क ५८ के श्वासघ्न-योग में हम इस बात को स्पष्ट आये हैं कि आगे चलकर सरल एवं सुगम्य, परिश्रमेण साध्य अनुभूत भस्मक योगों का कथन गे। अस्तु, अब सुअवसर पाकर उसी विषय को पके समक्ष प्रादुर्भूत कर रहे हैं।

शास्त्र दृष्टि से एवं आप्त-पुरुषों के कथन से त होता है कि पारद में अमोघ शक्ति निहित है, कि जिस पारद को शास्त्रों ने मुक्त कण्ठ से यं परब्रह्मस्वरूप श्री शङ्कर जी का वीर्य एवं रूप वर्णन किया है। अपितु, इस विषय में आश्चर्य ही क्या है। विशेष क्रिया द्वारा सुसम्पन्न पारदेश्वर-योग से मनुष्य चिरायु एवं बज्रकाय र्थात बज्रसम मजबूत हृष्ट-पुष्ट तथा आकाश- री भी हो सकता है।

"किं किं न सिद्ध्यति कल्पतरु हि सः" क्यों कि रद सर्व शक्ति सुसम्पन्न है। जिस समय कामातुर कर शिवजी ने मोहिनी स्वरूप का अनुसरण या, उस समय पृथ्वी पर जहां-जहां श्रीशङ्कर जी वीर्य स्खलित हुआ, वहां-वहां पृथ्वी में सोना, चांदी, हीरा आदि की खानें उत्पन्न हो गईं। अस्तु, सी पारदेश्वर के कुछेक अनुभूत योग आपके सामने प्रदर्शन कराते हैं जिन पर एक बार अवश्य दृष्टिपात करें।

सम्प्रति अधिकाधिक्य हकीम एवं वैद्यों का पारद के विषय में प्रण रोप कर कथन है, कि भस्म नहीं हो सकता। प्रत्युत मेरे विचारानुसार उनकी बुद्धि उस सीमा तक पहुँच ही नहीं सकी है, इसी हेतु न्यूनता प्रकट करते हैं। सम्प्रति मैं यहां तक कह सकता हूँ कि तोले दो तोले की तो वार्ता ही रहने दो, अपितु सेर दो सेर पारद की भस्म कर सकता हूं। किम्बहुना आप हमारे निम्न योगों में से किसी एक को अजमालें। हाथ कङ्गन को आरसी ही क्या है। स्वयमेव विदित हो जायगा।

प्रथम-योग—चिमगादर नामक जाति विशेष बिहङ्ग को सजीव पकड़वा कर पश्चात् उसके मुख द्वारेण छटांक, पाव, आध सेर एवं यथाभिमत पारद लेकर युक्तिपूर्वक उदर में भर कर दोनों हाथों से उसके दोनों पंख पकड़ लो, और यावत् उसकी मृतक अवस्था न हो जाय तावत् पर्यन्त सुप्र- कारेण ग्रहण किये रहो। पश्चात् उसका मुख बन्द कर, एवं मृण्मय पात्र के अन्दर स्थापित कर, तथा उक्त हण्डी का मुखाच्छादन करके अनन्तर उसके ऊपर ३ कपड़मिट्टी कर देना चाहिये। तदनन्तर 'गजपुटी' आंच देकर तथा अनल के स्वाङ्ग शीतल होने पर युक्ति पूर्वक सावधानी के साथ उस हण्डी को निकाल कर एवं तन्निहित वस्तु को सुरक्षित स्थान में रख लीजिए। बस श्वेत-वर्णीय सर्वोत्तम पारदेश्वर-अद्भुत-योग बन कर प्रस्तुत है।

परन्तु पारद अच्छी प्रकार संस्कृत एवं हिंगुल जन्य होना चाहिये। अनुपान—१ चावल की मात्रा में मक्खन या मलाई के साथ, तथा दूध, घी पर्याप्त मात्रा में सेवन करना चाहिये।

नोट—ऊपर कथित वही योग है, जो कि चित्र- कूट की यात्रा संकालीन-आरण्यक पर्यटन में महोबा के एक अनुभवी रसज्ञ ब्रह्मचारी जी द्वारा प्राप्त

किया था। जिसे आपकी सेवा में समर्पित कर आशा है इस योग की सहायता से आप निःसन्देह सफल बनेंगे, एवं आपकी हार्दिक भावनायें अपूर्ण न रहेंगी।

द्वितीय-योग—रांगा शुद्ध हिरनखुरी २॥ तोला प्रथम गलाकर, पश्चात् शुद्ध पारद १ तोला गले हुये रांग में डालकर, युक्तिपूर्वक गोली बना लीजिये। तदनन्तर उस गोली को लभेड़े के पत्रों की लुगदी में रखकर "एकं गोमयमग्रश्चैक मूर्ध्वं-कृत्वा" निवात स्थान में स्थित कर प्रज्वलित कर देना चाहिये।

तृतीय-योग—बथुआ का रस एक सेर ग्रहण कर, उसमें शुद्ध पारद को खरल कर, एवं गोली बांध कर, तथा छाया में सुखाकर, ऊपर से सवा-सेर कपड़ा लपेट कर, निवात स्थान (बन्द मकान) में रख कर प्रज्वलित कर देना चाहिए।

चतुर्थ-योग—शुद्ध पारद १ तोला, तेजाब गंधक २॥ तोला, पूर्व चीनी के प्याले को अंगारों के ऊपर रख दीजिये, पुनः प्याले के अन्दर तेजाब डालकर, पारद डाल दीजिये। तदनन्तर एक लोह शलाका द्वारा तन्निहित द्रव्य को शनैः शनैः संचालन करते रहिये। यावत् धूम्र का निकलना बन्द न हो जाय, एवं शुद्ध स्वच्छ अविकृत रूप भस्म का श्वेत-वर्ण स्पष्ट भासित न हो जाय तावत्पर्यन्त। तत्पश्चात् उतार कर स्वच्छ शीशी में भरकर, कार्क लगाकर रख लीजिए। आवश्यकता पड़ने पर निःशङ्क होकर प्रयोग करें यशप्रद है। अनुपान—१ चावल से १ रत्ती तक, शक्ति बल को विचार कर, मलाई के साथ, ऊपर गरम दूध पीना चाहिये। उदरशूल, कटिशूल, पसली शूल, आतशक, निमोनियां एवं गठिया आदि वातजनित रोगों की अप्रतिहत-परमौ-षधि है। परन्तु ३ खुराकों से अधिक नहीं देना चाहिये। यदि तेजाबजनित दोष से निर्दोष करना इष्ट हो तो कुमारी के गूदा में घोटकर एक पुट दे दीजिये। शुद्ध-स्वच्छ निर्दोष एवं निर्मल भस्म बन जायगी।

पंचम योग—

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध आंवलासार गंधक १ तोला। प्रथम चीनी अथवा लोह प्याली को लेकर मन्द मन्द आंच पर रखदो और प्याली में गन्धक डालदो। जब गन्धक अच्छी प्रकार गल जाय तब उसमें पारद डाल दो और एक लोह शलाका द्वारा हिलाते जाओ, श्याम वर्ण उत्तम भस्म बन जायगी। तदनन्तर उसमें सम मात्रा में अकरकरा पीसकर एवं मिलाकर रख लीजिये।

अनुपान—१ चावल भर मक्खन के साथ, ऊपर से गौघृत मिश्रित गौदुग्ध में मिश्री डालकर पीना चाहिये। यह योग अद्भुत शक्तिशाली एवं बलकारक है।

गन्धक शोधन विधि—प्रथम एक बर्त्तन में गाय का दूध अपने पास में रख लेना चाहिए। तदनन्तर एक लौह चम्मच में थोड़ा सा घृत डालकर उसमें गन्धक डालदो, और आंच पर रखदो, जब गन्धक गल जावे, तब दूध में डाल दो, पुनः निकाल कर उपर्युक्त रीत्यानुसार एक दो बार क्रिया करने से शुद्ध होजायगा। पश्चात् कार्य में लायें, किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं करेगा।

पारद से गोली बनाने के सरल योग—शुद्ध पारद १ तोला, चणकपुष्प १॥ तोला। दोनों को खरल में डालकर यावत् अभिन्नत्व रूप भासित न होजाय तावत् पर्यन्त घोटन क्रिया करें। पश्चात् एकत्रित कर गोली बांधकर छाया में सुखा लीजिये।

दूसरी विधि—सरफोंका के कोमल पत्रों के योग से उपर्युक्त उपचारानुसार क्रिया करने पर भी गोली बँध जायगी।

प्रभाव—गर्म दूध में २-३ मिनट गोली रखने से एवं दो-तीन बार गोता लगाकर दूध पीने से सरदी, जुखाम, एवं कमजोरी आदि में लाभ-कारक है।

हिंगुलेश्वर योग—

यथाभिलषित मात्रा में संग्रहीत हिंगुल को

दौलायन्त्र द्वारा दुग्ध में संशोधनानन्तर प्रति डली के ऊपर तोला परिमाण के माप से १॥ तोला अफीम का सुप्रकारेण लेप कर देना चाहिए। तत्पश्चात् सुपर्याप्त भिलावां की लुगदी में रखकर तदुपरान्त कढ़ाही में रखकर ऊपर से सुपर्याप्त मात्रा में घृत और शहद डाल देना चाहिए। तदनन्तर कढ़ाही को चूल्हे के ऊपर चढ़ाकर लगभग ८ घंटा पर्यन्त मन्द मन्द रीति से कढ़ाही के नीचे अग्नि जलाना चाहिये, अपितु पदार्थ प्रज्वलित होने लगे तो, सुविधिपूर्वक सावधानी के साथ तबा द्वारा आच्छादित कर देना चाहिए। साथ ही अग्नि की ज्वलन क्रिया भी स्थगित कर देनी चाहिये। पुनः शीतल होने पर निकाल कर स्वच्छ शीशी में भर कर रख लीजिये तथा आवश्यकता पड़ने पर कार्य में परिणत करें।

अनुपान—१ चावल से १ रत्ती पर्यन्त शक्ति बल के अनुसार ताम्बूल, मक्खन व मलाई के साथ दुग्ध एवं घृत आदि पर्याप्त मात्रा में सेवन करना चाहिये। अत्यन्त शक्ति बर्द्धक बलकारक एवं पौष्टिक योग है। परन्तु क्रिया सम्पादन के समय बड़ी सावधानी के साथ कार्य करें। अपितु इसके अतिरिक्त प्रमाद करने पर असफल रह जांयगे।

द्वितीय योग—यह वही योग है जिसे काश्मीर की यात्रा के समय एक अनुभवी सन्यासी द्वारा प्राप्त किया गया था।

संशोधित हिंगुल को भृङ्गराज नामक औषधि रस में त्रिदिवस पर्यन्त खरल में डलाकर घोटन क्रिया करें। तदनंतर टिकिया बनाकर एवं छाया में सुखा के कर ऊपर से वस्त्रावेष्टन कर देना चाहिये। पश्चात् पर्याप्त सूत्र द्वारा ग्रथित करके आरण्यक विनबां कण्डियों के मध्य स्थित करके निवास स्थान में रखकर फूंक देना चाहिये। तत्पश्चात् अग्नि के स्वाङ्ग शीतल होने पर, युक्तिपूर्वक सावधानी के साथ वस्तु को निकाल कर, सुरक्षित रख लेना चाहिए। बस सर्वोत्तम श्वेत वर्ण हिंगुल योग बनकर प्रस्तुत है।

अनुपान—औषधि १ चावल से १ रत्ती तक मक्खन के साथ २१ दिन पर्यन्त प्रातः एवं सायं दोनों समय सेवन करे, परहेज से रहे, ईश्वर कृपा से पर्याप्त लाभ पहुँचेगा। एवं उपर्युक्त औषधि स्त्रियों के रक्त प्रदर को दमन करने में अप्रतिहत रामबाण है। तथा शहद के साथ सेवन करने से श्वास रोग में भी पर्याप्त लाभ करती है।

श्वेत वर्णीय जाति विशेष भंटे के अन्दर भी हिंगुल भस्म होना कहा गया है। हमारे योगों को एक बार आप अवश्य परीक्षा करें। ईश्वर कृपा से जिन योगों में आप हताश होकर उपराम हो बैठे हैं अपितु सफलता का अनुभव करेंगे।

ताम्रेश्वर योग—नीलाथोथा से निष्काशित शुद्ध ताम्रपत्रों को यथेच्छ मात्रा में संग्रह कर, एवं ६ माशा शुद्ध हिंगुल तथा ६ माशा मैनशिल, सम्मिश्रित कर, शुद्ध हिरनखुरी रांग से निर्माणित, २ कटोरियों के मध्य में सुप्रकारेण स्थित कर एवं दोनों कटोरियों की परस्पर सन्धि कर देनी चाहिये। तदनन्तर पर्याप्त मात्रा में भिलावा, दन्ती बीज (जमालगोटा) एवं रुई, उक्त तीनों वस्तुओं को एकत्रित करके, अच्छी प्रकार कूट कर, लुगदी बनाकर, एवं प्रोक्त वस्तु का एतन्मध्य स्थित कर, तदुपरि छटांक ताम्र पर डेढ़ सेर के परिमाण से वस्त्र भली-भांति लपेट देना चाहिये। तत्पश्चात् रात्रि को वायु अप्रवेशित भवन में स्थापित कर प्रज्वलित कर देना चाहिये। तदुपरान्त स्वांग शीतल होने पर सावधानी के साथ वस्तु को निकाल लीजिये। बस अति सुन्दर ताम्रेश्वर-योग बनकर तैयार है, तथा यथावश्यक समय पर उपयोग में लायें। अनुपान—१ चावल भर, मक्खन या मलाई के साथ। अर्क प्रकाश में कथित आयुर्वेदाचार्य लंकेश रावण के अभिमतानुसार दूध, सनाय, मिश्री के काढ़े के साथ २ रत्ती सेवन करने से निःसंदेह समग्र रोगोन्मूलन अशेषशक्ति पर्यवच्छिन्न है। तथा नपुंसकता पर मक्खन के साथ अप्रतिहत-रामबाण है। एवं मलेरिया आदिक शीत ज्वरों को शहद के योग से मार

भगाता है। अनुपान बदलकर उपयोग करने से सर्व रोगों पर प्रभाव डालता है। यह बड़ा ही प्रभावशाली एवं अद्‌भुत योग है।

द्वितीय योग–श्वेत कनेरमूलछाल, अर्कमूल छाल, नीमछाल, तितिड़ीछाल, अश्वत्थछाल इन सबके मध्य ताम्रचूर्ण में १ माशा हिंगुल एवं एक माशा मैनशिल, सम्मिश्रण कर, एवं रखकर, बिनवां उपलों की छोटी-छोटी ४-६ पुटें दे देने से सर्वोत्तम श्वेत वर्ण ताम्रेश्वर योग बन जायगा।

श्वेतकनेर मूलछालान्तरगत, गजपुटी आंच द्वारा भी ताम्रयोग सिद्ध हो जाता है।

तूतिया से ताम्र निकालने की सुगम्य विधि:—तूतिया १ पाव परिमाण संग्रहीत एवं चूर्णीकृत एक लोह कढ़ाही में प्रसारण कर देना चाहिये। पश्चात् तदुपरि १ तोला त्रिफला चूर्ण को १ पाव शीतल जल में भिगोकर एवं वस्त्र से छानकर, उस जल को कढ़ाही में डाल देना चाहिये। किंचित् समयोपरान्त स्वयमेव ताम्र पत्र तूतिया से पृथक् रूप में परिणत हो जावेंगे।

लोहभस्म योग—लोहचूर्ण १ सेर लेकर एवं हण्डी में रखकर, ऊपर से जम्बू-जामन का रस डाल कर, तथा मुखाच्छादन कर पृथ्वी में गजपुटाकार गड्ढा खोदकर, पश्चात् पर्याप्त गोमय से परिपूर्ण कर उसी के मध्य हंडी सुप्रकारेण स्थापित कर गाढ़ देना चाहिये। तदनन्तर ७-८ मास व्यतीत होने पर उस हंडी को सावधानी के साथ निकाल लीजिये। बस अत्युत्तम लोहभस्म बन कर प्रस्तुत है।

द्वितीय योग–लोहचूर्ण को खरल में डालकर एवं ऊपर से जामन का रस डालकर धूप में रख दो और कुछ समय बाद हिला दिया करें, तथा रस शोषण होने के अनन्तर पाव भर महिषी का दही डालकर घोटना चाहिये यावत् खुश्क न हो जाय तावत् पर्यन्त। बस सुन्दर लोह भस्म-योग बनकर तैयार है।

नोट—यह वही योग है, जिसे कि नासिक पंचवटी त्र्यम्बकेश्वर से एक संन्यासी द्वारा प्राप्त किया था।

बंगेश्वर योग—सुपर्याप्त एवं प्रचुर मात्रा में सुसंग्रहीत हिरनखुरी रांग को पूर्व एक लोह चम्मच में गला-गलाकर क्रमशः गोमय, गोमूत्र, गोतक्र, तिल तैल, त्रिफला एवं कांजी के पानी में ७-७ बार बुझाकर दोषरहित बना लेना चाहिये। अस्तु, यह क्रिया बड़ी सावधानी के साथ करें, अन्यथा आहत हो जावेंगे। तदनन्तर रांग हंडी में रखकर एवं हंडी को चूल्हे पर रखकर तत्पश्चात् नीचे तीव्र भट्टी की आंच देनी चाहिए। तथा हंडी का मुख ढक्कन से झांप दीजिये और आधा-आधा घण्टा व्यतीत होने पर ऊपर से आमले की पत्ती, बबूल की पत्ती, इमली की पत्ती एवं त्रिफला चूर्ण इन सबको छोड़ते जाइये इस प्रकार ३६ घंटा पर्यन्त तीव्रानल प्रभावेन भस्म हो जायगी। पश्चात् अर्कक्षीर अथवा शराब की १-२ पुट लगा देना चाहिये। बस सर्वोत्तम बंगेश्वर-योग बनकर प्रस्तुत है। अनुपान तुलसी पत्र व शहद के साथ ऊपर से दूध पीना चाहिये। प्रमेह आदि रोगों को दमन करने में निःसन्देह रामबाण है। अपितु यह अत्यन्त शक्तिबर्धक, कामकौतुहल योग है, जिसके विषय में 'बङ्ग घोड़े का तङ्ग' यह कहावत् लोक में चरितार्थ है।

द्वितीय योग—उपर्युक्त क्रियानुसार संग्रहीत शुद्ध हिरनखुरी रांग चूल्हे पर स्थापित की हुई कढ़ाही के अन्दर डालकर, तत्पश्चात् नीचे ८ घण्टा पर्यन्त तीव्र अग्नि प्रज्वलित करना चाहिये। तथा स्वयमेव नीरसभूत अश्वत्थछाल चूर्ण किंचित् किंचित् समयगतोपरांत कढ़ाही में डालते जाइये, और तन्निहित पदार्थ को एक करछुली द्वारा संचालन करते जाइये। इस प्रकार युक्तिपूर्वक की गई क्रिया की सहायता से अद्‌भुत शक्तिशाली बंगेश्वर योग बन जायगा।

तृतीय योग—शुद्ध हिरनखुरी रांग को प्रोक्त क्रियानुसार समूल श्वेतार्क लाकर एवं डण्डी कुचल कर, केवल उसी के द्वारा द्रव्य संचालन करते जाइये "यावत् भस्म न हो जाय तावत् पर्यन्त"। इस प्रकार लघुप्रयास द्वारा ही सुन्दर योग बन जायगा।

—शेषांश पृष्ठ ११११

साहित्यालोचन

शल्य प्रदीपिका--लेखक डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा। प्रकाशक—महेन्द्रस्वरूप वर्मा डी ५३।११७ कमच्छा वाराणसी। पुस्तक साइज पृष्ठ संख्या ७५२ सुन्दर जिल्द मू० १२॥)

जब से हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी घोषित हुई है प्रत्येक विषय के विद्वानों को यह विश्वास हो गया है कि भविष्य में देश के कालेजों में विज्ञान के सभी विषयों का अध्यापन हिन्दी भाषा के द्वारा ही होगा। अतः स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रतिवर्ष अनेक पुस्तकों का निर्माण हिन्दी भाषा में हो रहा है। अंग्रेजी पुस्तकों के धड़ाधड़ अनुवाद हो रहे हैं ऐसा करने में कुछ पारिभाषिक शब्दों की कठिनाई होती है। परन्तु चिकित्सा ग्रंथों के निर्माण में वह अड़चन कम है, आयुर्वेदिक ग्रन्थों को आधार मानकर बहुत कुछ समस्या हल हो जाती है। फिर भी ऐलोपैथी के अनेक विषय ऐसे हैं जिनके नवीन पारिभाषिक शब्द गढ़ने पड़ते हैं। इन लेखकों में बहुत से लेखक हमारे बहुत पहिले ही हिन्दी ग्रंथ निर्माण में संलग्न हो चुके हैं। ऐसे ही लेखकों में इस ग्रन्थ के लेखक डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा हैं जिन्होंने हिन्दी आयुर्वेदिक छात्रों को संक्षिप्त शल्य विज्ञान नामक उस समय का अच्छा ग्रन्थ लिखा था, आज २०–२५ वर्ष हो गये उस ग्रन्थ को। इस बीच सर्जरी की अनेक विधियां बदल गईं और नवीन-नवीन आविष्कार इस क्षेत्र में हुये हैं। लेखक ने फिर से एक ग्रन्थ रचना अभीष्ट समझा और उस आधुनिकतम विज्ञान को हिन्दी वालों के सामने शल्य-प्रदीपिका नामक ग्रंथ में ग्रथित कर रखा है।

ऐलोपैथी चिकित्सा की एक-एक शाखा पर अनेक मोटे ग्रन्थ हैं उनके आगे तो यह सर्जरी की पुस्तक नगण्य सी ही है। इतना विस्तार वाला पूर्ण सर्जरी का ज्ञान कहां से इसमें आयेगा। फिर भी इसमें जो विषय हैं उससे एक विद्यार्थी या चिकित्सक को जिन शल्य क्रियाओं की आवश्यकता पड़ती है उनका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। पुस्तक में २२ अध्याय हैं। प्रथम से ही जीवाणु विज्ञान का वर्णन कर रोग परीक्षा, व्रण बन्धन, विसंक्रामक वस्तुएं, व्रणों के प्रकार आधुनिक व्रण उपकरण, रक्त प्रवाह, व्रणों पर क्रियायें, शल्य निर्हरण, दाह, कोथ, भिन्न-भिन्न तरह के इन्जेक्शन तथा बस्ति और मूत्र नली का प्रयोग-रक्त आधान, प्लास्टर प्रयोगों का क्रमशः वर्णन करके १३ वें, १४ वें, १५ वें १६ वें अध्याय में शारीरिक भिन्न २ शाखाओं और अंगों के अस्थि भग्नों का वर्णन दिया है, १६ वें अध्याय में सन्धि भ्रंश और उनकी चिकित्सा है, उन्नीसवें परिच्छेद में हर्नियां के भिन्न-भिन्न प्रकार उनके लक्षण व चिकित्सा–शेष तीन अध्यायों में मलाशय गुदा स्थिति रचना भ्रंश अर्श गुदभ्रंश आदि के लक्षण चिकित्सा तथा कैंसर और भगंदर दिया है। इक्कीसवें में मूत्रोत्सर्ग के रोग हैं, अन्त में अंड ग्रन्थि के रोग दिये हैं।

चिकित्सा तथा शल्य की क्रिया पूर्ण ऐलोपैथिक दी है। चिकित्सा में सभी द्रव्य ऐलोपैथी हैं विषयों को हृदयंगम कराने के लिये यंत्रों, उनकी प्रयोग विधियों और मानांगों के अनेक चित्र दिये हैं। छपाई कागज सुन्दरता की दृष्टि से ग्रंथ दर्शनीय बन गया है। शल्य विदों को जो आधुनिक ज्ञान के पिपासु हैं मार्गदर्शक का काम करेगा। प्राप्तस्थान–धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़।

देहातियों की तन्दुरुस्ती—ले०केदारनाथ रासानिक

प्रकाशक–श्यामसुन्दर रसायनशाला गायघाट वाराणसी। पृष्ठ संख्या ५५ मू० १)

पुस्तक उन देहातियों के लिये लिखी है जो किंचित् ही पढ़े लिखे हैं उनके जीवन से सम्बन्धित खान पान आहार, शारीरिक अङ्गों की शुद्धि आवास गृह, पशुशाला की सफाई आदि विषयों पर सूक्ष्म विवेचन है जिनको एक ग्रामीण को जानना आवश्यक है। बातें साधारण हैं पर उन पर चलकर जीवन को उज्वल और नीरोग बनाया जा सकता है।

मोटापा कम करने के उपाय—लेखक आयुर्वेद विशारद पं० प्रभुनारायण त्रिपाठी सुशील, प्रकाशक–श्यामसुन्दर रसायन शाला गायघाट वाराणसी। पृष्ठ सं० ५५ मू० १)

स्वास्थ्य दृष्टि से मनुष्य का मोटा होना एक रोग है जिसे दूर करने का उपाय चिकित्सा क्षेत्र में सभी पैथियों ने अपनी योजनानुसार दिया है। प्रस्तुत पुस्तक उसी मोटापा को दूर करने के लिये लिखी गई है। लेखक ने मोटापा दूर करने के अनेक उपाय नियमित खान-पान एवं व्यायामों द्वारा दूर करने की भिन्न-भिन्न विधियां बताई हैं। इस रोग की चिकित्सा में औषधियों के मुकाबले ये व्यायाम ही अधिक कार्यकर हैं। निश्चय ही उन मोटे लोगों के लिये पुस्तक उपादेय।

विश्वविज्ञान—ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य। प्रकाशक आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थ माला कार्यालय अकाली मार्केट अमृतसर, पृष्ठ संख्या २१५ सजिल्द मू० ३)

आयुर्वेद में मानव का महत्व है उसकी चिकित्सा का ध्येय है। इस मानव प्राणी को समझने के लिये संसार की रचना और प्रकृति का रहस्य जानना आवश्यक है। यह संजीव विश्व जिस सत्ता का अंश है उसी का अंश मानव प्राणी भी है। हमारे दर्शन शास्त्रों में सोचने का विश्व रचना में जो मान्य सिद्धान्त थे उनमें आधुनिक विज्ञान ने प्रत्यक्ष दिखाकर परिवर्त्तन करा दिया है। ६८ मौलिक तत्वों के सम्मिलन से ही पदार्थों की रचना है। इस आधार पर लेखक ने प्राचीन के साथ नवीन विज्ञान का दृष्टिकोण उपस्थित कर आयुर्वेद के सम्मुख मानव शरीर पर सोचने का दृष्टिकोण उपस्थित कर दिया है।

हमारा प्रयोग क्रम या विदेशी विज्ञान क्रम किसी देश या जाति की निजी सम्पत्ति नहीं है जो श्रेष्ठ लाभदायक हो उसी को सहर्ष सभी अपनालें। यदि हमारे प्रयोगों से आधुनिक प्रत्यक्ष प्रयोग अच्छे हैं तो हमें उन्हें अपनों के सामने अवश्य अपना लेने चाहिए।

प्रयोग विज्ञान को जानने से पहिले यह जान लेना आवश्यक है कि वर्तमान में विज्ञान का रूप क्या है? वह कितना बढ़ा हुआ है उसके साधारण सिद्धान्त क्या हैं। बस इन बातों को जानने के लिये ही यह पुस्तक लिखी है। यह सब एक वैद्य के द्वारा संकलन हुआ है जिसमें साधारण जन या वैद्य इस समय के वैज्ञानिक उन्नति को देखें और उसे समझें। लेखक पुराने रूढ़िवादी बन्धनों, विश्वासों को तोड़ फेंकने में सदैव ही तत्पर रहे हैं उनकी दृष्टि सदैव एक वैज्ञानिक का मत रहा है यह कृति भी उनकी उसी दृष्टि की भारी रक्षा करती है। पुस्तक सुन्दर कागज पर सुन्दर टाइप में छापी गई है।

श्री वेंकटेश्वर समाचार का राष्ट्रनिर्माण अंक-

सम्पादक–पं० देवेन्द्रशर्मा शास्त्री। प्रकाशक-खेमराज श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई नं० २।

वेंकटेश्वर समाचार देश का ६३ वर्ष पुराना पत्र है। इस दीर्घ समय में उसने राष्ट्रोत्थान में अकथनीय सहयोग दिया है। विशाल साहित्य तय्यार कर देश की लाइब्रेरियां तथा घर-घर में अपनी कोई न कोई रचना पहुँचा कर अपना दायित्व पूर्ण किया है। इस वर्ष का विशेषांक राष्ट्र निर्माण अंक बहुत सुन्दर रचना है जिसमें राष्ट्र निर्माण में उन अनेक निर्माताओं की झांकी है जिन्होंने अपने ज्ञान शक्ति और शरीर से देश को उन्नत करने में सहयोग दिया है। लेखक सभी उच्च कोटि के विद्वान् हैं और उन्होंने सामग्री ग्रथित करने में अपना अमूल्य समय देकर विशेषांक को सुन्दर सफल और पठनीय बनाया है। हम हार्दिक कामना करते हैं कि भविष्य में भी इसी प्रकार के विशेषांक निकालने में पत्र समर्थ हो।

पूर्व प्रकाशित वे प्रयोग जिनकी परीक्षा हो चुकी है

"मैं धन्वन्तरि का सन् १९४७ से ग्राहक हूं तथा इसमें प्रकाशित अनेक प्रयोगों का निर्माण कर रोगियों पर व्यवहार किये हैं। इन प्रयोगों में से तीन योग मेरे चिकित्सा-व्यवसाय के विशेष अङ्ग बन गये हैं और मैं उनको सफलता के साथ व्यवहार कर रहा हूं। धन्वन्तरि के अन्य ग्राहक भी उनसे लाभ उठावें, इसलिये उनका संक्षिप्त विवरण प्रकाशनार्थ भेज रहा हूं।" —लेखक।

१. मलेरिया मोचन—

धन्वन्तरि भाग २८ अंक ३ पृष्ठ ४०८ मार्च सन् १९५४ में प्रकाशित प्रयोग—

परिश्रुत जल	४० औंस
कुनाइन	१ औंस
मैग सल्फ (साल्ट)	४० औंस
टिंचर नक्स वामिका	सल्फ्यूरिक एसिड
फेरिससल्फ	$\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ औंस

निर्माण विधि—प्रथम कुनाइन को सल्फ्यूरिक एसिड में डालकर हल (डायल्यूट) करलें। फिर सब सब द्रव्यों को परिश्रुत जल में मिलाकर खादी के मोटे वस्त्र से २-३ बार छान कर कांच की शीशियों में पैक करलें।

प्रयोग विधि—३ माशा से ६ माशा तक की मात्रा में, ज्वर आने के समय से १ घण्टा पूर्व २-३ छटांक दूध पिला कर ऊपर से दवा पिलादें।

गुण—मलेरिया ज्वर ३ मात्रा में रुक जाता है। मलेरिया जो कब्ज से होता है वह भी इससे नष्ट हो जाता है।

विशेष—इस प्रयोग में परिश्रुत जलके स्थान पर सुदर्शन अर्क डालता हूं। औषधि शीघ्र लाभप्रद है।

२. विशूचिका अर्क—

धन्वन्तरि संक्रामक रोगांक पृष्ठ १९५ पर।

प्रयोग—सूखा पोदीना खस बड़ी एला नागरमोथा —चारों ५-५ तोला

[illegible] —दोनों ६-६ तोला

—इनको जवकुट कर ३ सेर जल में काढ़ा करें। १॥ सेर शेष रहने पर छान कर मिट्टी के नए:- बर्तन में रखदें।

गुण—थोड़ा-थोड़ा जल रोगी को पिलाते रहें। इससे विशूचिका पीड़ित रोगी की प्यास जलन शीघ्र शान्त होती है।

कफ कुठार रस—

सुप्रसिद्ध प्रयोगांक तृतीय भाग पृष्ठ ७०२ पर व्याघ्रीक्षार, वांसाक्षार, अपामार्गक्षार, तीनों ३-३ माशा, कलमीशोरा, कनकक्षार, स्फटिक, नवसादर यवक्षार, सुहागा, शङ्खभस्म, —सातों ६-६ माशा पुटास आयोडाइड . ३ माशा।

—सबको बारीक पीसकर शीशी में रखलें।

मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक शहद के साथ।

गुण—किसी भी प्रकार का गाढ़ा कफ अटका हो इस औषधि से पतला होकर निकल जाता है। उत्फुल्लिका, कुकरकास, श्वास तथा अन्य कफ सम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है।

विशेष—इस योग को हम शृंग्यादि चूर्ण में मिला कर बच्चों के डब्बा रोग में सफलता के साथ व्यवहार करते हैं।

हमने बाल चिकित्सालय पृथक खोल रखा है। जिसे सरकार द्वारा सहायता प्राप्त है। वर्ष १९५७ में ९२ बच्चे तथा मई १९५८ तक ५८ कुल १६४ बालकों पर यह औषधि व्यवहार कर चुके हैं। ६५ प्रतिशत लाभप्रद सिद्ध हुई है।

—मु० तुलसीराम सक्सेना वैद्य
आयुर्वेदिक औषधालय, मदनपुर (फरुखाबाद)

शीतला और विशूचिका प्रतिषेधक औषधि

बिहार राज्य आयुर्वेद विज्ञान सम्मेलन के अनुसन्धान विभाग ने शीतला और विसूचिका के प्रतिषेध के लिए शीतला प्रतिषेध वटी और विसूची निरोध वटी नामक दो औषधियों का निर्माण किया है। इस वटी की एक-एक मात्रा प्रातः काल जल से खानी पड़ती है। बच्चे को आधी मात्रा जल या दूध से दी जाती है। अभी तक इस विभाग की देख-रेख में ६३ हजार व्यक्तियों को यह औषधि खिलाई जा चुकी है और अनुसंधान विभाग के निश्चय के अनुसार सैकड़ों वैद्यों को वटी निर्माण के योग भी दिये जा चुके हैं, उनके द्वारा भी इस औषधि का प्रयोग हो रहा है। अभी तक ८०% प्रतिशत प्रयोग फलप्रद रहा है। अनुसन्धान विभाग का निश्चय था कि योग्य अधिकारियों को ही योग दिये जांय। क्योंकि आज आयुर्वेद जगत में आयुर्वेदीय औषधियों को पेटेन्ट बनाने की धूम है। सभी लखपति बनना चाहते हैं। आयुर्वेद के औषधों का प्रचार जनता में हो जिससे आयुर्वेद की प्रतिष्ठा बढ़ सके और जनता का कल्याण हो, यह भावना कुछ क्षीण बन चुकी है। इस लिए अभी तक उन्हीं व्यक्तियों को योग दिये गये हैं जिन्होंने योग द्वारा जन सेवा और आयुर्वेद सेवा करने का आश्वासन दिया है। पर, नित्य प्रति आने वाले पत्रों के कारण तथा वैद्य बन्धुओं के आग्रह के कारण योग प्रकाशित करना पड़ रहा है। योग के व्यवहार सम्बन्धी अनुसन्धान अभी जारी हैं। इससे होने वाले प्रतिफल के आंकड़े प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इस लिए योग को व्यवहार में लाने वाले वैद्यों को अपना पता कार्यालय में भेजना चाहिये जिससे उनके पास आवश्यक सूचनायें भेजी जा सकें तथा प्रति वर्ष के आंकड़े संग्रहित किए जा सकें।

अन्त में सभी योग निर्माता वैद्य बन्धुओं से आग्रह है कि इस योग को इसी नाम से प्रचारित करें। अपने सूचीपत्र में इसे स्थान दें और इसका पृथक् कोई पेटेन्ट नामकरण नहीं करें। जनता अधिक लाभान्वित हो सके और जन स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद अपना महत्व पूर्ण स्थान बना सकें, इस लिए हम सभी वैद्यों को सम्मिलित प्रयास करना चाहिए। योग—

(१) शीतला प्रतिषेध वटी

द्रव्य—कंटकारी मूल — निम्ब पत्र
रजनी (हल्दी) — मिर्च (काली)
आमलकी (आंवला) — चिंचापत्र (इमलीपत्र)
—प्रत्येक ५-५ तोला।

निर्माण विधि—सभी द्रव्यों को महीन कपड़छान चूर्ण बनाना चाहिए। तदनन्तर जल से खरल कर ३ रत्ती की वटी बनानी चाहिए।

(२) विसूची निरोध वटी

द्रव्य	मात्रा
द्रव्य—अर्कमूल त्वक् (अकबनजड़ छाल)	१६ तो.
अपामार्ग मूल	४ तोला
मिर्च (काली)	४ तोला
रसौत	४ तोला
कर्पूर (ढेला)	१ तोला
शुद्ध हिंगू (बढ़िया)	१ तोला

निर्माण विधि—सभी द्रव्यों को महीन कपड़छान

चूर्ण बनाना चाहिए। तदनन्तर प्याज (पलाण्डु) के रस से ३ रत्ती की वटी बनानी चाहिये।

प्रयोग काल—शीतलाप्रतिषेध वटी बसन्त ऋतु के प्रारम्भ में और विसूचीनिरोध वटी ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में सात दिन तक प्रातः १ वटी खिलानी चाहिए। या रोग का प्रसार होने पर खिलानी चाहिए।

निषेध—ज्वर तथा घातक रोगाक्रान्त व्यक्ति को यह दवा नहीं खिलानी चाहिये।

महात्मा जी के दो प्रयोग—

निम्नलिखित योग मुझे एक सिद्ध महात्मा द्वारा दुःखी जनता के लाभ के लिए दिए गए थे। इनके अनुसार दवा तैयार करके मैं गत २० वर्षों से निःशुल्क वितरण कर रहा हूँ हजारों मरीजों को लाभ हुआ है, अतः अब मैं इन्हें इस पत्रिका में छपा रहा हूँ ताकि दुःखी जनता स्वयं दवा तैयार करके इन असाध्य रोगों से मुक्ति पा सके और महात्मा जी की इच्छानुसार ज्यादा से ज्यादा लाभान्वित हो सके।

दमे की दवा—

प्रयोग—सफेद पुनर्नवा की जड़ को लेकर उसी की जड़ के रस में तीन दिन तक भिगो दीजिये फिर छाया में सुखा लीजिये। सूखी जड़ को फिर लाल पुनर्नवा की जड़ के रस में तीन दिन तक भिगोइये और छाया में सुखा लीजिए, सूखी जड़ों को तीन दिन तक अपामार्ग की जड़ के रस में भिगो कर छाया में सुखा लीजिये, इसे खूब पीस लीजिये, दवा तैयार हो जायगी।

प्रयोग विधि—पाव भर चावल सायंकाल पका लीजिये, पके चावलों को खुले मुंह के बरतन में निकाल कर ऐसी जगह रखें कि रात में चावल सड़ न जांय, दूसरे दिन सुबह आधा तोला दवा ५ दाना काली मिर्च के साथ गीली करके खूब बारीक पीस लीजिये, उसमें पाव भर ताजा पानी मिला कर मरीज को पिला दीजिए। दवा पीने के पहिले मरीज को खाली पेट यानी भूखा होना चाहिए, दवा पीने के तत्काल बाद रात के बासी भात का पानी छान कर फेंक देना चाहिए और वह चावल और दही मरीज को खिला देना चाहिए। दही चावल में स्वाद के लिये नमक या चीनी मिला सकते हैं। आम तौर से एक ही खुराक दवा से पूरा लाभ होजाता है यदि आवश्यकता होवे तो पहली खुराक दवा लेने के १० दिन बाद १-२ खुराक रोज यानी दो दिन में दो खुराक दवा और दे दें, किन्तु इनके पीने के बाद दही चावल नहीं खाना चाहिये।

पथ्य—दवा लेने के बाद से एक महीने बाद तक निम्न चीजों का पूर्ण बचाव रखना चाहिए। लाल मिर्च, तैल, खटाई, मीठा, मिठाई, दही चावल, मांस, मछली, अंडे और मादक वस्तुयें।

१० मिनट नित्य भगवान की प्रार्थना करना चाहिये।

सफेद दाग की दवा—

प्रयोग—बावची को खूब बारीक पीस लें और जलधनिया (जो नदी और तालाबों के किनारे पैदा होती है) के रस में भिगो दीजिये, इसे छाया में सुखा कर फिर अदरक के रस में भिगो दीजिये। छाया में सुखाने पर दवा तैयार हो जायगी।

प्रयोग विधि—दवा को दो दाना काली मिर्च और थोड़े पानी के साथ पीस लीजिये, जब लेप बन जाय तो सफेद दाग पर लगाइये। कभी कभी छोटी फुन्सियां उठती हैं ऐसा होने पर दवा न लगा कर मक्खन लगाइये। जब फुन्सियां ठीक हो जांय तो फिर यही दवा खाली पानी के साथ पीस कर लगाइये, इसमें काली मिर्च न मिलाइए। डेढ़ या दो महीने लगातार दवा लगाने से सफेद दाग ठीक होजाते हैं।

—श्री. प्यारे मोहन लाल
मान कायस्थ का चौक,
चांदपोल बाजार, जयपुर सिटी।

सिद्ध प्रयोग बालातिसारे—

१ वर्ष से २ वर्ष के बच्चों को दांत निकलते समय जो कष्ट होता है वह सर्व वैद्य समुदाय को विदित है ही। बच्चों को कभी हरे दस्त आते हैं कभी आंव मिश्रित दस्त आते तथा बच्चे दुबले पतले होते हुए दिन प्रति दिन कमजोर होते जाते हैं तथा बच्चे का स्वभाव चिड़चिड़ा होता जाता हैं। बच्चा हमेशा रोता रहता है, नाड़ी कमजोर रहती है तथा ज्वर रहता है। इस प्रकार के बच्चे को निम्न योग देने से अवश्य लाभ होगा तथा हरे पीले दस्त अति शीघ्र बन्द होकर दिन में एक बार या दो बार टट्टी आयेगी तथा वह भी पीली।

योग—अफीम — २ रत्ती
केशर — ३ रत्ती
सि. मकरध्वज नं० १ — ४ रत्ती

—उपर्युक्त सभी औषधियों को खरल में बारीक करें तथा एक घंटा भर घोटते रहें। जब दवा अति सूक्ष्म हो जाय तब 'कीट निष्ठीवन' रस की भावना देकर घोटें, गोली बनाने लायक होने पर बाजरे के समान गोली बनालें तथा छाया में सुखाकर रखलें।

मात्रा—१ गोली सुबह, १ गोली दोपहर, १ गोली शाम को मां के दूध के साथ घोलकर पिलादें।

कीट निष्ठीवन—

यह एक प्रकार के कीड़े के थूक को कहते हैं। यह कीड़ा भाद्रपद माह में सूर्योदय के पहिले जंगल में हरी घास पर तथा ज्वार व अन्य पौदों पर मिलता है। यह कीड़ा सफेद थूक उगलता है इसी थूक को कीटनिष्ठीवन कहते हैं। इसको भाद्रपद माह में सूर्योदय के पहिले एकत्र करना चाहिए। सूर्योदय के बाद पानी बन कर उसका थूक बह जाता है।

नोट—बच्चे की टट्टी बन्द होने पर रोजाना एक गोली ५ दिन तक चालू रक्खें। अगर पुनः टट्टी चालू न हो फिर निम्नोक्त औषधि चालू करें।

बाल पौष्टिक—

सि. मकरध्वज नं. १ + — ३ रत्ती
जहरमोहरा खताई पिष्टी — ६ रत्ती
मौक्तिक पिष्टी — १२ रत्ती
मृगशृंग भस्म — ४ रत्ती

—इन सभी औषधियों को बारीक पीस कर आंवला के पत्तों को पीस रस निकाल भावना दें तथा औषधि को छाया में सुखा कर रखलें।

मात्रा—१-१ रत्ती दिन में तीन बार मां के दूध के साथ दें अथवा गाय के दूध के साथ।

पूर्व परीक्षित—गुप्तसिद्ध प्रयोगांक पृ. सं. ५०१ श्री कविराज उपेन्द्रनाथदास का नाड़ी व्रण का प्रयोग आजमाया, पूर्ण लाभ हुआ तथा किसी भी प्रकार के फोड़े तथा नासूर में फायदा पाया।

—श्री. पं. मुरारीलाल त्रिपाठी B.I.M.S
येलावारा-यवतमाल।

दन्त मंजन

त्रिफला — त्रिकटु — माजूफल
सैंधव लवण — कालानमक — सांभर नमक

विधि—उक्त दसों द्रव्य समभाग लेकर महीन कपड़छान चूर्ण बनालें।

गुण—दांतों का हिलना, मैल जम जाना, रक्त आना, शूल पूय पड़ जाना, तथा पानी के लगने को नष्ट कर दांतों को शक्तिशाली एवं सुन्दर बनाता है।

अक्सीर-नकसीर

कागज भस्म — कुकुटाण्डत्वक् भस्म
माजूफल भस्म — —समान भाग।

+सि० मकरध्वज नं० १ विश्वासी फार्मेसी का होना चाहिए। मेरे पास धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़) का था।

—लेखक।

विधि—तीनों भस्मों को बबूल पत्र स्वरस में घोटकर नस्य दें।

गुण—किसी भी कारण से नासिका में से रक्त आता हो तुरन्त बन्द होगा।

अद्भुत चूर्ण

धनियां ६ माशा
गुलाब के फूल बंशलोचन कपूर
—प्रत्येक ३-३ माशा
यव सत्व २ तोला

विधि—सबको कूट-पीस छानकर मिश्री समभाग मिलाकर रक्खें।

मात्रा-६ माशा।

अनुपान—दूध के साथ दें।

गुण-वमन, जी मिचलाना, हृदय की धड़कन, पित्त-ज्वर, अजीर्ण, शिरःशूल एवं लू लगना (अंशुघात) को दूर करता है।

गोखुरु तैल

गोखुरु स्वरस १।। पाव
गोदुग्ध १।। पाव
सोंठ चूर्ण १ छटांक
श्वेत तिलों का तैल १ पाव

विधि—चारों द्रव्यों को मिलाकर तैल पाक विधि से पकावें। तैल शेष रहने पर उतार लें। शीत होने पर छानकर शीशी में भर लें।

अनुपान तथा मात्रा—१। तोला तैल रात्री को दूध के साथ पीवें। इन्द्रिय पर भी इसको लगाया जा सकता है।

गुण-वृक्कशूल, मूत्रकृच्छादि मूत्र संस्थान के रोग, अश्मरी, इन्द्रिय शिथिलता, वीर्य का पतलापन, अप्राकृतिक कर्म से उत्थित सिराओं को, नपुंसकता को दूर कर मनुष्य को उत्साही एवं बलवान बनाता है। कामोत्तेजक है।

—वैद्य नन्दलाल शर्मा
आयुर्वेद रत्न, प्रभाकर, पटियाला

:: शेषांश पृष्ठ ११०४ का ::

अनुपान—१ रत्ती मलाई या मक्खन के साथ।

अस्तु, औंधपुष्पी का रस सप्तधातु भेदक है। इसका आकार एवं प्रसार तथा पत्रादिक कुछ-कुछ गजदन्ती की सादृश्यता लिये हुये हैं। एवं पुष्प की आकृति श्वेत वर्ण तथा शंखपुष्पी के पुष्प से मिलती जुलती एवं नीचे की ओर सिर किये हुये है।

उपयोग—प्रत्येक धातु का चूर्ण (जिसकी भस्म करना इष्ट हो) १ तोला तथा उक्त औषधि का रस १० तोला, खरल में डालकर धूप में रख दीजिये, और थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् हिला दिया करें, एवं फेन को उतार कर दूसरे पात्र में रखते जावें, रस के शोषण पर्यन्त भस्म बन जावेगी। पुनः पीस कर रख लीजिये, यह कितना सुन्दर, सरल एवं आश्चर्यजनक योग है।

समाचार एवं सूचनाएँ

सरकार वैद्यों के परामर्श से आयुर्वेदोन्नति के कार्य करे

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष आचार्य श्री नित्यानन्द के उद्गार

रतनगढ़–यहां पर वैद्य श्री मणिराम जी द्वारा संस्थापित स्थानीय श्री धन्वन्तरि मन्दिर में दि० ६ नव० ५८ को राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन का चतुर्दशाधिवेशन आचार्य नित्यानन्द जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। अध्यक्ष श्री नित्यानन्द ने अपने अभिभाषण में वैदिक आयुर्वेद की चर्चा करते हुए बताया कि आज के उपलब्ध साहित्य में वेद निर्विवाद रूप से समस्त संसार में प्राचीनतम हैं। वेदों में निर्दिष्ट आयुर्वेद विषयक ज्ञान ही विश्व की परम प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। चिकित्सा और स्वास्थ्य विषयक ज्ञान चारों वेदों में पाया जाता है। वेदों में बिखरे हुए आयुर्वेदीय वांगमय को संग्रहीत करने तथा संदिग्ध प्रकरणों का निर्णय करने एवं वैदिक काल के बाद और संहिता काल के पूर्व लुप्त कड़ी को जोड़ने के लिए वैदिक आयुर्वेद में अनुसन्धान जरूरी है। अनुसन्धान में प्रायोगिक पक्ष के साथ ही हमें आयुर्वेद के शास्त्रशोधनात्मक पक्ष को भी ध्यान में रखना चाहिये। केन्द्रिय सरकार को चाहिये कि वह वैदिक आयुर्वेद पर अन्वेषण कार्य कराए।

देशी चिकित्सा पद्धतियों की जांच के लिए सरकार द्वारा नियुक्त समितियों की आलोचना करते हुए श्री आचार्य ने कहा कि भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों ने सन् १६२१ से समिति बनाना प्रारम्भ किया था, वह सिलसिला आज भी चालू है। समय समय पर बनने वाली इन सभी समितियों में पाश्चात्य चिकित्सकों का ही बोलबाला रहा। दो दर्जन से अधिक संख्यावाली इन समितियों में कभी कभी वैद्यों के आंसू पोंछने के लिए एकाध वैद्य भी सदस्य रख दिया गया था। हमारा सरकार से नम्र निवेदन है कि वह वैद्येतर व्यक्तियों से समिति स्थापित करने तथा आयोग की पुरानी परम्परा को बन्द कर दे। आयुर्वेद संसार की वैद्येतर सदस्यों वाली समितियों की परम्परा से ऊब चुका है। हमारे दृष्टिकोण से समितियों तथा आयोगों का समय बहुत पहले बीत चुका है। सरकार को अब आयुर्वेदोन्नति के लिए ठोस रचनात्मक कार्य पर उतर आना चाहिए।

केन्द्र और प्रान्तों में आयुर्वेद के लिए अलग मंत्रालय खोले जाने की जरूरत बताते हुए आचार्य जी ने बताया कि स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के लिए केन्द्र और प्रदेशों में स्वास्थ्य विभागों के संचालकों से लेकर जिले के स्वास्थ्य अधिकारी के रूप में पाश्चात्य पद्धति के चिकित्सक छाये हुए हैं और उन्हीं की देख रेख में आयुर्वेद और अन्य चिकित्सा पद्धतियों का कार्य होता है। ये लोग आयुर्वेद से

आचार्य नित्यानन्द जी

इन समि-
ने के लिए
था। हमारा
र व्यक्तियों
की पुरानी
की वैद्य-
से ऊब
यों तथा
है। सर-
स रचना-

ए अलग
ए आचार्य
नियमों के
के संचा-
के रूप
हैं और
चिकित्सा
आयुर्वेद से
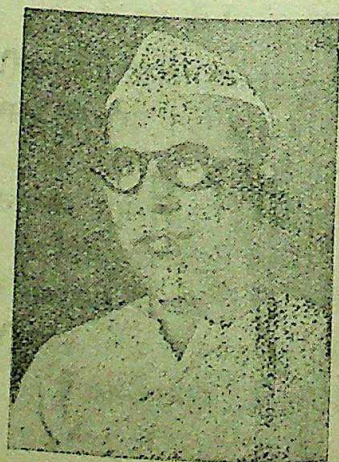
अपरिचित ही नहीं होते वरन् इनके द्वारा हमें बाधा का सामना करना पड़ता है। अलग मंत्रालय न होने के कारण ही पंचवर्षीय योजनाओं में की गई आयुर्वेद की उपेक्षा आईने की तरह स्पष्ट है। आयुर्वेद में कुष्ठ पर बहुमूल्य भंडार भरा पड़ा है, पर हमें अपने दीर्घकालीन प्रयोगों के परीक्षण तक की सुविधा नहीं है। सच तो यह है कि आयुर्वेद के रूप में भारत के पास पूर्वजों की विशाल सम्पत्ति है, उसे सुरक्षित रखना तथा उन्नत करना भारतियों का कर्तव्य है। यह तभी सम्भव है जब कि केन्द्र और प्रदेशों में आयुर्वेद के लिए अलग मन्त्रालय रखे जांय और आयुर्वेदज्ञों को ही संचालक नियुक्त किया जाये।

आयुर्वेद स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए आचार्य जी ने बताया कि इस समय आयुर्वेद बड़ी कठिन परिस्थिति में से गुजर रहा है। फिर भी आयु-र्वेद के दिन फिरे बिना न रहेंगे क्योंकि आयुर्वेद के सिद्धान्त शाश्वत हैं। कोई बात पुरानी हो जाने से अग्राह्य नहीं हो जाती। आयुर्वेद एक दृढ़ भित्ति पर आधारित है। भले ही आज की वैद्यक कुछ रोगों को न खो सके, किन्तु सफल स्वस्थ जीवन बिताने की कुंजी आयुर्वेद के सिद्धान्तों में निहित है। आयुर्वेदीय उपयोगिता का माप दण्ड मानव की भलाई स्वास्थ्य लाभ मानकर चलना चाहिये। यह पद्धति देश की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल है और जिन रोगियों को पाश्चात्य चिकित्सक असाध्य ठहरा देते हैं वे भी आयुर्वेदीय पद्धति से स्वस्थ होते देखे गये हैं। इस प्रकार आयुर्वेद का भविष्य असंदिग्ध रूप से उज्वल है।

अन्त में वैद्यों को आत्म निरीक्षण कर संगठित होने की आवश्यकता प्रतिपादन करते हुये आचार्य नित्यानन्द जी ने वैद्यों से सद्भावना का व्रत लेने की अपील की और कहा कि हम गरीबों की सेवा का सम्बल लेकर आयुर्वेदोन्नति कर सकेंगे।

प्रेषक—श्री. कैलाशचन्द्र शर्मा

पारद पर सफल अनुसंधान

पारद को धातु रूप में परिणित करने वाले योगीराज का संक्षिप्त परिचय—

प्रायः वैद्य बन्धुओं से भेंट होती ही रहती है, जिनसे अन्य विषयों पर विवेचन चलते हुए पारद का भी प्रकरण आ ही जाता है जिससे इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रायः कई सज्जन पारद अनुसंधान में लगे हुए हैं किन्तु फलता की कुन्जी किसी को भी नहीं मिली, कई पगले, द्रव्यहीन, शक्ति हीन होगये यहां तक कि पारदबद्ध वियोग में ही संसार से चल बसे। बात भी तो सच है मैं भी इस क्रिया को असम्भव ही समझता आ रहा था।

वैसे ही मुझे तो मेरे गुरू का आदेश था कि बेटा व्यर्थ ही इस प्रलाप में मत फसना जब तक कि कोई सिद्धहस्त का वरदान न प्राप्त हो जाय।

इसी बीच में मुझे एक योगीराज के सहवास व सेवा में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिनका परि-चय संक्षेप में यह है कि महामना योगीराज आयु-र्वेदाचार्य पं० राधेश्याम जी शर्मा। आप अभी मंद-सौर (मध्य प्रदेश) में निवास करते हैं। आपकी आयु अभी ६४ वर्ष की होते हुए भी स्वस्थ हैं। वैसे तो आप कई चमत्कारिक एवं सद्यफलप्रद योग जानते हैं जो बिजली जैसे काम करते हैं उसी प्रकार आप मंत्र शास्त्र में भी निपुण होने के साथ-साथ सिद्ध रसज्ञ भी हैं। यहां तक कि वाणी से कह देने पर अथवा हाथ फिरा देने तक से कई रोग दूर हो जाते हैं।

इन्हीं योगीराज ने पारद पर एक अद्भुत विजय प्राप्त करके दिखलाई है जो मेरे प्रत्यक्ष पूर्ण क्रियाएँ की जाकर मेरे आंखों के समक्ष सब कुछ किया गया। देखते ही देखते पारद को अग्निस्थायी एवं बुभुक्षित बना दिया। यहां तक कि पारद को धातु रूप में परिणित कर दिया जिसका घनत्व पारद सदृश हो कर हथोड़े से पीटने पर पतरा हो जाना, तार खींच जाना। मूषा में कई बार गलाने पर कम नहीं होना

तथा अन्य धातु डालने पर भार उतना ही रहना आदि गुणों से सम्पन्न स्थायी पारद बना दिया। ये क्रियाएँ मेरे समक्ष कई बार की गई किन्तु कोई अन्तर नहीं आया।

इस प्रकार की प्रशंसा सुनकर भी सत्यकाम जी वेदवागीश अध्यक्ष रसायनशाला गुरुकुल चित्तोड़-गढ़ राजस्थान भी पधारे। उनके सरल स्वभाव व विनय के कारण उन्हें भी यह क्रिया बताई गई जिसे उन्होंने भी अपने हाथ से मेरे समक्ष की जो पूर्ण सत्य निकली। इस सम्बन्ध में योगीराज के विषय में विशेष जानकारी चाहें तो श्री. सत्यकाम जी वेदवागीश से प्राप्त कर सकते हैं।

योगीराज आज ६४ वर्ष की उम्र होते हुए भी पूर्ण स्वस्थ हैं एवं पर्याप्त कर्त्तव्य शक्ति रखते हैं। कई असाध्य एवं चमत्कारिक कार्यों में कुशल हैं। आप पारद के और भी अनुसंधान में लगे हुए हैं जिनका विशद विवरण समय पाकर किया जावेगा।

लेखक—वैद्य हीरालाल दुबे
नीम चौक, मंदसौर (मध्य-प्रदेश)

\+ \+ \+

इस समाचार को प्राप्त कर हमने श्री सत्यकाम वेदवागीश जी को पत्र लिखा। उस पत्र का जो उत्तर हमको मिला है वह भी पाठकों की जानकारी के लिए प्रकाशित कर रहे हैं। —सम्पादक।

श्रीमान् जी

आपका पत्र सं० १४३६२ दिनांक २४-११-५८ का प्राप्त हुआ। पढ़कर प्रसन्नता हुई।

आपने जो पारद विषयक लेख मांगा है उसका पूर्ण विस्तृत लेख लिखने के लिए अभी कुछ देर लगेगी। कारण कि एक तो जो मैंने पारद ५र क्रिया की है, उसे में पूर्ण सफल क्रिया नहीं कह सकता। उसमें कमी रही है तथा पारद की मात्रा में भी अन्तर पड़ जाता है। अभी मेरे पास इतना समय नहीं कि उस क्रिया को पुनः-पुनः करके पूर्ण सफल कर सकूं। अतः समय मिलने पर उसका पुनः परीक्षण कर जब पूर्ण सफलता प्राप्त हो जायगी तभी मैं आपके पास लेख भेज सकूंगा। आप श्री योगीराज पं० राधेश्याम जी से सम्पर्क बढ़ायें। सम्भवतः वे इस विषय में आपकी बहुत सहायता कर सकेंगे। कष्ट के लिए क्षमा करें।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ भवदीय—
ता० २७-११-५८ सत्यकाम वेदवागीश।

\+ \+ \+

राजस्थान इंडियन मेडीसन बोर्ड के विरुद्ध याचिका

अधिकृत सूत्रों के अनुसार पता चला है कि जय आयुर्वेद के सम्पादक वैद्य श्री अम्बालाल जोशी ने भारतीय संविधान प्रसंग २२६.२२७ के अन्तर्गत भारतीय चिकित्सा एक्ट राजस्थान जयपुर के अनुसार राजस्थान हाईकोर्ट में एक रिट पिटीशन पेश कर दी है। इस पिटीशन के अनुसार, जो अनुसूचित भी हो चुकी है। श्री जोशी जी ने अपने नामजदगी पत्र को जिसे चुनाव अधिकारी तथा राजस्थान गवर्नमेंट ने रिजेक्ट कर दिया है और गलत बताया है, चुनौती दी है। राजस्थान हाईकोर्ट ने विपक्षीय सदस्यों को नोटिस दिया है, जिसमें पूछा है कि कारण बतायें कि यह रिट स्वीकार क्यों न कर ली जाय। मामले की सुनवाई १५ दिसम्बर रखी गई है।

वादी के पक्ष से श्री गणपतिसिंह मेहता कानूनी कार्यवाही करेंगे।

\+ \+ \+

आयुर्वेद विज्ञान परिषद वार्ता—

नगर वैद्य परिषद के तत्वावधान पर आयुर्वेद विज्ञान परिषद वार्ता के अन्तर्गत श्री कविराज राधाकृष्ण जी पारासर का रत्नों की उपादेयता नामक विषय पर महत्वपूर्ण भाषण हुआ एवं तदुपरांत वृद्ध वैद्यों के अभिनन्दन स्वरूप अमृतोत्सव की

रूप रेखा बनाई गई। तथा निश्चय किया गया कि अमृतोत्सव धन्वन्तरि दिवस पर ही मनाया जाये।

—श्री. पं. वेदप्रकाश शर्मा।

\+ \+ \+

चूरू जिला वैद्य सम्मेलन

दिनांक ६-११-५८ को प्रातःकाल रतनगढ़ में चूरू जिला वैद्य सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

प्रथम कविराज पं. धनाधीश जी गोस्वामी ने मंगलाचरण किया, तदनन्दर जिला वैद्य सम्मेलन मंत्री जी के १०॥ वर्षीय सुपुत्र विद्यार्थी सत्यप्रकाश शर्मा ने वन्देमातरम् तथा एक अन्य सुन्दर सुललित गायन गाकर वैद्य बांधवों को प्रसन्न किया।

इसके बाद वैद्य सोहनलाल जी आयुर्वेदाचार्य ने सभापति के लिये चूरू निवासी श्रीमान् पं. शान्त शर्मा जी आयुर्वेदाचार्य का नाम प्रस्तावित किया श्री पं. ऋषिदेव जी आयुर्वेदाचार्य ने सहर्ष समर्थन किया। सभापति जी के आसन ग्रहण करने के बाद अखिल भारतवर्षीय विद्यापीठ के प्रधान मंत्री श्रीमान् पं. सीताराम जी आयुर्वेदाचार्य का सामयिक सुझावपूर्ण उद्घाटन भाषण हुआ।

तदनन्तर चूरू जिला वैद्य सम्मेलन के मंत्री वैद्य लक्ष्मीनारायण शर्मा आयुर्वेदाचार्य ने अपने भाषण में जिले के संगठन के विषय में प्रकाश डालते हुए जिले में हुई आयुर्वेदोत्थान की प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराया, जिनमें रतनगढ़ में परम सम्माननीय मणिराम जी महाराज के सत्प्रयत्न से धन्वन्तरि मन्दिर के भव्य भवन का निर्माण तथा उसमें श्वास तथा पंचकर्म के लिए २० रोगी शय्या आतुरालय की व्यवस्था के लिए वैद्य शिरोमणि मणिराम जी महाराज का अभिनन्दन किया। तथा बाबू भंवरलाल जी दुगड़ ने आयुर्वेदोत्थान का बीड़ा उठाकर सरदार शहर में आयुर्वेद विश्वभारती की स्थापना कर जो श्रेष्ठ कार्य किया है उसके लिए उन्हें अनेक धन्यवाद दिए और यह शुभ कामना की कि निकट भविष्य में ही आयुर्वेद विश्व भारती में आयुर्वेद विश्व विद्यालय बने। तथा वैद्य बन्धुओं से प्रार्थना की कि वह आपसी भेदभाव को भूल जांय और सुसंठित होकर आयुर्वेदोत्थान का कार्य करें।

× × ×

सम्बलपुर जिला वैद्य सम्मेलन का

प्रथम अधिवेशन

गत २४-२५ अक्तूबर दो दिन सम्बलपुर जिला वैद्य सम्मेलन हुआ। इस अधिवेशन का उद्घाटन उड़ीसा के उपमन्त्री श्री वीरविक्रमादित्य सिंह बेरिहा महोदय ने किया। इस अवसर पर एक बनौषधि प्रदर्शनी हुई जिसका उद्घाटन मन्त्री महोदय ने किया। यह सम्मेलन स्थानीय बारी सेवा सदन में हुआ था। सभा का अध्यक्षीय पद स्वनामधन्य डा० श्री जनार्दन पुजारी आयुर्वेद भूषण ने सुशोभित किया। सभा में जिले के ५०० वैद्य उपस्थित थे तथा भारी जनता एकत्रित थी जिनमें लोकसभा के सदस्य श्रद्धाकर सूपकार तथा विधान सभा सदस्य लक्ष्मीप्रसाद मिश्र रायगढ़ के डा० गोविन्द प्रसाद शर्मा आयुर्वेदाचार्य एम. ए., देवगढ़ के राजवैद्य श्री हरिहर महापात्र शर्मा। जिला वैद्य संगठन संपादक कविराज रघुनाथप्रसाद मिश्र आदि थे।

स्वागत समिति के अध्यक्ष उड़ीसा के भू. पू. शिक्षा मन्त्री श्री बोधराम दुबे ने अपने भाषण में सरकार को कहा कि वह आयुर्वेद शिक्षा को बढ़ावा दें। सम्बलपुर जिला वैद्य संगठन समिति के संपादक कविराज श्री दलगंजन पंडा ने उद्देश्य पर प्रकाश डालकर रिपोर्ट प्रस्तुत की। अन्य वक्ताओं ने आयुर्वेद विषय पर प्रकाश डाला।

दूसरे दिन निम्न प्रस्ताव एक मत से पास हुए:—

१—बालेश्वर में अनुष्ठित गत अखिल उत्कल वैद्य सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्तावों को तथा मान्यवर मुख्य मंत्री डा० हरिकृष्ण महताब ने आयुर्वेद की उन्नति के लिये जो आश्वासन दिये थे उन्हें शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित करें।

२—जिला वैद्यों के शिक्षणार्थ एक शिक्षा केन्द्र साथ ही आयुर्वेद सम्बन्धी पुस्तकालय एक रसायन शाला और भेषज उद्यान खोला जाय। जिसके लिए सरकार आर्थिक सहायता दे।

३—द्वितीय पंचवर्षीय योजना में एलोपैथी के समान आयुर्वेद की उन्नति के लिये भी सरकार आर्थिक व्यवस्था करे। उड़ीसा में एक परामर्शदाता कमेटी स्थापित करे जिसमें हर जिले का एक व्यक्ति हो।

४—'जिला वैद्य संगठन समिति' तथा उसकी गृहीत नियमावली को सरकार मान्यता प्रदान करे।

इसके बाद जिला वैद्य संगठन समिति के लिये पदाधिकारी चुने गये।

× × ×

राज० आयु० कालेज छात्रसंघ जयपुर का उद्घाटन

गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज छात्रसंघ जयपुर का उद्घाटन ता० २२-११-५८ राजस्थान के ख्यातिप्राप्त आयुर्वेदोद्धारक माननीय वैद्यराज श्री भवानीशंकर जी शर्मा उदयपुर निवासी के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। आपने अपने भाषण में विद्यार्थियों से अपील की कि आयुर्वेद की रक्षा एवं समृद्धि का भार आप लोगों पर है। अपने भाषण में आपने घृतपाक विधि तथा क्वाथों एवं चूर्णों के क्रष्टल (कण) निर्माण विधि का वैज्ञानिक विवेचन किया। आपने सुदर्शन चूर्ण कण, दशमूल कण, हिंग्वाष्टक चूर्ण कण, ब्राह्मीघृत का वैज्ञानिक निर्माण बताकर विद्यार्थियों को लाभान्वित किया। अन्त में आपने तुमुल ध्वनि के बीच घोषणा कि इन सब आविष्कृत औषधि निर्माण को बताने के लिये उदयपुर में एक प्रशिक्षण संस्थान खोल दिया है, जहां प्रत्येक जिज्ञासु वैद्यमहानुभाव एवं विद्यार्थी सीख सकते हैं।

तदनन्तर छात्रसंघ निर्देशक महोदय ने छात्रसंघ के विधान से विद्यार्थियों को पूर्णतया अवगत कराया। छात्रसंघ संरक्षक महोदय ने विद्यार्थियों को भाषण में रुचि लेने एवं सुव्यवस्थित अध्ययन एवं विधान के अनुसार चलने के लिये प्रेरित किया। अन्त में छात्रसंघ के नव-निर्वाचित पदाधिकारियों एवं कक्षा प्रतिनिधियों ने धन्वन्तरि भगवान् एवं गुरुजनों के समक्ष निष्ठापूर्वक कार्य करने की शपथ ली।

—मन्त्री छात्रसंघ।

\+ \+ \+

राजस्थान के उपस्वास्थ्य मन्त्री एवं संचालक आयुर्वेद विभाग का

सरदार शहर में व्यस्त कार्यक्रम

राजस्थान के उपस्वास्थ्य मन्त्री श्री भीखाभाई आयुर्वेद विभाग के संचालक श्री प्रेमशंकर जी भिषगाचार्य के साथ सरदार शहर पधारे।

आयुर्वेद विश्व भारती में आपके करकमलों से रसायनशाला की नींव रखी गई। आपने संस्था के इस समारोह की अध्यक्षता करते हुये आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त एवं सदवृत्त पर पर्याप्त प्रकाश डाला।

आपके भाषण के बाद श्री प्रेमशंकर जी ने चरकसंहिता में वर्णित छात्रोपदेश पर बहुत सुन्दर भाषण दिया। फिर संस्था की ओर से संस्था के संस्थापक भँवरलाल जी दूगड़ ने तथा आचार्य गौरीशंकर जी ने संस्था की भावी योजना पर प्रकाश डालते हुये आगत प्रतिनिधियों को धन्यवाद दिया।

सायं आपके सम्मान में सरदारशहर चुरु जिला वैद्य सम्मेलन सभा द्वारा एक पार्टी का आयोजन किया गया जिसमें चुरु जिला वैद्य सभा के मन्त्री श्री लक्ष्मीनारायण जी आयुर्वेदाचार्य तथा सरदार शहर मंडल काँग्रेस के अध्यक्ष श्री सोहनलाल जी आयुर्वेदाचार्य ने आयुर्वेद की वर्तमान समस्याओं विशेषतः वैद्यों के अल्प वेतन तथा राजकीय औषधालयों में औषधियों की कमी आदि पर प्रकाश डाला। माननीय मन्त्री ने आयुर्वेद के प्रति सच्ची श्रद्धा प्रगट करते हुये वैद्यों के वेतन वृद्धि का आश्वासन दिया।

दूसरे दिन सौभाग्य से मुख्य मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया जी भी वहां पधारे। आयुर्वेद विश्वभारती के प्रांगण में उन्हें एक मानपत्र भेंट किया गया जिसमें वैद्यों की वेतन वृद्धि तथा आयुर्वेद विश्वभारती सरदारशहर में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की मांग के साथ आयुर्वेद को भी अन्य चिकित्सा पद्धतियों के समान स्तर पर लाने की मांग की गई थी।

सभी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का आश्वासन देते हुये मुख्य मन्त्री ने आयुर्वेद में अनुसन्धान पर बल दिया।

—मन्त्री, तहसील वैद्य सभा, सरदारशहर।

× × ×

जीरादेई में आयुर्वेदिक चिकित्सालय

जीरादेई ग्राम का महत्व आज भारत के प्रत्येक ग्राम से विशेष है, क्योंकि इसी स्थान पर आज से लगभग ७५ साल पूर्व भारतीय गणतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति माननीय डा० राजेन्द्रप्रसाद जी का जन्म हुआ था और आपकी प्रेरणा से ही इस स्थान पर लगभग १५ साल पूर्व इस औषधालय की स्थापना हुई, यह औषधालय प्रति वर्ष लगभग २०००० व्यक्तियों की सेवा निःशुल्क करता आरहा है। इस औषधालय को जिला बोर्ड सारण से प्रतिवर्ष ६०० रुपये की औषधियां मिलती हैं, बस इतने ही में यह सेवा की जाती है।

गतवर्ष राष्ट्रपति जी की पत्नि माननीया राजवंशी देवी के परम पुनीत हाथों द्वारा इस औषधालय के नवभवन का शिलान्यास हुआ और माता जी ने तीन हजार रुपये देने का बचन दिया, इस ओर राज्य के सरकारी कार्यालयों में अनेकों प्रार्थना-पत्र भेजे गये, पर आज तक कुछ भी सफलता नहीं मिली।

मैं केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री महोदय से साग्रह अनुरोध करता हूँ कि इस औषधालय के नवभवन का निर्माण कराकर आदर्श राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय का रूप दे दें।

—पं० भूदेव शर्मा, चिकित्सक।

+ + +

फतेहपुर जिला वैद्य सम्मेलन

(२६ वां वार्षिकोत्सव)

२६-१०-५८ को फतेहपुर जिले का उन्तीसवां वैद्य सम्मेलन वार्षिकोत्सव कानपुर के प्रख्यात् वैद्यराज पं० सत्यनारायण मिश्र के सभापतित्व में सफलतापूर्वक मनाया गया। इस वार्षिकोत्सव के साथ आयुर्वेद के प्रधान सर्जन अश्विनीकुमारों की जयन्ती भी मनाई गई। सम्मेलन एवं अश्विनीकुमार जयन्ती का उद्घाटन आयुर्वेद-विभूति श्री पं. जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल वैद्य आयुर्वेद पञ्चानन ने किया। अनेक अन्य वक्ताओं के सामयिक भाषण हुए जिनमें पं० शिवमंगलराम आयुर्वेदाचार्य, पं. सदाशिव जी, पं. दयाशंकर त्रिपाठी वैद्य डि. बोर्ड औषधालय किशुनपुर तथा महावीरप्रसाद शर्मा वैद्य प्रधान मन्त्री जिला वैद्य सम्मेलन के नाम उल्लेखनीय हैं। अनेक उपयोगी प्रस्ताव पारित हुए।

निर्वाचन—

सभापति—श्री पं० हरिश्चन्द्र शुक्ल वैद्य।

प्रधान मन्त्री—महावीरप्रसाद शर्मा वैद्यावतंस।

× × ×

भारतीय चिकित्सा समिति-कन्वेंसन का

चतुर्थ अधिवेशन कलकत्ता में

श्री. डा. ए. लक्ष्मीपति के सभापतित्व में राजकीय भारतीय चिकित्सा परिषदों का चतुर्थ कन्वेंसन कलकत्ता में २५-२६-२७-२८ दिसम्बर १९५८ को होगा। इसका उद्घाटन केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री माननीय डी. पी. करमरकर २५-१२-५८ को दोपहर के ३ बजे करेंगे। विविध राज्यों की भारतीय चिकित्सा परिषदों के प्रतिनिधि, आयुर्वेद कालेज एवं यूनानी विद्यालयों के अध्यक्ष इसमें भाग लेंगे। इसमें आयुर्वेद एवं यूनानी की समान शिक्षा-व्यवस्था को अन्तिम रूप दिया जायगा और भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के

चिकित्सकों की सुविधाओं, अधिकारों तथा उनकी स्थिति निश्चित करते हुये समान फार्माकोपिया के निर्माण के लिये उपाय और क्रम निश्चित किया जायगा। इसके सुझाव स्वास्थ्य एवं योजना मंत्रालय को कार्यरूप देने के हेतु प्रस्तुत किये जायंगे।

× × ×

बनस्पति घी में मिलाने के लिए रंग की खोज

भारतीय सरकार ने बनस्पति घी में मिलाने के लिए उपयुक्त रंग खोज निकालने वाले को पुरुष्कार देने की घोषणा की हुई है। यह रंग निरापद होना चाहिए तथा इसके मिलाने से बनस्पति एवं असली घी में स्पष्ट अन्तर पड़ जाना चाहिए। इसी प्रकार के रंग निर्माण करने के विषय में—करंजा जिला अकोला के मैसर्स वीर जी प्राग जी ने सूचना दी है। आपका कहना है—

१—इस रंग का निर्माण आयुर्वेद पद्धति से किया जायगा।

२—इस रङ्ग को बनस्पति घृत में मिलाने से उसके स्वाद एवं गंध में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ेगा।

३—यह रङ्ग शरीर को किसी प्रकार की हानि नहीं करेगा।

४—इस रङ्ग को किसी रासायनिक पदार्थ से उड़ाने की कोशिश करने पर घृत की गन्ध तथा स्वाद भी बदल जायगा।

आपने इसके विषय में प्रधान मन्त्री माननीय नेहरू, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, श्री अजितप्रसाद जैन, श्री गोविन्दबल्लभ पन्त, श्री मोरार जी भाई देसाई, स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर आदि से पत्र व्यवहार किया है, किन्तु कोई कार्यकारी परिणाम अभी तक नहीं निकला।

× × ×

पैप्सू राज्य आयुर्वेद सम्मेलन—आवश्यक सूचना

पैप्सू राज्य के सभी वैद्य मंडलों और वैद्यों को सूचित किया जाता है कि पैप्सू राज्य आयुर्वेद सम्मेलन का दफ्तर सरहिंद से बंगारोड फगवाड़ा में तबदील हो गया है। इसलिये अगली सूचना तक सब प्रकार का पत्र व्यवहार नीचे लिखे पते से करें। इसके अतिरिक्त सब रजिस्टर्ड इनलिस्टेड और आयुर्वेद विधि से चिकित्सा करने वाले सभी वैद्यों की सेवा में निवेदन है कि वे तुरन्त अपना नाम पास के वैद्य मंडल में लिखवा कर उसकी कापी नीचे लिखे पते पर भेज देवें। कृपया वैद्य मंडलों के प्रधान मन्त्री भी अपने मंडल को जिले से सम्बन्धित करते हुये अपना विवरण केन्द्र (फगवाड़ा) को भेज दें।

पै० आ० सम्मेलन —वैद्य ओमप्रकाश इन्दू
बंगा रोड, फगवाड़ा कार्यवाहक प्रधान मन्त्री।

× × ×

सद्वैद्य सभा, जयपुर

दिनांक ३०-११-५८ को सद्वैद्य सभा का नवीन चुनाव हुआ, जिसमें निम्न महानुभाव चुने गये—

संरक्षक—स्वामी जयरामदास जी भिषगाचार्य। त्या० मू० स्वा० मंगलदास जी, वै० रा० श्री मुकुन्ददेव जी भिषग्रत्न।

सभापति—वैद्य गोपालदत्त जी भिषगाचार्य

उपसभापति—रा० वै. रामदयाल जी भिषगाचार्य

मन्त्री—वै० लक्ष्मीनारायण जी शर्मा भिषगाचार्य साहित्याचार्य, साहित्यरत्न।

सं० मन्त्री —वैद्य देवेन्द्रप्रसाद जी भिषग्वर।

प्रचार मन्त्री — वैद्य विजयशंकर जी शास्त्री।

कार्य कारिणी के सदस्य—वैद्यराज कल्याणप्रसाद जी भिषगाचार्य, वैद्यराज निरञ्जनलाल जी भिषगाचार्य, वैद्य जगतमोहन जी भिषगाचार्य, वैद्य श्री विद्यावती जी, वैद्य श्री मोहनलाल जी, स्वामी रामप्रकाश जी भिषगाचार्य, वै० श्री पावनीप्रसाद जी आयुर्वेदाचार्य।

कोषाध्यक्ष—वै० रामकिशोर जी भिषगाचार्य।

आय व्यय निरीक्षक —श्री रामचन्द्र जी गुप्त।

—मन्त्री।

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

देश के कोने-कोने में धन्वन्तरि त्रयोदशी पर धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव की धूम

यह लिखते हुए परम प्रसन्नता है कि आयुर्वेद चिकित्सक-समाज का यह राष्ट्रीय वार्षिक पर्व प्रति वर्ष अधिकाधिक महत्व प्राप्त करता जारहा है और इस वर्ष भारत के कोने-कोने में इस सुअवसर पर वैद्यों द्वारा विविध उपयोगी कार्य-क्रमों के द्वारा यह उत्सव बड़े उत्साह एवं सफलता के साथ सम्पन्न किया गया। इस महोत्सव के समाचार सैकड़ों ही स्थानों से बड़े विस्तृत और आकर्षक रूप में प्राप्त हुए हैं। इन समाचारों को यथावत् प्रकाशित करना तो असम्भव ही है यदि आवश्यक अंश भी प्रकाशित किए जांय तब भी बहुत अधिक पृष्ठों की आवश्यकता होगी। अतएव अत्यन्त विवशता के साथ समाचार प्रेषक महोदयों से क्षमा याचना करते हुए हम समाचारों को अति संक्षिप्त रूप में प्रकाशित कर रहे हैं।

१ अ—वैद्य सभा आगरा—

उत्सव अध्यक्ष—श्री राजनाथ जी कुंजरू

मंत्री जिला वैद्य सभा—श्री रणधीरसिंह शास्त्री

इन्द्र औषधालय नाई मण्डी आगरा, कार्यालय वैद्य सभा में उत्सव बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया। अनेक विद्वानों के सारगर्भित भाषण हुए। सभापति जी ने संक्षिप्त भाषण में आयुर्वेद की उन्नित के उपायों पर प्रकाश डालते हुए संगठन पर बल दिया।

आ—२ वैद्य हकीम सभा आगरा—

वैद्य हकीम सभा आगरा की ओर से हकीम श्री निहालसिंह जी सम्पादक निहाले-सफा (झंग) के सभापतित्व में यज्ञसेनी वैश्यों की बगीची नूरी दरवाजा में धन्वन्तरि उत्सव मनाया गया। निम्न प्रस्ताव पास हुये यही प्रस्ताव वैद्य सभा जिला आगरा द्वारा आयोजित धन्वन्तरि उत्सव में पं० राजनाथ जी कुंजरू की अध्यक्षता में पास हुए।

१—सरकार आयुर्वेद व तिब्बी पद्धतियों को प्रभावहीन करने के लिए जो कानून बना रही है उनके हटाने के लिए देश व्यापी आन्दोलन किया जाय।

२—यह सभा विश्वविद्यालय और इण्डियन मैडी-बोर्ड से प्रार्थना करती है कि आयु० व तिब्ब प्रधान पाठ्य क्रम रहे और उसके अनुसार ही उपाधियां दी जावें।

३—सरकारी आयु० संस्थाओं में आयु० विद्यापीठ हि० साहित्य सम्मेलन के उत्तीर्ण छात्रों को भी स्थान प्रदान किया जावे।

४—सरकारी कर्मचारियों की आयुर्वेदिक चिकित्सा होने पर सरकार उनको चिकित्सा व्यय प्रदान करे।

५—इं० मेडी० बोर्ड से सभा अनुरोध करती है कि वैद्य हकीमों के प्रमाणपत्र सरकारी कार्यालयों में एक मास तक ही स्वीकृत किये जाते हैं जब कि डाक्टरों को कोई प्रतिबन्ध नहीं है यह अन्तर समाप्त करना चाहिए।

६—नि० भा० विद्यापीठ की विशारद और आयुर्वेदाचार्य उपाधियों की तरह ही वैद्यविशारद और वैद्याचार्य परीक्षाओं को बोर्ड मान्यता देकर रजिस्ट्रेशन करे।

७—सभा नि० भा० आयु० विद्यापीठ से अनुरोध करती है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की वैद्य विशारद और आयुर्वेदरत्न उत्तीर्ण छात्रों को अपनी वैद्य विशारद और वैद्याचार्य ही में नहीं आयु० विशारद और आयुर्वेदाचार्य

परीक्षा में सम्मलित होने की सुविधा प्रदान कर साहित्य प्रचार में सहायक हो।

भारद्वाज जयन्ती—

कार्तिक शुक्ल ६ को वैद्य हकीम जिला सभा आगरा एवं जिला वैद्य सभा आगरा दोनों की ओर से संयुक्त रूप से भारद्वाज जयन्ती पवनपुत्र धर्मार्थ औषधालय मोतीकटरा में आचार्य श्री अविनाश चन्द्र जी वन्सल के सभापतित्व में मनाई गई धन्वन्तरि जयन्ती के दिन स्वीकृत प्रस्ताव संख्या १ की पुष्टि कर निश्चित हुआ कि इस सम्बन्ध में वैद्य हकीम सभा और जिला वैद्य सभा की संयुक्त मीटिंग बुलाकर कार्य क्रम निश्चय किया जाये।

२. आरोग्य आश्रम रुदायन—

अध्यक्ष—श्री पं० रामचन्द्र जी शर्मा वैद्यराज

निवेदक—आयुर्वेदाचार्य पं० नित्यनन्द जी शर्मा

वैद्य और डाक्टरों की उपस्थिति में भगवान का पूजन, कविता पाठ तथा सारगर्भित भाषण हुये। आयुर्वेद की विराट प्रदर्शनी का भी आयोजन था।

३ श्री सनातन धर्म प्रेमगिरि आयुर्वेद कालेज वैद्य मंडल जींद का उत्सव—

वैद्यों ने अपने निबन्धों और प्रवचनों द्वारा जनता को आयुर्वेद की ओर आकृष्ट किया। आचार्य श्री नरेन्द्रनाथ जी ने सुव्यवस्थित होकर कार्य करने एवं अनुसंधान पर बल दिया। पारितोषिक एवं सहभोज के पश्चात् उत्सव समाप्त हुआ।

४ वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन बिक्री केन्द्र डुमरांव—

उत्सव जिला कांग्रेस कमेटी के मन्त्री श्री कपिलदेवराय जी के सभापतित्व में मनाया। बाद में नागरिकों एवं वैद्यों की सभा चौधरी श्रीराम जी के सभापतित्व में हुई। वक्ताओं में श्री जगदानंद शास्त्री एवं मंत्री नन्दजीप्रसाद का नाम उल्लेखनीय है।

५ राजकीय आयु० चिकित्सालय, सराय ममरेज—

उत्सव अध्यक्ष—हकीम माजिदहुसेन साहब

श्री शास्त्री जी ने आयु. स्वास्थ्य प्रदर्शन कक्ष का आयोजन किया जिसका उद्घाटन श्री पं. द्वारिकानाथ मिश्र ने किया। श्री पं० राजनारायण शास्त्री द्विजेश की अध्यक्षता में कवि-सम्मेलन हुआ।

प्रेषक—श्री शिवसहाय शास्त्री

६ रामस्थान (सतना)—

यहां भारतीय चिकित्सालय में उसके सोलहवां वार्षिकोत्सव के साथ धन्वन्तरि महोत्सव ठाकुर रामसजीवन सिंह वैद्यशास्त्री के सभापतित्व में मनाया गया। कविता पाठ प्रवचन तथा गायन के साथ उत्सव का कार्यक्रम रात के १० बजे तक चलता रहा। दर्शनीय झांकी सजाई गई थी।

७ श्री अवन्तिका आयुर्वेद विद्यालय उज्जैन—

उत्सव अध्यक्ष—श्री पं० राधेलाल जी व्यास

—श्री अवन्तिका आयुर्वेद विद्यालय में धन्वन्तरि जयन्ति का २२ वां महोत्सव हुआ। अनेक वैद्यों के भाषण के अन्त में श्री वासुदेव जी का भाषण हुआ तथा अध्यक्षीय भाषण में श्री व्यास जी ने आयुर्वेद की प्रगति तथा उत्थान में शुभ कामनाऐं प्रकट कीं।

प्रेषक—श्री वासुदेव जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

८ वैद्य सभा झींझक (कानपुर)—

सभाध्यक्ष—श्री पं. बालदत्त जी त्रिपाठी आ. शा.

मन्त्री—श्री पं० काशीप्रसाद वैद्य

चौहान आयुर्वेदालय में उत्सव मनाया गया। सहायक परगनाधीश महोदय ने धन्वन्तरि चित्र का अनावरण किया। नगर के प्रमुख नागरिक तथा प्रमुख पदाधिकारी उपस्थित थे।

९ तहसील सभा फीरोजाबाद—

सभाध्यक्ष—श्री ला० टुण्डामल जी चेयरमेन

मन्त्री—श्री बनारसीदास जी विद्यार्थी

धन्वन्तरि जयन्ति की सार्वजनिक सभा नगरपालिका भवन में हुई। सर्व सम्मति से निम्न प्रस्ताव पास हुये।

१—यह सभा केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकार से मांग करती है कि धन्वन्तरि जयन्ती जन्म दिवस (धनतेरस) को राष्ट्रीय पर्व मान कर सार्वजनिक छुट्टी घोषित की जावे।

२—यह सभा सरकारों से मांग करती है कि आयुर्वेद की उन्नति के लिये प्रधान संचालक पृथक् नियुक्त किये जावें जिससे आयुर्वेद की वास्तविक उन्नति हो सके।

३—नवीन पाठ्यक्रम चालू करने के लिए जिसकी उपाधि आयुर्वेदाचार्य होगी सभा सम्पूर्णानन्द कमेटी का समर्थन एवं स्वागत करती है।

१० नगर वैद्य परिषद इन्दौर—

इस परिषद द्वारा धन्वन्तरि दिवस भारत में मनाए जाने वाले समारोहों में विचित्र और अनूठा था। मध्य प्रदेश की स्वास्थ्य मन्त्राणी श्री रानी पद्मावती द्वारा उन वृद्ध वैद्यों का अभिनन्दन कौस्तुभ मणि धारण करवाकर किया गया जो अपने जीवन के ६० वर्ष व्यतीत कर चुके थे, अधिकांश वैद्यों का चिकित्साकाल ३५ से ५० वर्ष पाया गया। ऐसे वैद्यों की संख्या ६० के लगभग है जिनका अभिनन्दन किया गया।

परिषद ने कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को प्रशंसापत्र प्रदान किए जो सेवा भाव से कार्य करते हैं।

प्रेषक—श्री पं. वेदप्रकाश शर्मा।

११ ऊन (निमाड़)—

श्री महालक्ष्मी आयुर्वेदिक औषधालय में उत्सव मनाया गया। श्री सुमनाकर जी हिंदीरत्न का सहयोग उत्तम रहा। —श्री बिहारीलाल वर्मा।

१२ देवढ़िया (शाहाबाद)—

अध्यक्ष—श्री लालपति जी मिश्र शास्त्री।

मंत्री—पं० काशीनाथ जी पांडे।

श्री कौशिल्या आयुर्वेद भवन में धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। प्रातः पूजन, शायं को खुली सभा, रात को कवि सम्मेलन व नाटक हुआ।

१३ बहादुरगढ़ (मेरठ)—

वैद्य रामफल जी के स्थान पर जयन्ती मनाई गई। सभी वैद्य डाक्टर व ग्रामीण उपस्थित हुए। —वैद्य चण्डीप्रसाद शुक्ल।

१४ वैद्य सभा जबलपुर—

उत्सव अध्यक्ष—श्री पं० भवानीप्रसाद जी तिवारी मेयर नगर निगम। स्थानीय डाबर ऐजेंसी प्रतिष्ठान में मनाया गया। प्रमुखव्यक्ति श्री डिग्वेकर प्राणाचार्य, श्री सुन्दरलाल जी व श्री सत्यव्रत जी शास्त्री थे जिन्होंने वैद्य संगठन पर जोर दिया और सरकार की ढिलमिल नीति की आलोचना की।

प्रेषक—पुरुषोत्तमलाल गोस्वामी अध्यक्ष वैद्यसभा।

१५ खारची (मारवाड़जंकशन) जिला पाली :—

अध्यक्ष—श्री पं० पुखराज जी वैद्य।

मंत्री—वैद्य बाबूलाल व्यास (तहसील सभा)।

तहसील सभा की ओर से जयन्ती राणावास स्टेशन पर मनाई गई। शाम को एक सार्वजनिक सभा हुई।

१६ क्षेत्रीय वैद्य सभा शाहपुर—

क्षेत्रीय वैद्य सभा के कार्यालय में सभी वैद्यों एवं कार्यकर्त्ताओं के द्वारा जयन्ती मनाई।

—श्री० चन्द्रशेखर कांटिया वैद्यशास्त्री, मंत्री।

१७ सतना—

सम्पूर्ण वैद्यों की उपस्थिति में जयन्ती मनाई गई। वैद्यों के सारगर्भित भाषण हुए।

—श्री पं० प्रयागदत्त जी राजवैद्य।

१८ राष्ट्रीय वैद्य मण्डल बिहटा (शाहाबाद)—

सभाध्यक्ष—श्री कृष्णाचार्य महंत।

मंत्री—डा. शुकदेव शर्मा बी. ए., ए. बी. एम. एस.

राजकीय औषधालय के प्रांगण में वैद्य मण्डल की ओर से जयन्ती महोत्सव मनाया गया। जनता को देशी चिकित्सा पर निर्भर होने की सलाह दी। सार्वजनिक सभा के पश्चात् मण्डल के अगले वर्ष के लिए कार्यकारिणी समिति संगठित की गई। अगले वर्ष मण्डल की ओर से ऋतुचर्या तथा आवश्यक स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देश प्रकाशित कर जनता में वितरण करना स्वीकृत हुआ।

सर्वसम्मति से वैद्य लक्ष्मीनाथ जी जी० ए० एम० एस० सभापति व शुकदेव जी आयुर्वेदाचार्य मंत्री निर्वाचित हुए।

१९ बडोरा (कोटा)—

सायंकाल वैद्य राजमल जी जैन के यहां जयन्ती मनाई गई। इस अवसर पर सार्वजनिक रूप

से स्वास्थ्य सप्ताह मनाया गया। तीन दिन तक निःशुल्क औषधि वितरण तथा नगर स्वास्थ्य सुधार व्यवस्था की गई।

—श्री बद्रीनारायण माथुर एम. ए.।

२० महाराजगंज (सरगुजा)—

राजकीय जनपद आयु. औषधालय में सदैव की भांति जयन्ती मनाई गई।

—श्री पं० कृष्णमोहन भट्ट शास्त्री।

२१ तुलसीपुर (गोंडा)—

श्री पाटेश्वरी आयुर्वेद भवन के अध्यक्ष श्री भगवतीप्रसाद गुप्त की अध्यक्षता में उत्सव मनाया गया। वक्ताओं ने देशी चिकित्सा पर जोर दिया, बाद धन्वन्तरि कथा से उत्सव समाप्त हुआ। —श्री भगवतीप्रसाद वैद्य।

२२ नवादा स. डि. वैद्य सम्मेलन—

सम्मेलन की ओर से १२५ वैद्यों ने सम्मिलित रूप से भगवान धन्वन्तरि की पूजा की तथा धन्वन्तरि की कथा कही। श्री द्वारिकाप्रसाद जी मि के तत्वावधान में स्वास्थ्य सेवा सप्ताह का समावर्तन किया गया। —मंत्री।

२३—दामड़ी औषधालय डूंगरपुर—

उत्सव अध्यक्ष—श्री कोदरभाई जोशी अध्यक्ष विकास मण्डल।

उत्सव के दिन प्रभातफेरी निकली। स्थान-स्थान पर स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रवचन हुये। सभा का आयोजन हुआ उसमें राजवैद्य हीरालाल जी ने आयुर्वेद के इतिहास पर तथा इसकी सुचिकित्सा पर प्रकाश डाला। —राजवैद्य हीरालाल जी।

२४ शिवपुरी—

वैद्य सभा मण्डल के तत्वावधान में सदर बाजार में उत्सव मनाया गया। अनेकों वैद्यों के आयुर्वेद महत्व पर भाषण हुये। कार्य-क्रम बहुत शानदार रहा।

२५ समथर—

अध्यक्ष—श्री राजासाहब रघुनाथसिंह जू धन्वन्तरि औषधालय के द्वारा जयन्ती समारोह बड़े समारोह के साथ मनाया गया। विद्वान वैद्य महानुभावों के आयुर्वेद विषयक सारगर्भित भाषण हुये। उत्सव सानंद समाप्त हुआ।

प्रेषक—श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव—

२६ लालगंज (आजमगढ़)—

श्री एम. एल. गुप्त वैद्य के औषधालय में श्री उमाकांत मालवीय की अध्यक्षता में समारोह मनाया गया।

२७ सफीपुर (उन्नाव)।

अध्यक्ष—श्री मथुराप्रसाद जी मिश्र शास्त्रीवैद्य। कुशवाहा औषधालय में महोत्सव मनाया गया। वैद्य हकीमों के आयुर्वेद पर सुन्दर भाषण हुये। —श्री पं० विश्वनाथ पाण्डेय।

२८ जिला वैद्य सभा भीलवाड़ा—

अध्यक्ष—श्री काशीनाथ जी शर्मा वैद्यराज

मंत्री—वैद्य कन्हैयालाल जी

सभी वैद्यों के साथ प्रतिष्ठित नागरिक भी थे धन्वन्तरि पूजन हुआ। अनेक वक्ताओं ने भाषण दिये जिनका विषय था धन्वन्तरि जन्म, शल्य विद्या में प्राचीन वैद्य, विशिष्ट चमत्कारी औषधि निर्माण, स्वस्थ वृत महत्ता, आयुर्वेद पद्धति ही श्रेष्ठ है। आयुर्वेद के अनुसार दिनचर्या, रात्रिचर्या आदि का पालन।

२९ जिला वैद्य सम्मेलन बक्सर (शाहाबाद)

उत्सव अध्यक्ष—आयु० वृहस्पति श्री राजेश्वरदत्त जी शास्त्री।

सम्मेलनाध्यक्ष—श्री गिरिजादत्त जी शास्त्री श्री कालिकेश्वर कार्यालय में उत्सव विधिपूर्वक मनाया गया। विद्वान वक्ताओं के भाषण के अनन्तर श्री पं० गिरिजादत्त जी का 'आयुर्वेद पूर्ण वैज्ञानिक जीवन शास्त्र है' विषय पर भाषण हुआ, अध्यक्षीय भाषण में बताया, 'आयुर्वेदीय इतिहास और स्वस्थवृत्त हमारी अमूल्य सम्पत्ति है। हम इसका पालन कर शतायु प्राप्त कर सकते हैं।' भिन्न-भिन्न स्थानों पर भी जयन्तियां मनाई गईं। शास्त्री जी की अध्यक्षता में निम्न लिखित प्रस्ताव भी पास किये गये—

१—इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के उपकुलपति डा० रञ्जन के उस वक्तव्य के विरोध में जो उन्होंने उत्तर प्रदेशीय एलोपैथिक सभा इलाहाबाद में दिया जिसमें आयु. को अवैज्ञानिक बताया है।

२—इण्डियन मैडीकल कौंसिल दिल्ली में डा० पटेल के भाषण के विरोध में था।

३० कचनामा पो० मखदूमपुर (गया)—

समारोहाध्यक्ष—श्री पं० अंशुमान शर्मा एम. ए. साहित्यालङ्कार आयुर्वेदाचार्य।

परमानंद आरोग्य सदन में, मखदूमपुर थाने के प्राय: सभी वैद्यों की उपस्थिति में तथा ग्रामीण जनता के योग से जयन्ती मनाई गई। अधिकांश विद्वान वैद्य थे और उनके सारगर्भित भाषण हुये। अध्यक्ष महोदय का उच्चतम भावपूर्ण भाषण हुआ जिसमें सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया। रोगी निरीक्षण के पश्चात् औषधि वितरण की गई। निबन्ध पढ़े गये, कविता पाठ हुआ। रात्रि को २ उच्च भावपूर्ण नाटक हुए जो अत्यन्त आकर्षक थे। जड़ी बूटियों की एक विशिष्ट प्रदर्शनी भी हुई।

—श्री रामनरेश मिश्र बी० ए० साहित्यायुर्वेदरत्न।

३१ वाराणसी—

अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय में श्री० सेठ जुगलकिशोर जी विरला की अध्यक्षता में धन्वन्तरि महोत्सव मनाया गया। श्री अमरनाथ जी शास्त्री प्र० मंत्री द्वारा माल्य प्रदान की गई। श्री ताराशङ्कर जी मिश्र, श्री विनायक मिश्र, श्री बृजमोहन जी दीक्षित एवं श्री श्रीधर जी मिश्र वैद्य के भाषण हुए। अध्यक्षीय भाषण में बिरला जी ने बताया "आयुर्वेद सभी चिकित्सा प्रणालियों का उद्गम है आयु० का महत्व, उसकी चिकित्सा की विशेषतायें, राज्याश्रय बिना कठिनाइयां, आयु. सिद्धान्तानुसार कुनैन का व्यवहार भी किया जा सकता है, औषधियों की शुद्धता, आयुर्वेदीय पारद की विशेषता, संशोधन, इंजेक्शनों की बुराइयां, बाजार में नकली औषधियां आदि विषयों पर समुचित प्रभाव डाला। निर्वाचन में आयुर्वेद प्रेमियों को ही वोट दें" ऐसा कहा।

पश्चात धन्वन्तरि नाटक का सफल अभिनय हुआ।

इसी जयन्ती उत्सव पर अर्जुन आयुर्वेद महा विद्यालय के अध्यापक श्री कैलाशनाथ जेतली ने वाराणसी पत्रकार संघ के अध्यक्ष श्री रामचन्द्र नरहर वापट जो श्री ऊषादेवी राजेनकर नामक रुग्णा के दूत बनकर आए थे, की नाड़ी परीक्षा लगभग ५ मिनट की। लक्षणों में बहुत कुछ (२७ में १८) बातें सही थीं। इस चमत्कार से सभी आश्चर्यान्वित हुए।

श्री साङ्गवेद विद्यालय एवं दातव्य औषधालय रामघाट वाराणसी में वैद्यराज श्री दुर्गादत्त जी शास्त्री की अध्यक्षता में समारोहपूर्वक धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री द्वारा उपकुलपति डा० रंजन व भारतीय मैडीकल कौंसिल के अध्यक्ष डा० पटेल के आयुर्वेद विरोधी वक्तव्यों के लिये उनका विरोध किया गया। प्रधान ने आयुर्वेद की पूर्ण शिक्षा के लिये संस्कृत अध्ययन पर बल दिया और कहा कि शास्त्रीय विधि से ही आयुर्वेद की उन्नति हो सकती है।

—श्री पं० विश्वनाथ पाण्डेय।

३२ हरचन्दपुर (रायबरेली)—

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय के तत्वावधान में महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। स्वास्थ्य सप्ताह का कार्यक्रम रहा जिसमें स्वच्छता आन्दोलन, नाटक, सिनेमा, स्वास्थ्य प्रदर्शनी, व्यायाम प्रदर्शनी, कवि सम्मेलन आयोजित किये गये।

सार्वजनिक सभा जिला स्वास्थ्याधिकारी डा० एच० सी० वर्मा के सभापतित्व में हुई। अध्यक्ष ने आयुर्वेद विज्ञान की महान सराहना की वैद्य परमेश्वर घिल्डियाल ने धन्वन्तरि जयन्ती की महिमा एवं आयुर्वेदिक सिद्धांतों का व्यापक विवेचन किया। जिले के सभी आयु० एवं यूनानी चिकित्सालयाध्यक्ष उपस्थित थे।

कविसम्मेलन का सभापति पद हरदोई के प्रसिद्ध कवि श्री सीताराम जी व्यथित ने संभाला, कवि-सम्मेलन सफल रहा।

३३ सुलतानपुर—

नगर जिला वैद्य सम्मेलन की ओर से धन्वन्तरि जन्म दिवस मनाया गया। पूजनोपरांत अग्रिम वर्ष के पदाधिकारियों का चुनाव हुआ।

स्थानीय वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की ओर से धन्वन्तरि उत्सव उत्साह से मनाया गया। जिसकी अध्यक्षता पं० रामनारायण सिंह जी एम. ए. प्रिंसपल सुलतानपुर ने की। अन्त में दो प्रस्ताव पास हुये।

१–सुलतानपुर में जिला स्तर पर एक आयुर्वेदिक कालेज खोला जाय।

२–आयुर्वेदिक स्नातकों को समान अधिकार और वेतन दिया जाय।

तीसरा उत्सव डा० एस० के० वर्मन बिक्री केन्द्र में बड़े गौरव से मनाया गया।

३४ महेंद्रगढ़–

महोत्सव अध्यक्ष–श्री शंकरदत्त जी शास्त्री वैद्य

—जिला वैद्य मंडल के प्रधान कार्यालय श्री ताराचंद जी धर्मार्थ औषधालय में श्री धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। आयुर्वेद विषय पर विद्वान वैद्यों के सुंदर भाषण हुये। सस्वर सुन्दर कीर्तन हुआ।

जोशी श्री जगदीशप्रसाद जी प्रधान मंत्री ने वार्षिक रिपोर्ट सुनाई। जिला वैद्य मंडल महेंद्रगढ़ के रिक्त स्थान की पूर्ति हेतु, वैद्यमंडल जिला महेंद्रगढ़ के पदाधिकारी एवं कार्यकारिणी का सर्व सम्मति से चुनाव हुआ।

३५ हरिद्वार–

पंचपुरी वैद्यसभा हरिद्वार की ओर से सुंदरलालके मंदिर ज्वालापुर में महोत्सव सम्पन्न हुआ। शाम के ३ बजे श्री पं० रामनाथ जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य उपाध्याय द्रव्यगुण विज्ञान गुरुकुल कांगड़ी की अध्यक्षता में कार्य प्रारम्भ हुआ। प्रथम वैद्य धर्मदत्त जी ने इस पर्व के महत्व पर प्रकाश डाला कि वैद्यों के साथ डाक्टरों को भी धन्वन्तरि को पूज्य मानना चाहिये क्योंकि प्राचीन शल्य तंत्रोक्त विधियां आज के शल्य के समान हैं केवल तरीकों में कुछ भेद है। पं० गणेशदत्त जी वैद्य बिहार ने सुश्रुतोक्त क्षार जलौका कर्म की श्रेष्ठता बताई। पं. हरिदत्त जी ने चिकित्सा तथा प्रयोगों के बारे में कहा। अध्यक्ष महोदय ने धन्वन्तरि चित्र का रहस्योद्घाटन करते हुये अपने वक्तव्य को चार भागों में बांटा। शल्य, स्वास्थ्य, वनस्पति, आहार जो कि धन्वन्तरि के चतुर्भुज रूप में घटित हो जाते हैं साथ ही आयुर्वेद की अन्य परिस्थितियों के विषय में भी कहा। अन्त में पं मदनमोहन जी मन्त्री पञ्चपुजारी वैद्य सभा, ने धन्यवाद दिया और सभा विसर्जित हुई।

प्रेषक–ज्ञानेन्द्रनाथ पाण्डेय आयु० रत्न,

धन्वन्तरि

वर्ष—३२ — सन् १९५८ के

साधारण अङ्कों की विषय-सूची

कविता

औषधि निर्माण

आयुर्वेद—महत्व

रोग निदान व चिकित्सा

● वनौषधि व द्रव्य

● ग्रहस्थों का स्वास्थ्य (स्वास्थ्य वृत्त)

● परीक्षित प्रयोग

पूर्व प्रकाशित परीक्षित प्रयोग

गुप्तसिद्ध प्रयोग

विकीर्ण

हमारा आगामी प्रकाशन

'धन्वन्तरि' का आगामी विशेषांक

काय-चिकित्सा विशेषाङ्क

★ यह विशेषाङ्क धन्वन्तरि की विशेषांक शृंखला परम्परा में अपना एक ऐसा अनमोल रत्न बनकर प्रकट होने वाला है कि जिसकी मनोहारिणी प्रभा वर्षों तक पाठकों के हृदय को जगमगाती रहेगी।

★★ भारतवर्ष में आयुर्वेद के जो गिने चुने मूर्धन्य विद्वान् माने जाते हैं उनकी लेखनी से प्रकट अनेक उच्चकोटि के लेखों से विभूषित यह विशेषाङ्क १०० चित्रों और १००० परिच्छेदों से युक्त होगा।

★★★ इस विशेषाङ्क को ही यह सर्व प्रथम सुअवसर प्राप्त होगा जब विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले आयुर्वेदीय अनुसन्धानों के सम्बन्ध में अहर्निश जुटे हुये विद्वानों की लेखनी से प्रकट तथ्यों को आयुर्वेद संसार के समक्ष उद्घोषित किया जा सकेगा।

धन्वन्तरि के सहस्रों पाठकों की आशा के अनुरूप विगत ३३ वर्षीय परम्परा के अनुसार धन्वन्तरि के अक्षय कोष को प्रकट करने वाले इस विशेषांक के निर्माण में धन्वन्तरि कार्यालय मुक्त हस्त से अर्थ व्यय कर रहा है। उसके विशेषांक सम्पादक, सम्पादक मण्डल के सदस्य, कम्पोजीटर, प्रैसमैन, चित्रकार और असंख्य कर्मचारी इस स्वप्न को साकार करने के लिये अहर्निश अनवरत परिश्रम कर रहे हैं। ताकि-मार्च १९५९ के अन्तिम सप्ताह में यह प्रकट होकर आपकी प्रतीक्षा की पुष्टि और ज्ञान की तृप्ति कर आपके कोमल हृदय में स्थान बना सके।

अभी अभी विशेषांक सम्पादक महोदय के कार्यालय से ज्ञात हुआ है कि लेखकगण अपने लेख भेजने के लिये बड़े उत्साह के साथ पत्र भेज रहे हैं और पूंछ-ताछ कर रहे हैं। उनसे प्रार्थना है कि वे इस अङ्क के मिलते ही एक सप्ताह के अन्दर अपने लेख आचार्य पं रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी आयुर्वेद कालेज जामनगर भेज दें। ताकि यदि सम्भव हो तो उनका उपयोग कर लिया जा सके। शेष लेख आगे के अंकों में निकल सकेंगे।

—सम्पादक।

स्वर्ण बसंत मालती नं० १

यह महौषधि स्वर्णभस्म, मुक्तापिष्टी, यशदभस्म, हिंगुल (इसके स्थान पर हम सिद्ध मकरध्वज नं० १ डालते हैं) और मक्खन आदि का संयोग है। यह शरीर के प्रत्येक अङ्ग को बल देती है और अनेक रोगों का नाश करती है। यह निरोग के लिये रसायन और रोगी के लिये फलप्रद है।

जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, मस्तिष्क की निर्बलता, मंदाग्नि आदि दूर होने के बाद की कमजोरी, पांडु रोग, अन्त्रक्षय, राजयक्ष्मा, फुफ्फुसकला-शोथ, बाल-शोष, हृदय-रोग, धातुक्षीणता और खांसी आदि में विशेष लाभदायक है। यह जठराग्नि और धात्वग्नियों की परिपाक क्रिया को सुधार कर उनकी विकृति से होने वाले सर्व रोगों को दूर करती है, शरीर को बल-वर्णयुक्त और पुष्टि करती है। मस्तिष्क में स्फूर्ति और बल पैदा करना इसका विशेष कार्य है।

व्याधि के कारण शरीर अतिक्षीण और निर्बल हो जाता है, भूख नहीं लगती और पाचक रस की उत्पत्ति न होने के कारण अजीर्ण सा बना रहता है जिससे रक्तादि धातु पुष्ट नहीं होने पाते। ऐसी अवस्था में स्वर्णवसंतमालती का सेवन करने से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर अजीर्ण को नष्ट करती है, पाचन क्रिया सुधार कर रसरक्तादि धातुओं को बल देती है, धीरे-धीरे कमजोरी दूर होने पर रोगी स्वस्थ और कांतिपूर्ण हो जाता है।

राजयक्ष्मा की प्रथम अवस्था में सूखी खांसी, रस, रक्तादि धातुओं का क्रमशः क्षीणता होने से धीरे-धीरे कमजोरी हो जाना आदि अवस्था में इसका सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। अनुपान में प्रवालभस्म चन्द्रपुटी, गुडूचीसत्व १-१ रत्ती मिलाकर आंवले के मुरब्बे के साथ दें।

पुराने रोग में इसका सेवन करने से निश्चय ही लाभ होता है। बालकों के हाथ-पैर छोटे और पेट बड़ा, केल्शियम की न्यूनता, अशक्त निर्माण और सूखा रोग में यह अच्छा फायदा पहुँचाती है।

बालक वृद्ध स्त्री सबके लिये, सभी ऋतुओं में और प्रत्येक प्रकार की प्रकृति-वाला इसे निर्भयतापूर्वक सेवन कर सकता है।

इसकी मात्रा १-१ रत्ती और चौंसठ पहरापीपल २-२ रत्ती मधु मिलाकर सुबह शाम दें या च्यवनप्राश के साथ दें। ऊपर से गाय का दूध दें।

नं० १-१ तोला का मूल्य २४) रु०, नं० २-१ तोला १४)

निर्माता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़।

मकध्वज वटी एवं सिद्ध मकरध्वज नं० १ के

मूल्य में भारी रियायत

(१५ जनवरी सन् १९५९ से १५ फरवरी १९५९ तक)

एक लम्बे समय की परीक्षा के बाद—

यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि धन्वन्तरि कार्यालय द्वारा निर्मित मकरध्वज वटी तथा सिद्ध मकरध्वज नं० १ (संस्कारित पारद द्वारा निर्मित स्वर्ण घटित षट्गुण गंधक जारित अंतर्धूम विपाचित) सर्वोत्तम एवं शीघ्र लाभकारी है। इनका वैद्य समाज में अधिक से अधिक प्रचार हो तथा इनके गुणों से वैद्य समाज जनता का हित करते हुये आयुर्वेद प्रचार कर सकें हम उनके मूल्य में निम्न रियायत कर रहे हैं। हमारा यह आग्रह है कि हमारे सभी ग्राहक इस अवसर से अधिक से अधिक लाभ उठावें। जिन्होंने हमारी मकरध्वज वटी अभी तक व्यवहार में नहीं ली है, उनसे हमारा विशेष आग्रह है कि वे कम से कम १ शीशी मंगाकर इसके अक्सीर एवं चमत्कारिक गुणों की परीक्षा अवश्य करें।

सिद्ध मकरध्वज नं० १

हमारे सभी विक्रेता आसानी से इसकी बिक्री कर सकें इसी लिये हमने १-१ माशे के दुरंगे कार्ड-बक्सों में आकर्षक पैकिंग कराये हैं। जिनमें विविध रोगों पर इसका अनुपान व सेवन-विधि भी होगी। आशा है हमारे सभी एजेण्ट इस अवसर से पूरा लाभ उठायेंगे।

१-१ माशे के १२ पैक मूल्य ३६॥) रियायत में १ पैक
१-१ माशे के १८ ,, ,, ५४॥।) ,, २ ,,
१-१ माशे के २४ ,, ,, ७३) ,, ४ ,,

वैद्य एवं चिकित्सक समुदाय भी इस अवसर से लाभ उठा सकें, इसलिए हम अधिक वजन के पैकिंग पर भी निम्न रियायत कर रहे हैं।

वजन	पूरा मूल्य	रियायती मूल्य
६ माशे	१८)	१७)
१ तोला	३६)	३२॥)
२ तोला	७२)	६२)
५ तोला	१८०)	१४०)

मकरध्वज वटी

तादाद	पूरा मूल्य	रियायती मूल्य
१ शीशी (४१ गोली वाली)	२॥=)	२।)
३ शीशी ,,	५॥।=)	४॥)
६ शीशी ,,	११॥।)	१०)
१२ शीशी ,,	२३॥)	१९)
२४ शीशी ,,	४७)	३७)
५०० गोलियां	२०)	१८॥)
१००० गोलियां	४०)	३६)
२००० गोलियां	८०)	७०)

नोट-१—उक्त तारीखों से पहिले या बाद में इस रियायती मूल्य पर सप्लाई करने का आग्रह नहीं करें। हम उनकी आज्ञा पालन करने में असमर्थ रहेंगे।

२—ये मूल्य थोक भाव पर भी रियायत करते हुये निश्चित किये गये हैं, अतएव इन भावों पर कमीशन नहीं दिया जा सकेगा।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र मासिक पत्र

सम्पादक:
आयुर्वेदोपाध्याय देवीशरण गर्ग
ज्वाला प्रसाद अग्रवाल B.Sc.

दिसम्बर १९५७ भाग ३१ अङ्क १२

सम्पादक—
वैद्योपाध्याय देवीशरण गर्ग
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी० एस-सी०

वार्षिक मूल्य ५ रु० ५० पैसा इस अङ्क का मूल्य--५० पैसा

इस अङ्क में पढ़िये

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़।
प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़।

याद रखिये

● इस वर्ष का यह अन्तिम अङ्क है। आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य मनियार्डर से शीघ्र भेजने की कृपा करें।

● गुप्तसिद्धप्रयोगांक का राज संस्करण लेना चाहें तो ५॥) के स्थान पर ६॥) शीघ्र ही मनियार्डर से भेज दीजियेगा।

● औषधों के भावों में वृद्धि की गई है जिसकी विस्तृत सूचना इसी अङ्क के अन्त में प्रकाशित है। कृपया नवीन भावों की सूची देखकर ही आर्डर दीजियेगा।

● सिद्ध मकरध्वज नं. १. मकरध्वज वटी शीत ऋतु में अनुपम रसायन, शक्ति देने वाली महौषधि १ से ३१ जनवरी तक रियायती मूल्य पर मिल रही है, आप भी इस अवसर से लाभ उठाइये।

● च्यवनप्राश अवलेह नवीन हरे आंवलों, अष्टवर्ग, असली वंसलोचन से निर्मित अत्युत्तम निर्माण किया जा रहा है तथा ३१ जनवरी तक रियायत भी दी जा रही है। आप भी मंगावें।

—सम्पादक।

धन्वन्तरि के प्रेमी ग्राहकों की सेवा में

निवेदन

१—इस वर्ष का यह बारहवां (अन्तिम) अङ्क है। इसके पश्चात् ३१ वें वर्ष का प्रथम एवं द्वितीय अङ्क—प्रसिद्ध प्रयोगांक चतुर्थ भाग—नामक विशेषांक प्रकाशित होगा यह जनवरी फरवरी १६५८ का अङ्क होगा तथा मार्च के अन्तिम सप्ताह में भेजा जायगा। इस विशेषांक की छपाई प्रारम्भ हो गई है।

२—इस विशेषांक की उपयोगिता एवं विशालता के विषय में अधिक लिखना नहीं है, केवल इतना ही हम कहना चाहते हैं कि यह विशेषांक चिकित्सकों तथा पठित आयुर्वेद प्रेमी जनता के लिये यह अलभ्य साहित्य होगा। चिकित्सकों की सफलता में पूर्ण सहायक होगा तथा सर्वसाधारण को यह आड़े समय में हजारों रुपया का कार्य सिद्ध करने वाला होगा। भारत के प्रसिद्ध अनुभवी चिकित्सकों के १००० से अधिक सफल प्रयोगों का यह विशाल संग्रह सभी ग्राहकों के लिये अवश्य संग्रहणीय होगा।

३—इस विशेषांक में ६०० पृष्ठ होंगे तथा ३०० चिकित्सकों के लगभग १००० प्रयोग, लेखकों का संक्षिप्त परिचय तथा चित्र होंगे। यह सुन्दर, सुरुचिपूर्ण तथा उपयोगी साहित्य निश्चय ही आपके मन को मोहने वाला होगा।

४—इसकी उपयोगिता को समझते हुये, आगामी वर्ष के लिये नवीन ग्राहक बड़ी संख्या में बन रहे हैं। अतएव सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे अपना वार्षिक मूल्य तुरन्त भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित कर लें।

रुपया भेजते समय ध्यान रखें—

अ—ग्राहक नम्बर अवश्य लिख दें।

आ—नाम, पता पूरा व स्पष्ट अक्षरों में मनिआर्डर के कूपन पर अवश्य लिखें।

इ—जो नये ग्राहक बन रहे हों वे कूपन में "नया ग्राहक" शब्द अवश्य लिखें।

ई—मनीआर्डर यथा सम्भव शीघ्र भेजदें।

५—इस अङ्क के साथ मनीआर्डर फार्म भेजा गया है। जो ग्राहक राजसंस्करण मंगाना चाहें वे ६॥) मनीआर्डर से भेजें तथा जो सामान्य संस्करण लेना चाहें वे शीघ्र ५॥) ही भेजें। मनीआर्डर पर रुपये स्वयं लिख दीजियेगा।

६—जहां तक सम्भव हो नये ग्राहक बना-बना कर उनके रुपये भिजवाने का प्रयत्न शीघ्र कीजियेगा। धन्वन्तरि का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही अधिक उपयोगी साहित्य हम धन्वन्तरि द्वारा आपको भेंट करने में समर्थ हो सकेंगे। इसलिये धन्वन्तरि के ग्राहक बनाना आपका कर्तव्य है।

७—जिन पुराने ग्राहकों को किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो तो वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना अवश्य देदें। जिससे वी. पी. भेज कर व्यर्थ डाक खर्च की हानि न उठानी पड़े। आपके तीन पैसे खर्च होंगे और हमारे ||≈) की हानि बच जायगी। आशा है धन्वन्तरि से विदा लेने वाले सज्जन चलते चलाते ||≈) की हानि पहुंचाकर धन्वन्तरि की कमर में ठोकर मारने जैसा अनुचित व्यवहार न करेंगे और यदि ग्राहक नहीं रहना है तो तुरन्त सूचित कर देंगे।

८—इस वर्ष सभी अङ्क बड़ी सावधानी से ग्राहकों भेजे गये हैं फिर भी कोई साधारण अङ्क न मिला हो तो सूचित कर दें जिससे कि वह अङ्क भेजकर आपकी फायल पूरी कर दी जाय। चौथा व छटा अङ्क समाप्त होगए हैं।

९—आगामी वर्ष विशेषांक के बाद के सभी अङ्क समय पर ही प्रकाशित किये जायगे, इसमें किसी प्रकार शंका न करें, इस वर्ष की भांति आगे भी जिस माह का अङ्क होगा वह उसी माह में ग्राहकों को अवश्य मिल जाया करेगा।

गत वर्ष की भांति गुप्तसिद्ध प्रयोगांक का

राज-संस्करण

ग्लेज कागज पर भी छप रहा है।

गत वर्ष माधव-निदानांक राजसंस्करण को ग्राहकों ने बहुत पसन्द किया गया। न्यूजप्रिंट के स्थान पर ग्लेज कागज तो लगाया ही गया था। साथ ही—

१—ऊपर टाइटिल के स्थान पर पट्ठा लगाया गया था, पट्ठे के ऊपर सुन्दर रङ्ग वाला टाइटिल लगाया गया था।

२—सामान्य अङ्क में पुश्ता पर जहां कागज लगाया जाता है, वहां कपड़ा लगाया गया था।

इस प्रकार राजसंस्करण की जिल्द भी सुन्दर मजबूत बन गई थी। इसीलिये जिन ग्राहकों ने राजसंस्करण मंगाया था उनको बहुत प्रसन्नता रही तथा उनका पुन: आग्रह है कि आगामी विशेषांक भी उसी प्रकार ग्लेज कागज पर सुन्दर जिल्द में तैयार करके भेजा जाय। माधव निदानांक के राजसंस्करण की सभी प्रति पहिले ही बुक हो गईं और सैकड़ों ही ग्राहकों को नहीं भेज सके। अतएव इस वर्ष हम गुप्तसिद्ध प्रयोगांक की ४००० प्रति ग्लेज कागज पर छाप रहे हैं। जो ग्राहक ग्लेज कागज का (राजसंस्करण) विशेषांक प्राप्त करना चाहें उनको वार्षिक मूल्य ५॥) के स्थान पर ६॥) भेजना चाहिये। राजसंस्करण प्राप्त करने के नियम निम्न प्रकार हैं—

१—राजसंस्करण वी. पी. से नहीं भेजा जायगा। जो ग्राहक राजसंस्करण प्राप्त करना चाहें वे तुरन्त ६॥) मनियार्डर से भेज दें।

२—राजसंस्करण की केवल ४००० प्रति छापी जा रही हैं अतएव प्रथम ४००० मनियार्डर जिनके प्राप्त होंगे उनको ही यह संस्करण दिया जायगा। ४००० मनियार्डर प्राप्त होने के बाद राजसंस्करण के ग्राहक नहीं बनाये जा सकेंगे।

यदि आप उत्तम ग्लेज कागज पर छापा हुआ विशेषांक प्राप्त करना चाहते हैं तो तुरन्त ६॥) मनियार्डर से भेज दीजियेगा। राजसंस्करण वी. पी. द्वारा किसी भी दशा में नहीं भेजा जायगा अतएव वी. पी. से भेजने के लिये न लिखें।

★ च्यवनप्राश अवलेह

★ मकरध्वज वटी

★ सिद्ध मकरध्वज नं० १

के

भावों में भारी रियायत

—नियम—

- ये रियायत ता० १ जनवरी से ३१ जनवरी १९५८ तक मिलेगी। ३१ जनवरी के बाद रियायत के लिए लिखना निरर्थक रहेगा।
- इस अङ्क में रियायती आर्डर फार्म (जवाबी कार्ड) भेजा है उस पर ही आर्डर देना चाहिये। अथवा आर्डर पत्र पर ऊपर बड़े अक्षरों में "रियायती आर्डर" शब्द स्पष्ट लिख दीजियेगा।
- इन तीन औषधियों के साथ अन्य औषधियां भी मंगाई जा सकती हैं।
- च्यवनप्राश अवलेह रेल द्वारा ही मंगाना चाहिए। पोस्ट से व्यय बहुत अधिक होता है।

व्यवस्थापक

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

हरे आंवलों से बना

एक माह

केवल एक माह

१ जनवरी
से
३१ जनवरी
तक रियायत

शीघ्रता करें

विवरण इसके
अगले पृष्ठ पर देखें।

च्यवनप्राशअवलेह
[अष्टवर्ग युक्त]

च्यवनप्राश कास, श्वास, स्वरभङ्ग, रक्तपित्त, क्षय रोग, उरःक्षत, अम्लपित्त, संग्रहणी, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों की एक चमत्कारिक औषधि है, यह सौम्य औषधि होने पर भी अति शक्तिशाली है। इसके सेवन से ही वृद्ध च्यवन-ऋषि तरुणता को प्राप्त हुये थे। महर्षि अश्विनीकुमार ने महात्मा च्यवन के लिये ही प्रथम इसकी रचना की थी, इसी कारण इसका नाम च्यवनप्राश हुआ। यह रसायन है इसके सेवन से अपूर्व बल और कांति आती है, यह भारत के सब ही महोदय जानते हैं। ग्रीष्म ऋतु में स्वादिष्ट और ठण्डी खुराक है जिन लोगों को गरमी के दिनों में नाक से या मुख से या दूसरे रास्ते से खून (रक्त) जाता है उनके लिए अमूल्य महौषधि है। इसके साथ स्वर्णपर्पटी का सेवन करने और पथ्य में केवल दुग्धपान करने से संग्रहणी, अम्लपित्त नाश को प्राप्त होते हैं। हमने देखा है कि कमजोर रोगी भी इसका सेवन कर ५-७ सेर तक दुग्धपान कर लेता है। स्त्रियों का बन्ध्यादोष इसके निरन्तर सेवन से नष्ट होता देखा गया है। मस्तिक-शक्ति बढ़ाने को अद्वितीय पदार्थ है। क्षय (तपैदिक) जैसे भयङ्कर रोग में धातुओं का क्षय रोक कर बल यही देता है। जिन रोगियों के अस्थि मात्र शेष रह गये थे वे इसके सेवन से हृष्टपुष्ट होते देखे गये हैं।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

असली व अत्युत्तम च्यवनप्राश अवलेह ताजे आंवलों

अष्टवर्ग-युक्त अष्टवर्ग-युक्त से बना

इसी समय मिल सकता है। हमारे सभी ग्राहकों, एजेन्टों एवं वैद्यों को इसी समय अधिक से अधिक तादाद में च्यवनप्राश मंगाकर रख लेना चाहिए। इस समय ताजे आंमले व अत्युत्तम अष्टवर्ग से बना हुआ च्यवनप्राश बहुत बड़ी तादाद में तैयार किया जा रहा है।

--रियायत निम्न प्रकार होगी--

[तारीख १ जनवरी से ३१ जनवरी तक]

निम्न सुविधा दी जा रही है। आशा है कि इस सुविधा से हमारे सभी ग्राहक लाभ उठावेंगे।

१—एक पाव की एक शीशी का मूल्य १=) होगा।
आध सेर की एक शीशी का मूल्य २।) होगा।

२—१२ शीशी एक साथ मंगाने पर १ शीशी बिना मूल्य दी जायगी।

३—तीन दर्जन (३६) शीशियां एक साथ मंगाने पर ४ शीशी बिना मूल्य दी जांयगी।

४—६ दर्जन (७२) शीशियां एक साथ मंगाने पर ६ शीशियां बिना मूल्य दी जांयगी।

५—१२ दर्जन (१४४) शीशियां एक साथ मंगाने पर २० शीशियां बिना मूल्य दी जांयगी।

नियम

१—च्यवनप्राश अवलेह रेलवे पार्सल से ही भेजा जा सकेगा। अतएव पास का रेलवे स्टेशन पत्र में अवश्य लिखना चाहिए।

२—तीन दर्जन या अधिक शीशियां एक साथ मंगाने पर सवारी गाड़ी का आधा किराया कार्यालय देगा तथा आधा किराया ग्राहक को देना होगा। पैकिङ्ग आदि व्यय नहीं लगाया जायगा।

३—तीन दर्जन से कम मंगाने पर सभी व्यय पैकिंग, पोस्टेज, रेल-भाड़ा आदि ग्राहक को देना होगा।

४—यह रियायत केवल एक माह (१ जनवरी से ३१ जनवरी तक) के लिये है, बाद में नहीं दे सकेंगे।

५—एक ग्रौस एक साथ मंगाने वाले को ५०० विज्ञापन वितरणार्थ तथा कपड़े का एक सुन्दर बोर्ड भी भेजा जायगा।

--इस अवसर पर—

एक साथ मंगाने वालों के लिये खास भाव नीचे दिये जाते हैं। जो वैद्य हैं और अधिक तादाद में मंगा कर रखना चाहते है वे इन भावों पर मंगा सकते हैं।

५ सेर च्यवनप्राश एक डिब्बे में	१८)
१० सेर च्यवनप्राश २ डिब्बों में	३५॥)
२० सेर च्यवनप्राश १ टीन में	७०)
१ मन च्यवनप्राश २ टीन में	१३५)

नोट—१--२० सेर मंगाने पर सवारी गाड़ी का आधा रेल भाड़ा कार्यालय देगा। कम मंगाने पर ग्राहक को पूरा देना होगा।

२—५ सेर च्यवनप्राश एक कनस्तरी में सुरक्षित पैकिङ्ग में पोस्ट से भेजा जा सकता है। पैकिङ्ग पोस्ट व्यय ६॥) पृथक् लग जांयगे अर्थात् २४॥) में ५ सेर च्यवनप्राश आपको घर बैठे प्राप्त हो जावगा। २४॥) मनियार्डर से भेजकर ५ सेर च्यवनप्राश प्राप्त करें।

स्वर्ण बसंत मालती नं० १

यह महौषधि स्वर्णभस्म, मुक्तापिष्टी, यशदभस्म, हिंगुल, (इसके स्थान पर हम सि. मकरध्वज नं. १ डालते हैं) और मक्खन आदि का संयोग है। यह शरीर के प्रत्येक अङ्ग को बल देती है और अनेक रोगों का नाश करती है। यह निरोग के लिये रसायन और रोगी के लिये फलप्रद है।

जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, मस्तिष्क की निर्बलता, मंदाग्नि आदि दूर होने के बाद की कमजोरी, पांडु रोग, अन्त्रक्षय, राजयक्ष्मा, फुफ्फुसकला-शोथ, बाल-शोष हृदय-रोग, धातु क्षीणता और खांसी आदि में विशेष लाभदायक है। यह जठराग्नि और धात्वग्नियों की परिपाक क्रिया को सुधार कर उनकी विकृति से होने वाले सर्व रोगों को दूर करती है, और शरीर को बल-वर्णयुक्त और पुष्टि करती है। मस्तिष्क में स्फूर्ति और बल पैदा करना इसका विशेष कार्य है।

व्याधि के कारण शरीर अतिक्षीण और निर्बल हो जाता है, भूख नहीं लगती और पाचक रस की उत्पत्ति न होने के कारण अजीर्ण सा बना रहता है जिससे रक्तादि धातु पुष्ट नहीं होने पाते। ऐसी अवस्था में स्वर्णबसंतमालती का सेवन करने से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर अजीर्ण को नष्ट करती है, पाचनक्रिया सुधार कर रसरक्तादि धातुओं को बल देती है, धीरे-धीरे कमजोरी दूर होने पर रोगी स्वस्थ और कांतिपूर्ण हो जाता है।

राजयक्ष्मा की प्रथम अवस्था में सूखी खांसी, रस, रक्तादि धातुओं का क्रमशः क्षीणता होने से धीरे-धीरे कमजोरी हो जाना आदि अवस्था में इसका सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। अनुपान में प्रवालभस्म चंद्रपुटी, गुडूचीसत्व १-१ रत्ती मिलाकर आंवले के मुरब्बे के साथ दें।

पुराने रोग से इसका सेवन करने से निश्चय ही लाभ होता है। बालकों के हाथ-पैर छोटे और पेट बड़ा, केल्शियम की न्यूनता, अशक्त निर्माण और सूखा रोग में यह अच्छा फायदा पहुँचाती है।

बालक वृद्ध स्त्री सबके लिये, सभी ऋतुओं में और प्रत्येक प्रकार की प्रकृति-वाला इसे निर्भयतापूर्वक सेवन कर सकता है।

इसकी मात्रा १-१ रत्ती और चौंसठ पहरापीपल २-२ रत्ती मधु मिलाकर सुबह शाम दें या च्यवनप्रास के साथ दें। ऊपर से गाय का दूध दें।

नं० १—१ तोला का मूल्य ६४) रु०, नं० २ (शास्त्रोक्त विधि से निर्मित)—१ तोला १४)

निर्माता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)
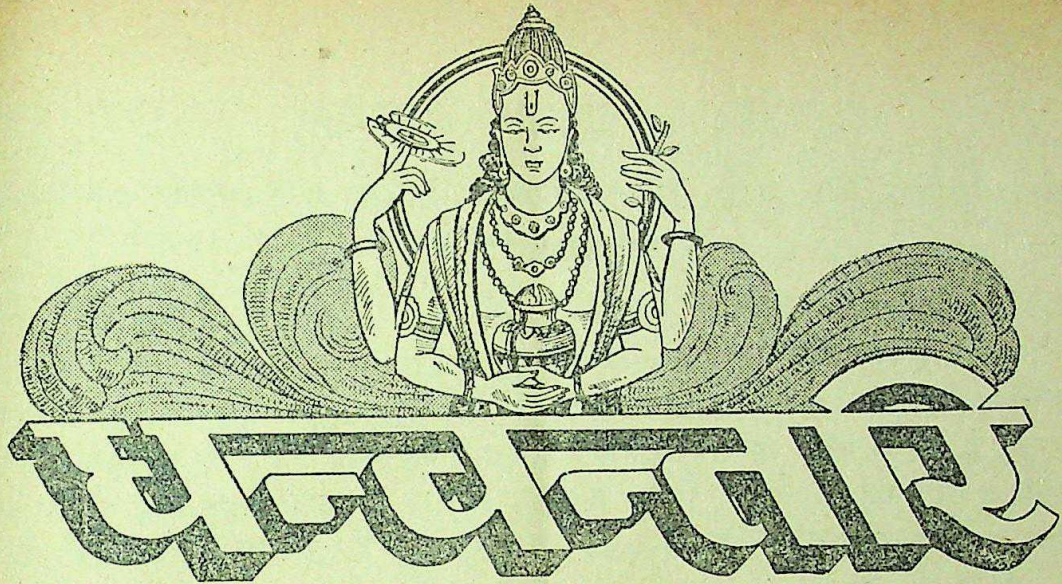
हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० अ० १-४०

भाग ३१ अङ्क १२	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र	दिसम्बर १९५७

"विज्ञान"

खोज सका कब कौन तुम्हारा नाम धरा यह किसने !
नित्य नयी धृति जागृति लेकर रूप दिया यह किसने !!
धन्य चेतना उस चेतन की-
हरे वेदना जन-जीवन की,
विश्व प्रपंची, "पंचशील" का वेदना बखाना किसने !
योग भोग का सुख साधन क्या
चल सकता कुछ प्राण बिना क्या
'आयुर्वेद' अमर कर रखने नाम धरा यह किसने !
खोज सहचरी बनी तुम्हारा,
इति का फिर "अथ" कर दो सारा,
कटे हुये "गणपति" के शिर को जोड़ दिया था किसने !
तोड़-जोड़ में जोड़ सही है,
भले राह में मोड़ रही है,
"च्यवन" आज भी बहुत पड़े हैं, "प्राश" परेखा किसने !
खोज हुई जो खोज पड़ी यह,
रोज खोज की युक्ति पथिक रह-
हम अवश्य पालेंगे उनको फूल फुलाया जिसने !!

—श्री भवनाथ झा !

आयुर्वेद की वर्तमान समस्यायें

लेखक—श्री दिवाकर मिश्र शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य, साहित्यरत्न, साहेबपुरकमाल (मुंगेर)

अपने स्वर्णिम अतीत के स्वप्नजाल में वर्तमान की त्रुटियों से मुंह मोड़कर उलझे रहना निश्चय ही भविष्य को चौपट करना है। अतीत वर्तमान की प्रेरणा हो सकता है, सहारा नहीं। अतएव भविष्य को सुन्दर और सुखद बनाने के लिये वर्तमान के प्रति सचेष्टता और क्रियाशीलता आवश्यक है।

यह सच है कि आयुर्वेद अपनी महिमा और गरिमा में कभी विश्वविश्रुत था, यह युगों से कोटि-कोटि पीड़ित प्राणियों का परित्राण करता आ रहा है, राज्याश्रय से वञ्चित और साधन हीन वैद्यों की जीविका का माध्यम रहने के बावजूद, अपनी ठोस वैज्ञानिकता के बल पर आज भी जीवित है। किन्तु जीते रहना और बात है और जीवित रह कर आगे बढ़ना और बात। मेरे विचार में आयुर्वेद आज जीवित रहकर भी मृत है, क्योंकि गति हीनता मृत्यु का ही अपर पर्याय है। आयुर्वेद की कुछ प्रमुख अवरोधक समस्याएं निम्नांकित हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है।

आयुर्वेद की रूढि ग्रस्तता

सहस्रों वर्ष पूर्व, हमारे ऋषि-महर्षियों ने आयुर्वेद के जिस ध्येय, टेक और लीक का निर्धारण किया था, आज भी इसी ध्येय, टेक और लीक के सहारे हम चल रहे हैं और आयुर्वेद को चलाते आ रहे हैं। सहस्रों वर्षों के व्यवधान और परिवर्तित परिस्थिति का खयाल किये बिना, प्राङ्निरूपित द्रव्यों के गुण दोषों और व्याधि लक्षणों के आधार पर चली चलाई आ रही आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति यदि आज का वैज्ञानिक-युग शंका और अविश्वास की दृष्टि से देखे तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। 'च्यवनप्राश' के द्वारा, बूढ़े च्यवन ऋषि के जवान होने की बात का ऐतिहासिक महत्व हो सकता है, वैज्ञानिक नहीं। वैज्ञानिक मान्यता के लिए यह आवश्यक है कि उसके गुण-दोषों की पुनः पूरी छान-बीन हो और उसके प्रयोग से यह सिद्ध किया जाय कि सचमुच उसमें वयः स्थापना की क्षमता विद्यमान है। द्रव्यों के गुण धर्म देश-काल और परिस्थिति सापेक्ष होते हैं और तदनुसार ही उनमें ह्रास और वृद्धि भी होती रहती है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि हजारों वर्ष पूर्व निर्धारित द्रव्यगत गुण दोषों का मापदण्ड आज भी यथास्थान और यथावस्थित है। हजारों वर्ष पूर्व के मनुष्य की जीवनी शक्ति आज के मनुष्य की जीवनीशक्ति का मापदण्ड बन सकती है? यदि नहीं तो द्रव्यों के पुनः तात्विक परीक्षण के बिना, संहिता और आर्षग्रन्थों के औषधगत प्रभाव को यथापूर्व मान लेने का औचित्य ही कहां रह जाता है? मनुष्यगत जीवनी शक्ति के अनुपात से ही द्रव्यगत गुण धर्मों में भी ह्रास वृद्धि की स्थापना, प्रामाणिक से अधिक काल्पनिक ही मानी जायगी। सचमुच यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसे बरगलाया नहीं जा सकता। इसका उत्तर आज प्रत्येक आयुर्वेदज्ञ को देना है और जिसके सम्यक समाधान के बिना, आज का युग उसके प्रति विश्वस्त नहीं हो सकता।

उपर्युक्त मेरे विचार आयुर्वेद के प्रति अनास्था और अविश्वास से अभिभूत नहीं हैं और न मेरा यही आशय है कि आयुर्वेदीय औषधियां निर्वीर्य और प्रभावहीन होती हैं। आज भी भयङ्कर से भयङ्कर रोगों में आयुर्वेदीय औषधियों का लोहा अन्य चिकित्सा पद्धतियों के चिकित्सक मानते हैं। आज भी औषधगत द्रव्यों के गुण और प्रभाव बने हुये हैं। मेरा विरोध आंख मूंदकर 'गतानुगतिक'

होने से है। आज आवश्यकता इस बात की है कि नये सिरे से पुनः उनकी छानबीन हो, द्रव्यगत गुणों के परिमाण और परिणाम निर्धारित किये जायें और उनकी रासायनिक प्रक्रिया का अध्ययन किया जाय। आयुर्वेद को यदि आज के युग में प्रगतिशील बनाना है तो ऐसा ही करना होगा। शास्त्रीय या ऋषि-प्रणीत होने के कारण न तो उन्हें सर्वथा ग्राह्य समझा जाय और न त्याज्य। इसके लिए आवश्यक है कि आयुर्वेदिक ग्रन्थों और औषधियों के लिये पृथक्-पृथक् शोध-संस्थान प्रतिष्ठापित किये जायें और उनके विश्वस्त तथ्य समय-समय पर प्रकाशित किये जायें। इस कार्य में राजकीय और जनसेवी दोनों ही प्रकार की आयुर्वेदीय संस्थाओं का समर्थ सहयोग अपेक्षित है। इतने बड़े देश में सरकार की ओर से दो-एक ऐसी संस्थायें खोल देने या वर्ष दो वर्षों में एकाध औषधों की छानबीन कर लेने भर से संतोष कर बैठे रहना निश्चय ही आत्मवंचना होगी। ऐसी स्थिति में सौ वर्षों में भी हम आयुर्वेद को समुन्नत और सर्वांगपूर्ण बनाने में समर्थ नहीं हो सकते।

आयुर्वेद की दूसरी किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है—शैक्षणिक। यों तो भारत के विभिन्न राज्यों में आयुर्वेद के भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रम हैं। किन्तु सुविधा के लिये प्रधानतः हम इनके दो भेद मान लेते हैं—शुद्ध आयुर्वेद का पाठ्यक्रम और मिश्रित आयुर्वेद का पाठ्यक्रम। शुद्ध आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, विशुद्ध आयुर्वेदिक ग्रंथ पढ़ाये जाते हैं और तदनुसार ही चिकित्सा की जानकारी प्राप्त होती है। मिश्रित आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में आयुर्वेद के साथ ऐलोपैथी विज्ञान की भी साधारण जानकारी करा दी जाती है। एक ही चिकित्सा पद्धति के दो रूप और दो प्रकार के स्नातक निश्चय ही आयुर्वेद के विकास में रोड़े का काम करते हैं। दोनों ही प्रकार के स्नातक एक दूसरे से अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने में ही अपनी बौद्धिक चेतना का सर्वनाश करते रहते हैं। जहां तक सरकार का प्रश्न है, वह 'शुद्ध' की अपेक्षा 'अशुद्ध' (मिश्रित) पंक्ति को ही अधिक प्रश्रय देना चाहती है। अब तो केन्द्रीय सरकार के सुझाव के अनुसार राज्य सरकारों ने आयुर्वेदिक कालेजों में मिश्रित पाठ्यक्रम की तो व्यवस्था कर ही दी है, साथ ही कालेजों में प्रवेश की योग्यता 'आई० एस-सी०' भी घोषित कर दी है।

आयुर्वेद के भाल पर सचमुच इसे मैं राहु-केतु का उदय मानता हूँ। यह एक ऐसा मीठा जहर है, जिसके पीने में तो आनन्द का अनुभव होगा किन्तु जो शनैः शनैः आयुर्वेद और वैद्य समाज का सर्वनाश करके ही दम लेगा। आई० एस-सी० की योग्यता का आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन में और चिकित्सा क्षेत्र में कहां तक योगदान होगा और उसकी क्या उपयोगिता—उपादेयता संभव है, इसे तो वे ही जानेंगे, जो इसके कर्णधार हैं और जिनके सिवा औरों को इसकी जानकारी है ही नहीं। किन्तु, व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करने पर भी स्पष्ट है कि 'न राधा को नौ मन घी होगा, न राधा नाचेगी'. उक्ति आयुर्वेद में चरितार्थ होने जा रही है। आरम्भ में क्षणिक आकर्षण में पड़कर कुछेक कालेजों में कुछ छात्र प्रविष्ट भी हो जायें किन्तु कालान्तर में वे ही छात्र अपने पूर्वार्जित ज्ञान और संस्कार के अभ्यस्त होने और आयुर्वेद के क्षेत्र में उक्त योग्यता की उपयोगिता न देख कर, आयुर्वेद से ही विरत होने लगेंगे। आयुर्वेद का यह 'घनघोर वैज्ञानिक रूप' उससे भी अधिक खतरनाक है जो रूढ़ि ग्रस्त है, जिसे आज अवैज्ञानिक कहा जाता है और जिसकी आलोचना इस लेख के प्रारम्भ में की जा चुकी है।

आयुर्वेद के मिश्रित पाठ्यक्रम का दूसरा पहलू भी इससे कम खतरनाक नहीं है। ऐसे स्नातक न अच्छे वैद्य हो सकते हैं, न अच्छे डाक्टर ही। 'आधा तीतर आधा बटेर' की स्थिति हो जाती है। मेरे इस कथन के अपवाद भी हो सकते हैं और

हैं भी। किन्तु, साधारणतः ऐसी ही संभावना रहती है। सैकड़ों वर्षों की गुलामी का संस्कार तुरन्त मिटने का नहीं। अबोध जनता का आकर्षण आयुर्वेद की अपेक्षा एलोपैथी की ओर होना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में स्वभावतः तथा कथित स्नातक न केवल वेष भूषा से, अपितु चिकित्सा कार्य से भी अपने को वैद्य से अधिक डाक्टर सिद्ध करना चाहेंगे। इस प्रकार आयुर्वेद के प्रति आस्था का ह्रास और उसके नाम पर छिपे-छिपे ही सही, एलोपैथी की औषधों के अवाच्छनीय प्रयोग की मात्रा में वृद्धि होती जायगी। वैसी स्थिति में आयुर्वेद का भविष्य क्या होगा, यह स्वयं विचारणीय है।

रूढ़ि ग्रस्तता और वर्तमान वैज्ञानिक रूप आयुर्वेद के लिये दोनों घातक हैं। आयुर्वेद का समुचित विकास न तो मात्र चरक-सुश्रुत की संहिताओं के साहित्यिक ज्ञान से ही संभव है और न चन्द एलोपैथी औषधों के प्रच्छन्न सम्मिश्रण के बाद उसको वैज्ञानिकता का आवरण प्रदानकर देने से। हमें आयुर्वेद के प्रति पूर्ण आस्थावान रह कर, उसकी त्रुटियों को दूर करने का प्रयास करना होगा। आयुर्वेदीय औषधियों की छानबीन हो, आयुर्वेदीय पद्धति से, आयुर्वेद में नवीनता लायी जाय, आयुर्वेद की मौलिकता को अक्षुण्ण रख कर। आयुर्वेदीय चिकित्सा क्षेत्र में बाह्य प्रयोगों के सिवा, एलोपैथी औषधियां अन्तः प्रयोग के लिए सर्वथा वर्जित मानी जायें। रोग विशेष के लिए उपयुक्त औषधियों के अभाव में, एलोपैथी औषधियों का प्रयोग उसी स्थित में व्यवहार्य हो, जब कि आयुर्वेद के मूलभूत त्रिदोष सिद्धान्त के आधार पर उनके गुण-दोषों की समीक्षा होजाय और उस कसौटी पर वे खरी उतरें। मैं मानता हूं, यह कार्य आसान नहीं है और इसके लिये राजकीय साहाय्य के साथ ही देश भर के वैद्यों का सहयोग अपेक्षित है। किन्तु कठिनाई से कतराकर हम कितने दिन रह सकते हैं।

आयुर्वेद के लिए न तो आज उतनी प्राचीनता ही स्पृहणीय होनी चाहिए कि आज का युग अंगीकार ही न करे और न उतनी आधुनिकता ही कि आयुर्वेद के नाम पर हम एलोपैथी का ही विकास करने में लग जायें। अतः वर्तमान शैक्षणिक दोषों को दृष्टि में रखते हुए, आयर्वेद के विकास के हेतु वैद्य समाज और सरकार का प्रयत्न होना चाहिए।

राजकीय उपेक्षा

आयुर्वेद की तीसरी समस्या है—राजकीय उपेक्षा। आज के युग में जो स्थान ब्राह्मणों का है, वही आयुर्वेद का भी। लोक लज्जा और कुलागत संस्कार के वशीभूत लोगों के द्वारा अनिच्छापूर्वक आज भी परम्परा या पूजित होने के कारण जिस प्रकार ब्राह्मण दया और दान के पात्र समझे जाते हैं, ठीक उसी प्रकार लोक लज्जा का ख्याल कर, प्राचीन चिकित्सा पद्धति के नाम पर हमारी सरकार आयुर्वेद के लिये समय-समय पर कुछ रुपये खर्च कर अपनी उदारता जतला दिया करती है। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में इतने बड़े देश में आयुर्वेद के सर्वांगीण विकास के नाम पर व्यय की जो राशि निर्धारित की गई है वह देश के किसी एक राज्य के एक एलोपैथी क्षेत्र के लिए निश्चित एक वर्षीय व्यय राशि से भी कम है। और उस पर तुर्रा यह है कि सारे देश में हल्ला है कि आयुर्वेद चरम चोटी पर पहुँचने जा रहा है। वैद्य समाज तो संतोषी जीव ठहरा, उसके लिए तो मानो अलभ्य लाभ ही होने जारहा हो, मगर सरकार भी काफी खुश है। क्यों न हो, इतने कम खर्च में सारे देश में आयुर्वेद के विकास के नाम पर इतना बड़ा श्रेय अर्जित करना साधारण बात नहीं है। जनता और वैद्य समाज के लिए इससे बड़ा भयानक भ्रम और हो ही क्या सकता है। राजकीय और जिला बोर्डों के औषधालयों में दवा के नाम इतनी कम रकम रखी जाती है, इतने नगण्य कर्मचारी (कहीं तो एक वैद्य भर ही होते हैं) रखे जाते हैं और वैद्यों का वेतनमान इतना लज्जा जनक होता है कि स्वतः जनता की अभिरुचि विमुख होजाय। ऐसी स्थति में आयुर्वेद के विरोधियों को निर्लज्ज निर्घोष करने का सुअवसर

प्राप्त होता है कि जनता आयुर्वेद चिकित्सालय चाहती ही नहीं। आयुर्वेद और एलोपैथी उच्चावच के हेतु तुलनात्मक विवेचन के समय, समान स्थिति समान सुविधा और समान आर्थिक व्यवस्था का ध्यान किया जाना चाहिए। अन्यथा लाख-लाख रुपयों के वार्षिक व्यय पर चल रहे एलोपैथी चिकित्सालय, महज दो चार हजार के वार्षिक व्यय पर चलने वाले आयुर्वेदिक औषधालय से, श्रेष्ठ करार दिये जाते हैं तो उसमें आश्चर्य ही क्या है।

सरकार यदि आयुर्वेद का समुचित विकास करना चाहती है तो आयुर्वेद के प्रति इस उपेक्षा नीति का सर्वथा त्याग कर खुले हृदय से आयुर्वेद को प्रचुर मात्रा में आर्थिक अनुदान दे। आयुर्वेद के लिये प्रत्येक राज्य में शीघ्र निर्देशालय की स्थापना करे, आयुर्वेदिक कालिजों और औषधालयों के स्तर को उन्नत बनायें और वैद्य को सम्मानित वेतन स्तर प्रदान करे। अन्यथा आयुर्वेद के प्रति आकर्षण के अभाव में, यदि उस ओर से लोगों की अभिरुचि विमुख होती गई तो फिर उसके नाम पर जो भी कुछ खर्च होने जा रहा है, वह व्यर्थ ही होगा।

इस प्रकार अतीत के उत्कर्ष के व्यामोह, रूढ़िग्रस्तता, अस्वाभाविक वैज्ञानिकता और राजकीय उपेक्षा के जटिल जाल से जकड़े आयुर्वेद में व्याप्त गति-हीनता यदि बनी रही तो उद्धार के नाम पर इसका संहार अवश्यम्भावी है। अतएव यदि हम चाहते हैं कि इसका वास्तविक विकास हो तो जनता, वैद्य समाज और सरकार को खुलकर इसकी उन्नति की दिशा में हाथ बंटाना चाहिये।

अनोखी चिकित्सा प्रणाली

लेखक--आचार्य सर्वे

आज के इस वैज्ञानिक-युग में भी जब कि भौतिकवादी दृष्टिकोण का प्राधान्य है, चिकित्सा विशेषज्ञों ने मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार किया है कि शारीरिक रोगों के मूल में कोई न कोई मानसिक कारण अवश्य रहता है। बात सीधी है; मन की असन्तुलित वा विकृत इच्छाओं के कारण ही अनेक प्रकार के अनियमित आहार-विहार में मनुष्य फंसता है। जिह्वा-लोलुपता, भय; अहंकार और संकीर्णता, प्रायः विविध रोगों के मूल में खोजने से प्राप्त हो सकेगी। अनियमित आहार एवं विहार से हम प्रायः रुग्ण होते हैं।

प्रधान कारण की खोज

शारीरिक-रुग्णता के मूल में कोई न कोई विकृत आकांक्षा अवश्य रहती है। जिसे व्यवहार में आने का अवसर भी अज्ञान और आलस्य इन दो कारणों से ही रहता है। हृदय व बुद्धि नामक दो यन्त्रों के द्विविध-क्षेत्र को मिलाने वाले 'विभाव-गोलक' से इस विषय का प्रमुख सम्बन्ध है। क्योंकि 'ज्ञान' बुद्धि से एवं 'प्रमाद' हृदय से सम्बन्धित विषय है। इन दोनों क्षेत्रों को एकीकरण प्रदान करने वाले विभाग-गोलक में बुद्धि संभूत 'विचार' और हृदय-प्रसूत 'भाव' का समन्वय होने से दो सूक्ष्मगोलक विवेक और संवेदन नाम के उदित होते हैं। इसी विभाग-गोलक का समुन्नत भाग अन्तःकरण कहलाता है। जो इससे कहीं अधिक सूक्ष्म है। यह 'अन्तःकरण' ही आत्मा को चारों ओर से घेरे हुये संस्कार-गोलक से समन्तात-संस्पृष्ट होने से आत्मा की शक्तियों के आवागमन का प्रमुख द्वार है। इस द्वार को चारों ओर से अवचेतन-मानस के क्षेत्र ने अवरुद्ध किया है। फ्रायड की गवेषणा की अन्तिम सीमाएं, इसी क्षेत्र तक आबद्ध हैं। इससे आगे अन्तःकरण के क्षेत्र से भारतीय आध्यात्मिक--प्रणाली का शोध कार्य आरम्भ होता है। यों भी कहा जा सकेगा कि जहां पाश्चात्य-प्रणाली थक कर बैठ जाती है वहीं से शोध-कार्य अपनी यात्रा का आरम्भ करता है। इसी से मैं दोनों को 'पूरक' अनुभव करता हूँ प्रतिद्वन्दी के रूप में नहीं। इन दोनों पद्धतियों का लक्ष्य 'आत्मा' ही है जिसे ये अपने-अपने भाग का योग नियोजित करते हुये खोज रही हैं।

औषधियों के दिव्य-प्रभाव

विभाग गोलक में विवेक का पलड़ा भारी होने पर प्रबल इच्छाशक्ति के विकास की सम्भावनाएं सिर उठाती हैं। यह वही विशुद्ध इच्छा शक्ति है जो त्याग वा योग मार्ग से सन्तुलित दृष्टि वाले अभ्यासी जनों में सिद्ध होती है। जिसके उत्तम उदाहरणों में से महात्मा बुद्ध और महात्मा ईसा भी थे और जिसके द्वारा भयावह रोगों से भी बिना किसी औषध प्रयोग के ही छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है। इसी इच्छा शक्ति से आध्यात्मिक-शक्ति की उपलब्धि हेतु मार्ग खुलता है। बहिर्मुख इच्छा शक्ति का विसर्जन भौतिक क्षेत्र में लोकोपकारी वा लोक विनाशकारी कर्मों में किया जा सकता है। किन्तु अन्तर्मुख होजाने पर यही आध्यात्मिक शक्ति की अजस्र उपलब्धि का कारण प्रसूत कर सकती है जिससे अनेक दिव्य कर्मों के साथ साथ कैवल्य की भी जो कि अन्तिम लक्ष्य है (जीव का) सिद्धि की जा सकती है—ऐसी धारणा 'लोक' में प्रचलित हैं।

इच्छा शक्ति का माध्यम

इच्छा-शक्ति को माध्यम बनाकर ही दिव्यौषधियां, अपने गुणों का प्रसार प्राणी में करती हैं।

ही कारण है कि एक ही दिव्यौषधी अनेक रोगों से उपराम लाभ करा सकती है। जैसे अपामार्ग, गुञ्जा और दूब ये तीन वनौषधियां यदि विशिष्ट बार व नक्षत्र एवं घड़ी आदि में उखाड़ी जावें और गाय के दूध में शुद्ध करके विधिवत् व्यवहार में ली जावें तो दिव्य-प्रभाव से युक्त अनुभव की जा सकती है। ऐसा अनुभव में आया है कि वनौषधियों में किन्हीं विशेष नक्षत्र, घड़ी, क्षण, बार आदि पर दिव्य-प्रभाव संचित रहता है। यह दिव्य-प्रभाव प्राणी की मानसिक शक्ति के माध्यम से रोग निवारण का कारण प्रस्तुत करता है। अभी तक केवल अधोलिखित ग्यारह वनौषधियों पर ही परीक्षण किये जा सके हैं। यदि यह शोधकार्य भगवत्कृपा से यथाक्रम गतिशील रहा तो इनके अतिरिक्त और भी अनेकों अमरबेल, रुद्रदन्ती, जीवती, ईसरमूल आदि वनोषधियों की दिव्य प्रभाव-शालीनता पर प्रकाश पड़ सकेगा। अधुनैव प्रयोगान्तर्गत वनौषधियों का प्रभाव विवरण आगे दिया जा रहा है—

नाम दिव्यौषधी	रोग का नाम
—अपामार्ग (चिचिंटा)	सब प्रकार के तीव्र दर्द, जलन, तीव्र ज्वर, टान्सिलग्लेण्ड, गूंगे-बहरे, गांठ मुंह से खून आना, हाथ पैरों की स्तब्धता, बिच्छू दंश और तिल्ली-जिगर आदि।
—गुंजा (रत्ती)	सर्प-दंश, प्रसूति-कष्ट आदि।
—दूर्बा (दूब)	ज्वर-निवारण।
—सत्यानासी	नेत्र-ज्योति, दुखती आंखें व कुकरे।
—धतूरा	गर्भ-स्राव से सुरक्षा व सब प्रकार के ज्वर।
—जल-भंगरा (घमरा)	मलेरिया, तिजारी, चौथिया आदि ज्वर।
—श्वेतार्क (सफेद आखड़ा)	सब प्रकार के ज्वर, लू लगना, अपस्मार, मृगी, दांत निकलना आदि।
—श्वेत-कन्नेर	नाड़ी स्थापन में सहयोग।
—सहदेवी	ज्वरों की चिकित्सा व लू लगना।
०—सिरस	बच्चों के दांत बिना कष्ट के निकलना व सर्प-दंश, लू लगना, मृगी व मस्तिष्क विकार।
१—पुनर्नवा	पीलिया, जिगर-तिल्ली, सर्पदंश।

आश्चर्य यह है कि इन दिव्य गुण सम्पन्न औषधियों के केवल विधिवत दिखलाने मात्र से पर्युक्त रोगों में लाभ प्राप्त हो सकता है। जन्म गूंगे-बहरे, टान्सिल का शोथ, ट्यूमर्स और तीव्र र्दों (एक्यूट पेन्स) में तो कुल दस या पन्द्रह मिनट भीतर ही पूर्ण लाभ होता है। तीव्र दर्द तो केवल एक या दो मिनट के भीतर ही उपराम हो जाते हैं। इस दिशा में कमर, सिर, गले, पेट, हाथ-पैर आदि सभी अंगों की भयानक वेदनाओं पर सफलता पूर्वक परीक्षण किए जा चुके हैं। एक विचित्र बात यह भी देखने में आई है कि ये दिव्यौषधियां केवल तीव्र वेदनाओं पर ही निग्रह करने में काम आ सकीं। साधारण दर्दों पर इसका कोई प्रभाव होता आज तक अनुभव में नहीं आया। इसी प्रकार किसी रोग एवं उसमें व्यवहृत की गई तेज दवाओं के कारण जो बहरापन हुआ हो उस पर धीरे-धीरे एक दो मास में लाभ पहुंचता है।

ये परीक्षण, श्री डा० सक्सेना (जयपुर) विगत चालीस वर्षों के अपने शोध-कार्य के आधार पर कर पाए हैं। और भी कोई महानुभाव इस दिशा में शोध कार्य कहीं कर रहे होंगे-मुझसे परिचय नहीं है। इस चिकित्सा-प्रणाली पर राज्य द्वारा जन-सहयोग के आश्रय पर वा स्वतन्त्र ही शोध करने की आवश्यकता है। इस उपलक्ष में किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार, उनसे पद्दतानियों का मंदिर, जौहरी बाजार, जयपुर के पते पर किया जा सकेगा। इस

चिकित्सा-प्रणाली को विकसित करने की दिशा में अनुभव सुझाव आदि भी उन्हें भेजे जा सकेंगे। योरोप में 'क्रिश्चियन सायन्स' द्वारा, जैसे रूमाल आदि भेज कर चिकित्सा करने की प्रणाली कहीं-कहीं प्रचलित है। वैसे ही चमत्कारपूर्ण एवं अल्प व्ययसाध्य यह चिकित्सा-प्रणाली भी है। जिसके सूत्र वेद, कल्प आदि ग्रंथों में उपलब्ध हैं। जिन पर कदाचित् आज के बुद्धि-प्रधान युग में विश्वास न किया जासके तथापि कुछ ऐसे अनुभव सामने आए हैं जिन्हें देखते हुए इस पर प्रयोगों को आगे बढ़ाया जाना अनावश्यक नहीं। बिना आप्रेशन के दुस्साध्य रोगों का इलाज, इस चिकित्सा-पद्धति द्वारा किया जा सकता है अतएव यह मानव-मात्र के लिये लाभ-प्रद हो सकती है।

चिकित्सा प्रणाली की विशेषता

इस चिकित्सा प्रणाली में पूर्व की अन्तर्मुखी व पश्चिम की बहिर्मुखी खोज का समाहार है। औषधियों की दिव्य-शक्ति और प्राणी की इच्छा-शक्ति मिल कर इस प्रणाली में कार्य करती है। अतएव, इसमें चिकित्सक पर श्रद्धा का यदि कुछ अभाव भी हो तो वह दिव्यौषधी के दिव्य-प्रभाव द्वारा सन्तुलित किया जाकर चिकित्सा में व्यवहृत किया जा सकता है। वनौषधियों के दिव्य-प्रभावों का वर्णन अनुभूत-चिकित्सासार, वनौषधि चन्द्रिका, जंगली जड़ी बूटी आदि ग्रंथों में प्राचीन विशेषज्ञों ने किया है। वेदों में वनस्पति विज्ञान को मानने वाले व्यक्ति, इस प्रकार की चिकित्सा प्रणाली का मूल अथर्व वेद में बताते हैं। कुछ भी हो वनौष-धियों में प्रवृत्ति और परमेश्वर द्वारा सुगुप्त रूप से संरक्षित दिव्य-प्रभावों पर स्वास्थ्य लाभ की दिशा में शोध कार्य किया जाना अनुचित नहीं है। एक-दम अविश्वास करने वा अन्ध-विश्वास से कुछ भला होने का नहीं। श्रम-सिद्ध शोध तो आवश्यक है ही। इससे प्राणि-जगत् का विशेष हित होने को है आणविक शक्तियों की संहारिकता से व्यथित व भयभीत मानव-समाज के लिए इस प्रकार की सृज-नात्मक एवं संरक्षणात्मक शोध-सरणि लाभप्रद रहेगी। आसुरी शक्तियों का प्रभाव, विश्व में बढ़ता जा रहा है। हमें दैवी-सम्पदा की सुरक्षा एवं पुन-र्विकास की दिशा में अपने प्रयत्न जारी रखने चाहिए ऐसा मेरा विनम्र मत आप जानिए। ✱

उपहार नहीं !

कई वर्ष से हम ग्राहकों को नवम्बर-दिसम्बर में उपहार देते आ रहे हैं। कतिपय ग्राहक इसी आशा से अपने आर्डर रोके हुए हैं कि उपहारी सूचना मिलने पर आर्डर दिया जाय। हम सखेद सूचित कर रहे हैं कि इस वर्ष कतिपय कारणों से हम उपहार देने की स्थिति में नहीं हैं। अतएव अपने ग्राहकों तथा एजेंटों से निवेदन करते हैं कि वे उपहार की सूचना की प्रतीक्षा न करते हुए अपने आर्डर भेजते रहें। इस वर्ष हम उपहार नहीं दे सकेंगे। आगामी वर्ष उपहार देने का आयोजन अवश्य किया जायगा।

निवेदक—वैद्य देवीशरण गर्ग।

उष्णवात (GONORRHOEA)

लेखक—डा० शान्तिस्वरूप त्रिपाठी 'चन्द्र' पलियाकलां (खीरी)

इस रोग को आयुर्वेद में पूयमेह, ऊष्णवात, अंग्रेजी में Gonorrhoea कहते हैं तथा यूनानी और बोलचाल की भाषा में सूजाक कहते हैं।

आयुर्वेद के मतानुसार इस रोग की उत्पत्ति के कई कारण माने गये हैं। कुछ शास्त्रों के मतानुसार अधिक श्रम करने पर और धूप में अधिक रहने से वायु कुपित होकर पित्त के साथ मूत्राशय में जा पहुँचता है और मूत्राशय, लिंग तथा गुदा में जलन पैदा कर देता है, इसी को ऊष्णवात कहते हैं। इसके अतिरिक्त तीक्ष्ण औषधि सेवन, घोड़े आदि पीठ वाली सवारी का अधिक प्रयोग तथा रूक्ष एवं दूषित पदार्थों के अधिक प्रयोग, अति मद्य सेवन, और जल के किनारे रहने वाले जानवरों के मांस तथा मछली के अधिक सेवन से, गरम पाषाण पर पेशाब करने से, स्वप्नदोष के पश्चात् मूत्र त्याग न करने से तथा अपूर्ण सम्भोग करने से और अजीर्ण से आठ प्रकार के पूयमेह उत्पन्न होते हैं।

वास्तव में यह एक प्रकार का छुतहा संक्रामक रोग है। अतः इस रोग से पीड़ित स्त्री अथवा पुरुष के साथ समागम करने से तथा पीड़ित व्यक्ति के वस्त्रादि के प्रयोग करने से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। एक प्रकार के गोनोकोक्स Gonococus नामक कीटाणु इस रोग के उत्पादक हैं, जिनका पता जर्मनी के एक वैज्ञानिक ने अठारहवीं शताब्दी में लगाया था।

पूयमेह के भेद

शास्त्रों ने पूयमेह के दोषादि भेद युक्त आठ प्रकार माने हैं। १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ त्रिदोषज ५ शल्यज ६ पुरीषज ७ शुक्रज ८ अश्मरीज।

लक्षण

पृथङ् मलाः स्वैः कुपिता निदानै
सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य वस्तौ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति
यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात्॥

अपने-अपने हेतुओं से कुपित अलग-अलग दोष अथवा सब मिलकर वस्ति में जाकर मूत्रमार्ग को पीड़ित करते हैं तब बड़े कष्ट से मूत्र उतरता है, इसको मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

(१) वातज मूत्रकृच्छ्र में वंक्षण Groin (जंघा तथा लिङ्ग के भीतर की सन्धि), वस्ति Hypogastric Region तथा सेढ़ Genitals और लिंग में तीव्र पीड़ा होती है और बारम्बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र निकलता है।

(२) पित्तज मूत्रकृच्छ्र में जलन और वेदना के साथ-साथ पीला अथवा रक्तवर्ण का मूत्र निकलता है।

(३) कफज मूत्रकृच्छ्र में वस्ति एवं लिंग में भारीपन तथा सूजन और मूत्र चिकनाई लिए होता है।

(४) त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में वातज, पित्तज, कफज, तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं। यह कष्ट-साध्य है।

(५) शल्यज मूत्रकृच्छ्र मूत्रवाहक नाड़ियों या मूत्राशय आदि स्थानों पर आघात पड़ने से अत्यन्त भयङ्कर शल्यज मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है। इसके लक्षण वातज मूत्रकृच्छ्र से मिलते जुलते हैं।

(६) पुरीषज मूत्रकृच्छ्र—मलावरोध से वायु कुपित होकर आफरा, और वातशूल आदि पैदा

करनी है. इससे पुरीषज मूत्रकृच्छ्र की उत्पत्ति होती है।

(७) शुक्रज मूत्रकृच्छ्र-मूत्र मार्ग में कुछ कारण-वश वीर्य रुक जाने पर वेदनायुक्त वीर्य सहित मूत्र निकलता है तथा वस्ति और लिङ्ग में पीड़ा होती है।

(८) अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र-पहले पथरी होकर जो मूत्रकृच्छ्र होता है उसे अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

इसके अतिरिक्त सुश्रुत ने शर्कराजन्य मूत्रकृच्छ्र का भी वर्णन किया है। पथरी और शर्करा इन दोनों के कारण और लक्षण एक समान हैं, वैसे मूत्र, वीर्य और कफ इनकी गांठ पित्त से पाक की गई, वायु से सुखाई गई और कफ से मिली हुई पथरी कहलाती है और वही पथरी जब कफ के बन्धन से छूटकर शर्करा रूप से मूत्र मार्ग द्वारा निकलती है तब शर्करा कहलाती है तथा हृदय में पीड़ा, शरीर का कांपना, कोखों में शूल और अग्नि मन्द तथा मूर्छा आदि लक्षण पाये जाते हैं। यह कष्टसाध्य है।

चिकित्सा

वातज मूत्रकृच्छ्र—में वातनाशक बलातैलादि से अभ्यंग करके नाभि के नीचे भाग में अच्छी तरह से स्निग्ध, पिंडस्वेद, परिषेक और अवगाहन से स्वेदन करे तथा उत्तरवस्ति (कैथेटर) का प्रयोग करे और शालपर्णी आदि लघुपञ्चमूल के वातनाशक द्रव्यों से सिद्ध रस दें।

पित्तज मूत्रकृच्छ्र—में ठंडे सेक, लेप, अवगाहन ग्रीष्मऋतुचर्य्या, अंगूर, विदारीकंद, ईख का रस, तथा घृतों से वस्ति और क्षीरपाक तथा विरेचन करना चाहिए।

कफज मूत्रकृच्छ्र—में वमन, स्वेदन, तीक्ष्ण ऊष्ण और कटु भोजन, जौ के बने हुए पदार्थ, तक्र तथा तिक्त वर्ग को औषधियों से सिद्ध तैल पान एवं अभ्यंग हितकर है।

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र—में उपरोक्त विभिन्न दोषों में वर्णित उपचार ही रोगी की अवस्था और समय पर विचार करके प्रयोग करे।

शल्यज मूत्रकृच्छ्र—में मद्य, शक्कर और घृत अथवा दूध और शक्कर और आमला तथा ईख का रस शहद के साथ सेवन करना चाहिये।

पुरीषज मूत्रकृच्छ्र—में स्वेद चूर्ण क्रिया तैलादि मर्दन और वस्ति क्रिया करनी चाहिये। गोखरू के काथ में जवाखार मिलाकर पीने से अत्यन्त लाभ होता है।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र—में शिलाजीत शहद के साथ चाटे तथा इलाइची, हींग और घी मिलाकर दूध का प्रयोग करे। तथा वृष्य (पुरुषार्थ करने वाली) औषधियों के सेवन से धातुओं के बढ़ने पर सुन्दर स्वस्थ स्त्रियों के साथ रमण करना चाहिये।

अश्मरी मूत्रकृच्छ्र—यह रोग अधिक कष्टसाध्य है, अतः आशु रोग में तो औषधि काम देती है किन्तु रोग के जीर्ण होने पर अस्त्र प्रयोग की आवश्यकता होती है। पूर्व रूप में स्नेह, स्वेदन और वमन द्वारा वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। पाषाण-भेद का काथ इसमें बहुत उपयोगी है।

मूत्रकृच्छ्र पर आयुर्वेदिक प्रयोग

लघुलोकेश्वर रस

योग—पारा १ तोला गन्धक ४ तोला कज्जली करके कौड़ियों में भरदें, फिर ३ माशा सुहागा दूध से पीसकर उससे कौड़ियों का मुख बन्द करदें। फिर किसी बर्तन में भरकर बर्तन का मुख बन्द कर संपुट में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल लें। ४ रत्ती के प्रमाण में चार रत्ती काली मिर्च का चूर्ण, जायफल और जावित्री को मिश्री पड़े बकरी अथवा गाय के दूध के साथ पीवे, ऊपर से शर्बत पीवे तो मूत्रकृच्छ्र दूर हो।

पाषाणवज्रो रस

योग—शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, दोनों को श्वेत पुनर्नवा (बिसखपरे) के रस में एक

दिन खरल कर संपुट में रख कर भूधर यंत्र में पचावे। जब सायंकाल हो निकाल गुड़ के साथ मर्दन करे, इसका सेवन कर ऊपर से इन्द्रायन की जड़ और कुलथी का क्वाथ बलाबलानुसार पीवे।

सामान्य प्रयोग

१—लोहभस्म को शहद के साथ सेवन करे।

२—इन्द्रायन की जड़ और काली मिर्चों को दूध में औटाकर पर्पटी रस मिला कर सेवन करे।

३—गन्धक, जीरा, कटेरी के फल सबको दो टंक नित्य सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

४—पारा, गन्धक, जवाखार, मिश्री, समान भाग चूर्ण कर छाछ के साथ सेवन करे।

५—एक सेर हल्दी सूखी के टुकड़े पांच सेर दूध में भिगो दे, दूध के सोख जाने पर पाताल यंत्र से तैल निकाल लें। यह तैल ४ बूंद बतासे में रख कर खाये, ऊपर से बकरी अथवा गाय का दूध पीवे।

६—रीठा एक तोला रात्रि को जल में भिगोदे प्रातः छान कर जल पीले।

७—दो बतासों में बरगद का दूध भर कर नित्य प्रातः सेवन करे।

८—केले के वृक्ष का रस निचोड़ कर पीवे।

९—तालाब की काई निचोड़ कर उसका थोड़ा जल लिंग के छिद्र में टपकावें।

१०—गौ का दुग्ध थोड़ी शकर और कतीरे के साथ पीवे।

मूत्रकृच्छ्र पर कुछ ऐलोपैथिक औषधियां—

डाइ युरेटिक मिक्सचर Di-uretic mixture—

योग—पोटास ऐसिटास (Potass acetas) १५ ग्रेन, टिंक्चर सिल्ला (Tin. scilla) १० मि०, टि० डिजेटेलिस (Tin-digitalis) ५ मि०, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसी (Spt ether Nitrosi) २० मि०, परिश्रुतजल १ औंस ऐसी एक मात्रा ३-३ घंटे में दें।

अन्य

एक्टिसाल (Aktisol) की दो टिकियां दिन में तीन बार गर्म जल अथवा दूध के साथ सेवन करे।

लीक्विड गोनोकोडीन (Liquid gonoccodine) एक से चार ड्राम की मात्रा में भोजन के उपरान्त सेवन करे।

एम. बी. ६९३ (M. B. 693 या Sulphapyridine) का प्रयोग मूत्रकृच्छ्र पर लाभदायक है।

गोनाजोल (Gonazole) की दो टिकियां नित्य ४ बार ५ दिन तक सेवन करे। टिकियों के टुकड़े कर जल के साथ निगल जाना चाहिये।

निकोसील Nicosil—एक से तीन टिकियां दिन में तीन बार सेवन करें।

सल्फासेटीन Sulphacetin—दो टिकियों की मात्रा में दिन में तीन बार लगातार ४ दिन सेवन करे। यदि पुनः आवश्यकता पड़े तो दो सप्ताह बाद प्रयोग करे।

सिबाजोल Cibazol दो गोली और सोडाबाईकार्ब Soda-bi-carb बीस ग्रेन की पुड़िया बनाकर दिन में तीन बार दें।

पूयमेह पर इन्जेक्शन्स
(Injections for Gonorrhoea)

सिबाजोल Cibazol 5 c. c. की मात्रा में नित्य मांसान्तर्गत या शिरान्तर्गत दें।

गोनाक्राइन Gonacrine (M. B.)—2 c. c. से 5 c. c. मात्रा में तीसरे दिन दें अधिक से अधिक १०-१५ इन्जेक्शन देने चाहिये। यह शिरान्तर्गत इन्जेक्शन है।

हैक्सेमाइन Hexamine—इसका ४०% का इन्जेक्शन 5 c. c. अथवा १० सी. सी. की मात्रा में गुनगुना कर ३-४ दिन के अन्तर से शिरान्तर्गत दें।

—शेषांश पृष्ठ ११०५ पर।

आयुर्वेद में—

फ्लू की अव्यर्थ चिकित्सा है

लेखक—कविकिङ्कर पं. रवीन्द्रप्रताप शर्मा वैद्य आयुर्वेद शास्त्री, तिलहर (शाहजहांपुर)

वीर अर्जुन के १-६-५७ के अंक में द्वितीय पृष्ठ कालम २ पर 'फ्लू की कोई दवा नहीं' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है कि "एक सरकारी विज्ञप्ति में बताया गया है कि भारत में जो इन्फ्लूएन्जा ने महामारी का रूप धारण किया·········उसके उपचार के लिए अनेक संस्थाओं ने दावा किया है कि उन्होंने इन्फ्लुएन्जा के विरुद्ध औषधि तैयार करली है। किन्तु जनता को सूचित किया जाता है वह इस बहकावे में न आवे, क्योंकि अभी तक इस बीमारी के लिए कोई दवा तैयार नहीं की गई है मुझे गवर्नमेन्ट की इस भ्रान्त धारणा को पढ़ कर असीम विस्मय हुआ है। गवर्नमेंट की ऐसी निर्मूल धारणा बन जाने का प्रमुख कारण उसकी केवल एलोपैथी पद्धति की पोषणनीति और उस पद्धति की अपूर्णता है।

मैंने आयुर्वेदोक्त चिकित्सा द्वारा इस रोग के शत प्रतिशत रोगियों को केवल तीन दिन में साफल्य पूर्वक निरोग किया है तथा इस रोग को मैं एक सामान्य रोग मानता हूँ। मेरा विचार है कि प्रत्येक आयुर्वेदज्ञ इस रोग की आशुफलप्रद सफल चिकित्सा कर सकता है। मैं अपनी इस सर्वथा सत्य घोषणा का परीक्षण देने को सोत्साह सन्नद्ध हूँ। सरकार का तत्सम्बन्धित विभाग मुझे सूचना देने की कृपा करे कि मैं किस स्थान और समय पर उपस्थित होकर इन्फ्लूएन्जा की अव्यर्थ चिकित्सा का प्रदर्शन कर गवर्नमेंन्ट की भ्रान्त धारणा निवारण करने का सफल प्रयास करूं। यदि राजकीय परीक्षण में मेरी घोषणा सर्वथा सत्य सिद्ध हो सके तो उस साफल्य का श्रेय मेरे व्यक्तिगत चिकित्सा कौशल्य को नहीं प्रत्युत विश्व के सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेद को प्राप्त होना समुचित है।

चिरकाल से देखा जा रहा है कि जब जब भी किसी नूतन लक्षण युक्त व्याधि का प्रसार होता है तभी कीटाणुवादी एलोपैथी पद्धति में उसकी चिकित्सा का अभाव पाकर नव्य चिकित्सक उस रोग को नवीन रोग या रहस्यमय रोग कह कर हत-बुद्धि सिद्ध होते हुए उसकी चिकित्सा-अनुसन्धान की चिन्ता में मग्न हो जाते हैं। किन्तु आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धान्त इतना सफल, व्यापक. विशाल और पूर्ण है कि उसके अवलम्ब से कोई भी अप्रचलित लक्षण सम्पन्न रोग आयुर्वेदज्ञ विद्वानों की दृष्टि में नवीन रोग तथा दुश्चिकित्स्य सिद्ध नहीं होता। निश्चयं ही आयुर्वेद का शाश्वत और प्रशस्त त्रिदोष सिद्धान्त सर्वथा असंदिग्ध, पूर्णतया अपरिवर्त्तनशील एवं ध्रुव सत्य है। उदाहरण स्वरूप कुछ वर्ष पूर्व गर्दनतोड़ बुखार नाम से समाचार पत्रों में एक नवीन रोग प्रचलित होने की चर्चा थी, प्रायः २ वर्ष से पीलिया (पाण्डु रोग) की रहस्यमय रोग नाम से पर्याप्त चर्चा चल रही है, इस वर्ष इन्फ्लूएन्जा (श्लेष्मिक ज्वर) के संक्रामक रूप में प्रसार का चीत्कार है (जो स्वाभाविक है) किन्तु सरकार की जो यह उपहासास्पद भ्रान्त धारणा बन गई है कि इस पूर्व प्रचलित और सामान्य रोग की कोई सफल औषधि नहीं है इसका प्रमुख कारण यही है कि पाश्चात्य विचार धारा से प्रभावित योरोपियन सांचे में ढली हुई हमारी सरकार की दृष्टि में एलोपैथी चिकित्सा ही सब कुछ है, उसके साफल्य और असाफल्य से ही वह चिकित्सा संसार का साफल्य और असाफल्य मान लेती है।

हमारी राष्ट्रीय सरकार को वास्तविक राष्ट्रीय सरकार बनने के लिये निरापद और पूर्ण आयुर्वेदीय काय चिकित्सा को अन्य सदोष, अपूर्ण तथा अभा-

ीय चिकित्सा पद्धतियों के सम्मुख अपनी श्रेष्ठता
द्ध करने का अवसर देना चाहिये। दुःख है कि
ारत सरकार अपनी निरापद एवं पूर्ण भारतीय
िकित्सा के दिव्य गुण देखने का भी प्रयास नहीं
रती।

आशा थी कि अपना देश स्वतन्त्र होने के
ात् अखिल चिकित्सा-पद्धतियों की उद्गम
ारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेदीय चिकित्सा को
सका समुचित स्थान प्राप्त होगा। जिस प्रकार
वन शासन काल में यूनानी पद्धति तथा अंग्रेजी
ासन काल में एलोपैथी पद्धति को राजकीय
िकित्सा का उच्च पद प्राप्त हुआ इसी प्रकार अपने
ासन में आयुर्वेद को उसके गुण और गौरव के
ुरूप ही राजकीय चिकित्सा पद प्राप्त होगा।
हा जाता है कि वर्तमान आयुर्वेद शास्त्र में शल्य
ालाक्यादि अंगों के व्यवहारिक ज्ञान का अभाव होने
कारण वह राष्ट्र-चिकित्सा-भार-वहन क्षम नहीं है।
न्तु इतिहास साक्षी है कि यवन शासन काल में
ई-कई मास तक समस्त सेना के भोजन बनाने में
धन का कार्य भारत के प्राचीन पुस्तकालयों के
ा महत्वपूर्ण ग्रन्थों से लिया गया है, इस घोर
मानवीय कृत्य के परिणाम स्वरूप हमारा सर्वांग-
ा आयुर्वेदीय साहित्य अंग भंग हो चुका है।
ाथ ही अनेक शताब्दियों से आयुर्वेदीय चिकित्सा
ाज्याश्रय रहित रहने के कारण राष्ट्र चिकित्सा
हन क्षमता का व्यवस्थित रूप कुछ अस्त-व्यस्त
वश्य होगया है, तथापि उपलब्ध आयुर्वेद-साहित्य
ारा भी आयुर्वेदीय काय-चिकित्सा अखिल विश्व
ी समस्त चिकित्सा पद्धतियों से श्रेष्ठतम और
ूर्ण सिद्ध हो सकती है। यदि आयुर्वेद को समुचित
ाजकीय संरक्षण प्राप्त हो तो वह स्वल्प काल में ही
पने शल्य-शालाक्यादि विलुप्त अंगों की पूर्ति
र सुव्यवस्थित होकर पुनः अखिल विश्व का
द्धा पात्र बनने की क्षमता रखता है।

अन्त में पुनः नम्र निवेदन है कि सरकार के
ास्थ्य विभाग के सूचित करने पर मैं निश्चित
मय और स्थान परउपस्थित होकर फ्लू की अव्यर्थ
और आशुफलप्रद चिकित्सा प्रदर्शित कर सरकार
की भ्रान्त धारणा का निवारण और आयुर्वेद का
गौरव प्रदर्शन करने के लिए सोत्साह प्रस्तुत हूँ। ●

: पृष्ठ ११०३ का शेषांश ::

सल्फाडायजीन सोडियम, Sulphadiazine Sodium (M. B.)—इसको ४ सी. सी. की मात्रा में मासान्तर्गत लगाना चाहिए और ५ से १०% का घोल परिश्रुत जल (Distilled water) के साथ बनाकर शिरान्तर्गत देना चाहिये।

थायजेमाइड सोडियम Thiazamide Sodium 'M. B.'—यह पावडर के रूप में आता है इसको परिश्रुत जल (Distilled water) में ५% का घोल बनाकर शिरान्तर्गत लगा दें। मात्रा १-४ ग्राम।

इनके अतिरिक्त, मैंगनीज व्यूटीरेट (Manganese Butyrate), एस० यू० एम० ३६ (S. U. M. 36, 'B. D. H.'), पेंसिलिन 'जी' (Pencillin 'G') सल्फापाइरीडीन (Sulphapyredine), क्लोरोमाइसेटीन (Chloromycetin), स्ट्रेप्टोमाइसीन हाइड्रोक्लोराइड (Streptomycin Hydrochloride), टैरामाइसीन (Terramycin), औरियोमाइसीन (Aureomycin) आदि इन्जेक्शन भी अत्यन्त उपयोगी हैं। ●

इन्फ्लूएञ्जा और उससे बचने के उपाय

लेखक—वैद्य पं. चन्द्रशेखर शर्मा, राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय, बोरावड (राजस्थान)

इन्फ्लुएञ्जा संक्रामक व्याधि है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति और एक देश से दूसरे देश में संक्रमण फैलाने वाले क्रिया कलापों द्वारा बहुत ही आसानी से पहुंच जाती है। इस समय इस व्याधि का प्रादुर्भाव सिंगापुर से हुआ है जो कि पूर्व एशियाई प्रदेशों को दर्शन देता हुआ भारत देश में भी पूर्ण प्रवेश पा चुका है और कुछ ही समय में देश के एक कोने से दूसरे कोने तक आसानी से पहुंच गया है जो कि इस समय तक भारतीय जनता को संत्रस्त कर रहा है। आज इसी रोग पर पाठकों को यथा शक्ति सामिग्री प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूंगा।

नव्य मतानुसार इस रोग का जन्म सन् १८४७ मानते है। जो कि समय-समय पर अपने दर्शन कराके जगत को भयभीत कर रहा है। सन् १८६०, ६१ और १६१८ ई० में यह रोग समस्त विश्व पर अपना साम्राज्य फैला कर मानव मात्र को अपना सुविस्तृत परिचय देकर गया। भारतवर्ष में १६१८ ई० के जुलाई माह में अपना प्रथम आगमन तथा सितम्बर मास में अपना द्वितीय आगमन सूचित कर बहुत से प्राणीमात्र को अकाल में काल के कराल गाल में पहुंचाया।

सबसे अधिक उग्ररूप इस राक्षस ने सन् १६१८ ई० में धारण किया जिसमें मृत्यु संख्या यूरोपीय महासमर से कहीं अधिक हुई थी तथा इसको विश्व व्यापी बनाने में महासमर ने वृहदशक्ति प्रदान की थी। भारतवर्ष में मृत्यु संख्या १२॥ लाख अनुमान लगाते हैं। पहले-पहल इस रोग को जन्म देने का दुर्भाग्य किस देश को प्राप्त हुआ यह कोई निश्चयपूर्वक बतलाने में समर्थ नहीं हुआ। फिर भी कई विद्वानों का कहना है कि अप्रैल मास में स्पेन देश ने इस रोग को प्रसव देकर विश्व रुग्ण इतिहास में अपना नाम अंकित करवाया और यह बाल्यावस्था में ही वेणु वंश की तरह इधर-उधर अविलम्ब फैल गया।

आयुर्वेदीय ग्रंथों में जो इस रोग के वर्तमान लक्षण प्रचलित हैं वे सब लक्षण वातश्लेष्मिक ज्वर में मिलते हैं। ये ग्रंथ आर्ष ग्रंथ तथा ऋषि प्रणीत चरक, सुश्रुत हैं जो कि इस पद्धति के आदरणीय और प्राचीन ग्रंथ हैं। इनमें इसका सुविस्तृत वर्णन है। अतः यह सिद्ध होता है कि यह रोग उस समय भी होते थे। परन्तु विश्व व्यापी न होते थे कारण उस समय वर्तमान सभ्यता व आहार-विहार का अभाव था और वे लोग संयमी सदाचारी और स्निग्धाहारी थे तथा उनकी जीवनीय शक्ति वर्तमान जीवनीय शक्ति से लाख गुने अच्छी थी। चरक संहिता में वर्णित लक्षण इस लेख में पाठकों को पढ़ने का मौका मिलेगा। अब तो हम यह बताते हैं कि आयुर्वेदज्ञ इस रोग से कितने वर्ष पूर्व परिचित थे। चरक संहिता के सर्व प्रमुख भगवान् आत्रेय थे जिनका ज्ञान चरकसंहिता में उद्धृत भिन्न-भिन्न स्थलों पर प्राप्त होता है। अब यहां यह प्रश्न पैदा होता है कि आत्रेय कौन थे? घबराइये नहीं शीघ्र ही इसका विवरण दिया जाता है। भगवान व्यास ने महाभारत ग्रंथ के शांति पर्व में निम्न लिखित श्लोक से भगवान आत्रेय को काय चिकित्सक बताया है। यथा:—

> गान्धर्व नारदो वेद भारद्वाज पुनर्वसु।
> देवर्षि चरित गार्ग्य कृष्णात्रेय चिकित्सतम्॥

उपरोक्त श्लोक में नारद, भारद्वज पुनर्वसु, गार्ग्य आत्रेय आदि महानुभावों का परिचय होता है जिन्होंने आयुर्वेद को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने का सफल प्रयत्न किया, जिसका चरक संहिता में निम्न भांति वर्णन मिलता है—

अगिरा जमदग्निश्च वषिष्ठ काश्यपो भृगु ।
आत्रेय गौतमो सांख्य पुलस्त्यो नारदोऽसित ।
गार्ग्य शाण्डिल्य कौण्डिन्यो वाक्षि देवल गालवो ॥
—च० सू० प्रथमाध्याय ।

उपरोक्त चरक लिखित श्लोकांश में भी नारद द्वाज गार्ग्य आत्रेय आदि का परिचय व्यासोक्त मावली से मिलता है। अतः उपरोक्त महाभाव महाभारत काल से पूर्व थे। आधुनिक हासकार महाभारत का समय ईसा २५० वर्ष मानते हैं। अतः सिद्ध होता है कि वैद्यों को रोग का ज्ञान बहुत पहिले से है। अतः आयु संसार की सर्वश्रेष्ठ और प्राचीन पद्धति है। : इस के दमन करने का उपाय इसी पद्धति में जो कि इतने दिनों से रोग के विषय में ज्ञान ती है।

कोई भी व्याधि अपने प्रभाव से विश्व व्यापी धि प्राप्त होती है उसे साधारण बोल चाल में महा री कहते हैं जैसे हैजा प्लेग आदि। इन्फ्लुएंजा भी मारी व्याधि है जो कि विभिन्न आहार प्रकृति दोष दूष्य से युक्त मानव में एक साथ पैदा होती। अब यह शंका पैदा होती है कि भिन्न-भिन्न हार प्रकृति वय दोष दूष्य के होते हुये भी यह एक साथ सब प्राणी मात्रों में क्यों होता है। मारी को आयुर्वेद में जनपदोध्वंस नाम से बोधित या है। जिसका विस्तृत वर्णन चरक संहिता में दिया है उसी का अंश विस्तार भय से पाठकों के मुख रख रहा हुँ।

प्रकृत्यादिभिर्भावै र्मनुष्याणां चेऽन्ये भावा सामान्या- गुण्यात् समानकालाः समानलिंगाश्चव्याधयोऽभि र्तमाना जनपदमुध्वंसयन्ति ते तु खल्विमे भावाः मान्या जनपदेषु भवन्ति । तद् यथा वायुरुदक देश लेति । च० वि० अ० ३ ।

सारांश यह है कि प्रकृत्यादि भाव भिन्न-भिन्न हे हो परन्तु मनुष्यों में चार भाग समान ो, वे यह हैं—वायु, जल, देश, काल। इन चारों का हर मानव समान रूप से व्यवहार करता है। जनपदोध्वंस में सर्वप्रथम वायु दूषित होती है जो सर्वत्र गतिमान है पश्चात् क्रमशः देश और काल। यही कारण है कि जनपदोध्वंस एक साथ सबको साथ होता है।

पाठक विचारेंगे कि उपरोक्त चार भाव दूषित क्यों होते हैं। आयुर्वेद मतानुसार अधर्म, युद्ध, अभिचार और अभिशाप ही दूषित होने के कारण हैं। यूरोपीय महासमर इसका अकाट्य उदाहरण है। इस प्रगतिशील युग में विज्ञान ने अणु उदजन बनाकर ही मानव को अशान्त तृष्णालु बना दिया है। कहा जाता है कि उपरोक्त बमों का परीक्षण ही इस संक्रामक व्याधि का कारण है। आधुनिक विज्ञान जनपदोध्वंस के कुछ भी कारण प्रकाशित करें परन्तु उन सबका आयुर्वेदोक्त कारणों में ही समावेश है।

सर्व प्रथम तो इस रोग के पैदा होते ही नव्य चिकित्सकों द्वारा इसके गुणानुसार नाम विभूषित करने में अविराम परिश्रम किया गया, फिर कारण और चिकित्सा की ओर ध्यान दिया गया। परन्तु आयुर्वेद त्रिदोष स्तम्भ इस रोग का भार उस समय सुविधापूर्वक वहन करता हुआ जगत को अचम्भित कर रहा था जब कि नव्य मतालम्बी इसके जीवाणु, सूचीवेध और औषध का अन्वेषण कर रहे थे। जिसके जीवाणु का अनुसंधान १८६२ ई० में सर माईफर ने किया जो रोगी को गले मुख नासिका में पाया जाता है जो कि श्वास प्रश्वास द्वारा स्वस्थ मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर उसे भी ज्वराक्रान्त कर देता है। इसका नाम वैक्टीरीयम् न्यूमोसिन्टस है जो कि इन्फ्लुएंजा के रोगी में ही नहीं वरन् श्वास, न्यूमोनियां के रोगी में भी पाए जाते हैं। कई विद्वान इस जीवाणु को रोगोत्पत्ति में गौण रूप मानते हैं। मारक रूप में तो स्ट्रिप्टोकोकस व अन्य जीवाणु प्रधान होते हैं।

पाठकों को आगे इसके फैलने के कारणों के साथ-साथ बचने के उपाय भी मालूम होंगे।

(१) रोगी के श्वास प्रश्वास से कीटाणु स्वस्थ मनुष्य में प्रवेश कर जाते हैं। अतः श्वास-प्रश्वास के विषय में सावधानी बरतनी चाहिये।

(२) रोगी के वस्त्र वर्तन शुद्ध करके काम में लेना चाहिये। मल मूत्र कफ को पृथ्वी में दबा देना चाहिये ताकि जीवाणु हवा में न मिल सकें।

(३) यात्रा में जहां रोगी बैठा हो उसके पास न बैठें। एक देश से दूसरे देश में हवाई जहाज और जलयान से यह रोग फैलता है।

(४) स्वस्थ मनुष्य को अनावृत बर्फ का प्रयोग न करना चाहिये।

(५) फल जो सड़े गले न हों तथा उन्हें गरम जल से धोकर प्रयोग में लावें।

(६) होटलों में यथा सम्भव शुद्ध खाद्य पदार्थों का भी प्रयोग न करें।

(७) प्रत्येक परिवार निम्न-लिखित धूप का सायं प्रातः प्रयोग में लावें।

अगर, तगर, नागरमोथा, चन्दन, छबीला, नीम के सूखे पत्ते, जटामांसी, बच, राई, कपूर-काचरी, सरसों, बायविडंग, राल व लोबान ये सम-भाग और इन सबसे आधा भाग गूगल मिलाकर बारीक धूप बनालें।

(८) मसालों में चाट-चटनी जिसमें अमचूर की खटाई हो यथा शक्य व्यवहार में न लाई जावे।

(९) संक्रमण के दिनों में प्रत्येक व्यक्ति निम्न लिखित पेय प्रातः सायंले—

मुलेठी ३ माशा, दालचीनी १ माशा, काली मिर्च ७ नग, तुलसी के पत्ते ७ और मिश्री दो तोला को आधा पाव पानी में उबाल कर छटांक भर शेष रहने पर लें। जो व्यक्ति चाय पीने के आदी हैं वे इसमें दुग्ध मिला कर चाय के समान प्रयुक्त करें तो उत्तम है।

(१०) पानी पीने के लिए उबाल कर ठंडा करके प्रतिदिन काम में लिया जावे।

(११) भोजन हल्का व सात्विक किया जावे। कच्चे भोजन में दाल सब्जी अद्रक व पोदीना-युक्त चटनी अधिक काम में लावें।

(१२) इस रोग का आरम्भ काल प्रतिश्याय से होता है। अतः आगे बताये गए आयुर्वेदोक्त प्रति-श्याय के कारणों से बचना चाहिये।

(१३) अन्दर कमरे में शयन करना चाहिये जहां स्वच्छता और प्रकाश हो। मकान में नमी और सीधी हवा का प्रवेश न हो।

(१४) वस्त्र ऐसे धारण करने चाहिए जिससे प्रति-श्याय न हो, शिर ढंका हुआ रखना चाहिए। गरम जल में नमक डाल कर गरारे करने चाहिए।

उपरोक्त नियमों के पालन करने से इस व्याधि का प्रभाव नहीं हो सकता है। तथा मनुष्य अपने आपको पूर्ण स्वस्थ रख सकता है।

आयुर्वेद में इस व्याधि को वातश्लैष्मिक ज्वर कहते हैं। इसमें दो दोष वात कफ प्रधान होते हैं। यह तो पाठक जान ही गए हैं कि इस व्याधि का पूर्व रूप प्रतिश्याय है। अब पाठकों के समक्ष प्रतिश्याय के विषय में माधव-निदानोक्त विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

माधवनिदान, नासारोगान्तर्गत्—

संधारणाजीर्ण रजोऽभिघात क्रोधर्तु वैषम्य शिरोऽभितापैः। प्रजागरातिस्वपनाम्बु शीतावश्यायतो मैथुन बाष्प धूमैः। संस्त्यान दोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेच्च।

सारांश यह है कि (१) वेगावरोधात् (२) अजीर्ण-कारक भक्ष्य भक्षणात् (३) धूल का नासिका में प्रवेश होने से (४) अतिभाषण (५) अति क्रोध से (६) ऋतु विपर्यय (७) शिरोऽभिताप से (८) रात्रि-जागरण से (९) दिन में सोने से (१०) शीतल पदार्थ भक्षण से (११) अति मैथुन से (१२) स्वेद और अश्रु को रोकने से (१३) नासिका में धूआं आदि के प्रवेश से, शिर में दोष इकट्ठे हो और वायु वृद्धिगत होकर प्रतिश्याय रोग उत्पन्न करे।

अतः प्रतिश्याय से बचने के लिए उपरोक्त नियमों का पालन करना चाहिए ताकि 'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी' वाली कहावत घटित हो, कहने का तात्पर्य यह है कि जब प्रतिश्याय न होगा तो इन्फ्लूएंजा क्या आकाश से टपकेगा।

वातश्लैष्मिक ज्वर क्या है, यहां यह आपको ज्ञात होगा। वात और कफ जिस ज्वर में प्रधान हों अपने अपने लक्षण प्रगट करते हों, उसे वात-श्लैष्मिक ज्वर कहते हैं। यथा शास्त्रोक्त यह है—

स्तैमित्यं पर्वणा भेदो निद्रा गौरव मेव च।
शिरोग्रह प्रतिश्याय कास स्वेदाप्रवर्तनम्॥
सन्ताप मध्यवेगश्च वातश्लेष्म ज्वराकृति॥

तात्पर्य यह है कि (१) कफ दोष से रोगी को गीली चादर ओढ़े हुए जैसा अनुभव हो। (२) वायु दोष से संधिबन्धन में भेदनवत् पीड़ा का अनुभव हो (३) कफ दोष से निद्रा और भारीपन प्रतीत हो (४) शिर में दर्द और भारीपन हो (५) तीव्र प्रतिश्याय हो (६) कास हो (७) पसीने का अप्रवर्तन हो (८) सन्ताप हो (९) ज्वर का मध्यमान वेग हो उसे विद्वत् जन वातश्लेष्म ज्वर कहते हैं।

अन्य लक्षण इस रोग में इस प्रकार होते हैं—

(१) कुछ कम्प लगकर ज्वर आता है। तथा शिर भेद भी होता है।

(२) ज्वर का तापक्रम १०२ से १०४ डिग्री होता है। तेज ज्वर होते हुए भी वस्त्र प्रिय लगते हैं।

(३) कमजोरी अत्यधिक होती है, मानो वह लम्बे समय से बीमार हो।

(४) नासिका स्राव, गले में प्रदाह, शिरदर्द या शिर का भारी लगना। भोजन व जल में स्वाद का न होना।

(५) जिह्वा मैली तथा सफेद एवं जिह्वा का अग्रभाग कुछ रक्तवर्ण का होना, नेत्र सफेद और भारी होते हैं।

(६) नाड़ी क्षीण ज्वर में चलती है तथा वात कफ प्रधान होती हैं।

(७) यह ज्वर ५-७ दिनों में वृद्धि पाकर आगामी ३-४ दिनों में स्वतः शान्त होजाता है। कभी-कभी यह १० दिनों तक भी रह जाता है।

कफाधिक रहने से यह रोग श्वसन सन्निपात का स्वरूप धारण कर लेता है। तथा कभी-कभी यह रक्तष्ठीवी सन्निपात भी बन जाता है। कफ दोष वृद्धि पाकर कभी-कभी फुफ्फुस प्रदाह उत्पन्न कर मारक भी बन जाता है। ज्वरी क्षीणता को प्राप्त करने पर निद्रा से दूर होजाता है। आमाशय में होने पर अधिकतर वमन हृल्लास उत्पन्न कर देता है।

उपरोक्त लक्षण पैदा होने पर ही इन्फ्लुएंजा कहते हैं। इसको आयुर्वेद ने मारक व्याधि नहीं कहा है यह दोष पाचन होने पर स्वयमेव शान्त हो जाता है, यदि रोगी पथ्यपूर्वक नहीं रहेगा तो यही व्याधि अन्य उपद्रव रूप में पैदा होती है। अतः इसमें बहुत ही सावधानी की आवश्यकता है।

कास, श्वास, फुफ्फुस प्रदाह, श्वसनक सन्निपात, रक्तष्ठीवी सन्निपात, प्रलाप, निद्रानाश ये इसके उपद्रव हैं।

आयुर्वेद में इस रोग की चिकित्सा बहुत ही सरल और अल्पव्यय साध्य है। इसका चिकित्साक्रम निम्न प्रकार से है—

इस रोग में यदि कफाधिक हो तो लंघन कराना चाहिए, यदि वाताधिक हो तो लंघन उस समय तक ही कराना चाहिए यावत् रोगी सहन कर सके नहीं तो वायु वृद्धिगत हो उपद्रव उत्पन्न कर देती है।

इस रोग के पूर्व रूप होते ही गोजिह्वादि क्वाथ का सेवन करना चाहिए तथा ऊपर वर्णित पेय और धूप योग का व्यवहार करना चाहिए।

—शेषांश पृष्ठ १११३ पर।

यक्ष्मा की चिकित्सा

लेखक—डा० ब्रह्मदत्त त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य वैद्यभूषण, अतर्रा (बांदा)

[गतांक से आगे]

यह रोग साधारणतः पुराने रूप में मिलता है इसमें कभी-कभी औपसर्गिक रूप से तरुण व्याधियां आ सकती हैं और इस व्याधि की गुरुता बढ़ा सकती है। तथापि विशेषतः इस व्याधि को पुरातन ही कहा जायगा। साधारणतः इस व्याधि के ज्वर के लिए जीर्णज्वर की चिकित्सा करनी पड़ती है। साथ-साथ यह भी ख्याल रखना चाहिए कि यह व्याधि क्षयज है और इससे क्षय होता ही चलता है। क्षय पूर्ण करने के लिए धातु घटित औषधियां विशेषतः स्वर्णघटित औषधियां प्रयोग करने से लाभ पहुंचता है। पुटपक्व विषमज्वरांतक लौह, जयमङ्गलरस, चूड़ामणि रस, मृगांक, राजमृगांकरस, आदि औषधियां यक्ष्मोपयुक्त अनुपान के साथ प्रयुक्त की जाती हैं। पेट की गड़बड़ी रहने से पुटपाक विषमज्वरांतक लौह से विशेष लाभ पहुँचता है। मामूली पतला दस्त रहने से व अजीर्ण रहने से भुने हुए जीरे की फंकी और शहद के साथ प्रयोग करने से बहुत ही लाभ पहुँचता है। रोगी में कमजोरी ज्यादा रहने से वृहद्कस्तूरीभैरव या वसन्तमालती का प्रयोग करने से लाभ पहुँचता है। यक्ष्मा के ज्वर को दूर करना अत्यन्त कष्टसाध्य है। यह विचार रखना चाहिए कि ज्वर की ह्रास-वृद्धि चालू रहना फुफ्फुस की अवस्था के ऊपर निर्भर करता है। फुफ्फुस की अवस्था की उन्नति होने से ज्वर भी कम हो जाता है और श्लेष्मा का प्रकोप ज्यादा होने से ज्वर तेज हो जाता है। इसीलिए यक्ष्मा के रोगी को श्लेष्मा के आक्रमण से बचना चाहिये। यह सब विचार करके यक्ष्मा के रोगी को ज्वर उतारने के लिए दवा करने से लाभ नहीं पहुँचेगा। साथ साथ फुफ्फुस की भी जिसमें उन्नति हो ऐसी दवा करनी चाहिए। वस्तुतः यक्ष्मा के रोगी के ज्वर ताप से फुफ्फुस की हालत का पता चलता है। यक्ष्मा रोगी के ज्वर के लिए औषधियों के साथ निम्नोक्त परीक्षित अनुपान से पर्याप्त लाभ पहुँचता है।

हारसिंगार की पत्ती, निगुण्डी (सम्भालू) की पत्ती, पित्तपापड़ा, गुडूची, रूस (बांसा) की पत्ती, इनमें से तीन चार चीजें मिलाकर कूटकर केले की पत्ती लपेट कर बांध लिया जाय और ऊपर से हल्का मिट्टी का लेप लगाकर आग में इतनी देर तक गर्म किया जाय जिससे कुछ मिट्टी लाल हो जाय। परन्तु केले की पत्ती न जल पाये। उसे उठाकर रात में बाहर ओस में रखना चाहिए। प्रातः अन्दर की पत्तियां लेकर कूटकर उनका रस निचोड़ लेना चाहिए। वही रस १ तोला या १॥ तोला दवा के अनुपान के रूप से दिया जाता है। ज्वर के लिए इन दवाइयों को या दूसरी अनुभूत औषधियों में दो एक प्रयोग रखने ही पड़ते हैं। महालाक्षादि या बासाचन्दनादि भी ज्वरनाशक है। क्षेत्र विस्तार करके इसका प्रयोग करना चाहिए। खांसी की चिकित्सा के बाद इसका वर्णन होगा।

यक्ष्मा रोग की चिकित्सा में क्षय बन्द करना और क्षय पूर्ण करना जरूरी है। पहिले ही कहा गया है कि क्षय अनुलोम और विलोम दो प्रकार का होता है। प्रत्येक कारण को त्याग करना चाहिए क्योंकि चिकित्सा का मूल सूत्र "निदान परिवर्जन" है। क्षय पूर्ण करने लिए औषधियां प्रयोग में लाने के पहिले रोगी की क्षुधा और पाचन शक्ति के ऊपर ध्यान देना चाहिए। क्योंकि दवा से बढ़कर क्षय पूरण खाद्य वस्तुओं से विशेष हो सकता है। सुतराम रोगी में अग्नि बल की कमी रहने से पहिले उसी को बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिए। लवण भास्कर, अग्निकुमार आदि औषधियों से काम लेना पड़ता है। हींग घटित औषधियां प्रयोग नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उससे

क वमन हो सकता है मृगांक रस, महामृगांक, जमृगांक, चूड़ामणि रस, रत्नगर्भपोटली रस, शृंगा-भ्र, सर्वांगसुन्दर आदि औषधियां अपने अपने शेष काम के सिवाय क्षयपूरक भी हैं ? इन सबों ो छोड़कर रोगी को विशेषतः क्षयपूरक और ास्थ्य बढ़ाने वाली औषधियां देनी पड़ती हैं। र न रहने से या शाम को ६६० तक तापमान रहने भी च्यवनप्राश या द्राक्षारिष्ट प्रयोग किया जाता । उससे भूख भी बढ़ती है और साथ-साथ दुरुस्ती भी बढ़ती चलती है। रोगी की पाचन शक्ति प्रभक्कर छागलाद्य घृत भी प्रयोग किया जाता । परन्तु पाचन शक्ति पर्याप्त न रहने से यह घृत जम नहीं होता और उससे हानि पहुँचती है। यवनप्राश और द्राक्षारिष्ट यक्ष्मा के लिये अधिक रिचित औषधि हैं। इन दोनों से खांसी के लिए भी ाभ पहुँचता है। यक्ष्मा रोगी की चिकित्सा करते मय बराबर उसका तौल लेते रहना चाहिए। बजन म हो जाने से रोगी की हालत खराब होती जारही यही समझ लेना चाहिये, और तौल बढ़ते समय गी की अवस्था की उन्नति हो रही है यह समझ ना चाहिए। सुतराम प्रति सप्ताह बजन लेकर रोगी ी हालत जान लेनी चाहिए। यक्ष्मा रोगी के लिए तसंजीवन के समान अधिक सुरासार घटित षधियां अधिक दिन तक प्रयोग में नहीं लाना ाहिए, उससे हानि पहुँचती है। कुछ दिन के लिए मजोरी अधिक रहने पर मृतसंजीवनी के प्रयोग से ाभ पहुँचता है और इसकी आवश्यकता भी पड़ती । परन्तु अधिक दिन प्रयोग में लाने के लिए मृत-ंजीवनी के स्थान पर द्राक्षारिष्ट लेना ही उपयुक्त है। ससे दुहरा लाभ पहुँचता है। एक फुफ्फुस और यकृत ा काम इससे सुधरता है दूसरे तन्दुरस्ती भी ढ़ती है। इसमें सुरासार अल्प मात्रा में रहता है।

यक्ष्मा रोग में खांसी से रोगी परेशान होजाते हैं। इस खांसी की आवश्यकता भी कुछ है। क्योंकि फुफ्फुस से बलगम निकाल देने का उपाय यही है। जब तक फुफ्फुस में बलगम जमा रहता है तब तक मामूली खांसी को बिल्कुल बन्द करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। प्रयत्न करने से लाभ भी नहीं पहुँचता। परन्तु जब खांसी से रोगी परेशान हो जाता है रात को सो नहीं पाता या खांसते-खांसते कय हो जाती है। तब खास तौर से खांसी को रोकना ही पड़ता है। पूर्वोक्त शृंगाराभ्र, सर्वाङ्ग सुन्दर रस खांसी को रोकने वाली दवा नहीं है। इससे फुफ्फुस का क्षय पूर्ण होकर खांसी कम हो जाती है। अष्टाङ्गावलेह बांसावलेह सितोपलादि तालीसादि चूर्ण आदि खांसी को रोक देते हैं। फुफ्फुस में बलगम जमा हुआ रहने से शृंग्यादि चूर्ण या नौसादर मिला हुआ शृंगाराभ्र या बांसावलेह ३ रत्ती, प्रवाल भस्म ४ रत्ती और मकरध्वज आधा रत्ती मिला कर देने से लाभ पहुंचता है। तरुण खांसी रहने पर पीपल की बुकनी भी मिला कर दे सकते हैं। सर्वाङ्ग सुन्दर भी प्रवाल भस्म के साथ मिलाकर दिया जाता है।

कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि रात को रोगी सोते समय खांसी से अधिक तंग होता है और कभी-कभी प्रातःकाल उठते ही बहुत जोर से खांसी आती है। चन्द्रामृत रस ताल मिश्री के साथ चूसने को देने से या सितोपलादि आदि पूर्वोक्त रुकने वाली दवाइयां प्रयोग करने से लाभ पहुंचता है। पाश्चात्य शास्त्र में इस खांसी को बन्द करने के लिये अहिफेन घटित दवाइयां तक प्रयुक्त होती हैं। गले में यदि दाने निकले हों तो उसके लिये गला धोना और दवा लगाना जरूरी है। सवेरे की खांसी के लिये उठते ही गरम दूध या पानी पीने से लाभ होता है। छाती में यदि कफ जमा रहे तो कफ निकाल देने के लिये पूर्वोक्त उपाय करना चाहिये। बलगम काफी निकाल देने से भी रोगी को क्षय ज्यादा होता है इसको भी कम करवाना चाहिये। चूना जातीय दवाइयां इसके लिये ज्यादा लाभ-दायक हैं। छाती में पुरातन घृत या बासा चन्दनादि तैल मलना चाहिये। तरुण खांसी रहने से अदरख का रस ले सकते हैं।

यक्ष्मा में निशा-घर्म के लिये खास तौर से दवा देना पड़ता है। क्यों कि यह घर्म इतना ज्यादा

होता है कि रोगी इसके बाद बिल्कुल सुस्त होजाते हैं और क्षय भी होता है। इसको बन्द करने के लिये रात को पसीना निकालने के दो तीन घंटे पहिले कौड़ी भस्म या प्रवाल भस्म या मुक्ता भस्म मकरध्वज के साथ मिलाकर बेदाना के रस के साथ देने से लाभ पहुंचता है। कुछ रोज देने के बाद पसीना निकलना बिल्कुल बन्द होसकता है। वृहद कस्तूरीभैरव, कस्तूरी, मकरध्वज, मृतसंजीवनी आदि वस्तुएं भी ऐसे समय प्रयुक्त की जाती हैं। पाश्चात्यशास्त्र में यह पसीना रोकने के लिये ऐट्रोफीन धतूर सत की सूई या खाने के लिये दिया जाता है। आयुर्वेद शास्त्रोक्त महालक्ष्मी विलास में भी धतूर के बीज पड़ते हैं। सुतराम महालक्ष्मीबिलासरस आधी रत्ती २ रत्ती प्रवाल भस्म के साथ प्रयोग करने से लाभ पहुंचता है। यक्ष्मा में यदि पतला दस्त या अतिसार दिखलाई पड़े तो पहिले ही उस ओर ध्यान देना चाहिये। क्योंकि उससे कमजोरी अधिक होजायगी और रोगी को क्षय पूर्ण करना व्यर्थ होजायगा। इसलिये जल्दी टट्टी को रोकना और पाचन शक्ति को बढ़ाने के लिये कोशिश करनी चाहिये।

शुक्रायत्तं बलं पुंसांमलायत्तं हि जीवनम्।
तस्माद्यत्नेन संरक्षेत् यक्ष्मिणो मलरेतसः।

सिद्ध प्राणेश्वर, रामबाण, महागन्धक, आनंद भैरव आदि औषधियों से काम लेना चाहिये। आवश्यकता होने से कर्पूरादि वटी के समान अहिफेन घटित औषधियां देकर भी पाखाना रोकना पड़ता है। परन्तु ऐसी औषध दो एक खुराक से अधिक नहीं देना चाहिये।

यक्ष्मा में रक्त वमन होने पर रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिए। शय्या पर बिल्कुल लेटे रखना चाहिए। पेशाव टट्टी पाखाने के लिये भी यथा सम्भव उठाना बैठाना न चाहिये। कमजोरी के लिए भी अधिक उत्तेजक दवा नहीं देना चाहिए। परन्तु आयुर्वेदोक्त अश्वगन्धारिष्ट जिसमें मृतसंजीवनी पड़ती है, ५ से २० बूंद तक आवश्यकतानुसार घंटे दो घंटे के अन्तर से दे सकते हैं। इससे रोगी की कमजोरी दूर होने के साथ-साथ रक्त वमन भी होना बंद हो जाता है। लाख का काढ़ा धीरे-धीरे पिलाने से लाभ पहुँचता है। विशल्यकर्णी, कुकुरुण्डा दूब, गेंदा की पत्ती या अनार फूल और पत्ती के रस से भी खून बन्द होता है। प्रायः इनको दवा के अनुपान रूप से प्रयुक्त किया जाता है। लाख, गेरू मिट्टी, शोधित रसांजन का चूर्ण मिलाकर खून रोकने के लिए दिया जाता है।

पूर्वोक्त चूना जातीय औषधियों से खून बन्द हो जाता है। मृगांक चूर्ण या पूर्वोक्त अम्लदधि की भावना से बना हुआ मिलित प्रवालशुक्ति भस्म आदि शीघ्र लाभ पहुँचाते हैं। एलादि गुटिका इस समय बहुत काम देती है। इन सबों के बजाय रक्तपित्ताधिकारोक्त औषधियां या योगों से शीघ्र लाभ पहुँचता है। पाश्चात्य शास्त्र में इस समय (रक्तवमन के लिये) कैल्सियम क्लोराइड (Calcium chloride) की सुई, हिनोस्टेटिक सीरम (Henostatic serum) नार्मल हार्स सीरम (Normal horse serum), की सुई देते हैं। कैल्सियम लैक्टेट खाने के लिए देते हैं। रोगी को इस समय बहुत हल्का और पतला खाना देना चाहिए और अगर निर्णय कर सकें कि किस फुफ्फुस से खून निकलता है तो उसी करवट से लिटाना चाहिए। उत्तेजक पथ्य नहीं देना चाहिए। यक्ष्मा रोग में पैदा हुये दूसरे लक्षणों का दोष दूष्य समझकर चिकित्सा करनी पड़ती है। एक व्याधि में सब लक्षणों का वर्णन करना और उनकी चिकित्सा लिखना बहुत ही कठिन है। सुतराम चिकित्सक को अपने विचार वा बुद्धि के ऊपर छोड़ देना चाहिए। केवल दिग्दर्शन रूप से लेख में वर्णन हो सकता है।

पाश्चात्य शास्त्र में फुफ्फुस को निष्काम बनाने के लिए विदीर्ण किया जाता है, उसको थिराप्यूटिक न्यूमोथोरक्स कहा जाता है। इसकी प्रणाली शास्त्र-साध्य और अभिज्ञ चिकित्सकों के सिवाय कर

नहीं सकते हैं। यह चिकित्सा खतरनाक भी है। परन्तु ठीक तरह से होने से लाभ पहुँचता है और ऐसा भी देखा गया है कि फुफ्फुस को आंशिक रूप से निष्काम करने के लिए छाती को कपड़े या प्लाष्टर पैरिस से लपेट कर रखने और एक करवट में लेटे रहने से लाभ होता है। पाश्चात्य शास्त्र में औषधियों के अन्दर कैलिसियम क्लोरायड या कालो कैलिसियम (Calcium chloride या Colo-calcium) की सुई, खाने के लिए क्रियोजोट और काडलिवर आइल (Creasote या Codliver oil) और आर्सनिक (Arsenic) दिया जाता है। मलने के लिए भी काडलिवर आइल की व्यवस्था करते हैं।

शोष रोग की चिकित्सा

यक्ष्मा और शोष रोग की चिकित्सा में अन्तर यही है कि शोष रोग अति पुरातन व्याधि है। इसमें यक्ष्मा के समान तेज ज्वर कष्ट देता है। तकलीफ देने वाली खांसी, रक्तवमन आदि अगर बीच बीच में आवें भी तब भी बराबर नहीं रहते। सुतराम इसकी चिकित्सा प्रायः क्षय पूरण के लिए और दूसरी कोई व्याधि आक्रमण न करने पावे इसके ऊपर ध्यान देकर करनी पड़ती है। रोगी का बजन नियमित लेते रहना चाहिए जिससे मालूम होता चले कि रोगी की तन्दुरुस्ती ठीक हो रही है या नहीं। इस व्याधि में सप्तधातुओं की शुष्कता पैदा होती है। इसलिए तैलाक्त पदार्थों का प्रयोग विशेष करना पड़ता है। यक्ष्मा में जैसे खुली हुई जगह में रहने के लिए कहा गया है, शोष रोग में भी ऐसी खुली जगह में बराबर रहना चाहिये। महालाक्षादि, महाचन्दनादि या वासाचन्दनादि या काडलिवर आयल (codliveroil) आदि तैलों के मर्दन से शोष रोगी को बहुत लाभ पहुँचता है। तैल मर्दन के बाद आदत माफिक या जैसे बर्दाश्त हो ठण्डे या कुनकुने पानी से नहलाना चाहिये। हलके पानी वाली नदी में नहाना इस रोग में लाभकर है। पथ्यों के अन्दर भी तैलाक्त पदार्थ जितना हजम हो सके लेना चाहिये। अच्छा गाय का घी मक्खन दूध आदि लेना लाभप्रद है। दाल तरकारी में घी डालकर पूरी पराठा में रोगी को घी काफी खिलाना चाहिये। मांसयूष अण्डा वगैरह भी बहुत लाभदायक है। रोगी की पाचन शक्ति ठीक रहने से छागलाद्य घृत च्यवनप्राश वगैरह दवाइयों से शोष रोगी को बहुत ही लाभ पहुँचता है। फुफ्फुस के क्षय पूर्ण करने के लिये यक्ष्मा में लिखी हुई व्यवस्था करनी चाहिये। द्राक्षारिष्ट इन रोगियों को बहुत ही लाभदायक है। अन्य लक्षणों का विचार कर के उनकी शान्ति के लिये दवा देनी चाहिये।

उरःक्षत

आयुर्वेद में उरःक्षत का वर्णन राजयक्ष्मा के साथ हुआ है। इसी लिये और सन्देह का कोई अवकाश नहीं रह गया कि यह भी यक्ष्मा का एक भेद है। वस्तुतः राजयक्ष्मा या यक्ष्मा दोनों बीमारियों में फुफ्फुस में क्षत होता है जब रक्त वमन होता है और खांसते समय दर्द मालूम होता है तभी उरःक्षत के लक्षण आजाते हैं। लेकिन प्रायः यक्ष्मा में ही उरःक्षत होता है।

:: पृष्ठ ११०६ का शेषांश ::

इस रोग के रोगी दशमूल क्वाथ और चन्द्रामृत वटी प्रातः सायं व्यवहार में लावें। तथा मध्याह्न में तालीसादी चूर्ण और विषाण भस्म शहद के साथ चाटें।

शिरःशूल में कायफल का नस्य हितावह तथा कर्पूरधारा का शिर पर परिलेपन सर्वोत्तम है।

कास स्वरभेद में तथा मुंह का स्वाद अच्छा करने के लिए मरिच्यादी वटी चूसने के लिए प्रयोग करें।

तीव्र भूख होने पर दुग्ध पाक विधि सोंठ साधित दुग्ध छान कर पिलावें। तथा गेंहूँ का दलिया भी बिना स्नेह खिला सकते हैं।

उपरोक्त क्रम से यह रोग बिना उपद्रव के शान्त हो जाता है।

इस रोग में सावधानी रखना तथा पथ्यपूर्वक रहना ही सर्वोत्तम चिकित्सा है।

निद्रा और स्वास्थ्य

लेखक—श्री. पं. लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल, शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य।

देह वृत्तौ यथाऽऽहारस्तथा स्वप्नः सुखो मतः।
स्वप्नाहार समुत्थे च स्थौल्यकार्श्ये विशेषतः॥

—चरक संहिता

हमारे प्राचीन ऋषियों की महान प्रतिभा का परिचय आयुर्वेद के रूप में मिलता है। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के विषय में उन्होंने जो सूक्ष्म विवेचन किये हैं उनमें निद्रा का द्वितीय स्थान है। आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य इनको शारीरिक स्थिति में कारण बताया गया है। जैसा कि 'अथ खलुत्रय उपस्तम्भाः आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति' इस चरक के वाक्य से स्पष्ट है। जिस प्रकार शरीर पोषण के लिये आहार का सम्यक् उपयोग सर्वथा करणीय है। उसी प्रकार निद्रा का भी युक्तियुक्त सेवन शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्यप्रद है। निद्रा की महत्ता बताते हुये शास्त्रकार ने लिखा है कि 'निद्रा-यत्तं सुखं दुःखं पुष्टिःकार्श्यं बलाबलम्, वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च'।

मन के थक जाने पर जब इन्द्रियां अपने इन्द्रि-यार्थों से निवृत्त हो जाती हैं तब मनुष्य सो जाता है। सोने से हृदय एवं अन्य पाचक अङ्गों का कार्य शिथिल पड़ जाता है। कोष्ठ में एक विशेष प्रकार का क्लेद उत्पन्न हो जाता है। मानसिक क्रियायें मन्द हो हर्ष व शोक के आवेग घट जाने से एक विशेष शान्ति का अनुभव इसी समय में हुआ करता है।

हम शरीर व मन को पूर्णतया विश्राम देकर ही शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं। चरक ने अष्टौनिन्दितीयाध्याय में 'स्वप्नो हर्षः सुखा शय्या मनसो निवृत्तिः शमः' ऐसा कह निद्रा को प्रथम ही शारीरिक पुष्टि में कारण माना है। निद्रा से शारीरिक व मानसिक गतियां मन्द पड़ जाती हैं। अतः शरीर व मन दोनों को ही विश्राम लाभ होता है। उन्माद रोग में उसकी असाध्यता बताते हुये 'जागरूकोह्यसंदेहमुन्मादेनविनश्यति' ऐसा कहा है। इससे सिद्ध है कि मानसिक स्वास्थ्य लाभ के लिये निद्रा का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है।

निद्रा का सम्यक् उपयोग वही है जिससे शरीर व मन में कोई विकृति न उत्पन्न हो, समता बनी रहे। अतिस्वप्न से शरीर में आलस्य तथा न्यून स्वप्न से रौक्ष्य की प्रतीति होने लगती है। निद्रा का उपयोग अपनी प्रकृति देश व काल का पूर्ण विचार करके ही करना चाहिये। वात प्रकृति वाले को रूक्षता के कारण अधिक शयन एवं पित्त कफ प्रकृति वाले के लिये न्यून स्वप्न हितकर है। ग्रीष्म ऋतु में दुर्बलता के कारण दिन में भी सोना अधिक श्रमशील व्यक्तियों को लाभप्रद है। किन्तु सदा बैठे ही रहने वाले स्थूल देह पुरुषों के लिये उतना लाभप्रद नहीं। जिन्हें कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता वे यदि दिन में न सोयें तो भी उचित ही है। यह तो सर्वथा स्मरणीय है कि दिन में भोजन कर के सोने से श्लेष्मजन्य रोगों की उत्पत्ति संभावित है। शास्त्र का वचन है कि 'भुक्त्वा स्वप्नं न सेवेत सुस्थोप्यसुखितोभवेत्'। वैसे तो दिन के अलावा रात में भी तुरन्त ही भोजन कर न सो जाना चाहिये क्योंकि पाचन-क्रिया की मन्दता से अग्निमांद्य होकर तज्जन्य रोगों की उत्पत्ति की संभावना रहती है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुये शास्त्रकार ने जो लिखा है वह चरक संहिता के ग्रहणीचिकित्साध्याय में दृष्टान्तपूर्वक वर्णित है।

जिन व्यक्तियों को निद्रा किन्हीं कारणों से कम आती है उन्हें नित्य तैल मर्दन के पश्चात् स्नान करना चाहिये। सोते समय में भी पैरों में तैल मर्दन आवश्यक है। भैंस का दूध तथा गुड़ के बने पदार्थ हीन निद्रा वाले व्यक्ति को हितकर हैं। मान-सिक उद्वेग से नींद न आने पर सुरम्य प्रदेश में शयन व मनोरम कथाओं का श्रवण उचित है।

शेषांश पृष्ठ १११६ पर।

मुख को सुन्दर बनाएँ

लेखक—वैद्यराज पं० चन्द्रभान शास्त्री, अमर आयुर्वेद आश्रम, नरौली।

अखिलेश्वर की अखिल चराचर सृष्टि में मानव ही श्रेष्ठ माना गया है। शरीर बल से नहीं, परन्तु अलौकिक मस्तिष्क शक्ति के कारण। इसी लिए मस्तिष्क का अधिष्ठान मुख मण्डल ही समग्र शरीर से विशेषता रखता है अतएव मस्तिष्क के प्रत्येक अङ्ग को स्वस्थ सुन्दर बनाये रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है।

(१) सर्व प्रथम दांतों का ठीक रखना मुख की सुन्दरता को बढ़ाता है। प्रातःकाल उठकर शौच से निवृत होकर दांतुन से दांतों को सफाई करनी चाहिए। स्मरण रखो बुरश टूथ पौडरादि का प्रयोग दांतों के लिए हानिप्रद है। जहां तक हो सके डाढ़ दांत को निकलवाना नहीं चाहिए। मुख की सुन्दरता जाती रहती है, प्रत्येक खाद्य पदार्थ चबा चबा कर खाना चाहिए। ऐसा करने से दांत डाढ़ जबड़ा हलकादि मुख के प्रत्येक अङ्ग का व्यायाम हो जाता है। मुख के प्रत्येक अङ्ग सुन्दर सुडौल बनते हैं।

(२) आंख—आंखों के विकृत हो जाने से सुन्दर मुख भी भद्दा प्रतीत होता है। अतएव आंखों की सुन्दर आकृति बनाये रखना चाहिए।

प्रातःकाल शौच से निवृत होकर ठंडे पानी से आंखों पर छींटे लगाने चाहिए, इससे आंख साफ रहती हैं। सारे दिन की धूल मट्टी निकल जाती है। हाथ की हथेली में पानी लेकर उसमें आंखों को डुबो कर पलकों को खोलें और बन्द करें, कई बार ऐसा करने से रोशनी बढ़ती है। प्रातः भ्रमण करते समय हरियाली को देखना आंखों के लिए विशेष लाभप्रद है। रात को सोते समय सादा गुलाब में बनाया काला सुरमा लगाना चाहिए। अधिक नमक खाना, सर पर गर्म पानी डालना आंखों के लिए हानिकारक है। खाना खाने के बाद कोई मीठा फल या थोड़ा सा गुड़ खाना आंखों के लिए लाभप्रद है। उपरोक्त नियमों के पालन करने से आंखों की आकृति विशेष सुन्दर बनती है।

(३) प्रातःकाल स्नान कर सूर्यरश्मि के सामने नग्न शरीर खड़ा होना मुख और शरीर की आकृति को सुन्दर बनता है। इसी ध्येय को लेकर संध्योपासन समय सूर्य नमस्कार किया जाता है। फुफ्फुस की शुद्धि और स्वास्थ्य रखने के लिए प्राणायाम भी किया जाता है। मुखाकृति सुन्दर बनाने के लिए शीर्षासन भी लाभदायक है। इस आसन के बाद खाली पेट घृत पान करना अच्छा रहता है।

जो माता पिता चाहें कि हमारी सन्तान सुन्दर स्वास्थ्य पूर्ण हो उन्हें चाहिए कि गर्भाधान से लेकर बच्चा होने तक अपने कमरे में सुन्दर आकृति वाले बच्चों की और सुन्दर वीर पुरुषों के फोटो लगा रक्खें। स्त्री दिन में कई बार सुन्दर भावना करती हुई इन सुन्दर स्वस्थ कर्म वीरों की तस्वीरों का दर्शन करें, स्त्री को शूरवीरों की गाथायें सुनानी चाहिए। ऐसा आचरण करने से अवश्यमेव नवजात शिशु सुन्दर शूरवीर स्वाभाविक ही होगा।

मुख की विकृति को दूर करने के उपाय

सर्वप्रथम कारण मालूम होना चाहिए कि किस रोग के कारण मुख की सुन्दरता बिगड़ती जा रही है। जैसे कि अजीर्णता के कारण मुख की लालिमा घट जाती है। (२) पांडुरोगाक्रांत होने से मुख पीला पड़ जाता है। (३) कोष्ठबद्धता के कारण मुख की सुन्दरता बिगड़ जाती है। (४) चिन्ता मग्न रहने से, शोक भय, ईर्षाक्रांत होने से मुख मलिन होकर सुंदरता जाती रहती है। अतएव जो भी कारण हो पहले उसे दूर करने का यत्न करना चाहिए। सबसे बड़ी बात सादा रहन-सहन ऊंचे विचार प्रातः

सांय भ्रमण, यथोचित पथ्यापथ्य का विचार रखना चाहिए।

मुख की कुरुपता दूर करने के उपाय

(१) मुख के मुहांसे दूर करने के लिए बन्द कमरे में नेत्र बन्द कर गर्म पानी की भाप मुख पर लें। खूब पसीना आने पर मुख को गीले तौलिया से साफ करें। इस प्रकार मुहांसे दूर होकर मुख की सुन्दरता बढ़ती है।

(२) निम्बू का अर्क और जेतून का तैल सम-भाग मिलाकर मलने से मुख सुंदर होता है।

(३) अरण्डी का तैल और बेसन मिलाकर मुख पर मलें। बाद में गर्म पानी से धो डालें।

(४) सन्तरे तथा निम्बू का छिलका मुख पर सोते समय मलें।

(५) मसूर की दाल पानी के साथ पीस कर मुख पर लेप करें। सूखने पर धो डालें, मुख सुन्दर हो जायेगा।

(६) लाल टमाटर के रस का लेप करें कुछ घण्टे बाद गाय के दूध से मुख धोकर, ताजे पानी से साफ करें। प्रतिदिन ऐसा करने से मुख की कांति बढ़ती जायेगी।

(७) श्वेत चन्दन का मुख पर लेप करें।

(८) हवन यज्ञ का अवशेष पानी में पड़ा घृत मुख पर लगाने से उपरोक्त लाभ होता है।

(९) सोते समय दूध और निम्बू रस मिलाकर मुख पर मलने से त्वचा साफ हो जाती है।

(१०) स्नान से पहले प्रतिदिन मुख पर दही और मलाई मलने से मुख सुंदर होता है। मुख का रंग बदलता है। शरीर को स्वस्थ तथा मुख को सुंदर बनाने के लिये अधिकतर सन्तरा, टमाटर, सेव, बकरी गाय का दूध, मक्खन का प्रयोग करना चाहिये। पारिवारिक तथा मित्रजनों के साथ दिन भर खूब हंसना चाहिए। आत्म-शांति बढ़ाना चाहिये, क्रोध चिन्ता से दूर रहना चाहिये।

मुख की सुन्दरता के बिगड़ने के कारण

(१) मुख को कपड़े से ढंक कर सोने से तथा दिन भर परदा में रहने से मुख की सुंदरता बिगड़ जाती है। मुख पर पीलापन आ जाता है।

(२) तम्बाखू, लालमिर्च, चाय-कहवा के अधिक प्रयोग करने से मुख का रङ्ग काला पड़ जाता है और मुख की सुन्दरता जाती रहती है।

(३) खटाई, मद्यपान के अधिक प्रयोग से मुख की लालिमा लुप्त हो जाती है तथा वीर्य के अधिक नाश होने से मुख पर झुरियां पड़ जाती हैं, मुखमंडल कुरुप लगता है। उपरोक्त नियमों पर आचरण करके प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने शरीर को पूर्णरूपेण स्वस्थ सुन्दर बना सकता है।

:: पृष्ठ १११४ का शेषांश ::

किसी वेदना-विशेष से यदि नींद न आरही हो तो हाथ व पैरों के तलवों पर बकरी के दूध में महीन पिसी हुई भांग की पत्ती का लेप आश्चर्यजनक प्रयोग है। प्रमेह व विष रोग में निद्रा का अधिक सेवन रोग वृद्धिकारक है।

निद्रा के विषय में यह बात सदा ही ध्यान देने योग्य है कि प्रातःकालीन निद्रा सबसे अधिक प्राण-शक्ति का ह्रास करती है। किसी भी दशा में प्रातःकाल का निद्रा सेवन स्वास्थ्यप्रद नहीं। आज हमारे यहां के अधिकांश व्यक्ति इस बात की उपेक्षा करते हुये दृष्टिगत हो रहे हैं जिसका विषमय परिणाम स्वास्थ्य-हीनता एवं बुद्धि-विहीनता के रूप में उपस्थित है। अधिकांश चिकित्सक भी केवल स्वार्थ-परता में सने हुये रोगों की चिकित्सा में प्रवीणता का परिचय प्रदान कर औषधि मात्र को ही स्वास्थ्य-कारक बता रहे हैं किन्तु स्वास्थ्य के मूलभूत प्रातः जागरण की ओर रोगी का ध्यान आकर्षित नहीं करते। शास्त्र का स्वस्थवृत्त में पहिला ही वचन है कि 'ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्तिष्ठेतस्वस्थो रक्षार्थमायुषः'। आयु का अर्थ प्राण-शक्ति से है प्राण ही आयु है। उसकी रक्षा के लिये यह अनिवार्य है कि प्रातःकाल उठा जाये। इसी बात को लक्ष्य करके कहा गया है कि 'पूतिमांस स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि, प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राण हराणिषट्'। प्रातःकालीन निद्रा प्राण शक्ति का नाश करती है। अतः वह सर्वथा त्याज्य है।

श्री पं० राजेश्वरदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

अध्यक्ष आयुर्वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

लेखक—आयुर्वेदाचार्य श्री पं० रघुवीरप्रसाद जी वैद्य बी० ए०, ए० एम० एस०।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एग्जीक्युटिव कौंसिल ने अपनी गत बैठक में १५ सितम्बर को आयुर्वेद कालेज के स्थानापन्न प्रिंसिपल तथा आयुर्वेदविभागाध्यक्ष श्री पं० राजेश्वरदत्त शास्त्री को विशेषज्ञ समिति की सर्वमान्य सम्मति के अनुसार प्रोफेसर ऑफ आयुर्वेद के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है। इसके लिए कई विद्वज्जन देश के विभिन्न भागों से आमन्त्रित किये गये थे जिन सब में पूज्य शास्त्री जी को सर्वश्रेष्ठ माना गया।

आपने सन् १६२७ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की आयुर्वेदशास्त्राचार्य परीक्षा सर्व प्रथम रूप में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और तदर्थ उनको स्वर्ण पदक भी प्राप्त हुआ। प्रातःस्मरणीय पूज्यचरण महामना मालवीय जी सदैव योग्य व्यक्तियों की खोज में रहा करते थे। पास करते ही उन्होंने शास्त्री जी को सर सुन्दरलाल चिकित्सालय में हाउस फिजीशियन पद पर नियुक्त किया तथा १६-८-१६२८ को रेजीडेण्ट पद पर भेज दिया। इस पद पर वे १६४२ तक रहे तथा इसी काल में आयुर्वेद फार्मेसी में औषधि निर्माण के साथ छात्रों को भैषज्यकल्पना का व्यवहारिक निर्देशन भी किया।

फिर आपको क्लीनिकल आयुर्वेद मेडिसन के लेक्चरर पद पर अपनी विद्वत्ता के कारण मालवीय जी महाराज ने बैठा दिये। लगभग ६ वर्ष इस पद पर सफलतया कार्य करके आपको बिना किसी निर्वाचनकारिणी समिति के समक्ष भेजे आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता पर मुग्ध होकर विश्वविद्यालय अधिकारियों ने आपको सन् १६४८ में असिस्टेण्ट प्रोफेसर आफ आयुर्वेद थेराप्यूटिक्स के पद पर नियुक्त कर दिया। पूज्यचरण कविराज पं० सत्यनारायण शास्त्री जी के कालेज सेवा विमुक्त

श्री पं० राजेश्वरदत्त शास्त्री

होने पर उनके स्थान पर आपको वासनजी खेमजी चेयर पर प्रोफेसर आफ आयुर्वेद के पद पर ४०० से ७०० ग्रेड में सीधा नियुक्त कर दिया गया। बाद में विश्वविद्यालय ने एक विशेष नियम के अनुसार इस पद को ५०० से ८०० के वेतनक्रम में रीडर आफ आयुर्वेद कर दिया। इस पद पर १६५१ से आप कार्य कर रहे हैं। इसी साल आपको आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष पद पर भी प्रतिष्ठापित कर दिया गया। सन् ५५ तक आप डीन आफ दी फेकल्टी आफ मेडीसन एण्ड सर्जरी (आयु०) भी रहे। सन् १६५६ में जब सर सी० पी० रामास्वामी ऐयर महोदय के प्रयत्नों से केन्द्रीय सरकार ने यहां

आयुर्वेद रिसर्च विभाग खोलना स्वीकार कर लिया तो उसमें आयुर्वेद डाइरेक्टर के गौरवास्पद पद पर आपको नियुक्त किया गया। आप सन् १९४२ से ही सर सुन्दरलाल चिकित्सालय के चिकित्सक तथा प्रधान चिकित्सक के रूप में सम्बद्ध रहे हैं।

डाक्टर वर्मा महोदय के रिटायर होने पर जुलाई १९५७ से आप आयुर्वेद कालेज के प्रिंसिपल, सर सुंदरलाल चिकित्सालय के सुपरिटेण्डेण्ट, तथा आयुर्वेद छात्रावास के चीफ वार्डन भी बना दिये गए हैं।

आयुर्वेद कालेज में प्रोफेसर आफ आयुर्वेद की सर्वोच्च पदवी है। इसका वेतन क्रम ८००-५०-१२५० है। सम्भवतः देश में इतने अधिक वेतन-क्रम की आयुर्वेदीय सेवाओं में यह प्रथम पोस्ट है जिस पर पूज्य शास्त्री जी की नियुक्ति परम शोभनीय और पूर्णतया उपयुक्त है। शास्त्री जी का पूरा जीवन आयुर्वेद के अध्ययन, अध्यापन तथा शुद्ध आयुर्वेद चिकित्सा करने में व्यतीत हुआ है। २९-३० वर्ष के इस प्रगाढ़ पाण्डित्यपूर्ण अनुभव से ओत-प्रोत कुछेक विद्वान् ही इस समय दिखलाई देते हैं।

आपने आयुर्वेद वाङमय की भी ठोस सेवा की है। १९३० में आपने सर्व प्रथम सुप्रसिद्ध ग्रन्थ स्वस्थ्यवृत्त समुच्चय लिखा जिसमें आयुर्वेदीय स्वास्थ्य साहित्य का अनूठा सकंलन अपनी वैदुषी से प्रगट किया जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा अद्यावत् होरही है। फिर आपने प्रतापकण्ठाभरण का हिन्दी अनुवाद किया, तदनन्तर सुप्रसिद्ध भैषज्य-रत्नावली रूप परिमार्जित शुद्ध टीका से युक्त ग्रन्थ का सम्पादन किया तथा अपने अनुभव से एकसर्वथा नवीन अध्याय जोड़ कर अपने प्रखर पाण्डित्य का सफल परिचय दिया। अभी-अभी आपकी लेखनी से जो ग्रन्थ कृतार्थ हुआ है इसका नाम है चिकित्सा-दर्श, जिसमें उनके अनुभव की पूरी पूंजी संजोई गई है। आयुर्वेदीय चिकित्सा का यह ग्रन्थ नवीनतम तथा अत्युत्तम है।

सार्वजनिक सेवा क्षेत्र में भी श्री शास्त्री जी किसी से पीछे नहीं रहे। सर्व प्रथम १९३० में आपको अखिल यू० पी० आयुर्वेद कान्फ्रेंस झांसी का अध्यक्ष नियुक्त किया। वहां आपके विद्वतापूर्ण भाषण को श्रवण कर आयुर्वेदीय विद्वज्जन बहुत संतुष्ट हुये। बोर्ड आफ इण्डियन मैडीसन में १९३६ से १९४७ तक आप आयुर्वेदीय शिक्षकों के निर्वाचन क्षेत्र से सफलतापूर्वक विजय प्राप्त कर आये। १९४७ में वैद्यों ने आपको अपना प्रतिनिध चुनकर भेजा तथा अब पुनः विश्वविद्यालय ने आपको उसकी सदस्यता के लिये नामजद किया है। चोपड़ा कमेटी की साइंटिफिक मेमोरेण्डा कमेटी के आप सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य रहे हैं। उत्तर प्रदेश की रिआर्गनाइजेशन कमेटी में १९५० में तथा राजस्थान सरकार द्वारा नियुक्त आयुर्वेदोत्थान कारिणी समिति के १९५५ में सदस्य बनाए गए हैं। आप आयुर्वेद तथा तिब्बी एकेडेमी यू० पी० के भी सरकार द्वारा सदस्य बनाए गए हैं। आप वर्षों अखिल भारतवर्षीय महा सम्मेलन में तथा विद्यापीठ में अच्छे स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

शास्त्री का जीवन आयुर्वेद की सेवा में बीत रहा है। वे हृदय से आयुर्वेद की शुद्ध धारा को मानने वाले हैं, पर वे मिश्र पद्धित को समयोचित बनाने के लिए सर्वथा प्रयत्नशील रहते हैं। उनका अपना मत यह है कि जब तक विद्यार्थी मूल आप्तप्रणीत ग्रन्थों को समझने की शक्ति नहीं रखता तब तक वह आयुर्वेद में निष्णात नहीं माना जा सकता।

शास्त्री जी अपनी पीढ़ी के माने हुए विद्वान हैं, उनका आयुर्वेद का ज्ञान उनके वर्षों के अनुभव से परिपुष्ट हुआ है। उनके आयुर्वेदीय भाषण जिन्हें वे बहुधा रोगीशैयाओं के किनारे खड़े होकर विद्यार्थियों को प्रदान करते हैं वे अपूर्व और उनकी वैदुषी के प्रसारक होते हैं।

परमात्मा से प्रार्थना है कि वह उन्हें आयुर्वेद सेवा के लिए शतायु करे।

ताड़गुड़ या ताल मिश्री

लेखक श्री कविराज सुधाकर त्रिवेदी, सिमडेगा।

ताड़गुड़ या ताल मिश्री एक उपयोगी औषधि है। खांसी के लिए तो यह अमृत ही है। ताड़गुड़ का निर्माण, ताल के मीठे रस से होता है। 'ताल' एक वस्तुवाचक शब्द है। यह शब्द ऐसे पेड़ों का परिचायक है जिनसे मधुर रस निकाल कर गुड़ बनाया जा सके। मुख्यतः ताड़, खजूर, माड़ी एवं नारियल ये चार प्रकार के पेड़ हैं, जिनसे सुमधुर रस निकालकर गुड़ निर्माण किया जाता है। ताड़ के शुद्ध एवं मीठे रस को "नीरा" कहते हैं। 'नीरा' का अर्थ नीर होता है। नीरा की पहिचान यही है जब वह पानी के सदृश हो। नीरा में सुगन्धि तो होती है किन्तु नशा नाम मात्र भी नहीं होता। वैदिककाल में यही नीरा 'सोमरस' कहलाता था। 'सोमरस' एक प्रकार की लता एवं वृक्ष से ही प्रस्तुत किया जाता था। नीरा के दूषित रूप को ही 'ताड़ी' कहते हैं। इसमें एक प्रकार के कृमि पड़ जाते हैं जिससे इसका स्वाद खट्टा हो जाता है। इसका रंग भी दूध के सदृश फेन लिए हुए हो जाता है।

खजूर के पेड़ से अक्तूबर से मार्च तक रस प्राप्त किया जा सकता है। इसके धड़ को तेज चाकू से काटते हैं, काटते समय यह सावधानी प्रयोग करते हैं कि रस देने वाली छोटी छोटी टहनियां न कट जांय। पन्द्रह दिनों तक ऐसी पद्धति करने के पश्चात् उससे रस आना आरम्भ हो जाता है। पेड़ को सूरज के मुख की ओर ही छेदा जाता है। इसका कारण यह है कि नीरा प्राप्त होने वाले स्थानों पर सूरज का प्रकाश पहुँच जाय तथा वह स्थान सूख जाय। नहीं सूखने से वह स्थान सड़ जाता है, अथवा वहां पर कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। वे ही कृमि नीरा को दूषित कर ताड़ी बना देते हैं। 'नीरा' उतार लेने के पश्चात् उस स्थान को फिटकरी के पानी से धो देना पड़ता है।

ताड़, नारियल एवं माड़ी के पेड़ में कुछ बाल निकलते हैं, जिनको डोडा भी कहते हैं। उन डोडों को लकड़ी से मलकर रस निकाला जाता है। इन पेड़ों से अप्रेल से जून तक रस प्राप्त हो सकता है। शुद्ध नीरा के लिये नीरा पात्र पर भी ध्यान दिया जाता है। नीरापात्र को प्रतिदिन अच्छी तरह से स्वच्छ करके अग्नि से या धूप में सुखा देना चाहिए, जिससे उसमें किसी तरह की गन्ध न रहने पाये। उस पात्र को पेड़ पर लगाते समय उसमें चूना का घोल अल्प मात्रा में देना पड़ता है। इस चूने के घोल को देने से नीरा को दूषित करने वाले सभी साधन नष्ट हो जाते हैं। शुद्ध नीरा एक कड़ाह में चढ़ाया जाता है। लगभग ४०-५० सेंटीग्रेड गर्म होने पर उसमें सुपरफास्फेट का घोल दिया जाता है इस घोल को देने से उसका चूना एवं और भी गन्दी चीजें बाहर निकल जाती हैं। सुपरफास्फेट मिलाने के पश्चात् उसको १०० सेंटीग्रेड तक गर्म होने के पश्चात् कड़ाह को उतारकर उससे रस किसी अन्य पात्र में निकाल कर ठंडा करते हैं। ठंडा होने पर चूने के साथ गन्दी चीजें भी नीचे बैठ जाती हैं तथा शुद्ध नीरा ऊपर रह जाता है। रबड़ नी नली से उस नीरा को बाहर निकालकर फिर कड़ाह पर चढ़ाते हैं। धीमी आंच से गर्म करते हैं और उसे बराबर चलाते रहते हैं, ताकि जलने न पावे। इस प्रकार धीरे-धीरे वह गुड़ बन जाता है। तब कड़ाह को आंच से उतारकर किसी सांचे में ढाल देते हैं और वही ताड़गुड़ या तालमिश्री कहलाता है।

ताड़गुड़ से लाभ

ताड़गुड़ से हमको आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक लाभ होते हैं। हमारे यहां बिहार में ५ करोड़ ताड़ के वृक्ष हैं जिनसे रस प्राप्त कर गुड़

निर्माण किया जा सकता है। इन ५ करोड़ पेड़ों से हम आसानी से १ करोड़ मन गुड़ तैयार कर सकते हैं। जिससे १५ करोड़ रुपयों की आय होगी। गन्ने में लगी १० लाख एकड़ जमीन मुक्त जायगी जिसमें ७ लाख टन गेहूँ तथा चावल की उपज हो सकती है। रस प्राप्त करने के लिये गुड़ बनाने तक हमें कड़ाह, पसली, रस्सी, मिट्टी के बर्तन, चमड़े, ईंट इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार लगभग ६ लाख कुम्हार, लोहार, मोची, बढ़ई तथा ईंट बनाने वाले व्यक्तियों को रोजी मिल जाती है। इससे सामाजिक एवं आर्थिक दोनों लाभ प्राप्त हो सकते हैं। ताड़गुड़ बनाने से लोग ताड़ी बनाना छोड़ देंगे और उन लोगों की ताड़ी पीने की आदत छूट जायगी। ताड़ी से देश के १ करोड़ रुपये नष्ट होते हैं। ताड़ी की आदत छूट जाने से हमारा सांस्कृतिक सुधार होगा क्योंकि सामाजिक दोष दूर होने पर समाज का एक सुन्दर ढांचा तैयार होता है।

ताड़गुड़ या तालमिश्री का व्यवहार 'टाइफाइड' के लिये परमोपयोगी सिद्ध हुआ है। 'कालाज्वर' में लोगों के गले के भीतर छोटे-छोटे घाव हो जाते हैं, जिनसे वे खाने में असमर्थ हो जाते हैं। रोगी बहुत कमजोर हो जाता है ऐसी हालत में तालमिश्री उष्णोदक (गर्मपानी) में घोलकर सेवन कराने से अपूर्व लाभ होता है। विटामिन 'बी' एवं 'डी' की प्राप्ति भी तालमिश्री से होती है। इन विटामिनों से रोगी शीघ्र ही सशक्त हो जाते हैं। जब बच्चा पैदा होता है तो दो-तीन दिनों तक वह मां का दूध नहीं पीता, उस हालत में 'ग्लूकोज' या गाय का दूध देने से बच्चों को अतिसार होने का भय रहता है। वैसी परिस्थिति में यदि तालमिश्री का घोल दिया जाय तो अतिसार होने का भय नहीं होता तथा बच्चों को बल की वृद्धि होगी क्योंकि विटामिन बी० और डी० की कमी को तालमिश्री पूरी कर देती है।

साधारणतया डाक्टरों का अनुमान है कि स्वस्थ व्यक्ति में लगभग दश प्रतिशत चीनी का रहना आवश्यक है। यदि इससे बढ़कर १००.८ प्रतिशत हो जाय तो वृक्काशय अपना काम करना छोड़ देता है जिससे चीनी की पाचन-क्रिया समुचित नहीं हो पाती। उस चीनी का मूत्राशय से बाहर निकलना प्रारम्भ हो जाता है। यही मधुमेह रोग है। उस अवस्था में ताड़मिश्री या नीरा का सेवन करने से उचित मात्रा में चीनी प्राप्त हो जाती है और वह सुपाच्य हो जाती है फलस्वरूप 'मधुमेह' रोग मिट जाता है। यदि यह उद्योग भारतवर्ष के सभी राज्यों से समुन्नत होता जायगा तो कुछ वर्षों में संसार का कल्याण करेगा। भारत सरकार को इस उद्योग पर पूर्ण ध्यान देकर इसकी प्रगति को अग्रसर करना चाहिये।

इस अङ्क के मिलने पर

- आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य शीघ्र भेज दीजियेगा। मनियार्डर फार्म इस अङ्क के साथ भेज रहे हैं।
- यदि राजसंस्करण प्राप्त करना चाहें तो ६॥) मनियार्डर से भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित कर लीजिये।

सिंहक-बूटी (वांसा)

लेखक—वैद्य आत्माराम कोष्ठी, आयुर्वेद विशारद, सिवनी (म० प्र०)

यह एक सत्य घटना है। लगभग ४ वर्ष पूर्व की है। इसी शहर के निवासी श्री दौलतसिंह जी एक भयंकर रोगी को मेरे पास लाये। वह एक युवती थी। देखने से स्पष्ट मालूम होता था कि इस युवती को क्षय अथवा राजयक्ष्मा का रोग है। युवती का सर्वांग सूख सा गया था तथा उसका सम्पूर्ण सौन्दर्य नष्ट हो चुका था। सदा जीर्ण-ज्वर से पीड़ित, सर्वाङ्ग में रक्त का अभाव, बल मांस अत्यन्त क्षीण हो चुके थे। कन्धे तथा पसलियों में पीड़ा, अरुचि, मंदाग्नि, दाह, पतले दस्त तलुओं में जलन, ज्वर, कास (खांसी) से अत्यधिक पीड़ित, खांसते-खांसते सर्वाङ्ग टूट सा जाता था। साथ ही साथ प्रदर की भी शिकायत थी। पूंछने से ज्ञात हुआ कि उसे कुछ दिनों से मासिक धर्म भी बन्द होगया था। श्रीमान् दौलतसिंह जी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा कि मैं सब डाक्टरों एवं वैद्यों का इलाज करा चुका हूँ किन्तु उससे कोई कोई लाभ न हुआ। अब मैं आपके पास लाचार होकर आया हूं। दौलतसिंह जी कहने लगे कि अब आपको किसी प्रकार से अच्छा करना होगा। मैंने उन्हें सांत्वना दिया कि ईश्वर पर विश्वास रखिये मैं इसका इलाज करने के लिये तैयार हूँ ईश्वर की अनुकम्पा से अवश्य लाभ होगा। तत्पश्चात् मैंने इलाज करना प्रारम्भ कर दिया। दवायें जो मैंने दीं वे इस प्रकार दीं—

विधि—खपरिया २ तोला लेकर दौलायन्त्र से गोमूत्र में अग्नि पर चढ़ा कर चार प्रहर में शुद्ध करलें। फिर उसी शुद्ध खपरिया को लेकर उससे आधी कंकोल मिर्च (सफेद मिर्च) लें फिर गाय के मक्खन में दोनों को एक प्रहर मर्दन (घोटें) करें फिर नीबू का रस डालकर खूब खरल करें, जब तक मक्खन की चिकनाई दूर न हो जाय तब तक मर्दन किया जाय। जब मक्खन की चिकनाई दूर हो तब दो रत्ती की गोली बनाकर छाया में सुखालें।

मात्रा—१ गोली शुद्ध शहद ६ माशे छोटी पीपर का चूर्ण १ माशा के साथ खाने को दें। मैं इस दवा की हल्की मात्राएं दिन में कई बार देता गया। तथा रविवार के दिन यह ताबीज उसके गले में बांध दिया।

१६५६११	१६५६२५	१६५६७१	१६५६१८
१६५६२२	१६५६१७	१६५६१२	१६५६२४
१६५६१६	१६५६१९	१६५६२७	१६५६१३
१६५६२६	१६५६१४	१६५६२५	१६५६२०

बनाने की विधि—यह ताबीज रविवार के दिन लिख कर केसर से, सिंहक बूटी की जड़ दो माशे अपामार्ग की हरी बालें १-१ माशा लेकर तांबे के पात्र में मढ़कर और ईश्वर के नाम पर धूप देकर गले में बांध देवें। फिर परमेश्वर का चमत्कार देखें। इस ताबीज की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक बताना है। इसके गुण बहुत हैं। इसका हम एक स्वतंत्र लेख लिखेंगे जिससे पाठकों को अद्भुत गुण प्रतीत होगा। इस दवा के साथ ही साथ मैंने सिंहक बूटी का अवलेह भी देता गया जिससे वह युवती कुछ ही दिनों में स्वस्थ होने लगी। अब वह पूर्ण स्वस्थ हो गई तथा भगवान की कृपा से एक पुत्री भी उत्पन्न हुई। वह अवलेह निम्न प्रकार का है।

सिंहक बूटी का अवलेह—सिंहक बूटी का रस ३२ तोला, शक्कर ६४ तोले मिला कर पाक करें। फिर पीपल और घी ४-४ तोले मिलाकर अग्नि में पकावें, चाटने योग्य हो जाने पर उतार लें। १६ तोले शहद मिलालें। अब यह अवलेह तैयार होगया।

मात्रा—आधा तोला से एक तोला तक दिन में दो या तीन बार चटावें तथा कुछ समय बाद दूध पी लिया करें।

इन दोनों औषधियों द्वारा मैं क्षय, खांसी श्वास हृदयशूल, उरःक्षत, रक्तपित्त इत्यादि रोगों की चिकित्सा सफलतापूर्वक किया करता हूँ।

सिंहक बूटी का परिचय

यह बूटी सिंहक, वृशा, सिंहमुखी, भिषक्, सिंहपर्णी, उत्पारूषक, प्रसिद्ध नाम वासा तथा अड़ूसा नाम से सब जगह प्रसिद्ध है।

वासायां विद्यमानायां, आशायां जीवितस्य च''
रक्तपित्ती, क्षयी कासी, किमर्थम वसीदीत।

अर्थात् जब तक वासा विद्यमान है तब तक संसार के जीवित प्राणियों में आशा का संचार है; वासा जड़ी के रहते हुये रक्तपित्त वाले रोगी, कास पीड़ित रोगी एवं क्षय रोगी इतना कष्ट क्यों पाते हैं।

वासा जग में यूं कहे, जिस बन में मम वास।
क्योंपावत दुःख नर जगत, जाको कहे अरि कास॥

अर्थ—वासा इस संसार में इस प्रकार कहता है कि ए रोगी प्राणियो ! संसार में मेरे रहते हुये आप लोग इतना दुःख क्यों पाते हो।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि दुर्भाग्य या मूर्खता इससे बढ़कर क्या होगी कि वासा जैसी अमृत तुल्य बूटियों के बन के बन भरे पड़े हैं। किन्तु फिर भी लोग क्षय रोग से पीड़ित होकर हजारों की संख्या में काल के ग्रास होरहे हैं।

गुण—हृदय को हितकारी, शीतल, कफ, पित्त, श्वास, खांसी, वमन (उल्टी), ज्वर, कोढ़, स्वर के लिए उत्तम, कड़वा, कसैला, क्षय रोग को दूर करता है।

नोट—वांसा क्षय रोग में छाती और फेफड़े के रोगों के लिए अत्यन्त गुणकारी है।

वासा युक्त कुछ औषधियां निम्न प्रकार हैं—

१—वांसा के हरे पत्तों का रस आधा तोला, अदरक का रस आधा तोला, शुद्ध मधु आधा तोला ये तीनों मिलाकर दिन में तीन बार पीना चाहिए। खांसी, श्वास रोगों के लिये गुणकारी है।

२—हरा वांसा पंचाग कूटकर रस निकालें तथा शुद्ध मधु एवं मिश्री मिलाकर रोगी को पिलावें। पांडु कमला के रोगी को अत्यन्त लाभदायक है। यह औषधि सिद्ध कर चुका हूं।

३—वांसा के हरे पत्तों का रस २ तोला, भटकटईया की हरी पत्तियों का रस २ माशा, मधु आधा तोला, तीनों को मिलाकर चाटे। यह कफ खांसी को दूर करता है।

४-वांसा के हरे पत्ते का रस आधा तोला, काला नमक ३ माशा मिला कर चाटे, दिन में ४-५ बार दें। यह औषधि खांसी के लिये परम गुणकारी है।

५—बांसा के पत्ते, थोड़ा सैंधानमक मिलाकर कपड़-मिट्टी कर सुखा लें। कंडों के द्वारा भस्म बनालें। पीसकर शीशी में रखें; मात्रा आधा रत्ती से १ रत्ती, अदरक या मधु के साथ दें। दिन में कई बार दें। यह भस्म खांसी वाले रोगियों पर हितकर है।

६—बांसा के हरे पत्तों का रस १ तोला १ माशा काला नमक आधा तोला मधु मिलाकर किंचित बादाम का तेल मिलाकर रोगी को पिलावें। दिन में दो या तीन बार। यह सूखी खांसी के लिए अत्यन्त गुणकारी है।

७—सूखे बांसापत्र और सूखे धतुरा के पत्र दोनों मिलाकर और चिलम में रख खूब कस लगावें (पीवें) तम्बाखू की भांति। यह श्वास

(दमा) चाहे कितना ही भयङ्कर क्यों नहो मिट जावेगा।

८—बांसा के ताजे पत्र लेकर पीस लें और तालू पर लेप कर दें इससे नाक से खून आना बन्द हो जायगा। इसे हम कई बार अनुभव कर चुके हैं।

९—बांसा के हरे पत्तों का रस ४ तोला, शुद्ध मधु २ तोला, मिश्री १ तोला मिलाकर पिलावें इससे शरीर के किसी भी भाग से रक्त आता हो तो बन्द हो जाता है।

१०—बांसा के पत्तों के रस में बोलबद्ध रक्त २ रत्ती से ३ रत्ती तक तथा मिश्री और शहद मिला कर सुबह शाम पिलावें। इससे अम्लपित्त, रक्तपित्त रक्तप्रदर, खूनी बवासीर, नाक, मुंह, योनि-मार्ग आदि किसी भी भाग से गिरता हुआ रक्त से बन्द हो जाता है। यह हमारा कई रोगियों पर अनुभवकारी सिद्ध हो चुका है।

११—बांसा के पत्तों का रस १तोला, शुद्ध मधु २ तोला, १ रत्ती लोहभस्म मिलाकर दें। खून की कमी वाले रोगी इससे लाल सुर्ख हो जाते हैं।

१२—बांसापत्र के सूखे पत्तों को जलाकर राख बनालें, दांतों पर मलने से दांतों की पीड़ा एवं खून का आना, हिलना आदि रोग दूर होते हैं।

१३—बांसा के हरे पत्तों को कूटकर टिकिया बनालें, दुखती आंखों पर बांध दें।

१४—बांसा का पत्र १ तोला तीन पाव पानी में पकालें, चौथाई भाग बचे तब उतार-छानकर फिर अग्नि पर रख दें। २ माशा सोंठ १ माशा मिर्च थोड़ी मिश्री मिलाकर सुबह शाम पिलावें। दो-तीन दिन में जुकाम अच्छा हो जाता है।

१५—अडूसे के पत्ते १ सेर, अडूसे की जड़ १ सेर, अडूसे के फूल १ सेर इनको कूटकर १० सेर पानी में जलावें, आधा रह जाने पर उतार छानकर फिर तीनों चीजें आध सेर डाल चुड़ावें जब ढाई सेर पानी रह जावे तब उसको मल छानकर फिर तीनों वस्तुयें एक सेर डालकर उबालें, उसमें सवा सेर पानी रह जाय तब मल छानकर शीशी में रख लें।

मात्रा–२॥ तोला तथा १ तोला शहद मिलाकर तीन-चार बार दें। खांसी, ज्वर, मुंह से खून का गिरना, खून की वमन, खूनी बवासीर एवं क्षयरोग वालों के लिए अत्यन्त गुणकारक सिद्ध हुआ है।

१६–बांसा (अडूसा) के पत्ते २ सेर, फूल आधा सेर, जड़ आधा पाव इनको ८ सेर जल में शाम को भिगो दें, सबेरे आग पर रख गरम करें। ८ सेर गाय का दूध मिला दें। भवके इसके बाद भाप के द्वारा उसका अर्क खींच लें।

मात्रा—यह अर्क ५ तोला एवं थोड़ी सी मिश्री मिलाकर दिन में ३-४ बार पिलावें। क्षय रोग को अत्यन्त लाभदायक, शरीर को जारत वर्ण कर देता है। तथा श्वास खांसी के लिए लाभदायक है।

१७—पके हुए बांसा पत्र सवासेर, चीनी सवा-सेर। पहले बांसापत्र आठ पहर पानी में भिगो रखें फिर अग्नि पर रखकर चुड़ावें। आधा पानी रह जावे उतार लें, थोड़ा शीतल होने पर मलकर छान लें और छने हुए पानी में चीनी डालकर शरबत की चासनी बनालें।

मात्रा—१ छटांक दिन में २-३ बार लें। यह शरबत खांसी और श्वास कास पर हितकर है।

१८—बांसा की जड़, पत्ते भलीभांति कूटपीस कर पानी में भिगो करके किसी कपड़े में छान लें फिर किसी पात्र में लेकर मन्द आग में पकावें। पानी जलने पर जमी हुई बस्तु बांसा सत्व हुई।

मात्रा–१ रत्ती से २ रत्ती तक शहद और अद-रक के रस के साथ दिन में दो-तीन बार दें। खांसी के लिए हितकारक तथा पाचक, है, भूख बढ़ाता है अडूसे के पत्तों को पानी में डुबोकर कुल्ला करने से दांतों की पीड़ा शांत होती है।

१९–बांसा अवलेह—अडूसे का रस, सोनामाखी, मिश्री और पीपरी ये आठ-आठ तोले। ये डालकर मन्द अग्नि से पकावें जब गाढ़ा हो जाय तब शीतल

होने पर आठ तोले शुद्ध शहद मिलावें। १ तोला प्रतिदिन खावें तो खांसी, कफ, बवासीर, राजयक्ष्मा इत्यादि रोगों को दूर करता है। यह भी हमारा परीक्षित है।

२०—वांसा हरितक्यादि अवलेह—वांसा की जड़ या ताजी पत्ती ४०० तोला लें और कूटकर आठगुने जल में कलईदार बर्तन में पकावें, जब चौथाई जल शेष रहे तब ठंडा करके कपड़े से छान करके उसमें गुठली निकली हुई हरड़ (बड़ी) का चूर्ण २५६ तोला और चीनी ४०० तोला डालकर पकावें। पकाते समय लकड़ी से हिलाते रहें, लेई जैसा हो जाय (गाढ़ा) तब नीचे उतार लें, ठंडा होने पर उसमें ३२ तोले शहद (शुद्ध) और १६ तोला बंशलोचन, २ तोला छोटी पीपल ४ तोला दालचीनी, ४ तोला छोटी इलायची, ४ तोला तेजपत्र, ४ तोला नागकेसर, ४ तोला काकड़ासिंगी इनका कपड़छन किया चूर्ण मिलाकर कांच के बर्तन में रखलें। (सिद्ध योग संग्रह)

मात्रा—यह अवलेह ६ माशा से १ तोला तक।

गुण—इसके सेवन से खांसी, श्वास, क्षय, रक्तपित्त तथा जुकाम में भी लाभ होता है। कफ रोग अथवा खांसी या श्वास नली की सूजन में इस अवलेह के बराबर दूसरी दवा नहीं। इससे कफ पतला होकर तुरन्त बन्द हो जाता है तथा शरीर के किसी भी मार्ग से रक्तश्राव हो बन्द हो जाता है। रक्तप्रदर पर हितकर है। शरीर की दुर्बलता एवं दिमाग की कमजोरी दूर करने के लिए आयु, बल, कांति तथा स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए अवश्य सेवन करें। इसमें बहुत से गुण हैं कहां तक लिखें।

२१—वांसारिष्ट—वांसापत्र १० सेर कूटकर, २५½ सेर ८ तोला पानी में पकावें और आधा शेष रहने पर उतार कर छान लें। फिर उसमें ५ सेर गुड़, धाय के फूल ३२ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, कंकोल, सोंठ, मिर्च, पीपल और सुगन्धवाला का चूर्ण ४-४ तोला लेकर सबको एकत्रित मिला चिकने मटके में भरकर मुंह बन्द कर दें। एक माह बाद उसे छान कर सुरक्षित रख लें। (योगरत्नाकर)

मात्रा—१¼ से २॥ तोला तक, भोजन करने के बाद दोनों समय बराबर जल मिलाकर दें।

गुण—सब प्रकार की खांसी को दूर करता है तथा शरीर को बलवान बनाता है तथा बन्ध्या स्त्री को सन्तान उत्पत्ति की ताकत देता है। पौष्टिक वीर्यवर्धक हाजमे को ठीक करने वाला है। कफ प्रधान शोथ में रक्त की कमी होने पर वहां सूजन हो जाती है। इसको मिटाने के लिए तथा रक्त को शान्त करने के लिए अत्यन्त गुणकारी है। यह रिष्ट रक्त की शरीर में वृद्धि कर सूजन को कम कर देता है। शरीर को बलवान, पुष्ट और सुन्दर बनाता है। इसका प्रभाव गर्भाशय पर भी होता है। एवं प्रदर श्वेतप्रदर अथवा रजोविकार या गर्भाशय कमजोर हो गया हो अथवा गर्भाशय की खाल मोटी हो गई हो, शरीर की चर्बी बढ़ जाने के कारण गर्भाशय का मुंह ढंक गया हो, यदि इन कारणों से सन्तान न होती हो तो इस आसव का सेवन अवश्य करें।

च्यवन मुनि जंगल में कुटी बनाकर तपस्या करते थे, उन्हीं की कुटी के सामने से प्रतिदिन एक कफ रोग पीड़ित राक्षस रात्रि में भ्रमण करता था। एक दिन उसके खांसने के कारण च्यवन मुनि तंग आ गये। उन्होंने उस राक्षस को फटकार कर कहा, रे मूर्ख! बांसे की पत्ती क्यों नहीं खाता; यह सुनकर राक्षस ने बांसा की पत्ती खाना प्रारम्भ किया, धीरे धीरे उसकी खांसी मिट गई।
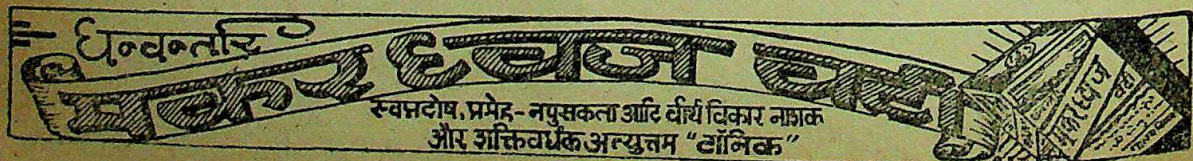
बद और तेजबल

लेखक—कविराज डा. श्रीराम शर्मा एल. ए. एम. एस., करोल बाग, दिल्ली।

सन् १९४५ में एक मित्र हरिद्वार से कच्चे तेज-बल की छोटी-छोटी लकड़ी लाया जो ताजा थी। उसने आकर बताया कि मैं साधुओं की मण्डली में बैठा चिलम पी रहा था। उन्होंने कुछ बूटियों के गुण आपस में कहना प्रारम्भ किये। उनमें से एक साधु ने तेजबल की लकड़ी बांटी और बताया कि भिड़ ततैया बिच्छू के काटने पर पानी में घिस कर लगा दो तो तुरन्त आराम आ जाता है। साधु से इस मित्र ने भी दो गांठे ले ली। वह मेरे पास लाया उस मित्र ने सारी कहानी मुझे सुनाई और कहा कि एक गांठ मैं रखे लेता हूं और एक आप रखलो। उस पर कांटे थे।

मैंने कई मनुष्यों को भिड़ ततैये के काटे पर लगाया तुरन्त आराम आगया। एक और मनुष्य ने मुझे बताया कि यह लड़की बद रोग पर बड़ा अच्छा कार्य करती है। इसको हुक्के के पानी में पांच चार लौंग (लंवग) के साथ पीस कर लेप चढ़ाने से शीघ्र आराम आजाता है।

उसी वर्ष लाला किशोरीलाल मेरे पास आये और उन्होंने बताया कि मेरे एक रिश्तेदार लाला ज्वालाप्रसाद बहादुरगढ़ वाले को दो मास से बद निकली हुई है। डाक्टरों का ईलाज बराबर चल रहा है और कोई आराम की हालत नहीं। डाक्टर लोग कहते हैं एक मास के पश्चात् आप्रेशन होगा, आप चलकर देखो। मैं उसके साथ चला गया, रोगी चारपाई से उठ भी नहीं सकता था उसके चारों ओर मण्डी के प्रसिद्ध लोग बैठे हुये थे। मैंने हालत देख कर बताया कि इसे दो दिन में पूर्ण आराम आवेगा। सब लोगों ने आश्चर्य से कहा एम० बी० बी० एस० डाक्टर तो एक मास बताते हैं और आपने दो दिन में आराम बताया क्या कोई जादू मन्त्र है। हमने रोगी से कहा बीच में किसी का इलाज न बदलोगे तो दो दिन में आराम आजावेगा। रोगी ने कहा आप चिकित्सा प्रारम्भ करदो।

उसी समय भुनी फिटकरी की दो-दो रत्ती की तीन पुड़िया बना कर देदी गईं और आठ बजे प्रातः इलाज प्रारम्भ हुआ। एक पुड़िया शीतल जल से रोगी को खिलाई गई।

लगाने के लिये तेजबल की लकड़ी को हुक्के के पानी में (जो नीचे के भाग में गंदा पानी रहता है) घिसा गया और साथ ही पांच लोंग भी घिसी गई। बारीक पीस कर लेप चढ़ा दिया गया।

पुड़िया लेते ही उसे सर्दी लग कर तीव्र ज्वर हुआ। ज्वर तो उसे रहता ही था परन्तु बढ़ गया। बारह बजे दोपहर एक पुड़िया और दी गई लेप वही लगा रहा। दूसरी पुड़िया देने पर भी उसे सर्दी लगी और ज्वर बढ़ा। चार बजे तीसरी पुड़िया दी गई और लेप भी बदला गया, क्योंकि रात्रि में लेप लगाना आयुर्वेद के अनुसार निषेध है।

दूसरे दिन के लिये तीन पुड़िया बनाकर दी गई और दो लेप की दवा तैयार करके रखदी और बता दिया कि हुक्के का पानी मिलाकर लेप को पतला कर प्रातः ४ बजे और सायंकाल चार बजे लगा देना और परसों प्रातःकाल मेरे पास पता देना कि क्या हाल रहा। तीसरे दिन प्रातः मुझे बुलाने लाला किशोरीलाल आया, उसने बताया कि बद का पता ही नहीं कहां चली गई। सब लोगों को बहुत आश्चर्य है। रोगी प्रसन्न है कष्ट दूर हो गया है। आप को बुलाया है। मैं उसके साथ गया देखा तो लाला ज्वालाप्रसाद चारपाई पर बैठे थे और प्रसन्न

चित थे। उन्होंने उठ कर मेरे पैर छूये और कहा आपके कहे अनुसार दो दिन में पूर्ण आराम आगया और अब मैं ठीक हूँ। पहले दिन जो मनुष्य कह रहे थे कि दो दिन में आराम कैसे आ जायेगा जादू मंत्र तो है नहीं, उन्होंने भी आश्चर्य किया। अब लेप की आवश्यकता तो थी नहीं मैं ने छः खुराक भुनी फिटकरी की बना दी और दो दिन तक पहले की तरह पानी से लेने को कहा। फिटकरी ने तो मूत्र द्वारा गंदे माद्दे को खारिज कर दिया। तेजबल ने ऊपर से उसे ठीक कर दिया।

सन् १६४५ से आज तक उसी एक रोगी ने ११० (एक सौ दस) केस बद के मेरे पास भेजे, सब की चिकित्सा फिटकरी और तेजबल से की गई। दो दिन में पूर्ण लाभ होता है। परन्तु जैसा कच्चा तेजबल वह मित्र हरिद्वार से लाया था वैसा फिर न मिला, उसके समाप्त होने पर पंसारियों से छिलका लिया गया, उसने भी वही गुण दिखाये।

छिलका दो प्रकार का मिलता है एक कच्चा दूसरा पक्का, कच्चा छिलका ही इस कार्य में लिया जाता है उसका रंग हरा होता है और उस पर कांटों के निशान या कांटे होते हैं। पक्का छिलका यह लाल रंग का होता है और बहुत हलका होता है जैसे बोतल की कार्क। यह घुटने में भी नहीं आता, कच्चा छिलका आसानी से घुट जाता है। इस छिलके से पारद भस्म तैयार की जाती है। हमने लाल रंग के पक्के छिलके को कूटा चोट मारने पर रबर की तरह उछलता है बारीक नहीं होता। कच्चा छिलका बाजार में कम मिलता है।

उपरोक्त लेख से वैद्य बन्धु लाभ उठावें और बद के रोगियों पर फिटकरी और तेजबल का प्रयोग करके आजमायें। छोटी-छोटी चीजों में कितने गुण हैं।

नोट—बद पर लगाने के लिये मैं तेजबल की छाल बाजार से लेता हूँ जो हरे रंग की होती है। दूसरी लाल रंग की भी मिलती है; जैसी भी मिल जाती है वही लेप में काम लेता हूँ। हरे तेज बल के वृक्ष—शिमला, धर्मशाला, मण्डी, नैनीताल, कश्मीर में पाये जाते हैं। बद्रीनारायण व हरिद्वार से भी लाते हैं।

[पृष्ठ ११३० का शेषांश]

मात्रा—३ मात्रा करके शाम को २ घंटे रात्रि जाने पर १ सेर पानी में उबालें, १/८ हिस्सा शेष रहने पर पिला कर वायु रहित मकान में सुलादें, सुबह एक रुपये में आठ आना रोग कम होगा। इसी प्रकार ३ दिन देने से उक्त रोग का नाम-निशान मिट जावेगा। ज्वर व शूल, श्वास कास, तन्द्रा आदि सब मिट जावेगा। यदि रोगी वेहोश हो तो होश में आजावेगा। असगन्ध में हृदय की सर्दी नष्ट करने का अद्भुत गुण प्रतीत होता है।

उष्णवात रोगी के लिए—

इन्द्रिय जुलाब

सोनामकी (सनाय)	आधा तोला
इलायची दाना	३ माशा
रेवतचीनी	३ माशा
निशोथ	३ माशा
इन्द्रायव	२ माशा
कलमी शोरा	१ माशा
यवखार	१ माशा
सोना गेरू	१ माशा
मिश्री दुगनी	ठंडा जल आधा सेर
अजा (बकरी का) दुग्ध कच्चा	आधा सेर

—उक्त औषधियों को बारीक कूट-पीस कर छान कर ३ पुडिया बनाली जावें।

मात्रा—दिन में दो वार अजादुग्ध से लें। सुबह मूंग चावल की (नर्म) खुराक खा कर बाद क्षुधा लगने से दाल रोटी खाना। इसी प्रकार ३ दिन लें।

गुण—शिश्न से मवाद आना, पेशाब लाल पीला, खुजली चलना, जलन होना, लघुशंका रुक-रुक कर आना, शिर में दर्द, सब बन्द होजावेगें।

—वैद्यभूषण भोमसिंह शर्मा
रडावास (पाली)

धन्वन्तरि जी कौन थे ?

अलीगढ़ नगर वैद्यसभा द्वारा सम्पन्न धन्वन्तरि त्रयोदशी के उत्सव के सभापतित्व रूप में वाणीभूषण पं० रामचन्द्र वैद्य शास्त्री का दिया हुआ

भाषण

समुपस्थित प्राणाचार्य सज्जनो! आज केवल वैद्यों की ही नहीं किन्तु भारत प्रसूत समस्त हिन्दू जाति की प्यारी उत्सव तिथि धन्वन्तरि त्रयोदशी है जिसे वे लाखों वर्षों से मनाते चले आ रहे हैं परन्तु वे आज तक इसका निःसन्दिग्ध निर्णय घोषित नहीं कर पाये हैं कि धन्वन्तरि कौन थे? वह किस जाति के थे उन्होंने किस नाम के पिता के घर अवतार धारण कर आयुर्वेद को समृद्ध बनाया था, उनके पुत्र और पौत्र भी थे या नहीं और थे तो, उनके नाम क्या-क्या थे इत्यादि। उपरोक्त आश्चर्यजनक बात का एक मात्र प्रधान कारण यह है कि विद्वान वैद्यों ने उनकी वंश परम्परा और अवतार कथा के ज्ञान के लिये परिश्रम के साथ पुराणों में अन्वेषण नहीं किया। दूसरा कारण यह है कि वैद्यक शास्त्र के माननीय आर्ष ग्रन्थों में इस विषय का विश्वसनीय वर्णन उन्हें मिला नहीं।

आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले यवन राज्यकाल के श्री भावमिश्र जी वैद्यराज ने स्वनिर्मित "भाव प्रकाश" नाम के वैद्यक ग्रन्थ में श्री धन्वन्तरि जी के प्रादुर्भाव की कथा वृद्धों से सुनकर अथवा स्वयं गढ़कर लिख दी है परन्तु वह सर्वथा अमान्य और अपूर्ण है, इसे हम पीछे समझावेंगे।

पहले आप मन लगाकर यह सुनें, भगवान् विष्णु के अंशावतार श्री धन्वन्तरि जी भू-मण्डल पर दो बार दो रूपों में दो पृथक् कामों के करने के लिये आये थे।

पहली बार देव और असुरों द्वारा समुद्र मंथन के समय ये पीताम्बरधारी मणिमाला विभूषित मेघ श्याम शरीर से हाथ में अमृतघट लिए हुये जलनिधि से प्रकट हुये थे। यह कार्य उन्होंने देवताओं को अमृत देकर उन्हें अजर अमर बनाने के लिये किया था। इनकी यह पहली अवतार कथा ही अधिक प्रचलित है। इनका यह देवरूप था यह अपना काम कर तत्काल देवलोक को चले गये क्योंकि आगे इनकी कुछ भी कथा वर्णित नहीं हुई। उपरोक्त कथा श्रीमद्भागवत आदि कई मान्य ग्रन्थों में वर्णित हुई है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के ५१ वें अध्याय में उपरोक्त कथा के साथ एक और विशेष बात कही गई है कि श्री धन्वन्तरि जी वैनतेय जी के और भगवान् शङ्कर के उपशिष्य थे।

भगवान् वेदव्यास ने महाभारत में बताया है कि वैनतेय गरुण जी छः भाई थे वे सभी अपनी विनता नामवाली माता से उत्पन्न होने के कारण वैनतेय कहे जाते थे। यथा—

> ताक्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च तथैव गरुडारुणौ।
> आरुणिर्वारुणिश्चैव वैनतेया प्रकीतिता॥
> महाभारत १।६५।४०

इन छः में ये कौन से वैनतेय के शिष्य थे यह ज्ञातव्य अपूर्ण रह जाता है किन्तु बुद्धि कहती है कि ये अरिष्टनेमि के शिष्य रहे होंगे। अरिष्टनेमि❖ नाम सद्वैध होने की सूचना देता है। अरिष्टनेमि शङ्कर के पुत्र रहे होंगे। यह तो हुई देववैद्य धन्वन्तरि की कथा। दूसरी बार मनुष्य शरीर

❖नियत मरण सूचक लिङ्ग मरिष्टं तस्य नेमिः।

में आयुर्वेद को अष्टाङ्गपूर्ण करने के लिए अवतार धारण करने वाले धन्वन्तरि के सम्बन्ध में श्री भागवत के नवमस्कंध के १६ वें अध्याय में कहा गया है कि क्षत्रिय वंश भूषण सुप्रसिद्ध महाराज पुरुरवा के वंश में 'क्षत्रवृद्ध राजा' का पुत्र सुहोत्र हुआ, उसके काश्य, कुश और गृत्समद यह तीन पुत्र थे। इनमें काश्य का पुत्र काशि (काशिराज), काशि का पुत्र राष्ट्र, राष्ट्र का पुत्र दीर्घतमा, दीर्घतमा के पुत्र आयुर्वेद के प्रवर्तक श्री धन्वन्तरि भगवान हुए। ये विष्णु के अंशावतार थे और यज्ञों में से यज्ञ भाग लेने के अधिकारी थे जो स्मरण मात्र से रोगों का नाश कर देते थे। धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान और केतुमान के पुत्र भीमरथ और भीमरथ के पुत्र दिवोदास और दिवोदास के पुत्र द्युमान् हुए। यथा—

काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमः पिता। धन्वन्तरि दैंध्यतम आयुर्वेद प्रवर्तकः ॥४॥ यज्ञ भुक्वासु देवांशः स्मृतमात्रार्ति नाशनः। तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीम रथस्ततः ॥५॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मात् इत्यादि

श्री विष्णु पुराण ४-८ में धन्वन्तरि जी की वंश परम्परा तो उपरोक्त ही कही गई है किन्तु यह बात विशेष कही गई है कि भगवान् नारायण ने प्रथम रूप धन्वन्तरि को वर देकर कहा कि तुम पृथ्वी पर काशिराज के गोत्र अवतार धारण कर आयुर्वेद को अष्टधा करके सम्पूर्ण करोगे और यज्ञभाक् भी होओगे।

विष्णु पुराण का पठनीय पाठ यह है—

भगवता नारायणेन अतीत सम्भूतौ (समुद्र मन्थनान्ते) तस्मै (धन्वन्तरये) वरोदत्तः काशिराज गोत्रेऽवतीर्यत्व मष्टधा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसि यज्ञभागयित्वं भविष्यसीति।

भगवान् वेदव्यास लिखित प्रमाणों से यह तो निःसन्देह सिद्ध हो जाता है कि हमारे भगवान् धन्वन्तरि जी काशिराज के गोत्र में दीर्घतमा नामक राजा के घर अवतरित हुये थे। काशिराज धन्वन्तरि के परबाबा थे और सुप्रसिद्ध दिवोदास धन्वन्तरि जी के परनाती थे। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में दिवोदास का नाम पाया जाता है अतः यह भी निश्चित ही है कि धन्वन्तरि से प्रारम्भ होकर दिवोदास तक इस वंश में आयुर्वेद का प्रचलन खूब रहा। श्रीमद् भागवत और विष्णुपुराण दोनों में इस स्थान पर काशि और काशिराज शब्द नाम के लिये ही प्रयुक्त हुआ है, काशी नगरी के राजा होने के लिये नहीं हुआ। किन्तु दिवोदास के नाम के साथ कहीं-कहीं काशिराज शब्द का प्रयोग हुआ है वह विशेषण रूप का ही माना जा सकता है और इससे यह सिद्ध होता है कि काशी इस वंश की राजधानी रही और पवित्र काशीपुरी में ही महाराज दीर्घतमा के घर श्री धन्वन्तरि जी का कार्तिक कृष्णा १३ त्रयोदशी को अवतार हुआ था।

अब विद्वान् लोग स्वयं विचार करें क्या काशिराज, धन्वन्तरि और दिवोदास भावमिश्र के कथनानुसार एक थे? अथवा पीढ़ियों का अन्तर रखने वाले प्रथक्-प्रथक् तीन थे?

धन्वन्तरि के विषय में भावमिश्र जी केवल इतना जानते थे कि वे बाहुज (क्षत्रिय) वर्ण के थे। शेष सब उनकी मनमानी प्रमाण-शून्य गढ़न्त है। भगवान वेदव्यास जी के वाक्यों के सामने मान्य नहीं। श्री विक्रमादित्य राजा की सभा के नवरत्न रूप नौ विद्वानों में जो धन्वन्तरि जी थे वे धन्वन्तरि नामधारी और कोई विद्वान होंगे चाहें वे कविराज हों या वैद्यराज। वे अवतार रूपी धन्वन्तरि नहीं माने जा सकते, उनका समय बहुत दूर का असंख्य है और इनका समय २०१४ है।

प्यारे वैद्यो! मैं चिरकाल से छिपा हुआ धन्वन्तरि परिचय यथा ज्ञान आपके सामने वर्णन कर चुका।

अब आपसे यह निवेदन करना आवश्यक है कि वैद्यसभाओं और वैद्यसमाज को चाहिये कि धन्वन्तरि त्रयोदशी के दिन जनता में विज्ञापन बांट कर पोस्टर चिपकाकर लिफाफे बांटकर

—शेषांश पृष्ठ ११३२ पर।

तुत्थ भस्म—

शुद्ध यशद ४ तोला
नीला थोथा २० तोला

विधि—यशद को लोहे की कड़ाही में डाल नीचे आग जलाकर पिघलायें। जब द्रवी भूत होजाय तो तुत्थ को पीसकर थोड़ा-थोड़ा डालते जायें और लोहे के मूसल से चलाता रहे। जब सब समाप्त होजाये तो नीचे उतार शीतल होने पर दही में एक दिन पीस टिक्की बना छाया में सुखा ४ सेर उपलों की आग दें। इसी तरह दही में पीसकर पांच अग्नि देने पर तुत्थ की वांति भ्रांति रहित सुन्दर मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा—४ चावल से १ रत्ती तक।

गुण—योग्य अनुपान से दें तो मूत्राघात, रक्तविकृति, श्वास, गण्डमाला, अपची आदि दूर होते हैं।

कर्णश्राव पर—

तेल सरसों १० तोला
कुटकी काली जीरी
—दोनों २॥-२॥ तोला

विधि—तेल को आग पर चढ़ावें, फिर इन दोनों चीजों को डाल कर जलादें। नीचे उतार कर रखलें।

प्रयोग—कान में २-२ बूंद प्रातः सायं डालने से कान बहना शीघ्र बन्द होजाता है।

कोष्ठ शुद्धि पर

सकमूनीआ २॥ तोला
चीनी २॥ तोला
मुनक्का ६ माशे
तज पीपल काली मिर्च
—प्रत्येक ४-४ माशे

विधि—जल से २-२ रत्ती की गोली बनावें।

अनुपान—रात को सोते समय दूध के साथ।

गुण—प्रातः पाखाना खुलकर आयेगा।

नोट—गोली, रात का भोजन हजम होजाने पर ही लेनी चाहिये।

विषम ज्वरान्तक—

गड़ूची सत्व फिटकरी का फूला
करञ्ज की गिरी कालीमिर्च
काफूर (कपूर) वंशलोचन
गोदन्ती भस्म (आक दूध की भावना युक्त)
कुनीन —प्रत्येक सम भाग

विधि—कूट-पीस छान एक रस कर रखलें।

मात्रा—२-२ रत्ती जल के साथ। दिन में तीन चार बार दें।

गुण—सब तरह के विषमज्वरों पर शर्तिया और निरापद है।

रक्तार्श नाशक—

बादाम की गिरी १० नग
अजवायन देशी ३ माशे
उत्तम हरड़ की छाल ३ माशे

विधि—ठंडाई की भांति घोटकर प्रातःकाल पीवें।

गुण—रक्तार्श पर अनुभूत है।

प्रतिश्याय नाशक—

सौंफ के चावल धनियां के चावल

जराबुंद	बादाम रोगन

—प्रत्येक १०-१० तोला

जंगी हरड़	काबुली हरड़
बहेड़ा छाल	आंवले
गुलाब के फूल	वंशलोचन
नीलोफर	तुम्बी

—प्रत्येक २॥-२॥ तोला

चन्दन श्वेत	१॥ तोला
उन्नाव	२०० दाने
लसूड़िये	२०० दाने
प्रवाल भस्म	२ तोले

विधि—सबको प्रथक्-प्रथक् पीस बादाम रोगन में मिलालें, फिर ४० तोला बूरा डाल कर रखें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक। प्रातः सायं दूध से लेवें।

गुण—प्रतिश्याय, मस्तिष्क दुर्बलता और विबंध को दूर कर भूख बढ़ाता है।

नोट—सौंफ और धनिये को कूट छांट कर जब चावल निकल आयें फिर उन्हें महीन पीसना चाहिये। सौंफ १५ तोला और धनियां १७ तोला से लगभग १०-१० तोला चावल निकलते हैं।

—कविराज एम० एन० स्वामी वैद्य शास्त्री
मोती नगर, दहली।

\+ + +

कफनाशक क्वाथ—

मुलहठी	बनप्सा	मुनक्का
उन्नाव		लिहसोड़े
मिश्री		—प्रत्येक ६-६ माशा

विधि—इनको जवकुट कर १ पाव पानी में डाल उबालें। १ छटांक शेष रहने पर छान कर रोगी को प्रातः सायं पिलावें।

गुण—किसी भी व्यक्ति को चाहे जैसी सूखी खांसी हो, ४-५ मात्रा लेने पर कफ पतला कर निकालती है तथा खांसी को शीघ्र नष्ट करती है।

—श्री वैद्य बाबूलाल सेठ, दबोह (भिण्ड)

\+ + +

—जलोदरादि सर्वोदर रोगे अनुभूतोविशेष

शंखद्राव—

५०० निम्बू के रस में ५ सेर देशी गुड़ डाल अग्नि पर पकावें, उबाल आने पर नीचे उतार—

यवक्षार	८० टंक
सैन्धव	३५ टंक
सज्जी क्षार	३५ टंक
फिटकिरी	२५ टंक
सौचर नमक	१५ टंक
समुद्र नमक	१५ टंक

विधि—महीन पीस कर उक्त रस में डाल पकावे। कलई की हुई करछी से या नीम की लकड़ी से चलाता रहे। जब निम्बू रस जल जाय तब नीचे उतार कर उसमें कौड़ी डाले। यदि कौड़ी गल जाय तब समझे कि ठीक बना है अन्यथा और निम्बू रस डाल पकावे। तैयार होने पर कांच की डाट वाली शीशी में रखे।

मात्रा—१-१ टंक प्रतिदिन ले।

गुण—२१ दिन के प्रयोग से प्लीहावृद्धि, वातोदर, कफोदर, पित्तोदर, शोथोदर, जलोदर, शूल-गुल्म आदि उदररोग नष्ट होते हैं। संग्रहणी पाण्डु, कामला, में भी हितकर है।

—पं० कृष्णदास शास्त्री
महन्तडेरा पो० भादसों (नाभा)

\+ + +

न्युमोनियां ज्वर नाशक—

असगंध (आगन्ध)	१० तोला
सोनामकी (सनाय)	१ तोला
लाल फिटकरी	३ रत्ती

—उक्त तीनों औषधियों को अलग अलग कूटकर मिलालें। —शेषांश पृष्ठ ११२६ पर।

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

देश के कोने-कोने में धन्वन्तरि त्रयोदशी पर

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव की धूम

यह लिखते हुये प्रसन्नता है कि आयुर्वेद चिकित्सक समाज का राष्ट्रीय वार्षिक पर्व प्रतिवर्ष अधिकाधिक महत्व प्राप्त करता जारहा है और इस वर्ष भारत के कौने-कौने में इस सुअवसर पर वैद्यों द्वारा विविध उपयोगी कार्यक्रमों के द्वारा यह उत्सव बड़े उत्साह एवं सफलता के साथ सम्पन्न किया गया। इस महोत्सव के समाचार सैकड़ों ही स्थानों से बड़े विस्तृत और आकर्षक रूप में प्राप्त हुये हैं। इन समाचारों को यथावत् प्रकाशित करना तो असम्भव ही है। यदि इनके आवश्यक अंश भी प्रकाशित किये जांय तब भी बहुत अधिक स्थान की आवश्यकता होगी। अतएव अत्यन्त विवशता के साथ, समाचार प्रेषक महोदयों से क्षमा याचना करते हुये हम इन समाचारों को अति संक्षेप में प्रकाशित कर रहे हैं।

१—राजस्थान ग्राम सेवा संघ, अजमेर—

उत्सव के प्रधान—वैद्यराज श्री ओ३मप्रकाश जी अध्यक्ष-ग्राम सेवा संघ।

भाषणकर्त्ता—वैद्य गणेशदत्त जी शास्त्री, वैद्य लक्ष्मीचन्द जी एवं डा० गंगाराम जी।

२—मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारणी सभा, जोधपुर—

उत्सव के प्रधान—माननीय जिलाधीश श्री. आर. डी. माथुर।

धन्वन्तरि अर्चनकर्त्ता—माननीय उदयचंद्र भट्टारक चाणोद गुरांसा।

भाषणकर्त्ता—कविराज माधवप्रसाद जी शास्त्री, सभापति राजस्थान प्रदेश सम्मेलन। कविराज मामचंद जी। श्री ऋषिदेव सोलंकी, सभापति-जिला वैद्यसभा वाडमेर। श्री परमानन्द जी शर्मा साहित्यायुर्वेदाचार्य, सभापति--आयुर्वेद प्रचारणी सभा।

समाचारप्रेषक-राजवैद्य सत्यदेव शर्मा, प्र. मन्त्री

३—श्री सनातन धर्म आयुर्वेद महाविद्यालय, बीकानेर—

उत्सव के प्रधान-राजवैद्य श्री जीवनराम व्यास।

आगतजन स्वागतकर्त्ता—श्री वैद्य विद्याधर जी शर्मा, प्रिंसीपल।

भाषण--कर्त्ता—वैद्य पं० दीनानाथ जी व्यास, संस्था-संचालक। वैद्य पं० गयाप्रसाद जी शर्मा, निरीक्षक-आयुर्वेदविभाग। आचार्यरामनारायण

समाचार प्रेषक—श्री. प्रिंसीपल पं०दीनानाथ जी

४—वैद्यसभा हिंगनघाट (म० प्रदेश)—

उत्सव के प्रधान—श्री शोभालाल जी वैद्य आयु.

समाचार प्रेषक—श्री हरिभाऊ गुलकरी, मन्त्री वैद्य सभा।

५—आयुर्वेद परिषद् जावरा (म० प्र०)—

उत्सव के प्रधान—श्री वैद्य स्वामीदत्त जी।

भाषण-कर्त्ता—वैद्य पं० रणछोड़दास जी व्यास, श्री डा० पाण्डेय, श्री गणपतिप्रसाद जी, श्री अम्बालाल जी, श्री कुन्दनलाल भारतीय, अध्यक्ष नगरपालिका।

६—अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय, वाराणसी—

उत्सव के प्रधान—श्री श्रीधर जी शर्मा वैद्य, राष्ट्रपति चिकित्सक।

पूजन व मङ्गलाचरण—श्री अमरनाथ जैतली तथा श्री शम्भूनाथ बुचके।

स्वागत-कर्त्ता—श्री पं० ताराशंकर मिश्र, प्रधानाचार्य।
भाषण-कर्त्ता—श्री कैलाशनाथ जैतली
श्री दामोदरप्रसाद पांडेय
श्री विश्वनाथ पांडेय
श्री त्रिवेदीप्रसाद वरनवाल
श्री शिवविनायक मिश्र
श्री व्रजमोहन दीक्षित
समाचार-प्रेषक—प्रधानाचार्य।

७—पटियाला राज्यसंघ वैद्यमंडल, महेन्द्रगढ़ (पेप्सू)—
उत्सव के प्रधान—श्री जोशी जगदीशप्रसाद जी आयुर्वेदाचार्य।
झण्डा-अभिवादन—श्री भोलानाथ जी।
भाषण-कर्त्ता—श्री शंकरदत्त जी आयुर्वेदाचार्य
श्री वैद्य ग्यारसीलाल।
श्री पं० हरिश्चन्द्र जी शर्मा।
समाचार-प्रेषक—प्रधान मन्त्री।

८—श्री तहसील वैद्य सभा, सुजानगढ़ (राजस्थान)—
ता० १६-१०-५७-
उत्सव के प्रधान—वैद्यराज सुखदेव जी पारीक।
भाषण-कर्त्ता-पं० भालचन्द्र जी
श्री गणेशदास जी
श्री हरिश्चन्द्र जी
श्री सत्यनारायण
श्री छगनलाल मिश्र, मन्त्री।
विशेष-अतिथि—श्री. माधवप्रसाद जी जोशी, सभापति रा. प्र. सम्मेलन।
—उत्सव के अन्त में नगर वैद्यसभा की ओर से सभापति–राज. प्रान्तीय सम्मेलन को १०१) की थैली भेंट की गई।
ता० २१-१०-५७।
उत्सव के प्रधान—श्री गुरासां रामलाल यति
नोट—तहसील वैद्यसभा की ओर से ता० १४-१०-५७ से ता० २१-१०-५७ तक स्वास्थ्य सप्ताह मनाया गया, जिसमें विभिन्न कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

९—जिला वैद्यसभा, भीलवाड़ा—
उत्सव के प्रधान—श्री वैद्य रामचन्द्र जी ब्रह्मचारी
—उत्सव में नगर के प्रायः सभी वैद्य एवं हकीम उपस्थित थे। अन्त में सभी वैद्यों ने एक साथ भोजन किया।

१०—क्षेत्रीय वैद्यसभा, शाहपुर—
उत्सव के प्रधान—श्री. वैद्य कल्याणदास जी, अध्यक्ष-वैद्यसभा।
समाचारप्रेषक—वैद्य कन्हैयालाल शर्मा भिषगा.

११—तहसील वैद्यसभा, श्रीगंगानगर—
श्री दिवाकर औषधालय में, प्रातः स्थानीय वैद्यों ने सम्मलित रूप से निःशुल्क रोगी निरीक्षण एवं रोगनिदान व औषधि व्यवस्था की, तथा सायंकाल धन्वन्तरि त्रयोदशी महोत्सव धूम-धाम से मनाया गया।

१२—राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, हरचन्दपुर (रायबरेली)
उत्सव के प्रधान—श्री. द. अ. कुलकर्णी, उपसंचालक-स्वास्थ्य विभाग, उत्तर प्रदेश।
—ता० १५-१०-५७ से २१-१०-५७ तक स्वास्थ्य-सप्ताह मनाया गया, जिसमें निम्न प्रकार विभिन्न रचनात्मक कार्यों को बड़े समारोह पूर्वक सम्पन्न किया गया :—

[पृष्ठ ११२८ का शेषांश]

बड़ी-बड़ी सभायें किया करें और जनता को संबोधन कर आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य, दिनचर्या, निशाचर्या और ऋतुचर्या पर मनोहरता के साथ व्याख्यान दिया करें। ऐसा करने से जनता का और वैद्यसमाज दोनों का कल्याण होगा।

अभी तक आधी हिन्दू जनता तो यह भी नहीं जानती कि धन्वन्तरि त्रयोदशी को भगवान विष्णु के धन्वन्तरि रूप का पूजन करना और उनके लिखित उपदेशों को सुनना चाहिये। वह इसे धनतेरस कह सुनकर धन की ही उपासना में लगी हुई है।

आयुर्वेद स्वास्थ्य प्रदर्शनी—

उद्घाटनकर्ता—जिलाधीश महोदय श्री कवीरुद्दीन साहब

—चिकित्सालय के इञ्चार्ज श्री परमेश्वर घिल्डियाल ने प्रदर्शित चार्ट्स एवं मृत्तिकामी भव्य मूर्तियों के भावों से आगत जनसमूह को परिचित कराया।

चल-चित्र प्रदर्शनी—

यह कार्यक्रम सूचना विभाग रायबरेली की ओर से, तीन रात्रियों में बहुत आकर्षक ढंग से सम्पन्न हुआ।

शिशु प्रदर्शिनी एवं मातृपथ प्रदर्शन—

अध्यक्ष—आयुर्वेदाचार्य श्रीमती शान्तादेवी वैद्या, लखनऊ

—इस प्रदर्शनी में एक बड़ी संख्या में मातायें अपने बच्चों को लेकर सम्मलित हुईं तथा ग्राम-सेविकाओं द्वारा सुन्दर सामयिक अभिनय किया गया।

कवि-सम्मेलन—

अध्यक्ष—कवि श्री सीताराम जी 'व्यथित', हरदोई।

—यह सम्मेलन सर्वाधिक आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक रूप से सम्पन्न हुआ। इसमें अनेक सुप्रसिद्ध कवियों ने बड़ी सुन्दर कविताओं द्वारा श्रोताओं के मन को मोहित किया।

—इन विविध कार्य-क्रमों में संयोजक वैद्य श्री घिल्डियाल जी को क्षेत्र-विकासाधिकारी श्री. एम. पारससिंह ने विशेष सहयोग प्रदान किया।

१३—राजकीय आयु. चिकित्सा. सराय ममरेज (इलाहाबाद)

—इस अवसर पर एक विशाल आयुर्वेदिक प्रदर्शनी, जिसमें शिक्षाप्रद चार्ट्स, एवं मूर्तियां एवं वनस्पतियां थीं, का आयोजन किया गया। जनता को स्वास्थ्य विषयक आदर्शों से अवगत कराया गया। स्थानीय ग्राम सभापति द्वारा झण्डोत्तोलन किया गया तथा अनेक सज्जनों द्वारा कवितापाठ एवं भाषण आदि दिए गये।

—श्री० पं० शिवसहाय शास्त्री।

१४—नगर वैद्य परिषद, दमोह—

उत्सव के प्रधान—प्रयाग निवासी श्री० पं जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल आयुर्वेद बृहस्पति।

भाषणकर्ता—श्री० पं० सीताराम शेड्ये।

शुक्ल जी को मानपत्र—

—श्री गणेश चिकित्सा भवन।

—दमोह वैद्य परिषद

—दमोह आयुर्वेद विद्यालय

इन संस्थाओं ने श्री० शुक्ल जी को मानपत्र अर्पित किया। श्री शुक्ल जी ने अपने ओजस्वी भाषण में आयुर्वेद की प्राचीनता एवं वैज्ञानिकता पर बड़े मार्मिक शब्दों में प्रकाश डाला। परिषद् के विशेष अधिवेशन में सात महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किए गए, (जिनका उल्लेख करना स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं हो सका)।

—श्री० पं० शिवशङ्कर दीक्षित वैद्य।

१५—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन विक्री केन्द्र वाराणसी—

उत्सव के प्रधान—वैद्य सम्राट कविराराज पं.-सत्यनारायण जी शास्त्री राष्ट्रपति चिकित्सक।

धन्वन्तरि-पूजन—श्री. पं. विश्वनाथ जी पाण्डेय

—इस सभा में अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव वैद्यों, हकीमों एवं नागरिकों के समर्थन एवं अनुमोदन द्वारा स्वीकृत किए गए।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानों से धन्वन्तरि महोत्सव मनाने के समाचार मिले हैं तथा प्रतिदिन की डाक से मिल रहे हैं। इस सभी समाचारों का संक्षिप्त विवरण भी यहां देना शक्य नहीं है अतएव क्षमा याचन करते हुए जहां-जहां से समाचार अद्यावधि प्राप्त हो चुके हैं उन स्थानों का नामोल्लेखन मात्र नीचे कर रहे हैं।

—शेषांश पृष्ठ ११३५ पर।

दिल्ली में देशी-औषध-निर्माता सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन

चिरकाल से इस बात की गंभीर आवश्यकता अनुभव की जा रही थी कि भारत भर के देशी-औषध-निर्माणकर्ता-संस्थानों का एक ऐसा दृढ़ संगठन होना चाहिए जो पारस्परिक सहयोग की भावना और सामान्य हित रक्षा प्रयास के उद्देश्य पर आधारित हो। अनेक बार इस सम्बन्ध में स्फुट चर्चाएँ हुईं और निर्माताओं में पत्राचार हुआ। इधर केन्द्रीय सरकार ने देशी औषधों पर कुछ ऐसे कानून लाद दिये हैं जो नितान्त अविचारपूर्ण हैं और जिनसे देशी औषध-व्यवसाय को भारी धक्का तो लग ही रहा है, देशी चिकित्सा-पद्धति पर अवलम्बित लाखों व्यक्तियों की जीविका तथा करोड़ों जनसाधारण के स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के महत्वपूर्ण अंग पर उन कानूनों का अहितकर प्रभाव होना निश्चित है।

सरकार द्वारा लगाये गये उन कानूनों की स्थिति का अध्ययन करने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वे कानून पूरी जानकारी के बिना ही बनाये गये हैं और किसी ओर से देशी चिकित्सा-पद्धति का पक्ष विवेकपूर्वक सरकार के सामने प्रस्तुत नहीं किया गया। यह निश्चय जान पड़ता है कि यदि सरकार के समक्ष वास्तविक स्थिति को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाय तो सरकार देशी औषधियों पर लगे इन व्यवहारशून्य कानूनों पर अवश्य पुनर्विचार करेगी। हितकर सुझाव भी सरकार के पास यदि संगठित शक्ति द्वारा न रखे जावें तो उनका कोई प्रभाव नहीं होता। यही दशा औषधि निर्माण-क्षेत्र में है। व्यक्तिगत रूप से हर एक औषधि-निर्माता आज भी सरकारी अधिकारियों के नित नये दुर्व्यवहारों से त्रस्त रहता है। हाल ही में आयुर्वेदीय आसव-अरिष्टों पर जो मद्यकर-कानून लग चुका है, उससे तो इस व्यवसाय का बहुत बड़ा अहित होने जारहा है। आसव-अरिष्टों पर यह कानून विगत अप्रैल मास से ही लागू हो चुका है और वह सारे भारतवर्ष में एक-सा लागू है। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में अभी सक्रियता नहीं दिखाई देती, परन्तु ज्यों ही एकसाइज विभाग के पास पर्याप्त संख्या में आदमी हो जायंगे, वैसे ही सर्वत्र इस कानून का आकस्मिक प्रहार हो जायगा और कोई भी छोटा या बड़ा निर्माता इससे बच नहीं सकेगा बल्कि जब से यह कानून लगा है, तब से ही आसव, अरिष्टों का पिछला हिसाब और कर इत्यादि हर निर्माता को देना पड़ेगा और आगे जब तक लाइसेंस न मिल जावें तब तक वह आसवारिष्ट का कतई निर्माण नहीं कर सकेगा। उस अवस्था में हर निर्माता के सामने दो ही उपाय होंगे कि या तो वह आसव-अरिष्टों का निर्माण ही बन्द करदे या फिर इस कानून की धाराओं का पालन करने के लिये एक बड़ा मासिक खर्च अपने ऊपर लाद ले और नियमानुसार बाण्डेड लेबोरेटरी बनाने में कुछ हजार रुपया तो तुरन्त ही लगावे। यदि इस प्रकार से असंगठित रह कर हर निर्माता इस कानून के अन्तर्गत कार्य करेगा तो अलग-अलग सब हानि उठावेंगे। यह भी निश्चय है कि यदि यह कानून ज्यों का त्यों रहता है तो बड़े-बड़े संस्थान वाले तो सुविधापूर्वक कानून के नियमों की पूर्ति करके अपना काम चला सकते हैं, परन्तु छोटे-छोटे सैकड़ों निर्माताओं के लिए अपना कार्य चलाना संभव नहीं होगा।

देशी-औषधि-निर्माता संघ का पहला अधिवेशन दिल्ली में ही गत १५-१६ अगस्त को हुआ था, जिसमें विभिन्न प्रदेशों के देशी औषध-निर्माताओं ने सम्मिलित होकर संगठन के मौलिक उद्देश्यों को स्वीकार कर यह निश्चय कर लिया था कि निर्माताओं का अखिल भारतीय संघ बनाया जाय और सरकारी प्रतिबन्धों के निवारणार्थ संघ के द्वारा ही

कार्यवाही की जावे।

संघ का दूसरा अधिवेशन दिल्ली में जोगीवाड़ा स्थित मारवाड़ी धर्मशाला में अभी गत २६ २७ अक्टूबर को उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ है। इस अधिवेशन में उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, मध्यप्रदेश इत्यादि प्रदेशों के प्रमुख देशी-औषधि-निर्माताओं ने भाग लिया। केन्द्रीय सरकार के देशी औषधि-परामर्श-दाता कविराज श्री प्रतापसिंह जी भी अधिवेशन में सम्मिलित हुए। यद्यपि दीपावली और व्यापारिक वर्षारम्भ के कारण कई निर्मातागण इस सम्मेलन में स्वयं भाग नहीं ले सके, तथापि उनके सन्देश और विचार जो अधिवेशन में प्रस्तुत किये गए वे निश्चय ही बहुत उत्साहवर्द्धक थे। दिल्ली के हमदर्द दवाखाना और राजवैद्य शीतल प्रसाद एण्ड सन्स जैसे बड़े निर्माताओं का संघ के कार्यों में सक्रिय भाग लेना उत्साहजनक है। इसी प्रकार कालेड़ा कृष्णगोपाल (अजमेर) के श्रीकृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन के संचालक ने पूर्व ही अपना प्रवेश शुल्क और मासिक शुल्क भेजकर संघ की सदस्यता स्वीकार करते हुए संगठन के लिए बड़े महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। पिछले अधिवेशन में प्राय: तीस निर्माता-संस्थानों का सहयोग संघ को प्राप्त हुआ था। इस अधिवेशन में उनके अतिरिक्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय फार्मेसी वाराणसी, श्रीकृष्ण आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० अमृतसर, कुंअर आयुर्वेदिक फार्मेसी कानपुर, मुल्तानी आयुर्वेदिक फार्मेसी नयी दिल्ली, प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० अमृतसर, सुखदाता फार्मेसी (कविराज हरनाम दास) दिल्ली, इत्यादि संस्थानों का नया सहयोग पाकर सम्मेलन का कार्य अधिक सार्थकता के साथ सम्पन्न हुआ।

सम्मेलन की कार्यवाही

द्वितीय अधिवेशन की प्रथम बैठक दिनांक २६ अक्टूबर ५७ को प्रातः नौ बजे आरम्भ हुई। कार्यवाहक प्रधान श्री वैद्य रामनारायण जी शर्मा के आसन ग्रहण करते ही विधिवत कार्यवाही का संचालन हुआ। सर्व प्रथम पिछले अधिवेशन में स्वीकृत विधान के प्रारूप में संशोधन का विषय उपस्थित हुआ। पूर्व प्रारूप पहिले ही औषध-निर्माताओं की सेवा में विचारार्थ भेजा जा चुका था और अनेक सदस्यों ने विधान में संशोधन करने के विषय में अपने सविवरण सुझाव मंत्री जी एवं कार्यवाहक अध्यक्ष के पास प्रेषित किये थे। सामूहिक रूप से विधान में कुछ संशोधन करने के सुझाव पंजाब प्रदेश देशी-औषधि-निर्माता संघ अमृतसर एवं पश्चिम बंगाल देशी-औषध-निर्माता संघ कलकत्ता से भी प्राप्त हुए थे। उक्त दोनों ही प्रादेशिक संघों ने अखिल भारतीय संघ के साथ सम्बद्ध हो जाने के निश्चय के प्रस्ताव अपनी सभाओं में स्वीकृत कर लिये हैं।

संविधान के प्रारूप में संशोधन करने के जो-जो सुझाव विभिन्न सदस्यों और प्रादेशिक संघों से

:: पृष्ठ ११३३ का शेषांश ::

भारद्वाज नेत्र चिकित्सालय, कोटकपूरा।
शिव औषधि भण्डार, कोट कपूरा।
नगर पालिका लाडनूं।
श्री. सुन्दर आयुर्वेदिक भवन, फत्तेपुर सैंधरी, लखीमपुर-खीरी।
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, विक्री केन्द्र, गढ़मुक्तेश्वर।
आयुर्वेद चिकित्सक परिषद्, नसीराबाद।
पं० छितानीप्रसाद मितानी प्रसाद दुबे दातव्य औषधालय, बिलासपुर।
श्री राजवैद्य प्रयागदत्त जी, सतना।
श्री कौशल्या आयुर्वेदिक औषधालय, देवढ़िया (शाहाबाद)
श्री सेठ चांदमल जी राठी वैद्य, श्रीराम औषधालय पैण्ड्रा।
श्री धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

उपलब्ध हुए थे, उनके अनुसार एक नया प्रारूप तैयार करके संघ के द्वितीय अधिवेशन को प्रथम बैठक में उपस्थित किया गया। प्रथम बैठक में संघ की सदस्यता की अर्हता के सम्बन्ध में विचारोपरान्त और कविराज प्रतापसिंह जी के सुझाव पर यह निश्चय किया गया कि जो संस्थान मुख्यतः आयुर्वेदीय एवं यूनानी शास्त्रोक्त औषधियों का निर्माण करते हैं, उनको ही संघ का सदस्य बनाया जाय। सदस्यता एवं प्रवेश शुल्क के विषय में संशोधित विधान में अन्तिम रूप से निम्न निश्चय किया गया।

कर्मठ सदस्य—तीस हजार से एक लाख तक वार्षिक बिक्री वाले संस्थान—१०१) रुपया प्रवेश शुल्क और १०) मासिक शुल्क देने पर।

विशिष्ट सदस्य—एक लाख से पांच लाख तक वार्षिक बिक्री वाले संस्थान—२००) प्रवेश शुल्क और २५) रु० मासिक शुल्क देने पर।

संरक्षक सदस्य—पांच लाख से ऊपर वार्षिक बिक्री वाले संस्थान—१०००) रु० प्रवेश शुल्क और १००) मासिक शुल्क देने पर।

यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे संस्थान जो आयुर्वेदिक इन्जेक्शन बनाते हैं, संघ के सदस्य हो सकेंगे अथवा नहीं। पर्याप्त वाद-विवाद के उपरान्त सर्वसम्मति से यह निश्चित हुआ कि इन्जेक्शन निर्माता अपने अनुसन्धान के द्वारा अपने इन्जेक्शनों का आयुर्वेदीय आधार सिद्ध कर दें और उन इन्जेक्शनों की उपयोगिता तथा शुद्ध आयुर्वेदीय एवं यूनानी औषधों से बनाया जाना सिद्ध करदें तो इन्जेक्शन निर्माताओं का भी संघ का सदस्य बना लिया जायगा।

इसी समय इण्डियन फार्मासिस्ट एसोशियेशन बम्बई के मंत्री जी की ओर से संगठन और सहयोग के विषय में एक तार सभास्थल पर ही प्राप्त हुआ। झण्डु फार्मास्युटिकल वर्क्स लि० तथा धूतपापेश्वर इन्डस्ट्रीज प्रा० लि० का एक अन्य संयुक्त तार विधान में कुछ संशोधन के सुझाव के साथ प्राप्त हुआ। उपस्थित सदस्यों ने दोनों तारों पर बड़ी गम्भीरतापूर्वक विचार किया। इण्डियन फार्मासिस्ट एसोशियेशन बम्बई के मन्त्री जी ने पत्र द्वारा भी विधान में कुछ सुधारों का सुझाव दिया था। झंडु और धूतपापेश्वर के अध्यक्षों द्वारा तार से प्रेषित संशोधनों को वाद-विवादोपरांत स्वीकार कर लिया गया और तदनुसार विधान के पूर्व प्रारूप में पृष्ठ ११ एवं १३ पर संघ की अङ्गभूत संस्थाओं के रूप में केन्द्रीय रसायनशाला तथा औषध आयात समिति को संघ के विधान में से सर्वथा हटा दिया गया। इसके उपरांत भोजनादि के हेतु कार्यवाही स्थगित कर दी गई।

२६ अक्टूबर को ही अपराह्न ३ बजे से दूसरी बैठक पुनः आरम्भ हुई। विधान के शेष अंश पर विचार विमर्श के उपरांत सम्पूर्ण संशोधित विधान सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। २७ अक्टूबर को प्रातः तीसरी बैठक में निम्न उल्लेखनीय बातें स्वीकृत हुईं:—

(१) संघ का मन्त्री कोई योग्य अंग्रेजी-हिन्दी का विद्वान नियुक्त किया जायगा जो यथासम्भव कानून और देशी औषधि-उद्योग का ज्ञान रखता हो। मन्त्री वैतनिक होगा।

(२) संघ के स्वीकृत संविधान के अनुसार संघ को शीघ्र रजिस्टर्ड कराने के निमित्त श्री शांतिप्रसाद जी जैन की प्रधानता में एक समिति नियुक्त की गई। तदर्थ १५०) रु० का व्यय स्वीकृत किया गया।

(३) संघ के लिए वर्ष भर के निमित्त स्थायी रूप से एक कानूनी सलाहकार की नियुक्ति के लिये श्री पुष्करणा जी और श्री शांतिप्रसाद जी को अधिकार दिया गया।

(४) निश्चय हुआ कि नयी दिल्ली क्षेत्र में संघ के प्रधान कार्यालय के हेतु एक अच्छा मकान ले

लिया जावे, जिसका १२५) मासिक से अधिक किराया-व्यय श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद की ओर से दिया जायगा।

(५) निश्चय हुआ कि शीघ्र ही संशोधित और स्वीकृत विधान की प्रतियां प्रवेश पत्र के साथ देश भर के देशी औषधि-निर्माताओं के पास इस प्रार्थना के साथ भेजी जावें कि वे यथासंभव शीघ्र ही अपना प्रवेश पत्र भरकर भेज दें और नियमित शुल्क भेज दें।

पूर्व बैठकों में स्वीकृत विधान पर पुनर्विचार के उपरांत संघ के भावी कार्यक्रम पर विस्तार से विचार-विमर्श हुआ। इण्डियन फार्मासिस्ट एसोसिएशन बम्बई के मन्त्री जी के पत्रों पर निश्चय हुआ कि हमारा संघ उनका भरपूर सहयोग प्राप्त करने के निमित्त सदा प्रयत्नशील रहेगा। पश्चिम बंगाल देशी औषधि-निर्माता संघ एवं पंजाब प्रदेश देशी औषधि निर्माता संघ के अखिल भारतीय संघ से सम्बद्ध होने के निश्चयों का स्वागत किया गया।

भावी कार्यक्रम के विषय में निश्चय हुआ कि शीघ्र ही केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों और उच्चाधिकारियों के समक्ष आसव-अरिष्ट पर मद्यकर कानून के विरोध में संघ की ओर से एक ठोस स्मृतिपत्र प्रस्तुत किया जाय। स्मृति-पत्र के हेतु मूल बातें सर्वसम्मति से स्वीकार की गई।

संघ के कार्यक्रम के सम्बन्ध में उपस्थित महानुभावों ने विभिन्न विचार प्रस्तुत किये और यह निश्चय किया गया कि आगे एक ओर तो संघ के संगठन को शीघ्र दृढ़ बनाया जाय, दूसरी ओर सरकार की ओर से यदि आवेदनिक प्रार्थनाओं पर ध्यान न दिया जावे तो आसव-अरिष्टों को मद्यकर से मुक्त कराने के निमित्त कानूनी कार्यवाही का प्रश्रय संघ की ओर से लिया जा सकता है।

तृतीय बैठक में निम्न प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किये गए—

प्रस्ताव नं० १

अ० भा० देशी औषधि-निर्माता संघ का यह अधिवेशन आयुर्वेदीय आसव-अरिष्टों को केन्द्रीय सरकार द्वारा मेडिकल एण्ड टायलेट प्रिपेरेशन्स (एक्साइज़ ड्यूटीज) एक्ट तथा रूल्स में सम्मिलित किये जाने का घोर विरोध करता है।

इस अधिवेशन की सम्मति में आयुर्वेदिक आसव-अरिष्ट शुद्ध शास्त्रोक्त औषध मात्र हैं और वे कदापि मद्य के रूप में नहीं लिये जा सकते। आसव-अरिष्टों का निर्माण मद्य की तरह डिस्टिलेशन अथवा अर्क निकालने की प्रक्रिया से नहीं किया जाता और न ही उसमें अलग से मद्यसार मिलाया जाता है। आसवारिष्टों का प्रयोग मद्य की भांति नहीं होता और न ही इनका प्रभाव मद्य के समान मदकारी होता है। वे केवल औषधि के रूप में थोड़ी मात्रा में ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं। आसवारिष्टों में ऐसी औषधों का योग रहता है, जिनके कारण अधिक मात्रा में पी लेने पर इनसे विभिन्न प्रकार की कष्टकर हानि होती है। ऐसी दशा में इस अधिवेशन की राय में आसवारिष्टों को मद्यकर कानून के अन्तर्गत लेना नितान्त अविचारपूर्ण है।

आसवारिष्ट देशी चिकित्सा-पद्धति के अत्यंत उपयोगी सर्वाधिक प्रचलित बहुत महत्वपूर्ण अङ्ग है। इन पर मद्यकर कानून के प्रतिबन्ध लग जाने से देशी चिकित्सापद्धति का अङ्ग-भङ्ग होने का स्पष्ट खतरा है और औषध व्यवसाय में नितान्त अवरोध उत्पन्न होने की आशंका है। यह लाखों की जीविका तथा करोड़ों के स्वास्थ्य का प्रश्न है। अतः यह अधिवेशन केन्द्रीय सरकार से साग्रह निवेदन करता है कि इस कानून पर पुनर्विचार करके इसमें से आसव-अरिष्टों से सम्बन्धित समस्त धाराएँ हटाकर देशी औषध-व्यवसाय को सुरक्षा प्रदान करे।

प्रस्ताव नं० २

अ० भा० देशी औषध निर्माता संघ का यह अधिवेशन इस बात पर अत्यन्त दुःख प्रकट करता है कि मेडिसिनल एण्ड टायलेट प्रिपेरेशन (एक्सा-

इज डयूटीज) एक्ट तथा रुल्स में विधान होते हुए भी बम्बई सरकार का एक्साइज विभाग देशी औषध निर्माताओं को आसवारिष्ट बनाने के लिये "नौन बाण्डेड मैन्यूफैक्टरी" का लाइसेंस नहीं देता और उन्हें बाध्य करता है वे "बान्डेड मैन्यूफैक्टरी" का लाइसेंस ही लेवें। संघ की सम्मति में बम्बई प्रदेश के एक्साइज विभाग की यह नीति देशी औषध-व्यवसाय के प्रति दुर्भावपूर्ण और अनैतिक है। यह अधिवेशन बम्बई सरकार से आग्रह करता है कि विधानानुसार देशी औषध-निर्माताओं को आसवारिष्ट निर्माण के लिए 'नौनबांडेड मैन्यूफैक्टरी' का लाइसेंस देना स्वीकार किया जाय।

प्रस्ताव नं० ३

अ० भा० देशी औषध-निर्माता संघ का यह अधिवेशन मैजिक रेमिडीज एण्ड औबजैक्सनेबल एडवर्टाइजमेंट एक्ट के अन्तर्गत देशी सिद्ध औषधों के प्रचार में किसी प्रकार की बाधा का विरोध करता है और केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय से यह आग्रह करता है कि औषधों के प्रचार पर किसी प्रकार की आपत्ति न करने सम्बन्धी स्पष्ट आदेश प्रादेशिक स्वास्थ्य अधिकारियों को दिये जावें। साथ ही अधिवेशन का यह भी आग्रह है कि कानून में निर्धारित रोग सूची पर पुनर्विचार कर उसमें से ऐसे रोगों के प्रचार से प्रतिबन्ध हटा दिया जाय जो वास्तव में गुप्त रोगों की श्रेणी में नहीं आते।

चौथे प्रस्ताव के द्वारा पंजाब सरकार की इस नीति का घोर विरोध किया गया कि वैद्यों तथा देशी औषध-निर्माताओं को पंजाब में एक्साइज विभाग अफीम तथा भंग के लिये लाइसेंस नहीं देता। भंग और अफीम दोनों ही अनेक देशी औषधियों में प्रयोग की जाती हैं, अतः सरकार से अनुरोध किया गया है कि पंजाब के निर्माता और वैद्यों को उचित मात्रा में उक्त दोनों आवश्यक द्रव्य प्राप्त करने के निमित्त सुविधा प्रदान करें।

सहयोग में वृद्धि

पिछले सम्मेलन की अपेक्षा इस द्वितीय सम्मेलन में कुछ और अधिक लोगों का सहयोग संघ को मिला, और प्राप्त सन्देशों के आधार पर यह विश्वास किया जाता है कि निकट शीघ्र ही संघ के सदस्य प्रायः समस्त देशी औषधि-निर्माताओं से सम्पर्क स्थापित करने का कार्य आरंम्भ कर दिया गया है। दिल्ली में संघ के कार्यवाहक अध्यक्ष ने प्रसिद्ध औषधि-निर्माता संस्थान श्री धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ के अध्यक्ष श्रीयुत् देवीशरण जी गर्ग वैद्य-राज से मुलाकात की। श्रीयुत् गर्ग जी यद्यपि अपने औषधि-निर्माण, पत्र-सम्पादन और उससे अधिक चिकित्सा कार्य में बहुत अधिक व्यस्त रहते हैं, तथापि उन्होंने संघ के संगठन पर हर्ष व्यक्त किया और अपना सक्रिय सहयोग देने का आश्वासन दिया।

मूल्य वृद्धि

औषधि-निर्माण में काम आने वाले प्रायः सभी द्रव्यों का मूल्य बढ़ गया है तथा निरंतर बढ़ता जारहा है। प्रान्तीय तथा अन्तर्प्रान्तीय बिक्री-कर लग जाने से भी औषधियों के उत्पादन मूल्य में वृद्धि होगई है। इसी कारण अन्य प्रायः सभी फार्मेसियों ने औषधियों के मूल्य बढ़ा दिए हैं। हमारी औषधियों के भावों में मुनाफा नाम मात्र ही रखा जाता है। येन-केन-प्रकारेण अब तक हम उन भावों पर औषधियां सप्लाई करते रहे किन्तु अब उन भावों पर औषधियां सप्लाई करने में हानि रहती है, अतः विवश होकर हमको औषधियों के मूल्य में कुछ वृद्धि करनी पड़ रही है। हम किसी भी दशा में अपनी औषधियों की प्रामाणिकता में न्यूनता नहीं आने देना चाहते हैं, ग्राहकों से भी अनुचित बड़ा लाभ प्राप्त करना हमको पसंद नहीं। हम बहुत कम लाभ लेते हुए प्रामाणिक औषधियां वैद्य समाज को देते आए हैं और वही सिद्धान्त हमारा सदैव स्थिर रहेगा। आशा है हमारे कृपालु ग्राहक हमारी इस अल्प मूल्य वृद्धि को स्वीकार करते हुए सदैव की भांति सेवा का अवसर देते रहेंगे। नवीन थोक भावों का सूचीपत्र आगे दिया गया है। अब पुराने सूचीपत्र के भाव से औषधियां भेजने का व्यर्थ आग्रह न करें, हम उनके आग्रह की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ रहेंगे।

आर्डर देते समय

कृपया ध्यान रखें

१—आदेशपत्र में औषधियों का मूल्य नवीन भावों के अनुसार लिख दें या यह संकेत करदें कि बढ़े हुए भाव स्वीकार हैं।

२—औषधियों का मूल्य न लिखा होने पर हमको बढ़े हुए भावों की स्वीकृति लेनी होगी और स्वीकृति मिलने पर ही औषधियां भेज सकेंगे। अतः अधिक विलम्ब होगा।

हजारों-लाखों रोगियों पर पूर्ण परीक्षित

सफल पेटेंट औषधियां

मकरध्वजवटी—सर्वोत्तम आयुर्वेदिक रसायन है, सभी प्रकार की निर्बलता, जीर्ण व्याधियों के बाद होने वाली निर्बलता, स्मरणशक्ति की कमी आदि के लिए सफल महौषधि है। ४१ गोली की १ शीशी २॥=)

ज्वरारि—ज्वर-जूड़ी की कुनीन रहित विशुद्ध आयुर्वेदिक औषधि है। मलेरिया तथा उसके उपद्रव शान्त करने के लिए शीघ्र प्रभावकारी। मूल्य १० मात्रा की १ शीशी १)

कासारि—हर प्रकार की खांसी को शीघ्र नष्ट करने वाली सर्वत्र प्रचलित अक्सीर एवं सस्ती दवा। २० मात्रा की एक शीशी १)

कुमारकल्याणघुटी—बालकों के सभी रोगों को नष्ट करके उनको मोटा-ताजा स्वस्थ-सुन्दर बनाने वाली मीठी व विशुद्ध आयुर्वेदिक घुटी। मूल्य १ शीशी ।–)

वातारिवटी—सम्पूर्ण प्रकार की वात-व्याधि एवं शरीर में किसी भी स्थान के दर्द को नष्ट करने में पूर्ण प्रभावशाली औषधि। मूल्य २)

मुख के छालों की दवा—मुंह में छाले होने पर मनुष्य को बड़ी परेशानी और कष्ट होता है। इस दवा से शीघ्र ही छाले शान्त हो जाते हैं। मूल्य १ शीशी ॥=)

अग्निबल्लभ क्षार—यह दवा स्वर्गीय वैद्यराज राधावल्लभ जी की परीक्षित दवा है। इसके सेवन से खाना हजम होता है, भूख लगती है। पेट में बनने वाली वायु, भूख न लगना, खट्टी खट्टी डकारें आना, पेट में हल्का-हल्का दर्द होना, मुंह में पानी भर-भरके आना आदि उदर, विकार शीघ्र और अवश्य नष्ट होते हैं। मूल्य १ शीशी (२ औंस) १)

खाज-रिपु—सूखी या गीली दोनों प्रकार की खाज मनुष्य को बड़ा कष्ट देती है। खाजरिपु के व्यवहार से इनका शीघ्र शमन होता है। मूल्य १ शीशी १) छोटी शीशी ॥–)

पायरिया मंजन—दांतों को चमकीला बनाता है, दांतों से मवाद व खून का जाना रोकता है। दांतों का हिलना, मसूड़ों का फूलना आदि कष्ट भी नष्ट करने वाला सर्वोत्तम दन्तमंजन। मूल्य—२ औंस की १ शीशी ॥)

मनोरम चूर्ण—स्वादिष्ट, शीतल व पाचक चूर्ण है। एक बार चख लेने पर शीशी खतम करके आप उसे छोड़ेंगे। गुण और स्वाद दोनों में लाजवाब है। मूल्य १ शीशी २ औंस ॥) १ छोटी शीशी ।–)

कर्णामृत तैल—कानों में दर्द होना, मवाद बहना, सांय-सांय की आवाज होना, कम सुनाई पड़ना सभी विकारों के लिए सफल प्रमाणित आयुर्वेदिक सिद्ध तैल है। १ शीशी =॥)

६० वर्ष पुराना विश्वस्त व विशाल कारखाना—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़

का

★ थोक (व्यापारी) भाव ★

❖ कूपीपक्व रसायन ❖

	१ तोला	१ माशा
सिद्ध मकरध्वज नं० १	३६)	३–)
सिद्ध मकरध्वज नं० २	२४)	२–)
सिद्ध मकरध्वज नं० ३	१८)	१॥–)
सिद्ध मकरध्वज नं० ४	२१)	१॥।–)
सिद्ध मकरध्वज नं ५	१५)	१।–)
सिद्ध मकरध्वज नं ६	१०)	॥।=)
सिद्ध चन्द्रोदय नं०१	६०)	५–)
अनुपान मकरध्वज	५)	॥)
मल्ल चन्द्रोदय	३६)	३–)
	१ तोला	३ माशा
रससिंदूर नं० १	६)	२।–)
रससिंदूर नं० २	६)	१॥–)
रससिंदूर नं० ३	४)	१–)
मल्ल सिंदूर	६)	१॥–)
ताम्र सिंदूर	६)	१॥–)
ताल सिंदूर	६)	१॥–)
स्वर्ण बंगभस्म	२॥)	॥≡)
मृतसंजीवनी रस	३)	॥।–)
रस कपूर (उपदंश रोगे)	७)	१॥।–)
रस माणिक्य	२॥)	॥≡)
समीरपन्नग रस नं १	२१)	५।–)
समीरपन्नग रस नं० २	६)	१॥–)
पंचसूत रस	६)	१॥–)
स्वर्णभूपति रस	२१)	५।–)
व्याधिहरण रस	१०)	२॥–)

❖ भस्में ❖

	१० तो०	५ तो०	१ तो०	३ मा.
अभ्रकभस्म नं १	+	१३०)	२७)	६॥।–)
अभ्रकभस्म नं. २	२०)	१०)	२–)	॥–)
अभ्रकभस्म नं. ३	१०)	५)	१–)	।–)
अकीकभस्म	२४)	१२॥)	२॥–)	॥≡)
कपर्दभस्म	२)	१)॥	।)	=)
कान्तलोहभस्म	१२॥)	६।)	१।=)	।=)
गौदन्तीहरतालभस्म	१॥।)	॥।≡)	।)	=)
जहरमोहराभस्म	१७॥)	८॥।)	१॥।–)	॥)
तबकीहरतालभस्म	+	२८)	६)	१॥–)
ताम्रभस्म नं. १	+	१६)	४)	१–)
ताम्रभस्म नं. २	१६)	१०)	२–)	॥–)
ताम्रभस्म नं. ३	६॥)	५)	१–)	।–)
नागभस्म नं. १	२०)	१०)	२–)	॥–)
नागभस्म नं. २	८)	४)	॥।=)	।)
प्रवालभस्म नं. १	×	२०)	४–)	१–)
प्रवालभस्म नं. २	१५)	७॥)	१॥–)	।≡)
प्रवालभस्म नं. ३	१५)	७॥)	१॥–)	।≡)
प्रवालभस्म नं. ४	१२॥)	६।)	१।–)	।–)॥
प्रवालभस्म चन्द्रपुटी	१२)	६)	१।)	।–)॥
वंगभस्म नं० १	१५)	७॥)	१॥–)	।=)
वंगभस्म नं० २	६।)	३=)	॥≡)	≡)
वैक्रान्तभस्म	×	२५)	५।)	१।=)
मल्लभस्म	×	२०)	४।)	१=)
मृगशृंगभस्म	३)	१॥–)	।=)	=)॥
माणिक्यभस्म	×	×	१०)	२॥–)

	१० तोला	५ तो०	१ तोला	३ मा०
माण्डूरभस्म नं० १	४)	२–)	।≡)	≡)
माण्डूरभस्म नं० २	३)	१॥–)	।–)	=)
मुक्ताभस्म नं. १	×	×	७०)	१७॥–)
मुक्ताभस्म नं. २	×	×	६६)	१६॥–)
यशदभस्म	१२)	६)	१।)	।=)
रौप्यभस्म नं. १	×		८)	२–)
रौप्यभस्म नं. २	×	×	६)	१॥–)
लौहभस्म नं १ ३०० पुटी		२५)	५–)	१।–)
लौहभस्म नं.२	१०)	५)	१–)	।–)
लौहभस्म नं ३	५)	२॥)	॥–)	≡)
स्वर्णभस्म नं. १ कज्जली द्वारा			१३२)	३३–)
स्वर्णमाक्षिकभस्म	१२)	६)	१।)	।=)
शंखभस्म	२)	१)	।)	=)
शुक्तिभस्म	३)	१॥)	।–)॥	=)॥
संगजराहतभस्म	५)	२॥)	॥–)	≡)
त्रिवंगभस्म नं. १	×	१५)	३–)	॥।–)
त्रिवंगभस्म नं. २)	६।)	३=)	॥≡)	≡)

★ पिष्टी ★

	५ तोला	१ तोला	३ मा०
प्रवालपिष्टी	६)	१।)	।=)
मुक्तापिष्टी	×	६०)	१५–)
अकीकपिष्टी	७॥)	१॥–)	।≡)
जहरमोहरापिष्टी	७॥)	१॥–)	।≡)
कहरवापिष्टी	×	६)	१॥–)
मुक्ताशुक्तिपिष्टी	२॥)	।–)	+
माणिक्यपिष्टी	×	४)	१–)

★ शोधित द्रव्य ★

	१० तोला	१ तोला
कज्जली नं० १	१२॥)	१।–)
शु० गंधक	३)	।=)
शु० जयपाल	३)	।=)
शु० हरताल	८)	॥।=)
शु० पारद हिंगुलोत्थ	१२)	१।)
पारद संस्कारित	×	१५)
शु० बच्छनाग	४)	।≡)

	१० तोला	१ तोला
शु० विषबीज वस्त्रपूत	५)	॥–)
शु० मल्ल	१०)	१–)
शु० मंसिल	८)	॥।=)
शु० भल्लातक	३)	।=)
शु० धत्तूर बीज	२॥)	।–)
शु० हिंगुल	८)	॥।=)
	१ सेर	५ तोला
शु० ताम्र चूर्ण	१०)	॥≡)
धान्याभ्रक	४)	।–)
शु० लोह चूर्ण	४॥)	।–)
शु० माण्डूर	१॥)	=)
शु० गूगल	८)	॥–)

★ पर्पटी ★

	१ तोला	१ माशा
ताम्र पर्पटी नं १	५)	।≡)॥
,, ,, नं. २	२॥)	।)
पंचामृत पर्पटी नं० १	५)	।≡)॥
,, ,, नं० २	२॥)	।)
विजय पर्पटी नं १	२४)	२–)
बोल पर्पटी नं १	५)	।≡)॥
,, ,, नं २	२॥)	।)
रस पर्पटी नं० १	४॥)	।≡)
,, ,, नं० २	२।)	≡)॥
लौह पर्पटी नं०१	५)	।≡)॥
,, ,, नं०२	२॥)	।)
श्वेत पर्पटी	२॥)	।–)
स्वर्ण पर्पटी नं० १	२४)	२–)
,, ,, नं ० २	१५)	१।–)

★ मूल्यवान रस-रसायन ★

	१ तोला	१ माशा
आमवातेश्वर रस	१२)	१–)
वृ० कस्तूरीभैरव रस	१६)	१।=)
कस्तूरीभैरव रस	१२)	१–)
कस्तूरीभूषण रस	१४)	१≡)
कामदुधा रस नं० १	८)	॥।=)

	१ तोला	१ माशा
कामिनी विद्रावणरस	६)	॥-)
कृष्णचतुर्मुख रस	१२)	१-)
कुमारकल्याण रस	३०)	२॥-)
चतुर्मुखचिन्तामणि रस	१६)	१।=)
जयमंगल रस	२७)	२।-)
प्रवालपंचामृत रस	१०)	।॥=)
पु. प. वि. ज्वरांतकलोह	१२)	१-)
वृ. पूर्णचन्द्ररस	१८)	१॥-)
वसंतकुसुमाकर रस	२२)	१।॥=)
वृ. वातचिन्तामणि रस	२४)	२-)
ब्राह्मीवटी	२८)	२॥)
मृगांकपोटली रस	७२)	६-)
मधुमेहांतक रस	५० गोली ८)	
मधुरांतक रस	६)	॥-)
मन्मथाभ्र रस	९)	।॥-)
महाराजनृपतिवल्लभ रस	७)	॥=)
महालक्ष्मीविलास रस	७)	॥=)
महाराज वंगभस्म	६)	॥-)
योगेन्द्र रस	३६)	३-)
रसराज रस	२१)	१।॥-)
राजमृगांक रस	२४)	२-)
वृ. लोकनाथ रस	३॥)	।-)
श्वासचिंतामणि रस	१४)	१।)
स्वर्णबसंत मालती नं० १	२४)	२-)
,, ,, नं० २	१४)	१।)
सर्वांगसुन्दर रस	१५)	१।-)
संग्रहणीकपाट रस नं. १	२८)	२।=)
सूतशेखर रस नं० १	१२)	१-)
हेमगर्भ रस	२७)	२।-)
हिरण्यगर्भपोटली रस	२४)	२-)

❖ रस-रसायन गुटिका ❖

	५ तोला	१ तोला
अग्निकुमार रस	२)	।≡)
अजीर्णकंटक रस	२॥)	॥-)
अर्शांतक वटी	४)	।॥-)
अमरसुन्दरी वटी	३)	॥=)
अम्लपित्तांतक रस	३।॥)	।॥-)
अग्नितुण्डी वटी	२॥)	॥-)
आनंदभैरव रस लाल	२॥)	॥-)
आनंदोदय रस	६।)	१।-)
आदित्य रस	५)	१-)
आरोग्यवर्द्धिनी वटी	२॥)	॥-)
इच्छाभेदी रस	२॥)	॥-)
इच्छाभेदी वटी	३)	॥=)
उपदंशकुठार रस	२॥)	॥-)
उष्णवातघ्न वटी	७॥)	१॥-)
एकांगवीर रस	१७॥)	३॥-)
एलादिवटी	१।)	।-)
एलुआदि वटी	१।)	।-)
कर्पूररस (अतिसारे)	१५)	३-)
कनकसुन्दर रस	२॥)	॥-)
कफकुठार रस	४)	।॥=)
कफकेतु रस	२॥)	॥-)
करंजादि वटी	५०० गोली ७॥)	५० गोली ।॥-)
कामाग्निसंदीपन मोदक	१॥)	।-)
कामदुधा रस (मौक्तिक रहित)	७॥)	१॥-)
कामधेनु रस नं० २	८)	१।॥)
कांकायन गुटिका	१।)	।-)
कीटमर्द रस	१॥=)	।=)
क्रव्यादि रस वृ०	१५)	३-)
कृमिकुठार रस	३)	॥=)
खैरसार वटी	१।)	।-)
गंगाधर रस	६।)	१।-)
गंधकरसायन	६।)	१।-)
गर्भविनोद रस	२॥)	॥-)
गर्भपाल रस	६।)	१।-)
गर्भचिन्तामणि रस	१२॥)	२॥-)
गुल्मकुठार रस	४)	।॥-)
गुल्मकालानल रस	४)	।॥-)

	५ तोला	१ तोला
गुड़पिप्पली	१।।)	।-)।।
गुड़मार वटी	१।)	।-)
ग्रहणीगजेन्द्र रस	१०)	२-)
ग्रहणीकपाट रस नं० २	४)	।।।=)
ग्रहणीकपाट रस लाल	७।।)	१।।-)
चोड़ाचोली रस	२)	।≡)
चन्द्रोदय वर्ति	२।।)	।।-)
चंद्रकला रस	४।।)	।।।≡)
चन्द्रामृत रस	३।)	।।≡)
चन्द्रांशु रस	३।)	।।≡)
चित्रकादि वटी	१।)	।-)
ज्वरांकुश रस (महा)	२।।)	।।-)
जयवटी	६।)	१।-)
जलोदरारि वटी	३)	।।=)
जातीफल रस	३।।)	।।।)
तक्रवटी	३)	।।=)
दुर्जलजेतारस	२।।)	।।-)
दुग्धवटी नं० १	१७।।)	३।।-)
" " २	२।।)	।।-)
नवज्वरहर वटी	२।।)	।।-)
नष्टपुष्पान्तक रस	१२।।)	२।।-)
नृपतिवल्लभ रस	५)	१-)
नाराच रस	२।।)	।।-)
नित्यानन्द रस	३।।)	।।।)
प्रतापलंकेश्वर रस	२।)	।।-)
प्रदरारि रस	२।।)	।।-)
प्रदरान्तक रस	५।।)	१=)
प्लीहारि रस	२।।)	।।-)
प्राणेश्वर रस	१०)	२-)
प्राणदागुटिका	२)	।≡)
पंचामृत रस नं० १	२।।)	।।-)
" " " २	३)	।।=)
पाशुपत रस	३।।।)	।।।-)
पीपल ६४ पहरा	१२)	२।।)
वृ० शंखवटी	२।।)	।।-)

	५ तोला	१ तोला
वृ० नायकादि रस	१।।)	।-)
वृद्धिवाधिका वटी	७।।)	१।।-)
बहुमूत्रांतक रस	६।)	१।-)
बहुशाल गुड़	१।।।)	।=)
ब्राह्मीवटी	७।।)	१।।-)
बालामृत वटी	१५)	३-)
वृ० वातगजांकुशरस	६।)	१।-)
विषमुष्टिका वटी	२।।)	।=)
वैतालरस	१०)	२-)
व्योषादि वटी	१।)	।-)
महामृत्युञ्जय रस	३)	।।=)
मृत्युञ्जय रस (कृष्ण)	३)	।।=)
मकरध्वज वटी	५०० गोली	२०)
मरिच्यादि वटी	१।)	।-)
महागंधक रस	३)	।।=)
महाशूलहर रस	४।)	।।।=)
मदनानन्दमोदक	१।।)	।-)
महावातविध्वंस रस	१०)	२-)
मार्कण्डेय रस	२।।)	।।-)
मूत्रकृच्छ्रांतक रस	१०)	२-)
मेहमुद्गर रस	३)	।।=)
रजप्रवर्तक वटी	३।।।)	।।।-)
रक्तपित्तांतक रस	३।।।)	।।।-)
रामबाण रस	२।।।)	।।-)
लशुनादि वटी	१।।)	।-)
लघुमालती वसंत	१०)	२-)
लक्ष्मीविलास रस	६)	१।)
लक्ष्मीनारायण रस	८)	१।।≡)
लाई (रस) चूर्ण	२।।)	।।-)
लीलावतीगुटिका	२)	।≡)
लीलाविलास रस	४।।)	।।।≡)
लोकनाथ रस	५)	१-)
श्वासकुठार रस	२।।)	।।-)
शंखवटी	१।।)	।-)

	५ तोला	१ तोला
शंशमनी वटी	४)	।।।=)
शिरोवज्र रस	३)	।।=)
शिलाजीत वटी	३)	।।=)
शीतभंजी रस	६।)	१।-)
शूलवज्रिणी वटी	२।।)	।।-)
शूलगजकेशरी	७)	१।≡)
शृंगाराभ्रक रस	६)	१।)
स्मृतिसागर रस	११।)	२।-)
संजीवनी रस	२)	।≡)
सर्पगंधा वटी	३)	।।=)
समीरगजकेशरी	१५)	३-)
सि. प्राणेश्वर रस	३)	।।=)
सूतशेखर रस नं० २	१०)	२-)
वृ० शूरणमोदक	१)	।)
सौभाग्य वटी	२।।)	।।-)
हिंग्वाष्टक वटी	१।)	।-)
हृदयार्णव रस	७।।)	१।।-)
त्रिपुरभैरव रस	३)	।।=)
त्रिभुवनकीर्ति रस	२।।)	।।-)
त्रिविक्रम रस	१०)	२-)

★ लौह-मांडूर ★

	५ तोला	१ तोला
अम्लपित्तान्तक लौह	४)	।।।-)
चन्दनादि लौह (ज्वर)	५)	१-)
" " (प्रमेह)	६।)	१।-)
ताप्यादि लौह	१२।।)	२।।-)
धात्रीलौह	४)	।।।-)
नवायस लौह	२।।)	।।-)
प्रदरारिलौह	५।।)	१=)
प्रदरांतक लौह	६।)	१।-)
पुनर्नवादि माण्डूर	२)	।≡)
विडंगादि लौह	३)	।।=)
विषमज्वरांतक लौह	५।।)	१=)
यकृतहर लौह	४)	।।।-)
शोथोदरारि लौह	६।)	१।-)
सर्वज्वरहर लौह	४)	।।।-)
सप्तामृत लौह	४)	।।।-)
त्र्यूषणादि लौह	४)	।।।-)

★ गुग्गुल ★

	२० तोला	५ तोला	१ तोला
अमृतादिगूगल	५)	१।-)	।-)
कांचनारगूगल	४)	१-)	।)
किशोरगूगल	४)	१-)	।)
गोक्षुरादिगूगल	४।।)	१≡)	।)।।
पुनर्नवादिगूगल	४)	१-)	।)
वृ० योगराजगूगल	१५)	३।।।-)	।।।-)
योगराजगूगल	४)	१-)	।)
रसाभ्रगूगल	१६)	४-)	।।।-)।।
रास्नादिगूगल	४)	१-)	।)
सिंहनादगूगल	६)	१।।-)	।-)।।
त्रियोदशांगगूगल	५)	१।-)	।-)
त्रिफलागूगल	४।।)	१≡)	।)।।

★ आसव-अरिष्ट ★

	१ बो०	१ पौ०	१ अद्धा	८ औंस
अमृतारिष्ट	१।।।=)	१।।=)	१-)	।।।=)
अर्जुनारिष्ट	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
अरविन्दासव	२=)	१।।≡)।।	१≡)	।।।=)
अशोकारिष्ट	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
अभयारिष्ट	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
अश्वगंधारिष्ट	१।।।≡)	१।।=)	१=)	।।।=)
उसीरासव	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
कनकासव	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
कुमारीआसव	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
कुटजारिष्ट	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
खदिरारिष्ट	१।।।=)	१।।=)	१-)	।।।=)
चन्दनासव	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
दशमूलारिष्ट (कस्तूरी युक्त)	४)	३।)	२=)	१।।≡)
दश०रि०नं०२	१।।।=)	१।।=)	१-)	।।।=)

	१ बो०	१ पौ०	१ अद्धा	८ औंस
द्राक्षासव	१॥=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
द्राक्षारिष्ट	१।।।)	१।≡)	१)	।।।)।।
देवदार्व्यारिष्ट	१।।।=)	१।।=)	१=)	।।।=)
पत्रांगासव	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
पुनर्नवासव	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
पिप्पलासव	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
बल्लभारिष्ट	२।।)	२=)	१।≡)	१=)
बबूलारिष्ट	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
वांसारिष्ट	४।।)	३।।।≡)	२।=)	२)
बालरोगांतकारिष्ट	२)	१।।≡)	१=)	।।।≡)
रक्तशोधकारिष्ट	१।।।)	१।≡)	१)	।।।)।।
रोहितकारिष्ट	१।।।)	१।≡)	१)	।।।)।।
लोहासव	१।।=)	१।=)	।।।≡)	।।।)
सारस्वतारिष्ट नं० १	×	×	×	५)
,, ,, नं.२	२)	१।।≡)	१=)	।।।≡)
सारिवाद्यासव	२=)	१।।।)	१≡)	।।।≡)

❖ अर्क ❖

	१ बोतल	१ पौंड	८ औंस
अर्क उसवा	१।।।)	१।≡)	।।।)।।
अर्क दशमूल	१।।।)	१।≡)	।।।)।।
द्राक्षादि अर्क	१।।।)	१।≡)	।।।)।।
महामंजिष्ठादि अर्क	१।।।)	१।≡)	।।।)।।
महारास्नादि अर्क	१।।।)	१।≡)	।।।)।।
सुदर्शन अर्क	१।।।)	१।≡)	।।।)।।
अर्क सौंफ	१।)	१)	।।-)
अर्क अजवायन	१।।)	१।-)	।।≡)।।
अर्क पोदीना	२)	१।।=)	।।।=)

❖ क्वाथ ❖

दशमूल क्वाथ — १ मन ४०) १ सेर १=)

२-२ तोले की १०० पुड़िया ४)

दार्व्यादि क्वाथ — १ सेर २)

१०-१० तोले की ८ पुड़िया २=)

द्राक्षादि क्वाथ	१ सेर	१।।)	,,	१।।=)
बलादि क्वाथ	१ सेर	१।।)	,,	१।।=)
महामंजिष्ठादि क्वाथ	१ सेर	२)	,,	२=)
महारास्नादि क्वाथ	१ सेर	२)	,,	२=)
त्रिफलादि क्वाथ	१ सेर	१।।)	,,	१।।=)

❖ चूर्ण ❖

	१ सेर डिब्बा में	५ तोला डिब्बा में	५ तोला शीशी में
अग्निमुख चूर्ण	८)	।।-)	।।=)
अविपत्तिकरचूर्ण	८)	।।-)	।।=)
अजीर्णपानक चूर्ण	१०)	।।≡)	।।≡)।।
अग्निबल्लभ क्षार	१०)	।।≡)	।।।)
उदरभास्कर चूर्ण	८)	।।)।।	।।-)
एलादिचूर्ण	८)	।।)।।	।।-)
कपित्थाष्टक चूर्ण	६।।)	।≡)।।	।।)
कामदेव चूर्ण	६।।)	।≡)।।	।।)
कुमकुमादि चूर्ण.			१ तोला ।।।=)
गंगाधर चूर्ण (बृ०)	६)	।≡)	।≡)।।
चन्दनादि चूर्ण	६)	।≡)	।≡)।।
ज्वरभैरव चूर्ण	६)	।≡)	।≡)।।
जातीफलादि चूर्ण	१२)	।।।)।।	।।।-)
तालीसादि चूर्ण	८)	।।)।।	।।-)
दशनसंस्कार चूर्ण	८)	।।)।।	।।-)
धातुस्रावहर चूर्ण	१२)	।।।)।।	।।।-)
नारायण चूर्ण	६)	।≡)	।≡)।।
निम्बादि चूर्ण	६)	।≡)	।≡)।।
प्रदरांतक चूर्ण	६)	।≡)	।≡)।।
पंचसकार चूर्ण	६)	।≡)	।≡)।।
प्रदरारि चूर्ण	६)	।≡)	।≡)।।
पुष्यानुग चूर्ण	६।।)	।≡)।।	।।)
यवानीखांडव चूर्ण	६।।)	।≡)।।	।।)
लवंगादि चूर्ण	१०)	।।≡)	।।≡)।।
लवणभास्कर चूर्ण	६)	।≡)	।≡)।।
स्वप्नप्रमेहहर चूर्ण	१२)	।।।)।।	।।।-)
सामुद्रादि चूर्ण	७।।)	।।)।।	।।-)
सारस्वत चूर्ण	६)	।≡)	।≡)।।
शृंग्यादि चूर्ण	८)	।।)।।	।।-)

	१ सेर डिब्बा में	५ तोला डिब्बा में	५ तोला शीशी में
तोपलादि चूर्ण	१६)	१)॥ २॥ तो.	॥-)
र्शन चूर्ण	६)	।≡)	॥)
वाष्टक चूर्ण	८)	॥-)	॥-)॥
फलादि चूर्ण	४॥)	।-)॥	।=)

❖ तैल ❖

	१ पौंड	४ औंस	२ औंस
ांवला तैल	४॥)	१=)	॥=)
मेदादि तैल	६)	१॥-)	॥।-)
पूरादि तैल	८)	२)	१-)
ट्फलादि तैल	४॥)	१=)	॥=)
दर्पसुंदर तैल	७)	१॥।-)	॥।≡)
शीसादि तैल	५)	१।-)	॥≡)
रातादि तैल	४)	१-)	॥-)
मारी तैल	४॥)	१=)	॥=)
हणीमिहिर तैल	५)	१।-)	॥≡)
डूच्यादि तैल	५)	१।-)	॥≡)
न्दनादि तैल	५॥)	१।≡)	॥।)
न्दनबला लाक्षादि तैल	५॥)	१।≡)	॥।)
ात्यादि तैल	५)	१।-)	॥≡)
रामूल तैल	५)	१।-)	॥≡)
ाव्यादि तैल	४॥)	१=)	॥=)
हानारायण तैल	५)	१।-)	॥≡)
ानोनाशक तिला	+	६)	३)
पल्यादि तैल	४॥)	१=)	॥=)
रण्डतैल	५)	१।-)	॥≡)
नर्नवादि तैल	५)	१।-)	॥≡)
ाह्मी तैल	६)	१॥-)	॥।-)
ेल्व तैल	६)	१॥-)	॥।-)
षगर्भ तैल	४)	१-)	॥-)
रोजा तैल	६)	१॥-)	॥।-)
ृंगराज तैल	५)	१।-)	॥≡)
हा विषगर्भ तैल	५)	१।-)	॥≡)
हा मरीच्यादि तैल	४॥)	१≡)	॥=)

	१ पौंड	४ औंस	२ औंस
महा माषतैल	४॥)	१≡)	॥=)
मोम का तैल	८)	२-)	१-)
राल का तैल	६)	१॥-)	॥।-)
लाक्षादि तैल	५)	१।-)	॥≡)
शुष्कमूलादि तैल	५)	१।-)	॥≡)
षट्बिन्दु तैल	५)	१।-)	॥≡)
हिमसागर तैल	५)	१।-)	॥≡)
क्षार तैल	७)	१॥।-)	॥।≡)

नोट— तैल की शीशियों को कार्डबक्स में पैकिंग कराकर लेने वालों को ४ औंस के पैक के ।-)॥ प्रति पैक तथा २ औंस के पैक के -) प्रति पैक प्रथक देना होगा।

❖ घृत ❖

	१ सेर	४ औंस
अर्जुनघृत	१२)	१॥-)
अशोकघृत	१२)	१॥-)
अग्निघृत	११)	१।≡)
कदलीघृत	१४)	१॥।-)
कामदेवघृत	१६)	२-)
दूर्वादिघृत	११)	१।≡)
धात्रीघृत	११)	१।≡)
पंचतिक्तघृत	११)	१।≡)
फलघृत	१२)	१॥-)
ब्राह्मीघृत	१२)	१॥-)
बिन्दुघृत	१५)	१॥।≡)
महात्रिफलादिघृत	१३)	१॥≡)
शृंगीगुडघृत	१०)	१।-)
सारस्वतघृत	११)	१।≡)

❖ मलहम ❖

जात्यादि मलहम	२० तोला	२॥)
पारदादि मलहम	,,	३)
निम्बादि मलहम	,,	३)
दशांगलेप	,,	२)
अग्निदग्धव्रणहर मलहम	,,	२)

❖ क्षार ❖

	१० तोला	२॥ तोला
वज्रक्षारचूर्ण	२)	॥)॥
अपामार्गक्षार	२)	॥)॥
वांसाक्षार	३)	॥।)॥
कटेरीक्षार	३)	॥।)॥
कदलीक्षार	२॥)	॥=)॥
इमलीक्षार	२)	॥)॥
तिलक्षार	३)	॥।)॥
मूलीक्षार	३)	॥।)॥
ढाकक्षार	२)	॥)॥
आकक्षार	२)	॥)॥
तम्बाकूक्षार	३)	॥।)॥
केतकीक्षार	२)	॥)॥
चना (चणक) क्षार	३)	॥।)॥
नाड़ी (नेत्रवाला) क्षार	३)	॥।)॥
शंखद्राव	४ औंस ६)	१ औंस १॥-)
नेत्रबिन्दु	८ औंस ८)	½ औंस ।-)
यवक्षार	१ सेर १०)	१ तोला =)॥
गिलोयसत्व	१ सेर २०)	१ तोला ।-)
शहद	१ सेर ३॥)	१ औंस ।=)
भीमसैनीकपूर	१ तोला ३)	

❖ अवलेह-पाक ❖

च्यवनप्राश अवलेह	२० सेर ७५)	१ सेर ४)
	आधा सेर शीशी में २।)	पाव सेर शी. में १=)
कुटजावलेह	१ सेर ६)	१ पाव शीशी में १॥=)
कुशावलेह	,, ६)	,, १॥=)
वांसावलेह	,, ६)	,, १॥=)
ब्राह्मरसायन	,, ८)	,, २=)
आद्रकखण्ड	,, ६)	,, १॥=)
विषमुष्टिकावलेह		५ तोला ५)
मधुकाद्यवलेह		१५ तोला २॥=)
कनकसुन्दर पाक	१ सेर ८)	१० तोला शी. में १=)
बादामपाक	,, १०)	,, १।=)
मूसलीपाक	,, १०)	,, १।=)
सुपारीपाक	,, ८)	,, १=)
सौभाग्यसुण्ठीपाक	,, ८)	,, १=)
एरण्डपाक	,, ८)	,, १=)
बल्लभपाक	१ पाव ५)	५ तोला १।=)

❖ कतिपय मुख्य वस्तुएँ ❖

शिलाजीत सूर्यतापी नं. १ — १ सेर ५०) ५ तोला ३।)
१ तोला ॥≡)

शिलाजीत अग्नितापी नं. २ — १ सेर २५) ५ तो. १॥≡)
१ तोला ।=)

अष्टवर्ग	१ सेर १०)	गिलोयसत्व	१ सेर २०)
ब्राह्मी	१ सेर २)	तालीसपत्र	१ सेर २)
सोमकल्प	१ सेर ३)	रोहतकछाल	१ सेर १)
हिंगुलरूमी	१ सेर ६०)	दशमूलसत्व	१ सेर १५)
यवक्षार	१ सेर १०)	मुलहठीसत्व	१ सेर १४)
दशमूल	१ मन ४०)	प्रवाल शाखा	१ सेर ३०)
सर्पगंधा	१ सेर १२)	उलट कम्बल	१ सेर ६)
वंशलोचन असली			१ सेर ३०)

★ भस्मार्थ द्रव्य ★

ताम्र चूर्ण अशोधित	१ सेर ८)
फौलाद चूर्ण ,,	,, ३॥)
शु० यशद (जस्ता)	१ सेर ८)
वज्राभ्रक कृष्ण	१ सेर ३)
धान्याभ्रक	१ सेर ४)
शु० वंग	१ सेर २०)
शंख टुकड़े	१ सेर १।)
मोतीसीप	१ सेर ५)
पीली कौड़ी	१ सेर ३)

★ ★ ★

आगामी वर्ष

१—आगामी वर्ष का विशेषांक-गुप्तसिद्ध प्रयोगांक अत्यन्त महत्वपूर्ण, उपादेय एवं सुन्दर प्रकाशित होरहा है। हमको पूर्ण विश्वास है कि आप इसे प्राप्त कर अपने को सौभाग्यशाली समझेंगे। अनेकों वयोवृद्ध अनुभवी चिकित्सकों ने अपने हृदय में छुपे हुए सफल प्रयोगों को वैद्य समाज के समक्ष निःसंकोच उपस्थित करने का साहस किया है। इसमें प्रकाशित १-१ प्रयोग से आप इस वर्ष का वार्षिक मूल्य वसूल हुआ समझेंगे। यह विशेषांक निश्चय ही पूर्व प्रकाशित सभी विशेषांकों से अधिक सफलता प्राप्त करेगा।

२—गुप्तसिद्ध प्रयोगांक २८ पौंड के सफेद उत्तम कागज पर भी छापा जारहा है। इसके ऊपर जिल्द में गत्ता (पट्ठा) भी लगाया जायगा। यही राजसंस्करण है। आप इसे अवश्य पसंद करेंगे। इसे प्राप्त करने के लिये ६।।) मनियार्डर से तुरन्त भेज दीजियेगा।

३—पिछले वर्ष हमने अपने लेखकों से 'जलोदर' एवं 'अर्श रोग' दो रोगों पर अपने लेख भेजने की प्रार्थना की थी जिसके फलस्वरूप उक्त दो रोगों पर पाठकों को पर्याप्त अनुभवपूर्ण लेख, चिकित्सा-विधि एवं सफल प्रयोग प्राप्त हुए। आगामी वर्ष हम

१-चेचक (माता) २-भगन्दर

दो रोगों पर लेख भेजने के लिये अपने सभी विद्वान एवं अनुभवी लेखकों से प्रार्थना करते हैं। आशा है इस सूचना को पढ़कर लेखक एवं चिकित्सक समुदाय अपने अनुभवपूर्ण लेख अवश्य भेजने की कृपा करेंगे।

४—आगामी वर्ष हम किसी उपयोगी विषय पर सचित्र विस्तृत गवेषणायुक्त लेखमाला प्रकाशित करना चाहते हैं। लेखक इस विषय में पत्र-व्यवहार करें।

५—धन्वन्तरि के स्थायी लेखकों के अतिरिक्त अन्य विद्वान लेखक यदि अपने उत्तम लेखों को धन्वन्तरि द्वारा वैद्य समाज के समक्ष रखने की अभिलाषा रखते हों तो हम उनका शुभनाम धन्वन्तरि के लेखक मण्डल में सहर्ष सम्मलित कर सकेंगे। उपयोगी उच्च कोटि के लेखों पर उचित परिश्रमिक भी दिया जायगा।

६—हमारे कृपालु ग्राहक तथा शुभ-चिन्तक धन्वन्तरि को अधिक उपयोगी और सुन्दर बनाने के लिए अपने सुझाव भी अवश्य दें जिससे कि हमें धन्वन्तरि को प्रगतिशील बनाने के लिये प्रेरणा मिल सके।

धन्वन्तरि का आगामी विशेषांक

गुप्त सिद्ध प्रयोगांक

(चतुर्थ भाग) की

विशेषताएँ

१—इस विशेषांक में सफल प्रमाणित चुने हुये प्रयोग ही दिये जारहे हैं। लगभग १५०० प्रयोग प्राप्त होगये हैं तथा और भी आरहे हैं, इनमें से बड़ी छान-बीन व सतर्कता से लगभग १००० प्रयोग प्रकाशित किये जायंगे जो सर्वथा उपयोगी, निरापद एवं शीघ्र लाभप्रद प्रमाणित होंगे।

२—धन्वन्तरि में अब तक प्रकाशित हजारों प्रयोगों में से जिन प्रयोगों की परीक्षा पाठकों ने की है और जिनको आशुफलप्रद पाया है उनका विवरण (प्रयोग-सहित) भी दिया जायगा। ऐसे प्रयोग प्राप्त हुए हैं तथा पाठकों से प्रार्थना है कि यदि आपने धन्वन्तरि में प्रकाशित किसी प्रयोग की परीक्षा की हो और उसे सफल पाया हो तो शीघ्र विवरण-सहित सूचित करें।

३—केवल अनुभवी एवं विद्वान चिकित्सकों के प्रयोग ही प्रकाशित किये जायंगे जिनके प्रति यह संदेह नहीं कि वे केवल हमारे आग्रह के कारण अथवा नाम छापने के आकर्षण के कारण अंट-शंट प्रयोग भेज देंगे।

४—प्रयोगों के साथ प्रयोग-प्रेषकों का फोटो, पूरा पता एवं संक्षिप्त परिचय भी दिया जायगा जिससे कि आप भारत के प्रमुख चिकित्सकों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

५—यह विशेषांक २८ पौंड के सुन्दर टिकाऊ ग्लेज कागज पर भी छापा जारहा है जिससे कि यह चिरकाल तक सुरक्षित रह सके। इसके लिये ग्राहकों को १) रु० अधिक देना होगा।

६—प्रयोग में पड़ने वाले द्रव्यों की बड़ी सतर्कता से छान-बीन की जारही है तथा भरसक प्रयत्न किया जारहा है कि संदिग्ध वस्तुओं का विवरण भी साथ दिया जाय जिससे कि पाठक उन प्रयोगों से लाभ उठा सकें।

अन्त में हम यह विश्वास दिला देना चाहते हैं कि यह विशेषांक चिकित्सक-समाज एवं चिकित्सा-प्रेमियों के लिये एक अलभ्य वस्तु होगी, इसमें ऐसे-ऐसे प्रयोग होंगे जिनको पिता अपने पुत्र से छिपाता है तथा जिनसे समय पड़ने पर आप हजारों रुपयों का काम आसानी से सम्पन्न कर सकेंगे। चिकित्सकों के लिये तो वह प्रतिदिन देखने की पुस्तक बनी जा रही है।